

दो शब्द

‘वायु पुराण’ की विशेषताओं का वर्णन प्रथम भाग की भूमिका में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। इस दूसरे खण्ड में जो महत्त्वपूर्ण विषय पाठकों को मिलेंगे उनसे पूर्ववर्ती धारणाओं की ओर अधिक पुष्टि हो सकेगी। सृष्टि, प्रलय, जड़-चेतन पदार्थों का प्रमश आविर्भाव, मानव-समाज का विकास, अनेकानेक राजवंशों तथा उनकी शाखाओं का वर्णन आदि जो पुराणों का मुख्य उद्देश्य माना गया है, वह हमें पूरा रूप से पाया जाता है। पाठकों जैसे-जैसे इस पुराण का अध्ययन करने जायेंगे उनकी यह प्रतीति होती चला जायगी कि वास्तव में इस दृष्टि से हम पुराण का स्थान अधिकांश पुराणों और उपपुराणों से बहुत ऊँचा है।

इन पुराण के प्रतिपादित विषय को अन्त तक देख जाने और विशेष कर इस दूसरे खण्ड के राज्य-वंशों के विस्तृत वर्णन और सृष्टि तथा प्रलय के बुद्धिमय विवेचन का पढ़ने पर हमको उन लोगों की बातों पर पुष्ट आश्चर्य होता है जो इस पुराण को अटारह पुराणों में न मानकर ‘शिवपुराण’ का एक अंश मात्र बतलाते हैं। हमारा तो इस पुराण को सम्पादन करने पर यह मान्य हुआ कि जहाँ अधिकांश पुराणों के बलेवर का एक बड़ा भाग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण में निगी गई वयाओं अथवा तीर्थ, यज्ञ, दान आदि के विधानों से भरा पड़ा है वहाँ ‘वायु-पुराण’ में इन बातों की कम से कम स्थान देकर उन बातों का ही दिग्दर्शन कराया है जो वास्तव में पुराणों के वर्ण्य विषय माने गये हैं। सृष्टि, जगत और मानव ज्ञान के विकास पर विचार करना ही पुराण रचना का मुख्य उद्देश्य बतलाया गया

है और वह हमको 'वायु-पुराण' में अन्य पुराणों की अपेक्षा कहीं अधिक और समन्वयात्मक रूप से दिखाई पड़ता है।

यद्यपि सभी पुराणों में अलङ्कार, रूपक, उपमा, दृष्टान्त आदि की लेखन शैली पूर्ण मात्रा में अपनाई गई है, जिससे कथा के रूप में अप्रद जनता को आकर्षित करके धर्म तत्वों की शिक्षा दी जा सके, तो भी इस दृष्टि से विभिन्न पुराणों के स्तर में बहुत अन्तर दिखलाई पड़ता है। अन्य पुराणों ने जहाँ लोगों की रुचि और आकर्षण पर ही अधिक ध्यान दिया है 'वायुपुराण' में तथ्यों को प्रकट करने और प्राचीनता की एक प्रभावशाली भूलक पाठकों को दिखाने की चेष्टा की है। इसमें विभिन्न राजवंशों की वशावतियों का जितने विस्तार के साथ वर्णन किया गया है वह इतिहास की दृष्टि से भी बहुत कुछ महत्व रखता है और अनेक इतिहास लेखकों ने उसके आधार पर प्राचीन ऐतिहासिक युगों का निर्णय करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त की है। इसी प्रकार लोक, परलोक, नरक, स्वर्ग, नुवन आदि का वर्णन इसमें कथा और रूपकों के वजाय विवेचनात्मक ढङ्ग से ही किया है, जिससे इसकी गम्भीरता और प्रामाणिकता की वृद्धि ही हुई है। जो पाठक ध्यान पूर्वक इसका अध्ययन करेंगे वे, हमारा विश्वास है कि उपयुक्त निष्कर्षों पर पहुँचे बिना न रहेंगे।

—सम्पादक



विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
४३ प्रजापतिव्रत कीर्तन— सहितामो के निर्माता ऋणियों के नाम, याज्ञवल्क्य का नवीन सहिता निर्माण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र, अर्थशास्त्र, और चौदह विद्याओं का विकास ।	६
४४. पृथ्वी दोहन— स्वायम्भुव, स्वारोचिष आदि-आदि १४ मन्वन्तरो का दण्डन, राजा पृथु द्वारा मन्त्र की कृषि का प्रारम्भ ।	१५
४५ पृथुवरा कीर्तन— विभिन्न मन्वन्तरो में पृथ्वी का दाहन करने वाले मनुष्यों का वर्णन, वक्ष प्रजापति द्वारा मृष्टि की वृद्धि ।	६७
४६ वैवस्वत-समं वर्णन— मरीचि, बदयप से देवो तथा परमपियों की उत्पत्ति ।	७६
४७ प्रजापति वशानुकीर्तन— वैवस्वत-मन्वन्तर में देव, ऋषि, दानव, पितर, गन्धर्व, यक्ष आदि की मृष्टि और वृद्धि ।	८१
४८ ऋषि वशानुकीर्तन— द्विज, विश्वेदेव, प्रजापति, मरुत, दानव, यक्ष, राक्षस, पितृ, भूत, पशु, पक्षी, नाग, अष्टरा आदि के ऋषिपतियों का वर्णन ।	१०५

अध्याय

शृष्ट-संख्या

४६ गन्धर्व-मूर्च्छना लक्षण—

नाभान, क्षुब्ध, करन्धम, मरुत राष्ट्रवधन, तृणविदु, रैवत आदि राजाओं का वर्णन ।

११६

५० गीतालङ्कार निर्देश—

बाण्य, धर्म, आरोग्य, भवहोरा, वाद्य आदि का परिचय ।

१२८

५१ वैवस्वत मनुवश वर्णन—

राजा हवामु के वश में युवनाश मान्याता, अम्बरीष, पुरुकुत्त, मुचकुन्द, हरिश्चन्द्र, समर, दिगीप आदि राजाओं का वर्णन ।

१३५

५२ सोमोत्पत्ति वर्णन—

विमि क वश के राजाओं का नाम 'जव' कहा जाता । सोताजी के पिता सोरध्वज का उत्पत्ति । (२) चन्द्रमा द्वारा बुध की उत्पत्ति और महर्षि अत्रि द्वारा उनकी योग मुक्ति आदि ।

१६७

५३ चन्द्रवशपीर्तन—(१)

राजा पुरुषवा और उर्वशी की कथा । राजा एन द्वारा तीन अग्निश का विभाजन, जहनु का गङ्गापान, विश्वामित्र का वश ।

१७८

५४ रजियुद्ध वर्णन—

धन्वतरि की उत्पत्ति, रजि द्वारा दानवा का पराभव ।

१६५

५५ चन्द्रनक्षत्रोत्पत्ति—(२)

राजा मरुत, नहुष, ययाति की कथा । पुरु द्वारा ययाति की वृद्धावस्था बढ़ाने का उपायान ।

२१०

१६ चार्त्तवीर्यं धर्तुन उत्पत्ति—

चार्त्तवीर्यं धर्तुन द्वाग माता द्वीरा की विजय, रागण को
वीर्यवाना, धर्तुन द्वाग द ग रिया आवा ।

२२६

१७ उद्योग्यं धर्तुन न उत्पत्ति—

चार्त्तवीर्य उद्योग्यं धर्तुन न उत्पत्ति ।

२२७

१८ विष्णुवत्त धर्तुन —

विष्णुवत्त धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति ।

२२८

१९ धर्तुन न उत्पत्ति—

धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति ।
धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति ।
धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति ।

२२९

२० विष्णु माताधर्तुन —

विष्णु माताधर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति ।
धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति । धर्तुन न उत्पत्ति ।

२३०

२१ धर्तुन न उत्पत्ति—

अध्याय

शृष्ट-संख्या

६३ शिवपुर वर्णन—

भु भुव आदि सात लोकों का वर्णन, वैराजक कल्प वाले, अयुत, कोटि, प्रबुद्ध निबुद्ध, आदि की गणना, महालोक, जन-लोक आदि का विवरण, नरक, वर्णन, चतुष्पद, द्विपद, त्रिपद आदि की गणना, शिवपुर का परम ऐश्वर्य ।

३६५

६४. प्रलयादि पुनः सृष्टि वर्णन

सप्त द्वीप, समुद्र, पर्वत आदि का नष्ट होकर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आदि पञ्चतत्त्वों का एक-एक करके दूसरे में लीन होते जाना । धर्म प्रथम और तीनों गुणों की स्थिति ।

४४८५

६५ सृष्टि वर्णन—

प्रलय के पश्चात् सृष्टि का फिर से विकास कैसे होता है ? सम-विषय—व्यक्त अव्यक्त का कथन । ब्रह्मा की उत्पत्ति । वायु-पुराण का महत्व ।

४६८

६६ व्यास सशय वर्णन—

निराकार ब्रह्म प्रकृति तथा भक्ति-मार्ग और ज्ञान मार्ग का निरूपण । अक्षर ब्रह्म से परे और कोई नहीं है, वही सब कारणों कारण है ।

४८०

६७ गया महात्म्य—

श्री सनत्कुमार द्वारा गया तीर्थ की प्रशंसा और महात्म्य । गया आठ द्वारा पितरों के सत्कार की कथा ।

४९५



वायु-पुराण

[दूसरा खण्ड]



॥ प्रकरणं ४३—प्रजापति वंश कीर्तन ॥

भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो गातावि सालकिस्तथा ।
धीमान् शतबलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तम ॥१॥
वाष्पलिश्च भरद्वाजस्तिस्र प्रोवाच सहिता ।
रथोत्तरो निरक्तञ्च पुनश्चक्र चतुर्थवम् ॥२॥
अयस्तस्याभनजिदस्या महात्मानो गुणान्विता ।
धीमाश्रन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ।
तृतीयश्चार्यदस्ने च तपसा शमितव्रता ॥३॥
वीतरागा महातेजा- सहितान्नानपारगा ।
इत्येते बहू चा प्राक्ता सहिता यै प्रवर्तिता ॥४॥
वैशम्पायनाग्रोऽसौ मजुर्वेद व्यवल्पयत् ।
पडशीतिस्तु येनोक्ता महिता यजुषा शुभा ॥५॥
शिष्येभ्य प्रददौ ताश्च जगृह्णस्ते विधानतः ।
एकस्मिन् परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपा ।
पडशीतिश्च तस्यापि सहिताना विक्ल्पका ॥६॥
सर्वेषामेव तेषा वै त्रिधा भेदा प्रसीतिता ।
त्रिधा भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे नुमे ॥७॥

श्रुतिषो न ब्रह्मा—भारद्वाज—याज्ञवल्क्य—गातावि—सालकि—धीमार् शत-
बलाक—नैगम जो द्विजो न श्रेष्ठ थे—वाष्पनि—भरद्वाज—इनने तीन महिता
वही फिर रथोत्तर न चतुर्थ निरक्त त्रिधा था ॥१॥२॥ उसके गुणो मे

नन्दावनीय-यत्रगारि और बुद्धिमान् तृतीय प्राचाय था । वे तप से शसित भ्रत
वासे थे ॥३॥ ये सब वीतराग महान् तप से युक्त और सहिताओ क ज्ञान के
पारगामी थे । ये सब वह वृच कहे गये हैं जिन्होंने सहिताभा का प्रवृत्त किया
था ॥४॥ यह वैशम्पायन गोत्र वाला था जिसने यजुर्वेद की विशेष कल्पना
की थी । जिसने यजुर्वेद की शुभ छयासी सहिताएँ कही थी ॥५॥ इनको
शिष्यो के लिए दिया था और उन्होंने विधानपूर्वक उन्हें ग्रहण किया था । वहाँ
पर एक महा तपस्वी याज्ञवल्क्य परिपक्व थे । उसके भी छयासी सहिताओ
के विकल्प थे ॥६॥ उन सबके तीन प्रकार के भेद प्रकाशित किए गए हैं । इस
शुभ तपस्व भेद में तीन प्रकार के भेद कहे गये हैं ॥७॥

उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधा ।

इयामाग्रानरुदीच्याना प्रधानं सम्बभूव ह ॥८॥

मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणि प्रथमं स्तुत ।

आलम्बिरादि प्राच्यानान्त्रयोदश्यादपस्तु त ॥९॥

इत्यते चरका प्रोक्ता सहितावादिनो द्विजा ।

ऋषयस्तद्वच श्रुत्वा सूत जिज्ञासवोऽब्रुवन् ॥१०॥

चरकाभ्यर्थ्यं केन कारणं ब्रूहि तत्त्वत ।

किञ्चीहं वस्य हेतोश्च वाचकत्वञ्च भेजिरे ।

इत्युक्तं प्राह तेषां स चरकत्वमभूद्यथा ॥११॥

कार्यमासीदृषोणाञ्च किञ्चिन्ब्राह्मणसप्तमा ।

मेरुपृष्ठं समासाद्य तैस्तदा त्विति मयितम् ॥१२॥

यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नागव्येदद्विजसत्तमा ।

स कुर्याद्ब्रह्मवध्या वै सगयो न प्रकीर्तित ॥१३॥

ततस्त सगणा सर्वे वैशम्पाय नवजिता ।

प्रययु सप्तरात्रेण यत्र सन्धिं कृतोऽभवत् ॥१४॥

उदीच्या मध्यदेश और प्राच्य पृथक् विध थे । उदीच्या में इयामाग्रान
प्रधान हुआ था ॥८॥ मध्यदेश के प्रतिष्ठानों में अरुणि प्रथम कहा गया है ।

प्राच्यों में आदि आलम्बि थे वे त्रयोदशी आदि थे ॥६॥ ये सब द्विज जो कि सहिनाथो के वादी थे चरक बहे गए थे । ऋषिया ने उनके वचन जो सुनकर जिज्ञासु होते हुये वे सूतजी से बोले ॥१०॥ चरक और आश्वयव किस से हुए ? इसका कारण तत्त्वपूर्वक बतलाइये । जिसके हेतु में क्या चीज और वाचकत्व का सेवन किया था ? इस प्रकार से बहे हुए उसने जैसे चरकत्व उनका हुमा था कहा । ॥११॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मण धृष्ट ! ऋषिया का क्या काय था यह मेह के पृष्ठ पर जाकर उन्होंने मन्त्रणा की थी ॥१२॥ हे द्विज सत्तमा ! जो यहाँ सात दिन तक नहीं प्राये वह ब्रह्मवध्या करे । इसका समय नहीं कहा गया है ॥१३॥ इसके पश्चात् गणों के साथ वे सब वैशम्पायन को छोड़ कर सात दिन में चने गये जहाँ वि शधि की हुई थी ॥१४॥

ब्राह्मणानां तु वचनाद्ब्रह्मवध्याञ्चकार स ।

शिष्यान्तथ ममान्तीय स वशम्पायनोऽप्रवीत् ॥१५॥

ब्रह्मवध्याञ्चरध्व वै भक्तुत द्विजसत्तमा ।

सर्वं यूय समागम्य श्रूत ने तद्धित वच ॥१६॥

अहमेव चरिध्यामि तिष्ठन्तु मुनयस्त्वमे ।

वनश्चोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावित ॥१७॥

एवमुक्तस्ततः क्रुद्धा याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत् ।

उवाच यत्त्वयाधीत सर्वं प्रत्यपयस्त्वमे ॥१८॥

एवमुक्तः स रुगाणि यजूं पितृ प्रददौ गुरो ।

रुधिरं तयाक्तानि हृदित्वा ब्रह्मवित्तम ॥१९॥

ततः स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद्द्विजा ।

सूर्यं ब्रह्म यदुच्छिन्नं च गत्वा प्रतितिष्ठति ॥२०॥

ततो यानि गता-गूढं यजूं प्यादित्यमण्डलम् ।

तानि तस्मै ददौ तुष्टं सूर्यो वै ब्रह्मरीतय ।

अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ॥२१॥

ब्राह्मणों के वचन में उसने ब्रह्मवध्या को किया था । इसके अनन्तर उस वैशम्पायन ने गिण्यों को लाकर कहा ॥१५॥ हे द्विज सत्तमा ! मरे लिय

ब्रह्मवध्या को करो घ्राप अथ लोग धावर तद्वति वचन मुझे बोली ॥१६॥
 याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं ही करूँगा ये मुनिगण टहरे । अपन तप से भावित
 होता हुआ मैं बल की उत्थापित करूँगा ॥१७॥ इस प्रकार से बड़े हुए वह
 क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से बोले कि जो भी तुमने पढ़ा है उस सबको मुझे अर्पण
 कर दो—यह कहा ॥१८॥ इन प्रकार से बड़े जाने वाले ब्रह्मवित्तम उसने
 रुधिर प्रक्त रूप यजु को छवि वर के मुख की दे दिया था ॥१९॥ इसके अन-
 न्तर उसने हे द्विजा ! ध्यान में स्थित होकर सूर्य की आराधना की थी । जो
 उन्निद्ध सूर्यब्रह्म था और आकाश में जाकर प्रतिष्ठित होता है । इसके पश्चात्
 जो यजु ऊर्ध्व भाग में गए थे और आदित्य मण्डल में स्थिति थे उनको मनुष्य
 होने वाले सूर्य ने ब्रह्म रीति के लिए उसे दे दिया था । पीयान् याज्ञवल्क्य उस
 समय अश्व के रूप में थे । ऐसे याज्ञवल्क्य के लिए मातरश्च ने यजु दिए थे
 ॥२०॥२१॥

यजू प्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन केन च ।
 अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन् ॥२२॥
 ब्रह्महत्या तु वैश्वीर्णा चरणाच्चरका स्मृता ।
 वैशम्पायशिष्यास्ते चरका समुदाहृता ॥२३॥
 इत्येते चरका प्रोक्ता वाजिनस्तान्निबोधत ।
 याज्ञवल्क्य स्वशिष्यास्ते कण्ववैधेयशालिन ॥२४॥
 मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्दल ।
 ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैक्षिरी ।
 आटवी च तथा पर्णी वीरसी सपरायण ॥२५॥
 इत्येते वाजिन प्रोक्ता दश पञ्च च सम्मृता ।
 शतमेकाधिक कृत्स्न यजुषा वै विकल्पका ॥२६॥
 पुत्रमध्यापयाभास सुमन्तुमथ जेमिनि ।
 सुमन्तुश्चापि सुत्वान पुत्रमध्यापयत्प्रभु ।
 सुकर्माण सुत सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभु ॥२७॥

त सहस्र मधीत्यागु मुकर्मप्यथ सहिता ।

प्रोवाचाय सहस्रस्य मुकर्म सूर्यवर्चस ॥२८॥

जिस किमी के द्वारा ब्राह्मण जिम यजु का अध्ययन करते हैं वे ऋषि-
भ्य बाने के तिये किये हुये हैं इसम वाजिन हुए और कहे भी जाते हैं ॥२२॥
जिन्होंने चरण मे ब्रह्महत्या की चीरुं किया था वे चरक बहे गए हैं । वे वैश-
म्पायन के शिष्य हैं जो चरक बहे गये हैं ॥२३॥ इनने ये चरक कहे गये हैं
ध्रुव उन वाजिनो को जान लो । याज्ञवल्क्य के ये शिष्य हैं जो करव वैद्येशाली
हैं ॥२४॥ मध्यान्दिन-- सापेयी - बिदिष - उद्गल - ताम्रायण-- वात्स--भालव-
शैशिरी--आटवी--पर्यो--वीरणी--मयरायण--ये इन्ने वाजिन इस नाम से कहे गये
हैं ये दश और पाँच कुल पन्द्दह होते हैं । यजुषों का पूर्ण विलुप्त एकसौ एक
है ॥२५॥२६॥ इसके अनन्तर जमिनि ने मुमन्तु अपने पुत्र को पढ़ाया था ।
मुमन्तु प्रभु ने भी अपने पुत्र गुस्थान को पढ़ाया था । सुत्वा ने अपने पुत्र
मुकर्म को पढ़ाया था ॥२७॥ इसके पश्चात् मुकर्म ने भी ऋषि एक सहस्र
महितागो का अध्ययन कर के सूर्य वर्चस मुकर्म ने सहस्र को बोला था ॥२८॥

अनध्यायेष्वधीयानास्ताञ्जघान सतक्रतु ।

प्रायोपवेशमकरोत्तनांऽमी शिष्यकारणात् ॥२९॥

क्रुद्ध दृष्ट्वा तन शक्रो वरमस्मै ददौ पुन ।

भाविनी तं महावीर्यो शिष्यावपलवर्चसो ॥३०॥

अधीयानो महाप्राज्ञो सहस्र सहिताबुभौ ।

एतौ गुरौ महाभागौ मा क्रुध्य द्विजसत्तम ॥३१॥

इत्युक्त्वा वासव श्रीमान्सुकर्मणि यदस्थिनम् ।

शान्तक्रोध द्विज दृष्ट्वा तत्रैवान्तर्गधीयत ॥३२॥

तस्य शिष्यो भवेदोमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमा ।

हिरण्यनाभ वीशिवयो द्विजयोऽभून्नराधिप ॥३३॥

अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रद्वन्द्वं सहिता ।

तेनान्योदीच्यामामान्या शिष्या पौष्यञ्जिन शुभा ॥३४॥

शतानि पञ्च कौशिक्य सहितानाञ्च वीर्यवान् ।

शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगा ॥३५॥

अनध्याय के दिन में अध्ययन करने वाले उनका वस्तुतः (इन्द्र) ने मार दिया था । इसके पश्चात् शिष्य के कारण से इसने प्रयोपवेश (भोजन का त्याग) कर दिया था ॥३६॥ इसके पश्चात् फिर इसको क्रुद्ध देख कर इन्द्र ने वरदान दे दिया था कि ये असन, वर्षस दोनो शिष्य महाद् वीर्य वाले होंगे ॥३७॥ हे द्विज सत्तम ! महा प्राज्ञ पढ़ने वाले सहस्र सहिता वाले ये दोनों गुरु महाद् भाव वाले है आप क्रोध न करें ॥३८॥ यह वह वर श्रीमाद् इन्द्रदेव यशस्वी और क्रोध के शान्त हो जाने वाले द्विज मुक्तर्षा को देल कर वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गए थे ॥३९॥ हे द्विज सत्तम ! उसका शिष्य बहुत ही बुद्धिमान् और पौष्पञ्जी हुमा—हिरण्यनाभ—कौशिक्य और दूसरा मरुधिप हुमा ॥४०॥ पौष्पञ्जी ने भाषा सहस्र सहिता का अध्यापन किया था । इनसे अन्योदीच्य सामान्य पौष्पञ्जी के शुभ शिष्य हुए और महिताभो के पाँच सौ वीर्यवान् कौशिक्य हुये । हिरण्यनाभ के शिष्य प्राच्य सामग बहे गए हैं ॥४१॥

लोकाक्षी कुशुमिश्चैव कुशीती लाङ्गलिस्तथा ।

पौष्पञ्जिश्चिध्याश्चत्वारस्तेषां भेदाग्निबोधत ॥४२॥

राणायनीय स हि तण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान् ।

सकतिपुत्र सहस्रायपुत्र एतान् भेदान् मिरा लोकाक्षिणस्तु ॥४३॥

त्रयस्तु कुशुमे पुत्रा औरसो रसपासर ।

भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधा कौशुमा स्मृता ॥४४॥

शौरिष्टु शृङ्गिपुत्रश्चद्वावेती चरितव्रतो ।

राणायनीय सोमिनिः सामवेदविशारदी ॥४५॥

प्रोवाच सहितास्तिस्रः शृङ्गिपुत्रो महातपाः ।

चैनः प्राचीनयोगश्च सुरालश्च द्विजोत्तमाः ॥४६॥

प्रोवाच सहिताः पठन्तु पाराशर्यस्तु कौशुमः ।

आमुरायणवेणार्यो वेदवृद्धपरामर्शो ॥४७॥

प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमाश्च पतञ्जलि ।

कौधुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्यस्य पट् स्मृता ।

लाङ्गलि शालिहोत्रश्च पट् पट् प्रोवाच सहिता ॥४२॥

पौण्डरी के चार शिष्य थे उनके नाम मोचाक्षी-कुधुमि-कुशीली और साङ्गल थे । अब उनके भेद बतलाये जाते हैं उ हैं आप लोग समझ लें ॥३६॥ तरिद का पुत्र वह राणापनीय था । उससे अन्य भूवन्धारी था जो कि बहुत अच्छा विद्वान् था । सकति पुत्र सहस्राक्ष पुत्र ये मोचाक्षी के भेद जानो ॥३७॥ कुधुमि के तीन पुत्र बोरस-रमपारम और भाव त्रिलि ये तीन प्रकार वाले सेज-पुत्र कौधुम कहे गये हैं ॥३८॥ शौरिष्ट-शृङ्गिपुत्र दो ये चरित व्रत वाले थे । राणापनीय और सोमिषि ये दो दोनों सामवेद के पण्डित थे ॥३९॥ महाद तपस्वी शृङ्गिपुत्र ने तीन सहिता कही थी । हे द्विजोत्तमो ! चैव, प्राचीन योग, सुरात इनने छे सहिता बोनी थी, इनमे पाराशर्य और कौधुम भी हैं । भामुरादण और वैश नाम वाले दोना वेद वृद्ध मे परायण थे ॥४०॥ प्राचीन-योग का पुत्र पतञ्जलि बड़ा बुद्धिमान था । कौधुम के ये भेद पाराशर्य के छे कहे गये हैं । लाङ्गलि और शालिहोत्र ने छे-छे सहिता बतलाई हैं ॥४१॥

भालुकि कामहानिश्च जैमिनिर्लोमगायिन ।

कण्डश्च बोनर्हर्षव पठेते लाङ्गला स्मृता ।

एते लाङ्गलिन. शिष्या सहिता ये प्रमाधिता ॥४३॥

ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मज ।

सोऽङ्करोश्च चतुर्विंशत्सहिता द्विपदा वर ।

प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्ताश्च निबोधत ॥४४॥

राडश्च महवीर्यश्च पञ्चमो बाहनस्तथा ।

तालव पाण्डवश्चैव कालिको राजिवस्तथा ।

गौतमश्चाजबन्तश्च सोमराजापतत्तन ॥४५॥

पृष्ठघ्न परिवृष्टश्च उलूखत्तन एव च ।

यवीयसश्च वेगानो घ गुलीयश्च कोशिक ॥४६॥

सन्निभश्चाग्निमत्यश्च वापीय कानिवश्च य ।

पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगा ॥४७॥

सामगानान्तु सर्वेषां श्रेष्ठो द्वौ तु प्रकीर्तितौ ।

पौष्पञ्चिश्च कृतिश्चैव सहितोना विकल्पकौ ॥४८॥

अथर्वणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद्विजा ।

क्वन्धाय पुन कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम् ॥४९॥

क्वन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यार्थकं पुनर्ददौ ।

द्वितीयं वेदस्पर्शसि स चतुर्दशिरोत् पुन ॥५०॥

भालुकि, वामहानि, जमिनि, लोमगामिन, कण्ड, कोलह ये छत्र साङ्गन बहे गये हैं । ये लाङ्गसि के शिष्य हैं जिन्होंने सहिताएँ प्रसाधित की हैं ॥४३॥ इसके पश्चात् हिरण्यनाभ के कृत शिष्य नृपात्मज हुए । द्विपदो म श्रेष्ठ उसने चौबीस सहिताएँ की हैं । और फिर उनको शिष्यों के लिये बोला था । जिन शिष्यों को बोला था उन्हें आप मुझसे जानो ॥४४॥ राड, महावीर्य, पचम, माहन, तालक, पाण्डन, कानिक, रात्रिक, गौतम, आश्रवस्त, मोम राजापत, पृष्ठज, परिकृष्ट, उत्तूलक, यथीयम, वंशाल, भगुलीय, शौचिक मानिम, जरि-सत्य, वापीय, कानिक और धर्मात्मा पराशर ये सब सामगा परिक्रान्त हुए हैं ॥४७॥ समस्त सामगो म दो ग्रन्थों श्रेष्ठ प्रकीर्तित हुए हैं । सहिताओं के विकल्पक ये दोनों पौष्पञ्चि और कृति हैं ॥४८॥ हे द्विजा । सुमन्तु ने अथर्वण को दो करके दिया था । फिर क्वन्ध के लिये सम्पूर्ण दिया था और उसने यथाक्रम उसे जाना है । क्वन्ध ने भी दो प्रकार का करके उनसे स एक को फिर पथ्य के लिए दिया था । दूसरा वेदस्पर्श के लिये दिया था और फिर उसने उसे चार प्रकार का कर दिया था ॥४९॥५०॥

मोदो ग्रहवत्तश्च पितृनादस्तथैव च

शौचवायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपन स्मृत ।

वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्त्वेते दृढव्रता ॥५१॥

पुनश्चत्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् ।

जाजलि कुमुदादिश्च तृतीयं शौच स्मृत ॥५२॥

शौचस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु धन्रवे ।

द्वितीया सहिता धीमान्सैन्धवायनसञ्ज्ञिते ॥१३॥
 सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिक्षा सा च द्विधा पुनः ।
 नक्षत्र कल्पो वंशानस्तृतीय सहिताविधिः ।
 चतुर्थोऽङ्गिरस कल्प शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ॥१४॥
 श्रेष्ठस्त्वयर्वरणे ह्येते सहिताना विकल्पनाः ।
 षट्श कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमा ॥१५॥
 आश्वेयं सुमतिर्धोमान्वाय्यपो ह्यहृतव्रणः ।
 भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मिश्रयुश्च यः ।
 भार्वाणो सामदत्तिस्तु सुशर्मा शाशपायनः ॥१६॥
 एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रताः ।
 त्रिभिस्त्रिंश कृतास्त्रिंश सहिता पुनरेव हि ॥१७॥

येदस्पर्श के दृढ व्रत बाने चार निष्प छुए थे । ब्रह्मचर्य वाला मोद, विष्णुलोक, धर्म का ज्ञाता जीवनदायिनी और चौथा तपन ये चारों के नाम बताये गये हैं ॥१३॥ फिर पथ्या के तीन प्रकार के उलग घेर जान लो । एक जाजलि दूसरा कुमुदादि और तीसरा जीवनक कहा गया है ॥१४॥ जीवनक में वो भेद करके उनमें से एक धधू के निचे दिया था । द्वितीय जो सहिता था उसे उग परम बुद्धिमान् ने सैन्धवायन नाम बाल को दिया था ॥१५॥ सैन्धव ने मुञ्ज केश के निचे दी फिर यह दो प्रकार की भेद वाली हुई थी । नक्षत्र कल्प, वंशान, तृतीय सहिता विधि, चतुर्थ अङ्गिरस कल्प, पञ्चम शान्ति कल्प होता है ॥१४॥ ये जो सहिताओं के विकल्पन हैं उनमें श्रेष्ठवर्ण श्रेष्ठ होता है । हे ऋषि सत्तमा ! छौ प्रकार से करके मैंने भी पुराण को कहा है ॥१५॥ आश्वेय, सुमति, धीमान्, वाय्यप, अहृतव्रण, भारद्वाज, अग्निवर्चा, वसिष्ठ, मिश्रयु, भार्वाण, सामदत्ति, सुशर्मा, शाशपायन ये इनने पुराणों में दृढव्रत बाने मेरे निष्प थे । फिर तीनों ने तीन सहिताओं के तीन रिय ॥१६॥१७॥

वाय्यप सहितावर्त्ता सार्वणि शाशपायनः ।

सामिका च चतुर्थो स्यात्मा चैरा पूर्वमहिता ॥१८॥

सर्वास्ताहि चतुष्पादा सर्वाश्चैकार्यवाचिकाः ।

पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ।

चतुसाहस्रिणा सर्वा शाशपायनिकामृते ॥५६

सोमहर्षणिषा मूलास्तत काश्यपिका परा ।

सार्वणिकास्तृतीयास्ता यजुर्वक्त्रियार्पण्डिता ॥६०

शाशपायनिवाञ्छान्या मोदनार्थविभूषिता ।

महस्राणि ऋचामष्टौ पट्शतानि तथैव च ॥६१

एता पचदशान्याञ्च दशान्या दशभिस्तथा ।

बालखिल्या समग्रैषा (पा) मसावर्णा प्रकीर्तिता ॥६२

अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ।

आरण्यक सहोमच एताद्भायन्ति सामगा ॥६३

कारण, सार्वणि और शाशपायन संहिताकर्त्ता हैं और यह पूर्व संहिता चौथी मामिका होती है । वे सब चार पाश वाली हुमा करती हैं और सभी एकार्य की वाक्त्रिका भी होती हैं । वेद की शाखाएं यथा तथा पाठान्तर में पृथक् होती हैं । शाशपायनिका के बिना सब चार सहस्र वाली हैं ॥५८॥५९॥ मूल सोमहर्षणिषा है, इसके पश्चात् काश्यपिका होती हैं । तृतीय सार्वणिषा है वे यजु के वाक्त्रिय की परिणत होती हैं ॥६०॥ अथ जो शाशपायनिका शाखाएं हैं वे मोदन के अर्थ से विभूषित होती हैं । ऐसे ये कुल पाठ सहस्र छैं सो ऋचाएं हैं ॥६१॥ ये अथ पचदश हैं और दूनी दश के साथ दश हैं बालखिल्या जो हैं वे समग्रैषा समावर्णा कही गई हैं । ६२॥ आठ साम सहस्र और चौदह साम हैं । सामगा सोम इसके आख्यक और सहोम गाया करते हैं ॥६३॥

द्वादशैव सहस्राणि छन्द आध्वर्यव स्मृतम् ।

यजुषा ब्राह्मणानाञ्च यथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥६४

सप्राम्यारण्यकन्तस्यात्समन्त्रकरण तथा ।

अत पर कथनान्तु पूर्वा इति विशेषणम् ॥६५

प्राम्यारण्य समन्त्रच ऋग्ब्र हारण्यजु स्मृतम् ।

तथा हरिद्रवीर्याग्ना खिलान्युपखिलानि च ।

तथैव तैत्तिरीयाणां परशुद्रा इति स्मृतम् ॥६६॥

द्वे सहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ।

ऋगण परि सख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम् ॥६७॥

अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पादः ।

एतत्प्रमाणं यजुषामृचावस्युक्रियसाखिलयाज्ञवल्क्यम् ॥६८॥

तथा चरणविद्यानां प्रमाणं सहिता शृणु ।

पट्साहस्रमृचामुक्तमृचपञ्चविंशतिपुनः ।

एतावदधिकतेषां यजुः कामविवक्षति ॥६९॥

एकादशसहस्राणि दशान्या दशोत्तराः ।

ऋचान्दशसहस्राणि अशीतिरिशतानि च ॥७०॥

सहस्रमेकमन्त्राणामृचामुक्तप्रमाणतः ।

एतावद्भृशुविस्तारमन्यद्वाथर्विकबहु ॥७१॥

बारह सहस्र छन्द ब्राह्मणवैदिक बहे गये हैं । यजु का और ब्राह्मणों का अर्धांश ब्राह्मण भागों का जिस तरह श्वास अर्धांश विस्तार कल्पित किया है ॥ ॥६४॥ वह सप्रामाण्यवक तथा समन्वयकरण होता है । इसमें अष्टौ कथाओं का तो पूर्वा यह विशेषण होता है ॥६५॥ प्राम्यारख्य और समन्व अर्ध-ब्राह्मण और यजु कहा गया है । इसी प्रकार से हागिद्विषों के खिलामि एवं उपलि-
तामि तथा तैत्तिरीयो के परशुद्रा कहा गया है ॥६६॥ सौ कम दो हजार वाज-
सनेयक वेद में ऋक् गण की परिमद्धा की गई है, ब्राह्मण भाग तो चौगुना
होता है ॥६७॥ आठ सहस्र आठमी अस्मी अन्यान्य और अधिक पाद होता है ।
यह प्रमाण यजु का और मधुक्रिया साखिल याज्ञवल्क्य ऋक् का है ॥६८॥
इसी प्रकार में चरण विद्याओं का प्रमाण एवं सहिता का अवलोकन करो । छै
सहस्र छन्दों में ऋचाओं का कहा गया है । इतना अधिक उनका यजु है जो
काम को कहता है ॥६९॥ बारह हजार दशोत्तर और अन्य दश है । दस
सहस्र तीन भी अस्मी ऋक् है ॥७०॥ ऋचाओं, मन्त्रों का एवं सहस्र प्रमाण
से कहा है । इनका ऋक् का विस्तार है और अन्य बहुत आयविक
होता है ॥७१॥

श्रवण वा पुन ब्रह्म मया है ॥८४॥ पर्वत और नारद ये दोनों वक्ष्य के मात्स्यन हैं । ये दोनों जो श्रुण्व करते हैं इसी कारण मे वे देवर्षि बह गये हैं ॥८४॥

मानवे वैषये ब्रह्मे ऐलवशे च ये नृपा ।

ऐता ऐशवाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते ॥८५॥

श्रुयन्ति रञ्जनाक्षत्मात्प्रजा राजर्षयस्तत ।

ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयो मता ॥८६॥

देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षय शुभा ।

इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मता ॥८७॥

अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणस्तथा ।

एव ब्रह्मर्षयः प्रोक्ता दिव्या राजर्षयस्तु ये ॥८८॥

देवर्षयस्तथान्ये च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।

भूतभक्ष्यभक्षान सत्याभिव्याहृत तथा ॥८९॥

सम्बुद्धास्तु स्वयं ये तु सम्बुद्धा ये च न स्वयम् ।

तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भेयैश्च प्रणोदितम् ॥९०॥

मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये ।

इत्येते ऋषिभिर्युक्ता देवद्विजनृपास्तु ये ॥९१॥

एतान् भावानधीयानां ये चेत् ऋषियो मता ।

सप्त ते ममभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृता ॥९२॥

मानव वैषय ब्रह्म मे और ऐल वश मे जो राजा हैं वे ऐल ऐशवाक और नाभाग राजर्षि जानने के योग्य होते हैं ॥८५॥ श्रुण्व करते हैं और ब्रह्मर्षी का रक्षण करते हैं इसलिये इन्हें राजर्षि कहा गया है । ब्रह्म लोक प्रतिष्ठा वाले ब्रह्मर्षि माने गये हैं ॥८६॥ देवलोक में प्रतिष्ठा वाले शुभ देवर्षि कहे गये हैं । इन्द्र लोक में प्रतिष्ठा वाले सब राजर्षि माने गये हैं ॥८७॥ अभिजाति से और तप मे तथा मन्त्रों के व्याहरणों से इस प्रकार से ब्रह्मर्षि दिव्य तथा राजर्षि बहे गये हैं ॥८८॥ जो अन्य देवर्षि हैं उनके लक्षण मैं बतलाऊँगा । भूत-भक्ष्य भव का ज्ञान तथा सत्याभिव्याहृत भी बतलाया जायगा ॥८९॥ जो स्वयं ही सम्बुद्ध हुए और जो स्वयं सम्बुद्ध हैं, यहाँ जो तप से प्रसिद्ध हुए और जिन्होंने गर्भ में

प्रणीदित किया, जो मन्त्रों के व्याहरण करने वाले हैं और जो ऐश्वर्य से सर्वत्र गमन करने वाले हैं, ये देव-द्विज और नृप ऋषियों से युक्त हैं। इन भावों का अध्ययन करते हुए और जो ये ऋषि माने गए हैं वे सप्त गुणों से युक्त सात ही हैं इसीलिए सप्तर्षि कहे गये हैं ॥६१॥६२॥६३॥

दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुष ।

बुद्धा प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥६४॥

पट्कमाभिरता नित्य शालिनो गृहमेधिन ।

तुल्यैर्धन्यहरन्ति स्म ग्रहष्टं कर्महेतुभि ॥६५॥

अप्राग्यैवंत्तंयन्ति स्म रसंश्चैव स्वयंकृतं ।

कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो बाल्यान्तरनिवासिन ॥६६॥

कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुन पुन ।

वर्णा श्रमव्यवस्थान क्रियन्ते प्रथमन्तु गौ ॥६७॥

प्राप्ते ज्ञेनायुगमुखे पुन रासर्पयस्तिवह ।

प्रवर्तयन्ति ये वर्णा नाश्रमाश्चैव सर्वाश ।

तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुन पुन ॥६८॥

दीर्घ आयु वाले—मन्त्रों से करने वाले—ईश्वर-दिव्य चक्षु वाले—बुद्ध-प्रत्यक्ष धर्म वाले—और जो गोत्रों के प्रवर्तक हैं—बहु कर्मों में रत रहने वाले नित्यशाली—गृहमेधी—ग्रह कर्मों के हेतुओं से तुल्य व्यवहार किया करते हैं। वे जो स्वयं कृत अप्राग्य रमा से वर्तन किया करते हैं वे—कुटुम्बी ऋद्धि वाले—बाल्य और अन्तर के निवास करने वाले कृतादिकाम वाल समस्त युगों में बार-बार पहिने वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था जिनके द्वारा की जाती है। ज्ञेता युग वं युग के प्राप्त होने पर यहाँ पर पुन ये सप्तर्षि गए सर्वत्र वर्णों और आश्रमों का प्रवर्तन करते हैं उन्हीं के वंश में वीर बार-बार उत्पन्न होते हैं ॥६४॥ ॥६५॥६६॥६७॥६८॥

जायमानि पिता पुत्रे पुत्र पितरि चैव हि ।

एव समेत्याविच्छेदाद्वर्तयन्त्यायुगक्षयात् ।

अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम् ॥६९॥

अयंमणो दक्षिणा ये तु पितृयाण समाश्रिताः ।
 दाराग्निहोत्रिणस्ते वै ये प्रजाहेतव स्मृताः ॥१००॥
 गृहमेधिनाञ्च संख्येया इमशानान्याययन्ति ते ।
 अष्टाशोतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ॥१०१॥
 ये श्रूयन्ते दिव्य प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्ध्वरेतसः ।
 मन्त्रब्राह्मणकर्तारो जायन्ते ह युगक्षये ॥१०२॥
 एवमावर्त्तमानास्ते द्वापरेषु पुन पुन ।
 बह्वपाना भाष्यविद्याना नानाशास्त्रकृत क्षये ॥१०३॥
 भविष्ये द्वापरे चैव द्रोणिर्द्विपायन पुन ।
 वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन् भविता मुमहातपा ॥१०४॥
 भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु ।
 तस्मै तद्ब्रह्मण ब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम् ॥१०५॥

पुत्र के उत्पन्न हो जाने, पिता और पिता के विषय में पुत्र इन प्रकार से
 अधिकतर से मिलकर युग के क्षय पर्वन्त वर्तन किया करते हैं । ये ऐसे गृहमेधी
 ऋद्धासी हजार बहे गए हैं ॥१००॥ अयंमा के जो दक्षिण होते हैं वे पितृयाण में
 समाश्रित होते हैं । वे दाराग्निहोत्री हैं और जो प्रजा के हेतु रूप बहे गये हैं
 ॥१००॥ जो गृहमेधी इमशानो का आश्रय लेते हैं उनकी संख्या करने के योग्य
 है वे भी ऋद्धासी हजार उत्तरायण में निहित होने हैं ॥१०१॥ जो ऊर्ध्वरेता ऋषि
 दिव्य लोक में प्राप्त हो गये हैं और ऐसे मुने जने हैं वे मन्त्र और ब्राह्मण के
 वर्ण युग के क्षय हो जाने पर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१०२॥ इन प्रकार से
 द्वारे में पुन पुन आवर्त्तमान होते हैं और क्षय में बह्वो-भाष्य विद्याओं के
 नाश प्रकार के शास्त्रों के करने वाले होने हैं ॥१०३॥ भविष्य द्वार में फिर
 द्रोणि द्विपायन मुमहातपा वेदव्यास इसके अतीत हो जाने पर होंगे ॥१०४॥
 भविष्यो में शाखा प्रणयन होंगे । उनमें लिए उन ब्रह्मा के द्वारा तप से अव्यय
 ब्रह्म प्राप्त किया गया था ॥१०५॥

तपसा कर्म सम्प्राप्तं कर्मणा हि ततो यतः ।

यतया प्राप्य सत्यं हि सत्येनातो हि चाव्यय ॥१०६॥

अव्ययादमृत शुक्रममृतात् सवमेव हि ।
 ध्रुवमेवाक्षरमिद स्वात्मयेव व्यवस्थितम् ।
 बृहन्वाद्बृहस्पार्ज्वं तद्वह्नोर्त्यभिधीयते ॥१०७॥
 प्रणवाव स्थित भूयो भूभुव स्वरिति स्मृतम् ।
 ऋग्यजु सामाववरूपिणो ब्रह्माणे नमः ॥१०८॥
 जगतः प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसंज्ञितम् ।
 महतः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्माणे नमः ॥१०९॥
 अगाधापरमक्षय्यं जगत्सम्मोहनालयम् ।
 संप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषायप्रयोजनम् ॥११०॥
 साहचर्यमानवता निष्ठा गतिः सङ्गदमात्मनः ।
 यत्तदव्यक्तममृतं प्रकृतित्रयं नाश्रितम् ॥१११॥
 प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्यं सत्त्वञ्च शब्दयते ।
 अविभागस्तथा शुक्रमक्षरं बहु वाचकम् ।
 परमब्रह्माणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः ॥११२॥

सप्तमं वचनं सम्प्राप्त किया और वचन के द्वारा फिर वचन का लाभ हुआ ।
 वचन से तब वचनोपावरण फिर उस सत्य से अव्यय को प्राप्त किया ॥१०६॥ अव्यय
 से प्रमृत्त और प्रमृत्त से गभीर शुक्र को प्राप्त किया । यह ध्रुव एकाक्षर प्रपनी
 मामा म ही व्यवस्थित है । बृहत्त्व होने से और बृहत्त्व होने के कारण से ही
 वह ब्रह्म ऐसे नाम से कहा जाया करता है ॥१०७॥ प्रणव के रूप में व्यवस्थित
 फिर भूभुव स्व ऐसा कहा गया है । उस ऋग्यजु-साम और अथर्व के रूप
 वात्त ब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०८॥ इन जगत् की प्रलय और उत्पत्ति में
 जो वह कारण भी बना वाला कहा गया है वह महत् का परम गुह्य है उस
 सुब्रह्म के लिए नमस्कार है ॥१०९॥ वह जगत् अगाध-अक्षर अक्षय्य और
 सम्मोहन का घर है । संप्रकाश प्रवृत्तियों से पुरुषाय के प्रयोजन बना होता
 है ॥११०॥ साहचर्य के ज्ञान वाली की निष्ठा-गति-आत्मा का सङ्गट जो वह
 अव्यक्त-प्रमृत्त प्रवृत्ति कहा गया है वह प्रधान आत्मयोनि गुह्य और सत्त्व इन
 कारणों से कहा जाता है । अविभाग शुक्र है और अक्षर बहुत का वाचक होता
 है । उस परम ब्रह्म के लिये नित्य ही नमस्कार है ॥१११॥॥११२॥

कृते पुनः क्रिया नास्ति कुत एवाकृतक्रिया ।
 सहृदेव कृतं सर्वं यद्वं मोक्षे कृताकृतम् ॥११३॥
 श्रोतव्यं यं श्रुतं वापि तथैवामाधुसाधुता ।
 ज्ञानव्यञ्चाय मन्तव्यं स्पष्टव्यं भोग्यमेव च ।
 द्रष्टव्यञ्चाय श्रोतव्यं ज्ञानव्यं वाय विञ्चन ॥११४॥
 दग्धित यदनेनेव ज्ञानं सद्धं मुरपिणाम् ।
 यद्वं दग्धितवानेय वन्तदग्वेष्टुमहंति ।
 सर्वाणि सर्वान्तर्वाञ्च भगवानेय सोऽग्रवीन् ॥११५॥
 यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमत्यते ।
 येनेद क्रियते पूर्वं तदन्वेन विभावितम् ॥११६॥
 यदा तु क्रियते विञ्चस्त्वेनविद्वाद्मय कचिन् ।
 तेनेन तत्कृतं पूर्वं वत्तं एता प्रतिभाति यं ॥११७॥
 विरक्तञ्चातिरिक्तञ्च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये ।
 धर्माधर्मौ मुन्य दुःख मृत्युञ्जामृतमेव च ।
 ऊर्ध्वं न्तिर्यङ्गधोभागस्तस्मैवाट्टकारणम् ॥११८॥
 स्वायम्भुवोऽय ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिन ।
 प्रत्येकविध्यम्भवति वेतास्विह पुन पुनः ॥११९॥

कृत में क्रिया नहीं है फिर अकृत की क्रिया कैसे हुई ? एक बार हो जो सब किया गया है वह लोक में कृताकृत है ॥११३॥ श्रुत की पुनना चाहिए उमी प्रकार से असाधु साधुता है । जानना चाहिए—मानना चाहिए—स्पर्श के योग्य होना चाहिए—आग करना चाहिए—देवना चाहिए—मुनना चाहिए—कुछ जानना चाहिए ॥११४॥ जो इसी के द्वारा देखा गया वह मुरपियो का ज्ञान है । जिसने यह देखा है वह गीन है, वही बूढ़े के योग्य होता है । सबको-सबको भगवान ही हैं ऐसा वह बोले ॥११५॥ जिस समय में जो जिसके द्वारा किया जाता है उस समय उसके द्वारा वह माना जाता है । जिसके द्वारा यह पहिले किया जाता है वह अय के द्वारा विभावित होता है ॥११६॥ जिस समय किसी के द्वारा कुछ वाङ्मय कही मर किया जाता है वह उगी के द्वारा, पहिले

किया हुआ करने वालों को प्रतिमान होता है ॥११७॥ ज्ञान और भजन मे-
श्रिय और अश्रिय में विरक्त और अनिरिक्त-धर्म एव अधर्म-सुख-दुःख-मृत्यु-
अमृत-ऊर्ध्व-तिथिक् और अधोमाग ये सब उसी ग्रहण का कारण होता है
॥११८॥ ज्येष्ठ परमेष्ठो ब्रह्मा का स्वायम्भुव यहाँ वेतामा में पुन-पुन प्रत्येक
विद्य वाला होता है ॥११९॥

व्यस्यते ह्येव विद्यन्तद्वापरेषु पुनः पुनः ।

ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥१२०॥

आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः ।

कुर्वन्ति सहिता ह्येते जायमानाः परस्परम् ॥१२१॥

अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणा स्मृतानि वै ।

ता एव सहिता ह्येते आवर्त्तन्ते पुनः पुनः ॥१२२॥

श्रिता दक्षिणपन्थान ये इमज्ज्ञानानि भेजिरे ।

युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुनः पुनः ॥१२३॥

द्वापरेष्विव सर्वेषु सहिताश्च श्रुतर्षिभिः ।

तेषां गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुनः ।

ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥१२४॥

एवमेव तु विज्ञेय व्यतीतानागतेष्विह ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥१२५॥

अतीतेषु अतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेषु च ।

भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ॥१२६॥

द्वापरो म बार बार एक विद्य वाला व्यवस्थित होता है । आदि में
वैवस्वत मन्वन्तर में ब्रह्माजी ने यह बोला था ॥१२०॥ ऋषिगण बार-बार
युगाख्याओं में आवर्त्तमान होने हैं और परस्पर में जायमान होते हुए इन
सहिताओं को किया करते हैं ॥१२१॥ अष्टासी हजार श्रुतर्षि कहे गए हैं और वे
ही सहिताएँ बार-बार आवर्त्तमान हुआ करती हैं ॥१२२॥

दक्षिण मार्गों का आश्रय होने वाले जिन्होंने इमज्ज्ञानों का सेवन किया
या युग युग में पुन पुन वे ही शाखाओं को किया करते हैं ॥१२३॥ यहाँ सब

द्वारों में श्रुतियों के द्वार। सहिताएँ और उनके गात्रों में ये साफाएँ बार-बार होती हैं। यही पर धाम्नाएँ वहाँ पर उड़े करने वाले युग के शय से होते हैं ॥१२४॥ इसी प्रकार से जो व्यतीत हो गये हैं उनमें भी जो भागे होने वाले घन्तांग हैं उनमें सब जान लेना चाहिए। सब मन्वन्तरों में साक्षात्मा के प्रत्यक्ष भी जान लेने चाहिए ॥१२५॥ अनीता में व्यतीत होने हैं और गाम्प्रतो में अर्थात् वर्तमानों में और जो भविष्य हैं वे अनागतों में वस्तुतः विद्ये जाते हैं ॥१२६॥

पूर्वैर्ग पश्चिमा जेव यत्तमानेन चोभयम् ।
 एतेन क्रमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चय ॥१२७॥
 एव देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये ।
 मन्त्रं सहोद्धं गच्छन्ति ह्यावर्तन्ते च तैः सह ॥१२८॥
 जनलोकात्पुनरा सर्वे पशुपत्यात्पुन पुनः ।
 पर्याप्तकाले सम्प्राप्ते सम्भूता नैव नस्य (?) तु ॥१२९॥
 अवश्यम्भाविनाथेन सम्यग्यन्ते तदा तु ते ।
 ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्ते रागपूर्वकम् ॥१३०॥
 निवर्तन्ते तदा वृत्तिस्तेषामादोषदर्शनात् ।
 एव देव युगानीह दशकृत्वा निवर्तन्ते ॥१३१॥
 जनलोकात्तपोलोक गच्छन्तीह निवर्तन्तम् ।
 एव देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः ।
 तिथेन ग्रहालोके वै गतानि मुनिभिस्सह ॥१३२॥
 न शक्यमानुषैर्व्येण तेषा वक्तु सविस्तरान् ।
 अनादित्वाच्च कालस्य असह्यमानाच्च सर्वशः ।
 मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कर्तुं पुरा सह ॥१३३॥

पूर्व से पश्चिम जानना चाहिए और वर्तमान से पूर्व और पश्चिम दोनों को ही जान लेना चाहिए। इस क्रम के योग से मन्वन्तरों का विनिश्चय हुआ करता है ॥१२७॥ इसी प्रकार से देव पितर-ऋषि और मनुष्य ये सब मन्त्रों के सहित ऊर्ध्व भाग को चले जाया करते हैं और उनके साथ ही फिर आपर्णा

मान होने रहते हैं ॥१२८॥ जननीय से समस्त देवगण षड्गुण्य में बारबार-
पर्याप्त बाल के सम्प्राप्त होने पर सम्भूत हुआ करते हैं और कभी नष्ट नहीं होते
हैं ॥१२९॥ उस समय में वे अवश्यम्भावी भ्रम में सम्बद्ध रह जाते हैं । इससे
वे राग पूर्वक दोष बाने जन्म को देखा करते हैं ॥१३०॥ उन समय में उनकी
वृत्ति दोष दर्शन तक निवृत्त हो जाती है । इस प्रकार में यहाँ पर देव युग
वत्त धार निवर्तित हुआ करते हैं ॥१३१॥ यहाँ पर अनिवर्तन जननीय से तपो
लोका की जाता है । इस प्रकार से यहाँ देवयुग सहस्री व्यतीत होते हैं । मुनियों
के माय ब्रह्म लोक में निपट को मन होते हैं ॥१३२॥ आनुपूर्वी से उनके पूर्ण
विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनका कारण उनका धनादि
होना और बालका सब ओर से प्रसम्भान होना है । पहिले जो मन्वन्तर व्यतीत
हो गये हैं और कल्प हो चुके हैं वह सब वर्णित नहीं किये जा सकते हैं ॥१३३॥

पितृभिर्मुनिभिर्देवैः साद्धं सप्तपिभिश्च वै ।

बालेन प्रतिसृष्टानां युगानाञ्च निवर्तनम् ॥१३४॥

एतेन कामयोगेन कल्पमन्वन्तराणि तु ।

सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽप्यसहस्रशः ॥१३५॥

मन्वन्तरगन्ते सहारः सहारान्ते च सम्भव ।

देवतानामृषीणाञ्च मनो पितृवणस्य च ॥१३६॥

न क्षयमानुषूष्यैश्च वक्तुं शक्यं शतैरपि ।

विस्तरस्तु निमग्नस्य सहारस्य च सर्वतः ।

मन्वन्तरस्य सख्या तु मानुषेण निबोधत ॥१३७॥

देवतानामृषीणाञ्च सङ्ख्यानाथविशारद ।

त्रिशतकीटचस्तु सपूर्णाः सङ्ख्यानां सङ्ख्याया द्विजैः ॥१३८॥

सप्तपष्टिस्तु धान्यानि नियुक्तानि च सङ्ख्याया ।

विनातिश्च सहस्राणि बालोऽप्यसो धिनान् विना ॥१३९॥

मन्वन्तरस्य सङ्ख्याया मानुषेण प्रकीर्तिता ।

वत्ता रेणुवै दिव्येन प्रवक्ष्याम्यन्तरम् मनो ॥१४०॥

पितर मुनियुग देव जो कि महापियो के साथ ही हैं—काल से प्रतिसृष्ट

और युगों का निवर्तन इस क्रम के योग से वत्स तथा मन्वन्तर प्रजापति के साथ सैकड़ों ही तथा हजारों ही व्यतीत हो चुके हैं ॥१३५॥ मन्वन्तर के अन्त में सहार और सहार के अन्त में जन्म देवों का-ऋषियों का-मनुज और पितृगण का होता रहता है ॥१३६॥ आनुपूर्वों से सौ वर्षों में भी इस निसर्ग का विस्तार और सब सहार बताया नहीं जा सकता है । मन्वन्तर की सख्या तो मानुष से जान लो ॥१३७॥ अर्ध-विधारदों ने देवों तथा ऋषियों की सरया तीस करोड़ सम्पूर्ण द्विजों के द्वारा सख्या से सम्प्राप्त की गई है ॥१३८॥ अधिको को छोड़ कर वह काल सख्या से सदसठ नियुक्त बीस सहस्र होता है ॥१३९॥ मन्वन्तर की यह सख्या मानुष के द्वारा कही गई है । अब दिव्य वस्तर से मनुज जो धारण होता है उसे कहेंगे ॥१४०॥

अष्टौ सप्तसहस्राणि दिव्यया सहस्रयया स्मृतम् ।

द्विपञ्चाशत्तयान्यौनि सहस्राण्य धिकानि तु ॥१४१॥

चतुर्दशगुणो ह्येष काल आहूतसप्तव ।

पूर्ण युगसहस्र स्यात्तदहर्ह्राण स्मृतम् ॥१४२॥

तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादिस्तरदिग्भि ।

अह्नाण ममृत कृत्वा सह देवर्षिदानवै ।

प्रविशन्ति सुरश्चैष्ठ देवदेव महेश्वरम् ॥१४३॥

स स्रष्टा सर्वभूतानि कल्पादिषु पुन पुन ।

इत्येष स्थितिकालो वै मनोर्देवर्षिभि सह ॥१४४॥

सर्वमन्वन्तराणां वै प्रतिसन्धि निबोधत ।

शुणाल्पा वा समुद्दिष्टा प्रायेवास्मिन् मया तव ॥१४५॥

वृत्तत्रेतादि भयुक्त चतुर्युगमिति स्मृतम् ।

तदेकसप्ततिगुण परिवृत्त तु माघिकम् ।

मनोरेकमधीकार प्रोवाच भगवान् प्रभु ॥१४६॥

दिव्य सख्या से घाटमो महत्त्व बताया गया है । तथा इसमें दो पंचाशत्

सहस्र अधिक होता है ॥१४१॥ आहूत सप्तव यह समय चौदह गुणा होता है ।

पूरा एक सहस्र युग ब्रह्मा का पूरा दिन हुआ करता है, ऐसा बताया गया

है ॥१४२॥ वहाँ पर समस्त प्राणी सूर्य की किरणों से दग्ध हो जाते हैं । ब्रह्मा को आगे करके देव-ऋषि और दानवों के साथ देवों के देव और गुरु के ईश्वर महेश्वर में प्रवेश किया करते हैं ॥१४३॥ वह ही कल्पादि में बार-बार समस्त प्राणियों का सब होता है । यह ही देवपियों के साथ मनु की स्थिति का काल होता है ॥१४४॥ समस्त मन्वन्तरो की प्राप्ति सन्धि की समझलो । मैंने उसमें पहिले ही युगाख्या जो तुम्हारे सामने समुद्रिष्ठ थी थी ॥१४५॥ इतनेनादि गणुक्त चतुर्गुण कहा गया है । वह इत्तर गुण परिवृत्त नाथि मनु का एत-
पिह्वर भगवान् श्रु ने बतलाया था ॥१४६॥

एव मन्वन्तराणां तु सर्वेषामेव लक्षणम् ।
अतीतानागतानां वै वर्तमानेन कीर्तितम् ॥१४७॥
इत्येव कीर्तितं सर्गो मनो स्वायम्भुवस्य ह ।
प्रति सन्धिन्तु वक्ष्यामि तस्य वै चापरस्य तु ॥१४८॥
मन्वन्तरं यथा पूर्वं मृषिभिर्देयते सह ।
अवश्यम्भाविनाथेन यथा तद्वै निवर्तते ॥१४९॥
अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये ।
सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरौ मनवस्तथा ।
मन्वन्तरस्य काले तु सम्पूर्णं साधवास्तथा ॥१५०॥
धीणापिहारा सवृत्ता बुद्धा पश्चिमामन ।
महर्षीणां ते सर्वे उन्मुग्धा दधिरे गतिम् ॥१५१॥
ततो मन्वन्तरे तस्मिन् प्रक्षोणा देवतास्तु ता ।
गम्पूर्णं स्थितिनामे तु तिष्ठन्त्येकं कृतं युगम् ॥१५२॥
उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वरा ।
देवता पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ॥१५३॥

इसी प्रकार ये सभी मन्वन्तरो का लक्षण होता है । अतीत और अन्त-
नी का वर्तमान के द्वारा किया गया है ॥१४७॥ यह स्वायम्भुव मनु का सर्ग वन-
दी गया है । अब उगरी तथा दूमरे की प्रति मन्वि बतलाऊँगा ॥१४८॥
अब प्रकार में पहिले ऋषि और देवों के साथ मन्वन्तर अवश्यम्भावी सप्तर्षे में

जैसे वह निवृत्त होता है ॥१४६॥ इस मन्वन्तर में पहिले ओ ग्रीलोक के ईश्वर हैं—सप्तपि-देव-पितर तथा मनुष्य में सभी सम्पूर्ण मन्वन्तर के समय में साधक होते हैं ॥१४७॥ क्षीण अधिकार वाले हुए धरणि पर्याय (पारी) को जानकर वे सब महर्लोक में लिए उन्मुख होते हुए गति की धारण किया करते थे ॥१४८॥ इसके पश्चात् उस मन्वन्तर प्रकीर्ण हुए वे सब देवता एक कृत युग में पूरे स्थिति के समय में उहरा करते हैं ॥१४९॥ जिसने मन्वन्तर के ईश्वर हैं जैसे—देवता—पितर—ऋषि लोग और मनु उत्पन्न होते हैं और भागे होने वाले होते हैं ॥१५०॥

मन्वन्तरे तु सम्पूर्णं यद्यन्यद्वा कना युगे ।

सम्पद्यते वृत्तं तेषु कलशिष्टेषु वै तदा ॥१५१॥

यया कृतस्य सन्तानः कलिपूर्वं स्मृती बुधैः ।

तथा मन्वन्तरान्तेषु आदिमन्वन्तरस्य च ॥१५२॥

क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वं प्रवृत्ते चापरे पुनः ।

मुखे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा ॥१५३॥

सप्तपंथो मनुश्चैव कालावेदास्तु ये स्थिताः ।

मन्वन्तर प्रतीक्षन्ते क्षीयन्ते तपसि स्थिता ॥१५४॥

मन्वन्तरव्यवस्थायै सन्त्यर्थञ्च सर्वजः ।

पूर्ववत् सम्प्रवर्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥१५५॥

द्वन्द्वेषु सम्प्रवृत्तेषु उत्पन्नास्वीपधीषु च ।

प्रजासु च निकेतासु सस्थितासु क्वचित् क्वचित् ॥१५६॥

धार्तायान्तु प्रवृत्ताया सदमं ऋषिभाविताः ।

निरानन्दे गते लोके नष्टे त्थावरजङ्गमे ॥१५७॥

ध्यामनगरे चैव वर्णाश्रमविर्वाजिते ।

पूर्वमन्वन्तरे शिष्टे ये भवन्तीह धार्मिकाः ।

सप्तपंथो मनुश्चैव संतानार्थं व्यवस्थिताः ॥१५८॥

सम्पूर्ण मन्वन्तर में यदि अन्य कलिपुत्र में सम्पन्न होता है । कलिपुत्र

में शिष्ट उनके होने पर उस समय कृत होता है ॥१५९॥ जिस प्रकार से बुधों

ने कृत की सन्तान बलिपूर्व बताया है उसी प्रकार में मन्वन्तरान्तो में मन्वन्तर का प्रादुर्भाव करता है ॥१५५॥ पूर्व मन्वन्तर के क्षीण हो जाने पर और फिर दूसरे के प्रवृत्त होने पर वृत्तयुग के सुख में और इसके अनन्तर जो उनके निष्ठ होते हैं वे उस समय में होते हैं ॥१५६॥ सप्तपिण्डों का समुदाय और मनु जो कान्तपेश स्थित होते हैं वे सब मन्वन्तर की प्रतीक्षा निम्न करते हैं और तब में स्थित क्षीण होते हैं ॥१५७॥ मन्वन्तर की व्यवस्था करने के लिए और सन्तति प्राप्त करने के वास्ते सब और में पूर्व की ही भाँति वृद्धि के सज्जन के प्रवृत्त हो जाने पर वे सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥१५८॥ ऋषियों के सम्प्रवृत्त होने पर और औरियों के समुत्पन्न हो जाने पर और वही-कही पर प्रजापति के निवेत्तो से सत्पितृ होने पर ॥१५९॥ वार्ता के प्रवृत्त हो जाने पर तथा सद्धर्म के श्रुतिपियों के द्वारा भाविन होने पर-समस्त इस लोक के आनन्द रहित हो जाने पर एक स्वाधर (जड प्रचेतन) और जल्लभ (चेतन) के नष्ट हो जाने पर ॥१६०॥ ग्रामों और नगरों से रहित लोग के हो जान पर तथा चारों वरुण और प्राश्रमों से एकदम दूर हो जाने पर वहिने मन्वन्तर के सिद्ध रहने पर यहाँ पर जो भी धर्म के मानने वाले व्यक्ति होते हैं वे सप्तपिण्डों के समूह और मनु सन्तान की वृद्धि करने के लिए व्यवस्थित हुए थे ॥१६१॥

प्रजाय सपता तेषा सप परमदुश्चरम् ।

उत्पद्यतीह सर्वेषा निधनेष्विह सर्वेश ॥१६२॥

देवामुरा पितृगणा मुनयो मनवस्तथा ।

सर्पा भूता पिशाचाश्च मन्थर्वा यक्षराक्षसा ॥१६३॥

तत्तत्तेषा तु ये निष्ठा निष्ठाचारान् प्रचक्षते ।

सप्तर्षयो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह ।

प्रारम्भन्ते च कर्माणि मनुष्या दैवतं सह ॥१६४॥

मन्वन्तरादौ प्रागेव त्रेतायुगमुने ततः ।

पूर्वं देवास्ततस्ते च स्थिते धर्मे तु सर्वदाः ॥१६५॥

श्रुषीणा ब्रह्मचर्येण मत्वाऽऽनृण्यन्तु वे तन ।

पितृणा प्रजया चैव देशानामिज्या तथा ॥१६६॥

शत वर्षमहस्त्राणि धर्मो वर्णात्मिके स्थिता ।

त्रयो वार्ता दम्भनीति धर्मान् वर्णाश्रमास्तथा ।

रथापयित्वाश्रमाश्चैव स्वर्गाय दधिरे मत्तो ॥१६७॥

पूर्वं देवेषु तेभ्येव स्वर्गाय प्रमुखेषु च ।

पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिता धर्मैश्च कृत्स्नदा ॥१६८॥

प्रजा की प्राप्ति करने के लिए सपश्चर्या करने वाले उनकी तपस्या प्रत्यक्ष ही दुष्टकर थी । यहाँ पर सब लोगों का निधन (मृत्यु) हो जाने पर सभी ओर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६२॥ देव तथा असुर-पितृगण-मुनि वृन्द तथा मनुगण-सर्प-भूत-पिताच-गन्धर्व-यक्ष और राक्षस इसके पश्चात् उनमें जो शिष्ट थे वे शिष्टाचारों को किया करते हैं । मन्वन्तर आदि में मत्तपियों का समुदाय और मनु तथा देवों के साथ ही मनुष्य वर्गों का प्रारम्भ किया करते हैं ॥१६३-१६४॥ मन्वन्तर के आदि में पहिले ही त्रेतायुग के मूल में पहिले देव होते हैं इसके पश्चात् सभी ओर से धर्म स्थित हो जाने पर ऋषियों के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने में आनुराग धर्मात् ऋण का चुकाया जाने की प्राप्ति हुए फिर इसके अनन्तर सतान की समुद्राप्ति करके उसके द्वारा पितृगण की अनृणता (ऋण का अभाव) प्राप्ति की फिर इसके अनन्तर इन्द्रा का यजन करने से देवों की अनृणता प्राप्ति की थी ऋषि-ऋण पितृ-ऋण और देव-ऋण ये तीन ऋणों का भार सभी के ऊपर रहना है जोकि ब्रह्मचर्य-मन्तति और यज्ञ से क्रम से चुकाया जाया करता है ॥१६४-१६५-१६६॥ सो सहस्र वर्ष तक वर्णात्मक धर्म में स्थित होते हुए उन्होंने त्रयी-वार्ता-दण्ड नीति बरों तथा आश्रमों के धर्मों को स्थापित करके और ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों की स्थापना करके फिर स्वर्ग के गमन करने की बुद्धि धारण की अर्थात् स्वर्ग में चले गये थे ॥१६७॥ पहिले देवों के और फिर उनके स्वर्ग के लिए प्रमुख हो जाने पर पहिले देव और इसके पश्चात् वे सब पूर्णतया धर्म के साथ स्थित हुए थे ॥१६८॥

---ान्तरे परावृत्ते स्थानान्युत्सृज्य सर्वश ।

३ सहोर्ध्वं ज्जच्छन्ति महर्लोकमनामयम् ॥१६९॥

विनिवृत्तविकारास्ते मानसी सिद्धिमास्थिता ।
 अवेक्षमाणा वशिनस्तिष्ठन्त्याभूतसप्लवम् ॥१७०॥
 ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा ।
 शून्येषु देवस्थानेषु त्रं लोकेषु तेषु सर्वदा ।
 उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ॥१७१॥
 ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै ।
 सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विता ॥१७२॥
 सप्तर्षीणा मनोर्ध्वं च देवानां पितृभिः सह ।
 निधनानीह पूर्वपामादिना च भविष्यता ॥१७३॥
 तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात् ।
 एषां पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिरेषानवस्थिता ।
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु या वदामूतसप्लवम् ॥१७४॥
 एषा मन्वन्तराणामनु प्रतिसन्धानलक्षणम् ।
 अतीतानागतानामनु प्रोक्त स्वायम्भुवेन तु ॥१७५॥

मन्वन्तर के परावृत्त होने पर सब धोर से स्थानों का त्याग करके मन्त्रों के माप धामय रहित ऊर्ध्व महर्लोक को चले जाया करते हैं ॥१६६॥ समस्त प्रकार के विकारों के विरोध रूप में निवृत्त हो जाने वाले ये मानसी सिद्धि में आस्थित होने हुए अवेक्षमाणा और अपने आपको वृत्त में रखने वाले भूत सप्लव पर्वत ठहरा करते हैं ॥१७०॥ इसके अनन्तर उन सबके व्यतीत हो जाने पर और सर्वदा इन सब शून्य देवों के स्थानों में त्रिलोक्य में सभी धोर से उनमें स्वर्ग में निवास करने वाले जो अग्न्य देव हैं वे सब यहाँ पर ही उपस्थित होते हैं ॥१७१॥ इनके पश्चात् वे सत्य जन के द्वारा-ब्रह्मचर्य के पूर्ण प्रतिपादन के द्वारा और श्रुत के द्वारा पूर्वपामादि सर्व समन्वित और तप से युक्त वे इन स्थानों को आगूहित किया करते हैं ॥१७२॥ सप्तर्षियों वा-मनु का और पितृगण के माप देवों की यहाँ पर श्रुत्य पूर्व में होने वाली की आदि में और भविष्यत् से होती है ॥१७३॥ उनका अत्यन्त विच्छेद यहाँ पर मन्वन्तर के क्षय से होता है । इस प्रकार से पूर्व की आनुपूर्वी से यह अनवस्थित स्थिति

होती है जो कि समस्त मन्वन्तरो में जब तक भूतो का सप्तव होता है हुमा करती है ॥१७४॥ इस प्रकार से मन्वन्तरो का प्रति मन्वान का लक्षण जोकि मन्वन्तर प्रतीत होगये या अनागत है स्वायम्भुव मनु ने कहा है ॥१७५॥

मन्वन्तरेष्वतीतेषु भविष्याणां तु साधनम् ।

एवमत्यन्तविच्छिन्नं भवत्याभूतसप्तनवात् ॥१७६॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि एकान्ततत्त्वानि महर्गतानि ।

महर्जनश्चैव जनन्तपञ्च एकान्तगानि स्म भवन्ति सत्ये ॥१७७॥

तद्भाविना तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन ।

सत्ये स्थितानोह तदा तु तानि प्राप्ते विकारे प्रतिसर्गकाले ॥१७८॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि भूषन्ति सत्यन्तु ततोऽपरान्ते ।

ततोऽभियोगाद्विषमप्रमाणं विज्ञन्ति नारायणमेव देवम् ॥१७९॥

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिभवात् ।

क्षणं रसं तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाम्या परिवन्दमानः ॥१८०॥

इत्युत्तराभ्येवमृषितुतामा धर्मात्मना दिव्यदृष्ट्या मनूनाम् ।

वायुप्रणीतान्युपलभ्य दृश्यं दिव्योजसा व्याससमासयोगैः ॥१८१॥

सर्वाणि राजपिमुग्धमिमांसे ब्रह्मापिदेवोरगवन्ति चैव ।

सुरेशमसृषिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक् परिवर्त्तनानि ॥१८२॥

उदारवशाभिजनद्युतीनां प्रकृष्टमेवाभिसमेधितानाम् ।

कीर्तिद्युतिख्यातिभिरन्वितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम् ॥१८३॥

जो मन्वन्तर प्रतीत हो चुके हैं उसमें आये भविष्य में होने वाले मन्वन्तरो का साधन होना है । इस प्रकार से भूतो के मन्वन्त तक मन्वन्त विच्छिन्न हुमा करता है ॥१७६॥

मन्वन्तरो के परिवर्त्तन जो हुमा करते हैं वे एवान्त से महर्लोक में गत हुमा करते हैं । महर्लोक के पञ्चान् जनलोक में जन के बाद तपो लोक में और फिर सत्य लोक में एवान्त में गये हुए हुमा करते हैं ॥१७७॥ वहाँ पर उमते होने वाली के दर्शन में और नानात्व के स्वरूप में देखे हुए प्रत्यय धर्मात् विद्वान् से उस समय में सत्य लोक में स्थित वे विचार स्वरूप प्रतिसर्ग मान

के प्राप्त होने पर यही पर हुआ करते हैं ॥१७८॥ मन्वन्तरों के परिवर्तन इसके पश्चात् अपरान्त मे सत्यलोक को त्याग दिया करते हैं । इसके अनन्तर अभियोग से विषय प्रमाण नारायण देव मे ही प्रवेश किया करते हैं ॥१७९॥ मन्वन्तरो के चिरकाल से प्रवृत्त होने वाले परिवर्तनों मे विधि के स्वभाव से यह जीवों का लोक क्षय और उदय से परिवर्तमान होता हुआ क्षणमात्र को रस में स्थित हुआ करता है ॥१८०॥ इस प्रकार से ऋषियों के द्वारा स्तुति किये गये धर्मात्मा-दिव्य दृष्टि वाले मनुष्यों के चायुदेव के द्वारा बहे हुए इन उत्तरो को प्राप्त करके व्यास और समास धर्मान् विस्तार और संशेष के योगों के द्वारा दिव्य श्रीज वाले के द्वारा देखने के योग्य है ॥१८१॥ वे समस्त परिवर्तन, जोकि मन्वन्तरो के हुआ करते हैं, राजर्षि और भुरर्षियों से युक्त हैं । और वे प्रहर्षि-देव और उरगों वाले हैं । सूरों के ईश-सत्तपि-पितृगण-प्रजा के ईशों से भी युक्त भसी-भक्ति हुआ करते हैं ॥१८२॥ उद्धार वन-मभिजन और श्रुति से युक्त-प्रवृष्ट भेषा से चारों ओर में समेधित होने वाले-जीति युनि और प्रसिद्धि से अन्वित ईश्वरों का परम पुण्यप्रद पवित्र विद्यापन होता है ॥१८३॥

स्वर्गायमेतत् परम पवित्र पुत्रीयमेतच्च पर रहस्यम् ।

जप्य महत्पर्वसु चैत दन्य दुःस्वप्नशान्ति परमायुषेयम् ॥१८४॥

प्रजेशदेवपिमनुप्रधानां पुण्यप्रसूति प्रथितामजस्य ।

ममापि विख्यापनसममाय सिद्धि जुषध्व सुमहेशतत्त्वम् ॥१८५॥

इत्येतदन्तर प्रोक्त मनो स्वायम्भुवस्य तु ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय किं वर्णयाम्यहम् ॥१८६॥

यह उन ईश्वरों का विद्यापन स्वर्गीय धर्मान् स्वर्ग के समान मुक्तप्रद-परम पवित्र और पुत्रीय धर्मान् पुत्रीत्पत्ति प्रदान करने वाला एवं अत्यन्त रहस्य धर्मान् गोपनीय है । यह महान् पर्वों के अषमरों पर जप करने के योग्य और सबसे श्रेष्ठ है । यह सारे स्वर्णों की कान्ति करने वाला तथा परमायु प्रद होता है ॥१८४॥ जिसमे प्रजा के स्वाामी-देवर्षि और मनु प्रधान होते हैं ऐसी यजन्मा की परम पुण्य प्रसूति को जोकि बहुत ही प्रसिद्ध है, विद्यापन के समय के लिए मेरी भी सिद्धि को और सुमहेश तत्त्व को सेवन करो ॥१८५॥ दृष्ट

प्रकार से यह स्वायम्भुव मनु का अन्तर विस्तारपूर्वक तथा भ्रानुपूर्वी से कह दिया है अब आगे फिर मैं क्या वर्णन करूँ ॥१८६॥

॥ प्रकरण ४४ पृथ्वी-दोहन ॥

क्रम मन्वन्तराणान्तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
 देवतानां च सर्वेषां ये च यस्यान्तरे मनो ॥१॥
 मन्वन्तराणां यानि स्युरतीतानागतानि ह ।
 समासाद्विस्तराच्चैव श्रुत्वतो वै निबोधत ॥२॥
 स्वायम्भुवो मनु पूर्वं मनु स्वारोचिपस्तथा ।
 औत्तमस्तामसश्चैव तथा रवंसचाक्षुषी ।
 पटेते मनवोज्जीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान् ॥३॥
 सावर्णा पञ्च रौच्यश्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा ।
 वक्ष्याम्येतान् पुरस्तात्तमचोर्वैवस्वतस्य ह ॥४॥
 मनवः पञ्च येऽस्तीता मानवास्तान् निबोधत ।
 मन्वन्तरं मया चोक्तं क्रान्तं स्वायम्भुवस्य ह ॥५॥
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिपस्य ह ।
 प्रजासर्गं समासेन द्वितीयस्य महात्मनः ॥६॥
 आसन् वै तुषिता देवा मनुस्वारोचिपेज्जन्तरे ।
 पारावतादथ विद्वांसो द्वावेव तु गणौ रभृता ॥७॥

श्री शशपायन ने कहा—मैं मन्वन्तरो के क्रम को तत्त्व पूर्वक जानने की इच्छा करता हूँ और जिस मनु के अन्तर में जो सब देवत हुए हैं उनके क्रम को भी जानने की इच्छा रखता हूँ । ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—भनीत और भनागत मन्वन्तरो के जो भी देवत होते हैं उनके संक्षेप में और विस्तार से बताने वाले मुझे सब कुछ समझ लो ॥२॥ अब तक छ मनु ध्यतीत हुए हैं उनके क्रम से नाम ये हैं—सबसे पहला मनु स्वायम्भुव हुआ था उसके पश्चात्

स्वारोचिष मनु हुए फिर ओत्तम तामस—रैवत और अन्त मे चाक्षुष मनु हुए हैं । ये इतने छे मनु तो अब तक व्यतीत हो चुके हैं । अब जो अनागत धर्मान् भविष्य मे होने वाले आठ मनु हैं उनको बताऊँगा ॥३॥ पाँच सावर्ण—रोच्य-भौत्य तथा वैवस्वत ये आठ हैं । वैवस्वत मनु के पहिले इनको बताऊँगा ॥४॥ जो पाँच मनु अनीत हो चुके हैं उन मानवो को आप लोग जान लो । स्वायम्भुव का क्रान्त मन्वन्तर मैंने कह दिया है ॥५॥ इसके आगे जो स्वारोचिष मनु है उस द्वितीय महान् आत्मा वाले की प्रजा का सर्ग संक्षेप ॥ बताऊँगा ॥६॥ स्वारोचिष मन्वन्तर मे तुषिता और बिद्वान् पारावत देव हुए ये उस समय ये दो ही गण कहे गये हैं ॥७॥

तुषिताया समुत्पन्ना ऋतो पुत्रा स्वरोचिष ।
पारावताश्च क्षिष्टाश्च द्वादशीती गणौ स्मृती ।
छन्वजाश्च चतुर्विंशद्देवास्ते च तदा स्मृता ॥८॥
धैवस्यशोऽय बामान्यो गोपा देवायतस्तथा ।
अजश्च भगवान् देवो दुरोणश्च महाबल ॥९॥
आपश्चापि महाबाहुर्महोजाश्चापि धीर्यवान् ।
चिकित्वान् निभृतो यश्च अक्षोयश्चैव पथ्यते ।
इत्येते ऋतुपुत्रास्तु तदासन् सोमपायिन ॥१०॥
प्रचेताश्चैव यो देवा विश्वेदेवास्तथैव च ।
समष्टौ विधृतो यश्च अजिह्वाश्चारिमर्दन ॥११॥
अजिह्वाभहीयानौ विद्यावन्तौ तथैव च ।
अजोपौ च महाभागी यवीयश्च महाबल ॥१२॥
होता यज्वा च इत्येते पराक्रान्ता परावता ।
इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिषेन्तरे ॥१३॥
सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः ।
तेपामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्वैद्यश्च लोकविश्रुतः ॥१४॥

तुषिता मे ऋतु के स्वारोचिष पुत्र उत्पन्न हुए । और क्षिष्ट पारावत उत्पन्न हुए ये द्वादश थे । ये दो गण कह गये हैं और छन्दस्य थे वे उस समय

मे चौबीस देव बड़े गये हैं ॥८॥ धन्वस्य-वामाग्न्य-गोपा-देवायन-ग्रज-भगवान्
देव-दुरोण-महाबल-घाय-महाबाहु-महीबा-वीरवान्-चिरित्वान्-निभृत-
घणाय ये सब बड़े जाते हैं । ये सब स्रुत के पुत्र उस समय मे सोमपायी हुए
थे ॥९॥१०॥ श्वेता देव-विश्वेदेवा-विश्रुत-अजिह्न-अरिमर्दन-अजिहान-
महीमान ये बिद्यावान् थे-दो अजोष जो महाभाग थे-यवीय-महाबल-होता
भीर यज्वा ये सब परावत पराक्रान्त हुए हैं । ये सब स्वरोचिष मन्वन्तर मे
देवता थे ॥११॥१२॥१३॥ उस समय मे ये चौबीस देवता सोमय थे । उस
समय मे लोक विश्रुत चैष उनका छन्द था ॥१४॥

ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च ।

भागंवश्च तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ॥१५॥

वीलस्त्यश्चैव दत्तात्रिरात्रेयो निश्रुतस्तथा ।

वीलहस्य च धावास्तु एते सप्तर्षयः स्मृता ॥१६॥

चैत्रः कविरुतश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः ।

बृहद्गुहो नवश्चैव सुताश्चैव नव स्मृताः ॥१७॥

मनोः स्वरोचिषस्येते पुत्रा वशकराः स्मृताः ।

पुराणो परिसङ्ख्याता द्वितीय चैतदन्तरम् ॥१८॥

सप्तर्षयो मनुदेवाः पितरश्च चतुष्टयम् ।

मूल मन्वन्तरस्येते तेषां चैवान्तरे प्रजाः ॥१९॥

ऋषीणां देवताः पुत्रा पितरो देवसूतवः ।

ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चयः ॥२०॥

मनो क्षत्र विश्वश्चैव सप्तर्षिभ्यो द्विजातयः ।

एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं समाशात्र तु विस्तरात् ॥२१॥

वसिष्ठ का पुत्र ऊर्ज-काश्यप का पुत्र स्तम्भ-भागव-द्रोण-अङ्गिरस-
ऋषभ-वीलस्त्य-दत्तात्रि घात्रेय-निधुल-वीलह का धावान् ये सप्तर्षि बड़े गये
हैं ॥१५॥१६॥ चैत्र-कवि-उत्त-उत्तान्त-निभृत-रवि-बृहद्गुह-नव ये भी पुत्र
बड़े गये हैं ॥१७॥ ये स्वरोचिष मनु थे ये वश कर पुत्र बड़े गये हैं । पुराण
मे ये सब परिसंख्यात हैं । यह द्वितीय अन्तर होता है ॥१८॥ इसके अन्तर

मे प्रजा है ॥१६॥ ऋषियो के देवता पुत्र हैं और पितर देव पुत्र होते हैं । ये सब ऋषि और देव पुत्र ही हैं ऐसा शास्त्र का विनिश्चय होता है ॥२०॥ मनु से क्षत्र अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य और सप्तर्षियो से द्विजाति हुए । यह मन्त्र सन्नेह से कह दिया गया है विस्तार नहीं कहा है ॥२१॥

स्वायम्भुवेन विस्तारो ज्ञेय स्वारोचिपस्य तु

न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तुं वपशतरपि ।

पुनरुक्तबहुत्वात् प्रजानां यं कुले-कुले ॥२२

तृतीयस्त्वय पर्याय्य औत्तमस्यान्तरे मनो ।

पञ्च चैव गणा प्रोक्तास्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥२३

मुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्तिन ।

प्रतर्हना. शिवा सत्या गणा द्वादश वै स्मृता ॥२४

सत्यो धृतिदमो दान्त क्षम क्षामो धृति शुचि ।

ईषोर्जाश्च तथा ज्येष्ठो वसुधामाश्चैव द्वादश ।

इत्येते नामभि क्रान्ता मुधामानस्तु द्वादश ॥२५

सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो बृहद्वसु ।

विश्वधा विश्वरर्मा च मनस्वन्तो विराड्यज्ञा ॥२६

ज्योतिश्चैव विभाज्यश्च कीर्तिमान् वशकारिण ।

अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसु ॥२७

दिनक्रनु सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विन ।

केतुमाश्चैव इत्येते कीर्तितास्तु प्रमहना ॥२८

स्वायम्भुव से स्वारोचिप का विस्तार जान लेना चाहिए । वैसे उमका

पूर्ण विस्तार तो यहाँ मे भी बतलाया नहीं जा सकता है । कुल कुल मे पुनर्जाति का बाहुल्य प्रजाओं का होता है ॥२२॥ तृतीय औत्तम मनु के अन्तर मे पर्याप्त होता है । इसमे पाँच गण कहे य उनको बतलाऊँगा उन्हें आप समझ लो ॥२३॥ मुधामान और देव जो अथ वशवर्ती हैं—अन्य—शिवा और सत्या ये बारह गण कहे गये हैं ॥२४॥ सत्य—दम—दान्त—क्षम—क्षाम—धृति—शुचि—ईषोर्जा—ज्येष्ठ—और वसुधामान ये बारह हैं । ये सब नाम स कहे गये हैं और

सुषामान बारह है ॥२५॥ सहस्रधार-विश्वात्मा-शमितार-बृहदसु-विश्वधा
विश्व कर्मा-यनस्वन्त-विराज्यशा-ज्योति-विभाव्य-क्रीतिमान् ते वशकारी है ।
धन्यामाराधित-देव वसुधिष्णु-विचरन्वगु-दिन ऋतु-सुषर्मा-भीर नृतवर्मा य
सर्व यशस्वी हैं । केतुमान् ये प्रमदव कह बये हैं ॥२६॥२७॥२८॥

हसस्वरोऽहिहा जीव प्रतर्दनयशस्करौ ।

सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषाणुभौ ॥२९

जन्तुवाहयतिश्चैव सुवित्तमुनयस्तथा ।

शिवा ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया द्वादशापरा ॥३०

सत्यानामपि नामानि निबोधत ययामतम् ।

द्विक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्व सम्भ्रुस्तर्ध्व च ॥३१

स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वज्रोधा मुह्यसर्वश ।

वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दो तथैव च ॥३२

सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापरा ।

इत्येते देवता ह्यासन्नोत्तमस्यान्तरे मनो ॥३३

अजश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्योपधित्तम ।

देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहोऽजिजस्तथा ॥३४

विनीतश्च मुकेतुश्च सुमित्र सुबल शुचि ।

श्रौत्तमस्य मनो पुत्रास्त्रयोदश महारमन ।

एते क्षत्रप्रणेतास्तृतीय चैतदन्तरम् ॥३५

श्रौत्तमे परिसङ्ख्यात सर्गं स्वारोचिषेण तु ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्तान्निबोधत ॥३६

अतुर्गे त्वय पर्याये तामसस्यान्तरे मनो ।

सत्या स्वरूपा सुधियो हरयश्चतुरो गणा ॥३७

हम स्वर-महिहा-प्रतर्दन-यनस्वर-सुदान-वसुदान-सुमञ्जस-विष
दोना-जन्तुवाहयति-सुवित्त सुनय-शिवा य यज्ञिय दूसरे द्वादश जानने चाहिए
॥२९॥३०॥ अब सत्यो क नाम भी ययामत जान तो । दिव्यपति-वाक्पति-
विश्व-सम्भ्रु-स्वमृडीव अधिप वज्रोधा मुह्य सब-वासव-सदाश्व क्षेम भीर

मानन्द ये भव वाहू दूसरे यन्त्रिय कहे गये हैं । शीतल मन्वन्तरो में ये सब देवता थे । ॥३१॥३२॥३३॥ भज-परशु-दिग्ध-दिग्धौपधि-नय-देवानुज-अप्रविम-मष्टोत्साहो मित्र-विनीत-मुक्तेतु-मुमित्र मुखल-रात्रि ये महान् पात्मा वाले शीतल मनु के तेरह पुत्र हुए थे । इन्होंने ही सत्र का अर्धात् क्षत्रियो का प्रणयन किया था और यह तृतीय अन्तर है । इस शीतल में स्वारीचि के द्वारा यह सगं पविमन्वात हुआ है अब बिस्तार से और आनुपूर्वी से तामस आता है उनको जान लो । ॥३४॥३५॥३६॥ इसके अनन्तर चौथे तामस मन्वन्तर के पर्याय में सत्य-स्वरूप-मुषिय-हरय ये चार गए हैं ॥३७॥

पुनस्तपपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनो ।
गणास्तु तेषा देवानामेकैव पचविंशक ॥३८॥
इन्द्रियाणां सत यदि मुनय प्रतिजानते ।
सत्यप्राणास्तु क्षीर्प्यास्तमदचंवाष्टमस्तथा ।
इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृता ॥३९॥
तेषा च प्रभुदेवाना निधिरिन्द्र प्रतापवान् ।
समर्पयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमा ॥४०॥
काथ्यो हर्षस्तथा चैव काश्यप पृथुरेव च ।
आग्नेयदवाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गव ॥४१॥
पीलहो यनपीठश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च ।
चीत्रस्तथापि पीलस्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥४२॥
जनुयण्डस्तथा शान्तिनर म्यातिर्भवस्तथा ।
प्रियभृत्यो ह्यवलिश्च पृष्टलोक्षो दृढोद्यतः ।
श्रुतश्च श्रुतवन्धुश्च तामसस्य मनो मुता ॥४३॥
पचमे स्वय पर्याये मनोद्वारिप्पणवेऽन्तरे ।
गणास्तु सुसमास्याता देवताना निबोधत ॥४४॥
अमृता भाभूतरजोविकुण्डा सगुमेधमः ।
चरिष्णोस्तु शुभा पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापते ।
चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषान्नु भास्वरा ॥४५॥

स्वप्रविश्रोमिभापश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा ।

सुमतिर्वाविगवश्च वाचिनोद स्रवस्तथा ॥४६॥

प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश ।

अमृताभा स्मृता ह्येते देवाश्चारिष्यवेऽन्तरे ॥४७॥

पुनस्तथ पुनः के मुक्त तावत् मन्वन्तर मे थे । उन देवों के गण एक-एक पत्नीस थे ॥३९॥ जो इन्द्रियों के सौ मुनि प्रति साठ हैं, सत्यप्राण-शीर्षण्य तथा आठवीं तम है । उस समय में इन्द्रिय उस मनु के अन्तर में देव बड़े गये हैं ॥३९॥ उन प्रभु देवों का सिद्धि प्रताप बाला इन्द्र था । इस मन्वन्तर में भी सप्तपि ये, हे सप्तमा । उनको अब आप लोप जान लो ॥४०॥ काश्यप, हर्ष, काश्यप, पृथु, आश्विन, अयोतिर्धामा, भार्गव, पौलस्त्य, वनपीठ, गोत्र में वासिष्ठ, वैश्व, पौलस्त्य ये इस मन्वन्तर में ऋषि थे ॥४१॥४२॥ अनु चरुड, क्षान्ति, नर, क्ष्याति, भय, प्रियभृत्य, अवलि, पृथुलोद, हृदीघत, श्रुत, श्रुतबन्धु, ये तामस मनु के पुत्र थे ॥४३॥ इसके अनन्तर चारिष्यव मनु के पौषवें अन्तर-पर्याय में जो देवताओं के गण बड़े गये हैं, उन्हें अब जान लो ॥४४॥ अमृत, भाभून, रज, विदुराद, सप्तमेघस चारिष्य के पुत्र पुत्र थे । वसिष्ठ प्रजापति के चौदह भोर चार उनसे भास्वर गण थे । स्वस्त विप्र, धन्विमन्त, अत्येतिष्ठामृत, सुमति, वाचिराव, वाचिनोद, स्रव, प्रविराशी, वाव, प्राश ये चौदह हैं । चारिष्यव मन्वन्तर में ये अमृताभा देव बड़े गये हैं ॥४५॥४६॥४७॥

मतिश्च सुमतिश्चैव श्रुतगत्स्यो तमैव च ।

प्रावृत्तिर्विकृतिश्चैव मदो विनय एव च ॥४८॥

जेता जिघृक्षु सहर्षश्च द्युतिमान् अवसस्तथा ।

हृत्प्रेतानीह नामानि आभूतरजसा विदुः ॥४९॥

वृषभेता जयो भीम शुचिर्दान्तो यशो दम ।

नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा ।

वीतितास्तु विकृष्टा धी सुमेधास्तु निबोधत ॥५०॥

मेधा मेधातिथिश्चैव सत्यमेधास्तधीव च ।

पृथ्विमेधात्पमेधाश्च भूषो मेधादय प्रभु ॥५१॥

दीप्तिमेघा यशोमेघा. स्थिरमेघास्तथैव च ।
 सर्वमेघादवमेघाश्च प्रणिमेघाश्च य स्मृत ।
 मेघावान् मेघहर्ता च कीर्त्तितास्तु मुमेघस ॥१२॥
 विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपौर्य ।
 पोलस्त्यो वेदबाहुश्च यजुर्नामा च वास्यप ॥१३॥
 हिरण्यरोमाद्भिरसो वेदश्रीन्चैव भागव ।
 ऊर्ध्वः बाहुश्च वासिष्ठ पञ्चन्यः पोलहस्तया ।
 सत्यनेनस्तयात्रेय ऋषयो रंभतामन्तरे ॥१४॥
 महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यङ्गपरहा धुचि ।
 बलबन्धुनिरामित्रः केतुभृद्गो दृढव्रतः ।

अरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमर्चतदन्तरम् ॥१५॥

मति, मुमति, अत, सत्य, भावृति, विवृति, यद, विनय, जेना, जिष्णु,
 गह, शुनिमल, यवम, ये इत्ये नाम अक्षय रजो क जान सो ॥१६॥१७॥
 वृषभेता, जय, भीम, धुचि, दान्न, वध, दम, नाय, विद्वान्, धजेय, कृश, गौर
 सया ध्रुव ये विवृष्ट बह्म गये हैं । अब मुमेघा जान लो ॥१८॥ मेघा, मेघा-
 तिधि, मत्स्यमेघा, वृष्णिमेघा, अश्वमेघा, भूयोमेघादय, प्रभु, दीप्तिमेघा, यशोमेघा,
 स्थिरमेघा, तवमेघा, अवमेघा, प्रणिमेघा, मेघावान्, मेघहर्ता ये सब मुमेघम
 दहे गये हैं ॥१९॥२०॥ उनका विक्रान्त पौर्य वाला उग ममय ये विभु इन्द्र
 था । पोलस्त्य, वेदबाहु, यजु नाम वाला और वास्यप, हिरण्य रोमा, भाद्भि-
 रग, वेदश्री, भागव, ऊर्ध्वबाहु, वासिष्ठ, पञ्चन्य, पोलह, सत्यनेन, धात्रेय ये
 रैवण मन्वन्तर म ऋषि थे ॥२३॥२४॥ महापुराण सम्भाव्य, प्रत्यङ्ग परहा,
 धुचि, बलबन्धु, निरामित्र, केतुभृद्ग, दृढव्रत ये अरिष्णव के पुत्र थे । यह पचप
 मन्वन्तर है ॥२५॥

हवारोक्तिरोत्तमश्चैव तामनो रंभतमनया ।

प्रिमन्नान्वया ह्येने अवारो मनवमनया ॥२६॥

पठे मत्स्य पर्वणि देवा ये चाश्रयेन्तरे ।

आधा प्रभूता भाभ्यादन् पृथुवादन दिवौक्यः ।

महानुभावसेवाश्च पञ्च देवमणा स्मृता ॥१७॥

दिवौकस सर्ग एष प्रोच्यते मातृनाम्भि ।

अमे पुनस्त्य नमस्ते धारण्यस्य प्रजापते ।

गणाश्च तेषां देवानामेवैको ह्यष्टक स्मृत ॥१८॥

अन्तरिक्षो वसुह्वयो ह्यतिथिश्च प्रियव्रत ।

श्रोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्येते प्रकीर्तिता ॥१९॥

इत्येनमद्रस्तथा पश्य पथ्यनेत्रो महायशा ।

सुमनाश्च सुवेताश्च रैवत सुप्रचेतस ।

धृतिरश्वैव महासत्त्व प्रसूता परिकीर्तिता ॥२०॥

विजय मुजयदशैव मनोधानौ तर्पय च ।

सुमति मुपरिदशैव विजातोऽयंपतिश्च य ।

भाष्या ह्येते स्मृता देवा पृथुकास्तु निबोधत ॥२१॥

अजिष्ट क्षाक्यनो देवो वानपृष्ठस्तर्पय च ।

साङ्कर सत्यधृष्ट्युश्च विध्युश्च विजयस्तथा ।

अजितश्च महाभाग पृथुकास्ते दिवौकस ॥२२॥

लेखास्तथा प्रवक्ष्यामि द्रुवतो मे निबोधत ।

मनोजय प्रपासस्तु प्रचेतास्तु महायशा ॥२३॥

पातो ध्रुवक्षितिश्चैव अद्भुतश्चैव वीर्यवान् ।

भवतो बृहस्पतिरश्वैव लेखा सम्परिकीर्तिता ॥२४॥

स्वर्गोच्चैः तम तामस तथा रैवत ये चारोऽप्यनु प्रियव्रत के अथ
रक्षन् वर मे ॥१५६॥ अथ ह्येते वर्णयि म आशुय मन्तर मे जो देव मे मे आद्य
मृत भास्व पृथक निबोध्य और महानुभाव सेवा मे गति देवगण बहे गये
॥१५७॥ यह मातृ नामो के द्वारा दिवौकस सम कहा जाता है । अत्रि के पुत्र
रजापति धारण्य के भानो हैं । उन देवों के मण एक एक अष्टक कहा गया
॥१५८॥ अन्तरिक्ष वसुह्वय अतिथि प्रियव्रत श्रोता मन्ता सुमन्ता य आद्या
हये गये हैं ॥१५९॥ इत्येनमद्र पश्य पथ्यनेत्र महायशा सुमना सुवेता रैवत
सुप्रचेतस धृति महासत्त्व ये प्रसून कीर्तित किये गये हैं ॥१६०॥ विजय मुजय

मनोद्यान, मूमति, सृष्टि, विज्ञात, अर्थपति ये भाव्य देव कहे गये हैं, अब जो पृथुक हैं उनको समझ लो ॥६१॥ अजिष्ट, चाक्षुष, देव, वानपृथ, शाङ्कर, सत्य-धृष्ट, विष्णु, विजय, अजित, महाभाव ये पृथुक दिवीकस अर्थात् देवता हैं । अब लेशो को बताऊंगा, आप बनाने वाले मुझसे उन्हें समझ लो । मनोजव, प्रबान, प्रवेता, महावद्या, वात प्रवक्षित, अद्भुत, श्रीरवान्, अन्न, बृहस्पति ये श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥६२॥६३॥६४॥

मनोजवो महावीर्यस्तेपामिन्द्रस्तदाभवत् ।

उन्नतो भार्गवश्चैव हविष्मानज्जिर सुत ॥६२॥

सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजस्तथा ।

अतिमानश्च पौनस्त्य सहिष्णु पौलहस्तथा ।

मधुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥६६॥

ऊरु पूरु शतद्युम्नस्तपस्वो सत्यवाक् कृति ।

अग्निपुदतिरात्रश्च मुद्युम्नश्चेति ते नव ॥६७॥

अभिमन्युश्च दक्षामो नाद्वलेया मनो मुता ।

चाक्षुषस्य मुता ह्येते पृथु चीव तदन्तरम् ॥६८॥

वैवस्वतेन सह्यजातस्तस्य सर्गो महात्मन ।

विस्तरेणानुरध्या च वधित वै मया द्विजा ॥६९॥

चाक्षुषस्य तु द्रामाद सम्भूत कश्यपान्वये ।

तस्यान्ववाये येऽप्यन्ये तन्नो ब्रूहि मयातयम् ॥७०॥

चाक्षुषस्य नितर्गन्तु समामाच्छ्रोतुमहं च ।

तस्यान्ववाये सम्भूत पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७१॥

प्रजाना पतयश्चान्ये दक्ष प्राचेतसस्तथा ।

उत्तानपाद जग्राह पुत्रमग्नि प्रजापति ॥७२॥

मनाश्च महावीर्य उनवा उस समय मे द्वाद द्वा वा । उन्नत, भार्गव, हविष्मान्, अजिष्ट वा पुत्र सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ, विरज, अतिमान, पौलस्त्य, सहिष्णु, पौलह, मधुरात्रेय ये सात चाक्षुष मन्वन्तर मे थे ॥६५॥६६॥ ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कृति, अग्निपुद, अतिरात्र और मुद्युम्न

वे मो हैं ॥६७॥ और अभिषेक दण्ड था । नादतेय मनु के पुत्र थे । वे मव
 वायुप के पुत्र थे और यह छठवाँ मन्वन्तर है । उस महाका का यह सग वैव-
 स्वत ने परिसंख्यात किया है । हे द्विजो ! मैंने इसे विस्तार तथा धानुपूर्वी से
 कह दिया है ॥६८॥६९॥ ऋषियो ने कहा—वायुप का दामाद कश्यप के वंश
 में उत्पन्न हुआ था । उनसे अन्ववाय म और जो भी कोई दूमेरे हो उन्हें यथा
 तथा रूप से बतलाइये ॥७०॥ धीमूतजी ने कहा—आप लोग वायुप का निगम
 जो है उसे भक्षेप से सुनने के योग्य होते हैं । उसके अन्ववाय में प्रनापवान् धैर्य
 पृथु हुआ था ॥७१॥ धैर्य दक्ष और प्राचेतस प्रजाओं के पति थे । अग्नि प्रजा-
 पति ने उत्तानपाद को पुत्र ग्रहण किया था ॥७२॥

दक्षकस्य तु पुत्रोऽयं राजा ह्यासीत् प्रजापते ।
 स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽग्रे कारणं प्रति ॥७३॥
 मन्वन्तरमयासाद्य भविष्य वायुपस्य ह ।
 गच्छ तदनु वक्ष्यामि उषोदातेन वै द्विजा ॥७४॥
 उत्तानपादाक्षतुरा सूनृता विस्रभाविनी ।
 उत्पन्ना चाधिधर्मण ध्रुवस्य जननी शुभा ।
 धमस्य पत्न्या लक्ष्म्या च उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥७५॥
 ध्रुवश्च कीर्त्तिमन्तश्च अयस्मन्त वसु तथा ।
 उत्तानपादोऽजनयत् कन्ये द्वे च शुचिस्मिते ।
 मनस्विनी स्वराञ्च तयो पुत्रा प्रकीर्त्तिता ॥७६॥
 ध्रुवो वपसहस्राणि दश दिव्यानि वीरवान् ।
 तपस्तेषु निराहार प्राथयन् विभुल मश ॥७७॥
 त्रेतायुगे तु प्रथमे पीत्र स्वायम्भुवस्य ॥ ।
 भ्रातृमान धारयन् यागात् प्राथयन् सुगह्वरश्च ॥७८॥
 तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषा स्थानमुत्तमम् ।
 आभूतसंश्रव हृद्यमस्तोदयविवर्जितम् ॥७९॥
 तस्यातिमात्राभृद्धि च महिमान निरीक्ष्य ह ।
 देत्यामुराणामानाय श्लोकमप्युजना जगौ । ८०

इस प्रजापति दक्ष का पुत्र राजा था । स्वायम्भुव मनु ने अग्नि के कारण के प्रति दिया था ॥७३॥ इसके अनन्तर चाक्षुष के भविष्य मन्वन्तर को शप्त करके हें द्वित्री । इसके पञ्चान् उपोद्धान के माथ पष्ठ को दत्त-माङ्गेगा ॥७४॥ उत्तानपाद से अनुर मुनृत और विस्त्याविनी शुभ घघिघर्म से ध्रुव की माता हुई । शुचि स्मित वाली वह पर्व की पत्नी सक्ष्मी में उत्पन्न हुई थी ॥७४७॥ उत्तानपाद ने ध्रुव-कीर्त्तियान्-अपस्मान् तथा वसु की उत्पत्ति किया था और शुचि स्मित वाली दो कन्याओं को जन्म दिया था । एक मन-स्विनी और दूसरी स्वरा थी । उनके पुत्र कीर्त्तित्त किये गये हैं ॥७६॥ धीर्य वाले ध्रुव ने निराहार रहते हुए विपुल यज्ञ को चाहते हुए दक्ष हजार दिव्य वर्ष तब तक किया था ॥७७॥ प्रथम यज्ञ युग में वह स्वायम्भुव मनु का पौत्र था जिसने योध ने आत्मा को प्राण्य करने हुए मज्ञान् यज्ञ की प्रार्थना की थी ॥७८॥ ब्रह्मात्री ने प्रमथ होकर उग्रनिर्गन्धो का उत्तम स्थान उसको दिया था जो कि सप्तलव पर्यन्त परम सुन्दर और अमोक्ष्य से रहित था ॥७९॥ उसकी अत्यधिक मात्रा वाली श्रद्धि और महिमा को देखकर देवामुरो के प्राचार्य शुक्र ने भी इसके यज्ञ का वर्णन किया था ॥८०॥

अहोऽयं तपसो वीर्यमहो धृतमहो हृतम् ।
स्थिता सप्रपंथ कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ।
ध्रुवे दिव ममासक्तमोदवर स दिवस्पति ॥८१॥
ध्रुवानुष्टिष्ठ च अव्यञ्च भूमि सा सुपुवे नृपौ ।
स्था छायामाह वं पुष्टिभन नागे तु ता विष्णु ॥८२॥
सत्पाभिव्याहृतं तस्य मय म्भो सागवत्तदा ।
दिव्यमहं नाञ्छाया दिव्याभरणभूयिता ॥८३॥
छायाया पुष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानजन्मयान् ।
प्राचीनगर्भं वृषं वृषञ्च वृषं धृतिम् ॥८४॥
पत्नी प्राचीनवर्धन्य भूवर्चा सुपुवे नृपम् ।
नाम्नोदारयिष्यं पुत्रमिन्द्रो य पूरंजन्मनि ॥८५॥

सवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् ।

एव मन्वन्तर युक्तमिन्द्रत्व प्राप्तवान्विभु ॥८६॥

उदारधे सुत भद्राजनयत्सा दिवञ्जयम् ।

रिपुं रिपुञ्जयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवञ्जयात् ॥८७॥

शुक्राचार्य ने कहा था—महो ! हम ध्रुव के तप का पराक्रम कैसा अद्भुत है और इनका धृत तथा हुन भी जितना विमिश्रण है कि इस ध्रुव को प्रपने से भी ऊपर करके सप्तर्षिगण स्थित होते हैं । ध्रुव में समासक्त दिव है दिवस्पति ईश्वर है ॥८६॥ उम भूमि ने ध्रुव से भय्य और पुष्टि के वृषों का प्रसव किया था । विष्णु पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि नारी हो जाओ ॥८७॥ उनके सत्य अभिष्याह्न होने पर उम समय में वह गुरग्त ही ली होगई थी जो कि छाया दिव्य सहनन से दिव्य भूपणों से विभूषित थी ॥८८॥ पुष्टि ने उम छाया में पवि निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये थे । जिनके नाम—प्राचीन गर्भे—वृषक—वृक—वृकल और धृति थे ॥८९॥ प्राचीन गर्भ की पत्नी भूवर्चा ने वृषको पुत्र उत्पन्न किया था जिसका नाम उदारधी था और जो पूर्व जन्म में इन्द्र था ॥९०॥ एक सहस्र वर्षों के अन्त में एकवार आहार ग्रहण किया था । इस प्रकार से विष्णु ने मन्वन्तर से युक्त इन्द्रत्व को प्राप्त किया था ॥९१॥ भद्रा उसने उदारधी के पुत्र दिवञ्जय को जन्म दिया था । वराङ्गी उसने रिपुञ्जय रिपु को उत्पन्न किया था ॥९२॥

रिपोराधत्त वृहती चाक्षुष सर्वतेजसम् ।

व्यजीजनत् पुष्करिण्या वारुण्या चाक्षुषो मनुम् ।

प्रजापतेरात्मजाधामरण्यस्य महारमन ॥९३॥

मनोरजायन्त दश नदलाया शुभा सुता ।

कन्याया वै महाभाष वैराजस्य प्रजापते ॥९४॥

ऊरु पूरु शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कवि ।

अग्निष्टुर्दातिरात्रश्च मुद्युम्नश्चेति ते नव ।

अभिमन्युश्च दशमो नदलाया मनो सुता ॥९५॥

ऊरोरजनयत् पुत्रान् पटाम्नेयी महाप्रभान् ।

भङ्गं भुमनस स्वाति व्रतुमङ्गिरस शिवम् ॥६१॥
 अङ्गात् सुनोवापत्य वे वेनमेक व्यजायत ।
 अपचारेण वेनस्य प्रकोप भुमहानभूत् ॥६२॥
 प्रजायंमृगयस्तस्य ममन्युर्दक्षिण करम् ।
 वेनस्य पाणौ मयिते सम्प्रभूव महानृप ।
 वैन्धो नाम महोपालो य पृथु परिजीतिव ॥६३॥
 स धन्वो वचचो जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
 पृथुर्वैन्ध सखंलोकान् ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥६४॥

रिपु से वृद्धी ने सर्व तेज वाले चाक्षुष को धारण किया था और
 पुष्पिणी बारली भ चाक्षुष ने मनु को उत्पन्न किया था जो कि महारामा प्ररण
 प्रजापति की भारमजा थी ॥६५॥ मनु ने नन्द्या से दश पुत्र पुत्र उत्पन्न किए थे
 जो महारामा प्रजापति वैराज की कन्या थी ॥६६॥ ऊरु-पूह-सतधुम्न-तपस्वी
 गायदा-कवि-मनिष्ठुत-प्रतिरात्र और मुचुम्न ये भी हैं और दशम अग्निमन्यु
 मन्दा मे मनु के पुत्र हुए थे ॥६७॥ आग्नेयी ने ऊरु से महात् प्रभा वाले छै
 पुत्रों को जन्म दिया था जिनके नाम—मङ्ग—भुमनस—स्वाति—व्रतु—प्राङ्गिरस
 और शिव थे ॥६१॥ मुनीषा न भङ्ग से एक मन्तान वेनको उत्पन्न किया था ।
 वेन के पदधार के कारण स बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ था ॥६२॥ ऋषियों
 ने प्रजा के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया । उस समय वेन के हाथ
 के मन्थन किये जाने पर एक महात् नृप वैन्ध नाम वाला महोपाल उत्पन्न हुआ
 था जो कि पृथु इय नाम से कहा गया है ॥६३॥ यह धन्वी-वचधारी तेज से
 प्रगलित रहता हुआ उत्पन्न हुआ । क्षत्र पूर्वज वैन्ध पृथु ने ममस्त लोको को
 रखा भी थी ॥६४॥

राजमूयाभिषिक्तानामाद्य ऽ वमुधाधिप ।
 तस्य स्तवार्चमुदासी निगुणी मृतमागधो ॥६५॥
 तेनेय गीर्महारान्ना दुग्धा सस्यानि धीमता ।
 प्रजाना नृस्तिनामाना देगेर्धपिगणो गह ॥६६॥

पितृभिर्दानवैर्भ्रूव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
 सर्वे पुण्यजनंश्चैव वोरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥६७
 तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
 प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन लोकास्त्वधारयत् ॥६८
 विस्तरेण पृथोजन्म कीर्त्तयस्व महामते ।
 यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुन्धरा ॥६९
 यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह ।
 यथा यक्षैः सगन्धवरप्सरोग्भिर्गन्ध्या पुरा ॥७०
 तेषां पात्रविशेषादथ दोग्धार क्षीरमेव च ।
 तथा वत्सविशेषादथ तन्न प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥७१

राजसूय यज्ञ के द्वारा अभिविष्कृत होने वाले राजाओं में वह वैज्य सबसे
 पहले माघ वसुधा का स्वामी हुआ था । उसके स्तवन करने के लिए परम
 निपुण सूत क्षीर माघ उलटत हुए थे ॥६५॥ उस बुद्धिमान् महान् राजा ने
 इस गो से सस्यो का दोहन किया था । वृत्ति की कामना वाले प्रजाओं के देव
 -ऋषि गणों के साथ-पितर-दानव-गन्धर्व-अप्सरारों के गण-समस्त पुण्य
 जन-विष्णु और पर्वतों के साथ उन-उन पात्रों में दुह्य मान इस वसुन्धरा ने
 इच्छा के अनुसार क्षीर दिया था उससे लोकों को धारण किया था ॥६६॥६७
 ॥६८॥ ऋषियों ने कहा—हे महामते । विस्तार के साथ पृथु के जन्म का वर्णन
 करिये । जिस प्रकार से उस महात्मा ने इस वसुन्धरा का दोहन किया था ।
 ॥६९॥ पहिले जिस तरह से देव-नाग-ब्रह्मर्षि-यक्ष-गन्धर्व और अप्सरारों के
 साथ उनके पात्र विशेषों को दोध्या को क्षीर क्षीर की तथा वत्स विशेषों को इन
 सबको पूछने वाले हमको भली-भाँति बतलाइये ॥७०॥७१॥

यस्मिंश्च वारणे पाणिर्वैनस्य मथितं पुरा ।
 क्रुद्धं भूँर्हर्षिभिः पूर्वं तत् सर्वं वथयस्व न ॥७२
 वर्णयिष्यामि वो विप्रा पृथोर्वैनस्य सम्भवम् ।
 एकाग्रा प्रयताश्चैव शुभ्रपद्म द्विजोत्तमा ॥७३

नाशुचेनीपि पापाय नाशिष्यायाहिताय च ।
 बराययमिम पुण्य नाव्रताय कथञ्चन ॥१०४॥
 स्वयं यशस्यमायुध्य पुण्य वेदेष्वच सम्मितम् ।
 रहस्यमृषिभि प्रोक्त शृणुयाच्चोऽनमूयक ॥१०५॥
 यदचेम थावयेन्मर्त्यं पृथोर्वैत्यस्य सम्भवम् ।
 शाह्यलोम्यो नमस्कृत्य न शोचेत् वृत्ताकृतम् ।
 गोप्ता धर्मस्य राजासो बभूवात्रिसम प्रभु ॥१०६॥
 अत्रिवशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापति ।
 यस्य पुत्राऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा ॥१०७॥

जिस कारण के होने पर पहिले बेनवा हाथ मचा गया था और पहिले
 महर्षिमा ने बहुत कुछ होकर उसके हाथ का मन्थन किया था वह सब हमको
 बतलाइए ॥१०२॥ श्री गुरुजी ने कहा—हे द्विषोत्तमो ! हे विषो ! मैं आपके
 सामने अब वैद्य पृथु के जन्म का बहुत कलेशा । आप लोग सब एकाग्र मन
 बाले और प्रयत्न होता हुए ध्यान करो ॥१०३॥ जो मनुष्य हो पापपुत्र—महित
 अन्न एवं अग्निव्य हो उसने अभी भी इन परम पुण्य चरित्र का बहुत नहीं
 करना चाहिये ॥१०४॥ स्वयं देने वाला यज्ञ प्रदान करने वाला, आपु देने
 वाला पुण्य और समस्त वेदों के द्वारा सम्मत यह ऋषियों के द्वारा परम
 रहस्य कहा गया है जो अमूया अर्थात् निन्दा न करने वाला हो, उस ही यह
 ध्यान कराना चाहिये ॥१०५॥ जो मनुष्य वैद्य पृथु का जन्म चरित्र का हम
 वृत्तान्त को सुनावे उसे ब्राह्मणों को नमस्कार करके ही सुनाना चाहिये और
 फिर अपने हृदय तथा अङ्ग का कुछ सोच नहीं करना चाहिये । यह राजा धर्म
 की रक्षा करने वाला अत्रि के समान प्रभु हुआ था ॥१०६॥ अत्रि का जन्म
 उत्पन्न हुआ अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था । जिसका पुत्र वेन हुआ था,
 जो कि विदोष अधिक धार्मिक नहीं था ॥१०७॥

जानो मृतपुत्रनाया वं मुनीयाया प्रजापति ।

स मातामहदोषेण वेन बालात्मजात्मज ॥१०८॥

स धम प्रपुष्ट कृत्वा कामाल्लोभे व्यवसत ।
 स्थापन स्थापयामास धमपित स पाथिव ॥१०६॥
 वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मे निरतोऽभवत् ।
 नि स्वाध्यायवपटकारा प्रजास्तस्मिन् प्रशासति ।
 आसन च पपु सोम हुत यज्ञ प देवता ॥११०॥
 न यष्टव्य न होतव्यमिति तस्य प्रजापते ।
 आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेय विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥१११॥
 अहमिज्यश्च पूज्यश्च सवयज्ञ द्विजातिभि ।
 मयि पक्षो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥११२॥
 तमिति ज्ञातमयादिमाददानमसाम्प्रतम् ।
 ऊचुर्महर्षय सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ॥११३॥
 वय दीक्षा प्रवेक्ष्याम सवत्सरक्षतान् बहून् ।
 माऽधम येन कार्पोस्त्व नप धम सनातन ।
 निवने च प्रसूनोऽसि प्रजापतिरसृशय ॥११४॥

मृत्पु की पुत्री सुनीचा म प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया था । वह येन मातामह के दोष से बालकी आत्मजा का पुत्र हुआ था । ॥१०८॥ उसने धम को पीठ पीछे करके अर्घान् एकदम भुला कर ही काम से सोम म निमग्न होगया था । उस राजा ने धम से रहित स्थापना को ही स्थापित किया था ॥१०९॥ वेदों और समस्त गान्धों का अनिक्रमण करके वह अधम म निरत होगया था । उसके प्रशासन करके पर सघस्त प्रजा स्वाध्याय तथा वपटकार से रहित होगई थी और उसके शासन ज्ञानम देवण्ण यज्ञो म उस सोमरस का पान नहीं करत थे ॥११०॥ उस प्रजापति की ऐसी यह क्रूर प्रतिज्ञा विनाश काल के समुपरिष्ठ होने पर भी कि उसके राज्य म किसी क द्वारा भी मज्ज तथा हवन नहीं करना चाहिये ॥१११॥ मैं यजन करने के योग्य सर्वोपरि प्रभु हूँ-मैं ही सब गिरोमणि पूजा के योग्य हूँ-द्विजातियों के द्वारा समस्त यज्ञ आदि म समस्त देवादि का त्याग कर मेरा ही यजन-पूजन करना चाहिये । मुझ म यज्ञ करना चाहिये और मरे लिय ही हवन करना चाहिये ॥११२॥ उस समय

प्रमुन मरीचि घादि सभस्त ऋषियो ने मर्यादा का अति क्षमण करने वाले तथा अनुचित वस्तु को ग्रहण करने वाले उसमे कहा—॥११३॥ हम दीक्षा का प्रवेशण करेंगे और बहुत संकष्टो धर्म तक करेंगे । हे वेन ! तुम अधर्म मत करो, यह मर्यादा स भले आने वाला सनातन धर्म नहीं है । और निधन होजाने पर बिना किसी सत्य के प्रजापति तुम प्रसूत हुए हो ॥११४॥

पालयित्वे प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम् ।

तास्तथा चादिन सर्वान् ब्रह्मर्षीन्प्रवीतदा ॥११५॥

स प्रहस्य तु कुतुं द्विरिद वचनकोविद ।

स्रष्टा धर्मस्य ब्रह्मान्य श्रोतव्य वस्य वे मया ॥११६॥

वीर्यश्रुततप सत्यैर्मया वा कः समो भुवि ।

महात्मानमनून मा यूय जानीत तत्त्वत ॥११७॥

प्रभव सर्वलोकानां धर्माणाञ्च विशेषतः ।

इच्छन् दहेय पृथिवी प्लावयेय जलेन वा ।

सृजेय वा प्रसेय वा नात्र कार्या विचारणा ॥११८॥

यदा न शक्यते स्तम्भान्माताञ्च भृशमाहित ।

अनुनेतु नृपो वेनस्तत ऋद्धा महपय ॥११९॥

निगृह्य त महाबाहु विस्फुरन्त यथाऽननम् ।

तताञ्च यामहस्त ते ममगुर्भृशकापिता ॥१२०॥

तस्मात् प्रमथ्यमानादं जज्ञे पूर्वमभिश्रुत ।

ह्रस्वाऽतिमात्र पुण्य कृष्यश्चापि तथा द्विजा ॥१२१॥

तुमने पटित प्रजिज्ञा की थी कि मैं प्रजापति का पालन करूँगा । उस समय दग प्रकार से कहने वाले सभस्त ऋषियों से यह बोला—॥११५॥ तुम युद्ध करना बिना कालने से परम चतुर यह कुछ हँसकर के यह बोला—अप्य धर्मान् मुभय अनिश्चित कौन धर्म का मृजन करने वाला है और मुझे त्रिगुणी बाण मुननी बाहिरे धर्मान् ऐसा भी कोई नहीं है ॥११६॥ हम भूमण्डल में पराक्रम—श्रुत धर्मान् साम्य ज्ञान—सास्वर्ष्य और सत्य हम पूर्ण समुदाय में मेरी समता रखने वाला अप्य कौन है ? धर्मान् कोई भी ऐसा मेरे समान नहीं है ।

प्राप लोग सब भी मुझे तत्त्वमे पूर्ण महात्मा निश्चय रूप से समझें ॥११७॥
 समस्त लोकों के प्रभु और विशेष रूप से धर्मों के स्वामी हमही हैं । मैं इच्छा
 करता हुआ धर्मात् यदि मैं चाहूँ तो इस पृथ्वी को जलादूँ धरवा जनमे प्लावित
 करदूँ—मृजन करूँ या धमन करूँ मुझमें यह सब शक्ति विद्यमान है । इसमें
 कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिये ॥११८॥ स्तम्भ होने के कारण से या
 मान की अविज्ञता से कोई अत्यन्त मोहित होजाने और उसका अनुगमन न
 किया जा सकता हो तो वेन रूप उसे छीक कर देगा । इतना सुनकर महर्षिद्वन्द्व
 बहुत क्रुद्ध होगये थे ॥११९॥ तब तो महाबाहु उसको विस्फुरित अग्नि के समान
 निगूहीत करके उठोने अत्यन्त क्रोधित होते हुए उसके वाम हस्तका मन्थन किया
 था ॥१२०॥ उनके प्रमथ्यमान होने वाले थे पहिले जो अभिभूत हुआ है वह
 धर्मात् पृथु उत्पन्न हुआ । हे द्विजो ! और अत्यन्त छोटा एक कृष्ण बण वाला
 पुरुष भी उत्पन्न हुआ था ॥१२१॥

स भीत प्रज्जतिश्चैव स्थितवान् व्याकुलेन्द्रिय ।

तमार्तं विह्वल दृष्ट्वा निपीदेत्यब्रुवन् किल ॥१२२

निपादवशवर्त्ताज्जो बभूवानन्तविश्रम ।

धीवरानमृजत्सोऽपि वेनकल्मससम्भवान् ॥१२३

ये चाग्रे विन्ध्यनिलयास्तुम्भुरातुवरा खरा ।

अधर्मं ह्ययश्चापि सम्भूता वेनकल्मपात् ॥१२४

पुनर्महर्षयस्तस्य पाणि वेनस्य दक्षिणम् ।

अरणीमिव सरम्भान्ममन्युर्जतिमन्यव ॥१२५

पृथुस्तस्मात् समुत्पन्न करास्फालनतेजस ।

पृथो करतलाद्वापि यस्माज्जात पृथुस्तत ।

दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलन् ॥१२६

आद्यमाजगव नाम धनुर्महं महारणम् ।

शराश्च विभ्रद्रक्षार्थं कवचञ्च महाप्रभम् ॥१२७

तस्मिञ्चातेऽयं भूतानि सप्रहृष्टानि सर्वश ।

समुत्पन्ने महाराशि वेनश्च त्रिदिवङ्गत ॥१२८

वह अत्यन्त भयभीत हुआ जोड़े हुए व्याकुल इन्द्रियो वाला स्थित होगया था । उसको अत्यन्त आर्त और विह्वल देख कर ऋषियो ने कहा—धैर्य जाग्रो अर्थात् निपटारा हो जाग्रो ॥१२२॥ यह अनन्त विक्रम वाला निपाद वश वा करत यात्रा हुआ था । वेन के वल्मप से उत्पन्न होने वाले भीररो वा उमने भी सृजन किया था ॥१२३॥ और जो अन्य विन्ध्याचल में रहने वाले तुम्बर-तुवर-वर और अघर्म फी रचि वाले भी थे, वे भी सब वेन के वल्मप से उत्पन्न क्रोध वाले होते हुए बहुत सरम्भ से अरणी काष्ठ की भाँति वेन के दक्षिण हाथ का मग्न्यन करने लगे ॥१२४॥ करने पर आस्पतन तेज वाले उससे पृथु उत्पन्न हुआ । अथवा जिस पृथु के वरतन से पृथु उत्पन्न हुआ था वह अपने शरीर से दीप्यमान होते हुए साक्षान् मणि के तुल्य जलता हुआ था ॥१२५॥ प्रायः आजगद नाम वाले और महान् ध्वनि वाले धनुष की ग्रहण करने और रक्षा के लिये शरीर की धारण करते हुए तथा महा प्रभा वाले बबच की धारण किये हुए था ॥१२७॥ उसके उत्पन्न होने पर सभी ओर से समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए थे । इस महान् राजा के समुत्पन्न होने पर वेन तो स्वर्ग को चला गया था ॥ १२८ ॥

समुत्पन्नेन राजपि स सत्पुत्रेण धीमता ।
 पुरुषव्याघ्र पुत्राम्नो नरवात्प्रायते तत १२६
 त नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाम्य सर्वश ।
 समागम्य तदा वैन्यमभ्यपिन्ध्वन्नराधिपम् ।
 महता राजराज्येन महाराज महाद्युतिम् ॥१३०॥
 सोऽभिषिक्तो महाराजा देवैरङ्गिरस सुतं ।
 आदिराजो महाराज पृथुवैन्य प्रतापवान् ॥१३१॥
 पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिता ।
 सतो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥१३२॥
 आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यत ।
 पर्यताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥१३३॥

श्रुष्टपञ्चा पृथिवी सिद्धयन्त्यन्नानि चिन्तया ।

सववामदुषा गाव पुटके पुटके मधु ॥१३४॥

एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पंतामहे शुभे ।

मृत मुत्या समुत्पन्न सौत्येऽहनि महामति ।

तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागध ॥१३५॥

वह राजर्षि धीमान् भीरु सत्पुत्र के उत्पन्न होने से वह पुरुषों में व्याघ्र के समान रहने वाला पु नाम वाले भरक से फिर भाए या जाता है ॥१३४॥ समस्त नदियाँ—समस्त समुद्र सब भीरु से रहने को लाकर भीरु वहाँ भाकर उन मराधिय वैश्य का उन सबने अभिषेक किया था जो कि महान् राजा के राज्य से महान् राजा भीरु महान् छुति वाला था ॥१३५॥ वह महान् राजा अगिरा के पुत्र देवी के द्वारा आदिराज—महाराज भीरु प्रनाप वाला वैश्य पृथु अभिषिक्त हुआ था ॥१३६॥ उसके पिता के द्वारा अपरञ्जित उनकी प्रजा उनके द्वारा अनुरञ्जित हुई थी । तब में ही अनुराज से इसका राजा यह नाम हो गया था ॥१३७॥ समुद्र में अभिषाग करने हुए उसके जल स्वम्भित होगये थे भीरु विधीर्ण होते हैं और ध्वजमङ्ग नहीं हुआ था ॥१३८॥ उस समय पृथ्वी श्रुष्ट पञ्चा हो गई थी सर्वात् बिना जुगई के ही जमलें पैदा करने वाली थी बिता क ने मात्र से ही पत्तों की मिट्टि होती है । गीए समस्त कामों के दोहन करने वाली थी भीरु पुत्र-पुत्र में मधु था ॥१३९॥ इस ही जन में पुत्र पैनामह यज्ञ में सौ य दिन में मुनि में मून उत्पन्न हुए जोकि महामति वाले थे । उन ही महायज्ञ में प्राप्त मागध उत्पन्न हुए थे ॥१४०॥

ऐन्द्रेण हविषा चापि हवि पृक्त बृहस्पते ।

जुहावेन्द्राय देवेन तत सूतो व्यजायत ॥१४१॥

प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तञ्च वमंमु ।

शिष्यहव्येन यत्पृक्तभिभूत गुरोर्हवि ।

अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैश्वतम् ॥१४२॥

यच्च क्षत्रात्मममवन्दहाण्या हीनयोनिन ।

गूत पूर्वैण साधमनुत्यधमं प्रवीक्षित ॥१४३॥

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मं क्षत्रोपजीवनम् ।
 रयनागाश्च चरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥१३६॥
 पृथो स्तवार्थं तो तत्र समाहूतो सुरर्षिभिः ।
 तावूचुमुं नय सर्गे स्तूयतामेव पार्थिव ।
 कमेतदनुरूपं वा पात्रं स्तोत्रस्य आप्ययम् ॥१४०॥
 तावूचतुस्तदा सर्वास्तानृषीन्सूतमागधो ।
 आवा देवानृषी इचैव प्रीणयाव स्वकर्मभिः ॥१४१॥
 न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यशः ।
 स्तोत्रं येनास्य कुर्याद्वो राजस्तेजस्विनो द्विजा ॥१४२॥

तेन्द्र हवि के द्वारा धृहस्पति का भी हवि युक्त हुआ । देव के द्वारा इन्द्र के लिए हवन किया था । इससे बाद सूत उत्पन्न हुए ॥१३६॥ वहाँ पर प्रमाद उत्पन्न हुआ और कर्मों में प्रामादिक उत्पन्न हुआ । शिष्य के हृदय से जो वृत्त हो वह गुरु का हवि अभिभूत होगया । ऐसे अधरोत्तर चार से बलों की विकृति उत्पन्न हुई ॥१३७॥ जो क्षत्रिय से ब्राह्मणी में हीनयोनि से हुआ । पूर्व से साधन मुख्य धर्म वाला सूत प्रकीर्तित हुआ था ॥१३८॥ सूत का यह मध्यम धर्म है और क्षत्रोपजीवन है । रय नाग चरित है और चिकित्सित जघन्य चरित होता है ॥१३९॥ सुरर्षियों के द्वारा वहाँ पर वे दोनों पृथु के स्तवन के लिए बुलाये गये थे और समस्त ऋषियों ने उन दोनों से कहा कि तुम इस पृथु राजा की स्तुति करो । वह आप दोनों के अनुरूप ही कार्य है और यह राजा भी स्तोत्र का पात्र है अर्थात् यह राजा भी स्तवन के योग्य है ॥१४०॥ तब उन दोनों सूत और मागध ने उन समस्त ऋषियों से कहा—हम दोनों अपने हमों के द्वारा देवों को और ऋषियों को प्रसन्न करते हैं ॥१४१॥ हम इसके कर्म को नहीं जानते हैं और न उस प्रकार के लक्षण वाग्रा इसका यश ही है । द्विज वृन्द ! जिससे कि इस तेजस्वी राजा का स्तोत्र करे ॥१४२॥

ऋषिभिस्तौ निमुक्तौ तु भविष्यं स्तूयतामिति ।

दानधर्मरतो नित्य सत्यवान् स जितेन्द्रिय ।

ज्ञानशीलो वदान्यस्तु सग्रामेप्यपराजित ॥१४३॥

यानि वर्माणि वृत्तवान् पृथुश्चापि महाबलः ।
 तानि क्षीणेन वद्धानि स्तुवदिमं मृतमागधं ॥१४४॥
 ततः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः ।
 अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥१४५॥
 तथा ये पृथिवीपालाः स्तूयन्ते मृतमागधं ।
 आसीर्वादः प्ररोध्यन्ते मृतमागधवन्दिभिः ॥१४६॥
 तद्दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजा ऊर्ध्वमर्हयः ।
 एव वा वृत्तिदो वंग्यो भवन्ति नराधिपः ॥१४७॥
 ततो वैन्यः महाभागः प्रजा समभिद्रुवुः ।
 त्वग्रो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षेवचनात्तदा ।
 साऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिरीपया ॥१४८॥
 धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च वसुधानाहं यन्दती ।

अस्याहं नभयं नस्तौ गौर्भूत्वा प्राद्वक्मही ॥१४९॥

६ ऋषियो के द्वारा व दोनो नियुक्त किये गये थे कि कि प्राप्ते होने वाले
 कर्मों से इसका स्तवन करो । वह निरय ही क्षण और धम म राज है—सत्यवान्
 है और इन्द्रिया को जीतने वाला है । आनन्द और वदन् वर्मान् दाता है
 तथा सन्नामो म पराजित न हूँने वाला है ॥१४३॥ महान् बल वाले पृथु ने भी
 जिन कर्मों को किया था वे सब स्तुति करने वाले मृत मागधा के द्वारा क्षीन से
 बढ होते हैं ॥१४४॥ इसके अनन्तर स्तवन के अन्त में प्रजेश्वर पृथु ने बहुत
 प्रसन्न होकर मृत के लिये अनूप देश और मागध के लिये मगध देश दे दिया
 था ॥१४५॥ तब समय में पृथिवीपाल मृत और मागधा के द्वारा स्तुति किये
 जाते हैं और मृत मागध वन्दिषो के द्वारा आसीर्वादो से प्ररोधित किये जाते
 हैं ॥१४६॥ उसको देखकर अत्यन्त प्रसन्न महर्षियों ने प्रजा से कहा—आप
 सबका यह नराधिप वंश वृत्ति देने वाला होने ॥१४७॥ इसके अनन्तर समस्त
 प्रजा महाभाग वैश्य की ओर दोड़ी और कहा—आप हमारी वृत्ति करो । तब
 महर्षियों के वचन से प्रजापति के द्वारा अभिद्रुत वह प्रजा के हित करने की
 इच्छा से उम बली ने धनुष और बाणों के लेकर वसुधा वा का आसन किया

था । इसके आदेन के भय से डरी हुई भूमि भी बनकर भाग निकली ॥१४८

ता पृथुर्वनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ।

सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा ।

ददगं चाप्रतो वैन्य वामुर्कोचतधारिणम् ॥१५०

उवलद्भिर्विदिग्धैर्वाणैर्दीप्तेजसमच्युतम् ।

महायोग महात्मान दुर्दं पंमरैरपि ॥१५१

अलभन्तो तदा प्राण वैन्यमेवान्वपद्यत ।

कृताञ्जलिपुटो देवी पूज्या लाकंन्त्रिणि सदा ॥१५२

उवाच वैन्य नायमं स्त्रीन्धे परिपश्यमि ।

वय धारयिता चासि प्रजा राजन् मया विना ॥१५३

मयि लोका स्थिता राजन् मयेदधार्पत जगत् ।

मदृत च विनश्येयु प्रजा पार्थिवमत्तम ॥१५४

न मामहसि वै हन्तु श्रेयश्चेत्परिचिषीषसि ।

प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेद वचो मम ॥१५५

उपायत समारब्धा सर्वे सिद्धन्त्युपक्रमा ।

हत्वापि मा न शक्तस्त्वं प्रजानां पालने नृप ॥१५६

राजा पृथु ने घटुप तकर भागनी हुई उमरा अनुपावन किया था ।

वह उस समय वै व व भय से ब्रह्मादि लोकों को जाकर भी उमने प्राण धनुष

तकर उद्यन वैन्य का देगा था ॥१४९ १५०॥ जनत हुए विगित्त वागा से दीप्त

तज बाल-महायोग-महान् आत्मा वा न और दबो व द्वारा भी दुधर्प अच्युत का

न प्राप्त करती हुई उस समय म रक्षक वै व की ही शरण व प्राप्त हुई थी ।

तीना लोकों व द्वारा भदा पूजन के योग्य-अञ्जलि पुट किये हुए वैन्य ने

बोली-क्या आप स्त्री के वष म अघम की नभी दस रहे है ? हे राजन् । मेरे

विना प्रजा को कैसे शासन करने वाले होंगे ? ॥१५१ १५२ १५३॥ हे राजन् ।

मुझ पर व गंव लोच स्थित हैं और मेरे द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया

जाता है । हे पार्थिवो म श्रु । मेरे विना तो समस्त प्रजा नष्ट हो जायगी ।

॥१५४॥ यदि आप कन्धास वज्र की इच्छा रखते हैं तो मुझ मारने के योग्य

आप नहीं हूँ । हे पृथ्वी न पालक । हे प्रजा के पालक । आप मेरे इस

वचन वा श्रवण करो ॥१५५॥ उपाय से बची भाँति आरम्भ किसे हुए समस्त
उपक्रम सिद्ध होवे हैं । हे नृप ! मुझे मार कर भी आप प्रजापति के पावन में
समर्पण नहीं हो सकते हैं ॥१५६॥

अनभूता भविष्यामि जहि कोप महाद्युते ।
अवध्यादत्र स्त्रिय प्रभुस्त्रियंग्योनिशतेष्वपि ।
मत्तोव पृथिवीपाल धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ॥१५७॥
एष बहुविध वाक्य श्रुत्वा राजा महामता ।
क्रोध निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीद् ॥१५८॥
एकस्यार्थाय यो हत्यादात्मनो वा परस्य वा ।
एक प्राण बहून् वापि काम तस्यास्ति पातकम् ॥१५९॥
यस्मिस्तु निहते भद्रे लभन्ते बहव सुखम् ।
तस्मिन्हते शुभे नास्ति पातकञ्चोपपातकम् ॥१६०॥
सोऽहं प्रजामिमित्त्वा वधिष्यामि वमुन्धरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगदितम् ॥१६१॥
त्वा निहत्याथ वागेन भच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथमित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजा ॥१६२॥
सा त्वं वचनमासाद्य मम धर्मभृता वरे ।
सञ्जीवय प्रजा नित्यं शक्ता ह्यसि न सशय ॥१६३॥

हे महान् ! यह बातें । आप कोप को त्याग दें—मैं धर्मभृता हूँ
जाऊँगा । सँकटों त्रियंग्वोनिर्षों में भी स्त्रियाँ अवध्या ही कही गई हैं । हे
पृथ्वीपाल ! ऐसा मानकर आप धर्म का त्याग करने के योग्य नहीं होते हैं ।
॥१५७॥ महान् मन वाले राजा ने इस प्रकार के वाक्यों को सुनकर धर्मात्मा
ने क्रोध को रोककर पृथ्वी से यह कहा—॥१५८॥ एष के अपने या पराये
अथ के लिये जो कोई हनन किया करता है चाहे किसी के एक प्राण का हनन
करे या बहुतों का हनन करे उसका बड़ा भारी अवश्य ही पातक हुआ करता
है ॥१५९॥ हे भद्रे ! जिस हनन में बहुत से प्राणी गुण की प्राप्ति किया करते
हैं । हे शुभे ! उसके मारे जाने पर पातक और उपपातक कुछ भी नहीं होता

है ॥१६०॥ हे वसुन्धरे ! वह मैं प्रजा के कारण तुझे मारूँगा । यदि तू अब मेरे जगत् के हित करने वाले वचन को नहीं करेगी ॥१६१॥ मेरे शासन के विरुद्ध जान वाली तुझे आज वाण से मारकर यहाँ आत्मा की प्रायत्ता करके मैं प्रजा को धारण करूँगा ॥१६२॥ हे धर्म धारण करने वालो मे श्रेष्ठ ! वह तू आज मेरे वचन को प्राप्त कर प्रजा को नित्य सज्जीवित कर, तू समर्थ है— इसमें कुछ भी मन्देह नहीं है ॥१६३॥

दुहितृत्वञ्च मे गच्छ एवमेत महद्वरम् ।
नियच्छे त्वान्तु धर्मार्थं प्रयुक्तं घोरदर्शने ॥१६४॥
प्रत्युवाच ततो धीन्यमेवमुक्ता सती मही ।
एवमेतदहं राजन् विधास्यामि न शयय ॥१६५॥
वत्सन्तु मम त यच्छ क्षरेय येन वत्सला ।
समाश्च कुरु सर्गत्र मा त्वं धर्मभृता वर ।
यथा विध्यन्दमानञ्च क्षीर सर्गत्र भावये ॥१६६॥
तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्गश ।
धनुष्कोट्या ततो धीन्यस्तेन शैला विवर्दिता ॥१६७॥
मन्वान्तरेष्वतीतेषु विपमासीदसुन्धरा ।
स्वभावेनाभवस्तस्या समानि विपमाणि च ॥१६८॥
न हि पूर्णनिसर्गो वै विपमे पृथिवीतले ।
प्रविभाग पुराणा ग्रामाणां नापि मिद्यते ॥१६९॥
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न शणिवपय ।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमितदासीत्पुरा किल ।
वीगस्वतेऽन्तरे तस्मिन्सर्गस्यैतस्य सम्भवा ॥१७०॥
समत्नं यत्र यत्रासीद्भूयस्तस्मिन्स्तदेव हि ।
तत्र-तत्र प्रजास्ता वै निवसन्ति स्म सर्वदा ॥१७१॥
ग्राह्यार फलमूलन्तु प्रजानामभवत्किल ।
नैव्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्गस्यैतस्य सम्भव ॥१७२॥
इच्छेण महता सोऽपि प्रनष्टात्चोपघीषु वै ।

स कल्पयित्वा वत्सन्तु चाक्षुष मनुमीश्वर ।

पृथुदुन्दोह सस्यानि स्वतले पृथिवी तत ॥१७३॥

हे पौर दशनि । तू मेरी बेटी धन वा धर्म के लिये प्रयोग में लाई हुई तुमको मैं इन प्रकार से यह एक बहुत बड़ा वरदान देता हूँ ॥१६४॥ उस तरह से वही गई पृथ्वी ने इसके पश्चात् वैश्व से कहा—हे राजन् ! इस तरह से मैं यह सब कहूँगी इसमें कुछ भी सत्य नहीं है ॥१६५॥ ठे घन धारण करने वालों में श्रेष्ठ । आप मुझे उसे बरस बनाकर दो क्रममें मैं वत्सला होकर क्षरण कहूँ और आप मुझे सब जगह धर्म कर देंगे जिसमें यह विद्यमान शीर सर्वत्र भागित रहें ॥१६६॥ इसके अनन्तर वैश्व ने सब घोर से शिला के समूहों को उत्सारित किया था और यह नाम पशुपती वाटि से किया और उससे शील विक्षेप रूप से वृद्धित हो गये थे ॥१६७॥ धीरे हुए भगवन्तों में यह वस्तुधरा विषमा थी । उसके स्वभाव से ही सम और विषम भाग हुए थे । ॥१६८॥ पहिले विसर्ग में हथ विषम पृथ्वी के तल में नगरी भयवा प्राचीन का कोई प्रविभाग नहीं है ॥१६९॥ चाक्षुष मन्वन्तर में पहिले यह ऐसी माभार थी कि न तो वहाँ सत्य ही थे, न गौश्री की रक्षा होती थी, न कृषि ही होती थी और न कोई वाणिज्य करने के मार्ग ही थे । फिर वैवस्वत मन्वन्तर में इस सबका यहाँ जन्म हुआ था ॥१७०॥ जहाँ-जहाँ घर समता थी वहाँ पर फिर यह सब हुआ और वहाँ पर ही सर्वेश्वर प्रजा निवास किया करती थी ॥१७१॥ प्रजापति का आश्रय—फल और मूल भी हुआ था । वैश्व धादि राजा के होने के समय से लेकर इस लोक में इन सब वस्तुओं की उत्पत्ति हुई थी ॥१७२॥ समस्त औपनिषद् के प्रगल्भ हो जाने पर महान् भग से उसने यह सब किया था । अर्धपति पशु ने चाक्षुष मनु का धर्म कल्पित करके स्वतन्त्र में सभी को पृथ्वी में द्रोण किया था ॥१७३॥

सस्यानि तेन दुग्धानि वैन्येन तु वसुन्धराम् ।

मनुश्च चाक्षुष कृत्वा वत्सम्प्राप्ते च भूमये ।

तेमाक्षेन तदा ता वै वर्त्यन्ते प्रजा सदा ॥१७४॥

ऋषिभि स्तूयते वापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
 वत्स सोमस्त्ववभूतपा दोग्धा चापि बृहस्पति ॥१७५॥
 पात्रमासीत्तु ह्यन्द्रामि गायत्र्यादीनि सवश ।
 क्षीरमासीत्तदा तेषा तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥१७६॥
 पुन स्तुत्वा देवगणं पुरन्दरपुरोगमै ।
 सोवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ।
 तेनैव वर्त्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमा ॥१७७॥
 नागैश्च स्तूयते दुग्धा विप क्षीरं तदा मही ।
 तेषाञ्च वामुकिर्दोग्धा काद्रवेया महीजस ॥१७८॥
 नागान्ता वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणाञ्चैव सर्वश ।
 तनैव वर्त्तयन्त्युग्रा महाकाया महोत्थना ।
 तदाहारास्तदाचारास्तद्गीर्वास्तु सदाश्रया ॥१७९॥
 धामपात्रे पुनर्दुग्धा त्वत्तद्वानिमिग मही ।
 वत्स वैश्रवणं कृत्वा यक्षं पुण्यवर्नस्तथा ॥१८०॥
 दोग्धा च जनुनामस्तु पिता मणिवर्गस्य स ।
 यक्षात्मजो महातजा वशी स सुमहाबल ।
 तन तं वर्त्तयन्तीति परमपिरुवाच ह ॥१८१॥

उस राजा वै य ने इन वसुंधरा ने सस्वो का संरक्षण किया था उसने
 चाक्षुष मनु की वक्षणा बनाया तब इन भू भण्डाल स्वरूप पात्र में उस समय उस
 मन्त्र में वह समस्त प्रजा अपना वर्त्तन सत्ता किया करती है ॥१७५॥ फिर यह
 वसुंधरा ऋषियों के द्वारा स्तुत होती है और पुन दोहन की गई थी । उस
 समय सोम तों वत्स हुआ था और बृहस्पति दोहन करने वाले थे ॥१७६॥
 उस समय मन्त्री और छंद तथा गायत्री आदि पात्र बना था और उस समय
 उनका सास्वत तप तथा ब्रह्म ही क्षीर हुआ था ॥१७७॥ इनके पदचक्र देवगण
 के द्वारा जिहम पुरंदर अश्विनामी य स्तवन करके उन समय में सुवर्ण निमित्त
 पात्र लेकर अमृत का दोहन किया गया था और उगी से इन्द्र आदि देवा ने
 अपने वर्त्तन (वृत्ति) किया था ॥१७८॥ नागों के द्वारा स्तुत हुई पृथ्वी ने

उस समय विष रूपी क्षीर दोहन में दिया था । उनका दोग्धा वायुकि या घोर काद्रवेय महान् शोच वाते थे ॥१७८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! नागों का और सभी सर्पों का उसी से बतन होता है । ये सब उग्र-महान् शरीर के धारण करने वाले घोर महान् उत्वरण थे । वही उनका आहार था और बंसा ही आचार वही योग्य घोर बड़ी आश्रय था ॥१७९॥ फिर यह पृथ्वी धाम पात्र में घन्तर्धान में दोहन की गई थी और पुरण जन यक्षों के द्वारा वंशवख को वत्स कल्पित कर दोहन किया गया था । उस समय मणिवर का पिता जलुनाभ — यक्षारामज-महान् तेज वाला, यक्षी घोर महान् बल वाला था, इसका दो रा । उससे वे अपनी वृत्ति किया करते हैं यह परमपि ने कहा था ॥१८०॥ ॥

राक्षसंश्च पिशाचंश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
 ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीदुत्प्रेरक ॥१८२
 रक्षः सुमाली बलवान्क्षीर रुधिरमेव च ।
 कपालपात्रे निदुग्धा घन्तर्धानञ्च राक्षसं ।
 तेन क्षीरेण रक्षामि वत्तयन्तीह सर्वश ॥१८३
 पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणं ।
 वत्स चित्ररथ कृत्वा शुचीन् गघास्तथैव च ॥१८४
 तेषा विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुन शुचि ।
 गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभ ॥१८५
 शैलंश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुन्धरा ।
 तत्रोपधीर्भूतिमती रत्नानि विविधानि च ॥१८६
 वत्सस्तु हिमवास्तेषा भेरुर्दोग्धा महागिरि ।
 पात्रन्तु शैलमेवासीत्तेन शैलः प्रतिष्ठित ॥१८७
 स्तूयते, वृक्षवीरर्द्धभि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।
 पलाशपात्रमादाय दुग्धं चित्रप्ररोहणम् ॥१८८
 कामधूक् पुष्पित जल प्लक्षो वत्सो यक्षस्विनी ।
 सर्वकामदुग्धा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ॥१८९
 संपा घात्री विघात्री च धारिणी च वसुन्धरा ।

दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति न श्रुतम् ।

चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥१६०॥

इसके पश्चात् यह वसुन्धरा राक्षस तथा पिशानो के द्वारा दोहन की गई थी । उनका ब्रह्मोपेत कुवेर दोग्धा था ॥१८२॥ सुमाली बलवान् राक्षस था, और उनका क्षीर क्षिर ही था । राक्षसों के द्वारा कपाल के पात्र में घन्तर्धान दोहन की गई थी । उसी क्षीर से राक्षस लोग अपनी वृत्ति बनाया करते हैं ॥ ॥१८३॥ गन्धर्वों तथा अप्सरसों के समुदाय के द्वारा फिर यह वसुन्धरा दोहन की गई थी । उस समय बिचरव को दत्त बनाया था और शुचि गन्धो का दोहन किया गया था ॥१८४॥ मुनि का पवित्र पुत्र विश्वावसु उनका दोग्धा था, जो कि गन्धर्वराज अत्यन्त बलवान्—महान् आत्मा वाला और मूर्ध के तुल्य था ॥१८५॥ फिर यह पृथ्वी सैलो के द्वारा स्तुन होती है और दोहन की गई थी । वहाँ पर शूलिमती बहुत सी प्रोपचियाँ तथा अनेक प्रकार के रत्नों का दोहन हुआ था ॥१८६॥ उनका उस समय हिमाचल दत्त बना था और महान् गिरि मेघ उनका दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था । पात्र उन मक्का दौल ही था, उससे दौल प्रतिष्ठित हुए ॥१८७॥ फिर वृक्ष और अताभो के द्वारा यह भूमि स्तुत होती है और दोहन की गई थी । पनाम का पत्र लाकर छिन्न का प्ररोहण दुग्ध हुआ था ॥१८८॥ पुष्पित दौल कामधुक् का—दत्त दत्त हुआ था—यशस्विनी भूत भाविनी पृथ्वी समस्त कामों की दुग्धा दोग्धी थी ॥१८९॥ वह यह धात्री-विधात्री और भारणी वसुन्धरा पृथु रात्रा के द्वारा समस्त लोकों के हित सम्पादन करने के लिये दोहन की गई थी—ऐसा हमने सुना है । यह हम समस्त चर और अचर लोक की प्रतिष्ठा तथा योनि है, अर्थात् यह सबके उद्भव का स्थान है ॥१९०॥



॥ प्रकरण ४—पृथु-वंश कीर्तन ॥

आसीदिय समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।

वसु धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते ॥१॥

मधुकैटभयो पूर्व मेदमा सपरिप्लुता ।
 ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य धीमत ॥२॥
 इयञ्चासीत् समुद्रान्ता भेदिनीति परिश्रुता ।
 दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते तत ॥३॥
 प्रयिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुन्धरा ।
 सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमागिनी ।
 चानुवंश्यसमाकोर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥४॥
 एव प्रभावो राजासीद्वैन्य स नृपसत्तम ।
 नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतशामेण सर्जित ॥५॥
 प्राह्मण्यश्च महाभागेर्देवदेवाङ्गपारमं ।
 पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनि सनातन ॥६॥
 पार्थिवीश्च महाभार्गं प्राधयद्भिर्महद्यक्ष ।
 आदिराजा नमस्कार्यं पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥७॥

श्री भूतजी ने कहा—यह समुद्र के अन्त तक है और भेदिनी इस नाम वाली सुनी गई है। क्योंकि यह वस्तु अर्थात् धरो को धारण किया करती है, इसी से वसुधा इस नाम से कही जाया करती है ॥१॥ यह पहिले समय में मधु और कैटभ के भेद में सपरिप्लुत थी फिर धीमान् वैश्य राजा पृथु के अभ्युपगम से यह समुद्र के अन्त तक हुई थी और भेदिनी इस नाम से परिश्रुत हुई। यह दुहिता के भाव को प्राप्त हुई थी, जब से ही यह पृथ्वी इस नाम से पही जाती है ॥२॥३॥ यह प्रयिता हुई—प्रविभक्त हुई और शोभा से भी युक्त हुई वसुन्धरा थी, जो कि सस्या के प्रादुरो वाली राजा के द्वारा पतारों के आकरो के माला वाली भी गई थी। यह चार वर्यों के समुदाय से समाकीर्ण उनी राजा के द्वारा जो नि परम बुद्धिमान् था, रक्षित हुई थी ॥४॥ वह नृपम परम प्येष्ठ राजा वैश्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त था। वह प्राणियों के समूह के द्वारा सबल नयन करने के योग्य तथा पूजा करने के योग्य था ॥५॥ वेद और वेद के समस्त अङ्गों के पारणाभी महान् भाग्य वाले ब्राह्मणों के द्वारा वसुधार्ति एवं सनातन केवल पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥६॥

जो राजा इस भू मण्डल में सहाय्य प्राप्त करने के इच्छुर है उन महाभागों के द्वारा भी परम प्रताप वाला आदि राजा ब्रह्म पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥७॥

यो नीरपि च सग्रामे प्रार्थयानंजय युधि ।

आदिकर्त्ता नराणां नो नमस्य पृथुरेव हि ॥८॥

यों हि योद्धा रण याति कीर्त्तयित्वा पृथु नृपम् ।

स धीरस्ये सग्रामे क्षेमो तरति कीर्त्तिमान् ॥९॥

वैद्यैरपि न राजपिवैद्यवृत्तिसमाश्रितं ।

पृथुस्य नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायथा ॥१०॥

एतं बलविशेषाच्च दोग्धार क्षीरमेव च ।

पात्राणि च गयोक्तानि सर्वान्येव यथाक्रमम् ॥११॥

ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना ।

वायु कृत्वा तदा वत्स वीजानि वसुधातले ॥१२॥

ततः स्वायम्भुवे पूर्वन्तवा मन्वन्तरे पुनः ।

बलं स्वायम्भुव कृत्वा दुग्धा श्रीष्मेण वी मही ॥१३॥

मतौ स्वाराक्षिणे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।

मनु स्वारोक्षिण कृत्वा बलं सस्यानि नो पुरा ॥१४॥

जो वीधा नग्राम भूमि में घणना जय प्राप्त करने की कामना रखते हैं, उनका द्वारा भी मानवा का आदिकर्त्ता पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥८॥ जो माया रणभूमि में पहिले पृथु राजा का गुण गात करने जाया करता है वह फिर वहाँ पार स्वल्प जाने सग्राम में क्षेम वाला होता हुआ कीर्त्ति प्राप्त करने वाला पार उन्नत है ॥९॥ वैद्यों की वृत्ति में समाश्रित रहने वाले वैद्यों ने द्वारा भी वह राजपि वृत्ति के देने वाला और महात्मा यथा वाला पृथु ही नमस्कार करने के योग्य होता है ॥१०॥ ये सब बल विशेष, दाहन करने वाले दाहना गुरु और पात्र तथा क्षीर सभी वस्तुएँ क्रम के अनुसार देने लगे हैं ॥११॥ पहिले महात्मा आत्मा जाने ब्रह्माजी ने इस पृथ्वी का दाहन किया था । उस समय ब्रह्मा ने वायु को बल बनाया था और इस वस्तुओं के

तत्त मे मीनो को ब्रूहा था ॥१२॥ इसके पश्चात् फिर बहिने स्वायम्भुव मन्व-
न्तर में स्वायम्भुव को वत्स बनाकर प्रीष्म के द्वारा इस मही का दोहन किया
गया था ॥१३॥ स्वरोचिष मन्वन्तर में धीमान् चंद्र ने मही का दोहन किया
था । स्वरोचिष मनु को वत्स बनाकर सस्यो का दोहन किया गया था ॥१४॥

उत्तमेऽनुत्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु ।

मनु कृत्वोत्तम वत्स सर्वसस्यानि धीमता ॥१५॥

पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनो ।

दुग्धेय तामस वत्स कृत्वा तु बलवन्पुनः ॥१६॥

चारिष्णवस्य देवस्य सम्प्राप्ते चान्तरे मनो ।

दुग्धा मही पुराणेन वत्सञ्चारिष्णव प्रति ॥१७॥

चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुनः ।

दुग्धा मही पुराणेन वत्स कृत्वा तु चाक्षुषम् ॥१८॥

चाक्षुषस्यान्तरेऽप्यतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः ।

वैवस्वतेऽपि मही दुग्धा यथा ते कीर्तित मया ॥१९॥

एतद्दुग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेऽव्यन्तरेषु वै ।

देवादिभिमनुष्यैश्च तथा भूतादिभिश्च या ॥२०॥

एव सर्वेषु विज्ञेया हातीतानागतेष्विह ।

देवा मन्वन्तरेऽथ स्य पृथोऽनु शृणुत प्रजा ॥२१॥

उत्तम और धीमान् अनुत्तम देवभुज के द्वारा उत्तम मनु को वत्स बना
कर धीमान् ने सम्पूर्ण सस्यो का दोहन किया था ॥१५॥ फिर तामस मन्वन्तर
में जो कि पाँचवाँ मन्वन्तर था बलवन्धु के द्वारा यह पृथ्वी तामस मनु को
वत्स बनाकर दोहन की गई ॥१६॥ फिर चारिष्णव देव के मन्वन्तर प्राप्त होने
पर पुराण ने चारिष्णव को वत्स बनाकर इस पृथ्वी का दोहन किया था ॥१७॥
फिर चाक्षुष मन्वन्तर के आ जाने पर पुराण के द्वारा ही चाक्षुष को वत्स
कल्पित कर इस मही का दोहन किया गया ॥१८॥ फिर चाक्षुष मन्तर के
व्यतीत हो जाने पर इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त हो जाने पर यह मही
वैवस्व राजा के द्वारा दोहन की गई है जैसा कि मैंने तुमको अभी सब बताया

या ॥१६॥ पहिले इन सबके द्वारा मन्वन्तरो के व्यनीत हो जाने पर देव आदि-
मानव और भूतादि के द्वारा यह भूमि दोहन की गई थी ॥२०॥ इस प्रकार से
अतीत एक घनागत सभी में मन्वन्तरो में देवों की जान लेना चाहिए । अब इस
राजा पृथु की प्रजा का श्रवण भाव लोग करे ॥२१॥

पृथोस्तु पुत्रो विमान्तो जज्ञातेऽन्तर्दिपालिनी ।

शिखण्डिनी हविर्दानिमन्तर्दानाद्वयजायत ॥२२

हविर्दानात्पद्माश्रेयी धिपणाञ्जनयत्सुतान् ।

प्राचीनवर्हिष शुक्र तप कृष्ण प्रजागिनी ॥२३

प्राचीनवर्हिभंगवान् महानासीत् प्रजापति ।

बलश्रुततपोवीर्यं पृथिव्यामेवराडसी ।

प्राचीनाया कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनवर्ह्यसौ ॥२४

समुद्रतनयायान्तु वृत्तदारः स धौ प्रभु ।

महत्तमरा पारे सवर्णाया प्रजापते ।

सवर्णाऽऽघत्त सामुद्री दश प्राचीनवर्हिष ॥२५

सर्धे प्रचेतसो नाम यनुर्गेदस्य पारगा ।

प्रपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तप ।

दशवपंसहस्राणि समुद्रगलितेभ्यः ॥२६

तपश्चरन्तु पृथिवी प्रचेतसु महीरहा ।

अरक्ष्यमाणामावयुर्वंभूवाथ प्रजादाय ॥२७

प्रयाहते तदा तस्मिन्प्राशुपस्यान्तरं मनोः ।

नाशयन् भारतो वानु वृत्त खमभवद्भुम्भे ।

दशवपंसहस्राणि न देवुर्दधेष्टितु प्रजा ॥२८

पृथु राजा के दो विमान्त पुत्र उत्पन्न हुए थे जोरि अन्तर्दिपानी थे ।

शिखण्डिनी हविर्दान अन्तर्दान में उत्पन्न हुआ ॥२२॥ हविर्दान में पद्माश्रेयी

धिपणा ने पुत्रों की जन्म दिया था । जिनके नाम प्राचीन वर्हि-शुक्र-जप-

कृष्ण-प्रज और अजित थे ॥२३॥ प्राचीन वर्हि भगवान् महान् प्रजापति थे ।

ह बल-श्रुत-तप और वीर्य से पृथिवी में गृह्यत् थे । प्राचीनाया कुशा उगने

ये इनीमे यत् प्राचीन वह्नि नाम यात्रा हृषा या ॥२४॥ वह्निं धूमं समुद्रं तनया मे
 मुनदार हृषा या अर्वां ममुद्रं तनया वो अगनी दास बनाया या । महान् तप
 मे पार म प्रजापति मे रावर्णा म दस नाभुद्री प्राचीन वह्निषो वो मयर्णा न
 घात्ता किया या ॥२५॥ व मव धनुर्वेद के वाग्मयी प्रयेन ये । धृष्टक धर्म
 के प्राचरमु करने यात्र उनमे दस सत्स वर्ष तक महान् तपश्चर्या की थी जो
 कि समुद्र के जल म वयन बग्ग बलि थे ॥२६॥ प्रचेताया के तरदवर्षा करने
 पर महीरुह भग्दयवाण पृथ्वी म बोले । इसके अनन्तर प्रजापति हो गया
 या ॥२७॥ उन समय चाक्षुष मन्वन्तर व अरगहन हो जाने पर मादन बहुत
 न कर सका और द्रुमो मे आवास धातुन होगया या । दस सहस्र वर्ष तक प्रजा
 कुछ भी चेष्टा न कर सकी थी ॥२८॥

तदुपश्रुत्य तपसा सर्वे युक्ता प्रचेतस ।

मृतेभ्यो वायुमग्निञ्च समृजुर्जातिमन्यव ॥२९॥

उन्मूलानय तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरक्षोपयत् ।

तान्निरदहद्वार एवमासोद्रुमक्षय ॥३०॥

द्रुमक्षयमयो धुदध्वा विञ्चिच्छेपेण शशिपु ।

उपगम्याप्रवीदेतान् राजा शोमः प्रचेतसः ॥३१॥

हृषा प्रयोजन सर्वं लोकसन्तानकारणात् ।

नौपन्त्यजत राजानं सर्वं प्राचीनवह्नि ॥३२॥

वृक्षा क्षित्वा जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमास्तौ ।

रत्नभूता तु वन्येय वृक्षास्तु वरर्वाणिनी ॥३३॥

भविष्य जानता ह्येषा मया गोभिविर्वदिता ।

मारिषा नाम नाम्नेया वृक्षेरेव विनिमिता ।

भार्या भवतु वो ह्येषा शोमगर्भविर्वदिता ॥३४॥

पुष्पाक तेजसोऽद्धेन मम आद्धेन तेजसः ।

अरयामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापति ॥३५॥

तपस्या न युक्त समस्त प्रचेतायो ने यह मुनकर क्रोधित होने हुए मुखो
 ने वायु और अग्नि को उत्सर्जित किया या ॥३६॥ वायु ने उन समस्त पृथो

को उन्मूलित कर मुरवा दिया था और अग्नि ने उनको दग्ध कर दिया था ।
 इस प्रकार से धोर द्रुमों का क्षय हुआ था ॥३०॥ कुछ शालियों के दीप रह
 जाने पर द्रुमों के क्षय को जानकर प्रचेतस सोम राजा उनके पास आकर उनसे
 कहने लगा ॥३१॥ लोक मन्तान के कारण से समस्त प्रयोजन जानकर प्राचीन
 बर्हिष राजा लोग कोव को छोड़ दो ॥३२॥ क्षिति में वृक्ष उत्पन्न होंगे । अग्नि
 और वायु शान्त हो जावे । रत्नभूता यह बन्धा वृक्षों की वर वणिनी है ॥३३॥
 भविष्य धर्षात् प्रागे प्रागे वाले समय को जानने वाले मैंने मोमों से विवर्द्धित
 की है । नाम से यह मारिषा नाम वाली है और यह वृक्षों के द्वारा ही विनि-
 मित हुई है । यह सोम के गर्भ से विवर्द्धित हुई आपकी भाषा होवे ॥३४॥
 आपके प्रागे तेज से और आपे मेरे तेज से इसमें परम विद्वान् दक्ष नाम वाला
 प्रजापति उत्पन्न होगा ॥३५॥

स इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तेजोमयेन वै ।
 आग्निनाग्निसमो भूयः प्रजा सवदं यिष्यति ॥३६॥
 ततः सोमस्य वचनाज्जगृह्स्ते प्रचेतस ।
 सहस्र कोष वृक्षेभ्य पत्नी धर्मेण मारिषाम् ॥३७॥
 मारिषाया ततस्ते वै मनमा गर्भमादधुः ।
 दक्षभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापति ॥३८॥
 दक्षो जर्त महातेजाः सोमम्यागेन धीर्यवान् ।
 अमृजन्मानसानादौ प्रजा दक्षोऽथ मैथुनात् ॥३९॥
 अचराञ्च चराञ्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ।
 विगृज्य मनमा दक्ष पञ्चादमृजत स्त्रियः ॥४०॥
 ददौ स दक्ष धर्माय वस्यपाय त्रयोदश ।
 धानस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्द्रे ॥४१॥
 एभ्यो दत्त्वा तनोऽन्या वै चनस्योऽरिष्टनेमिने ।
 द्वे चैव वाट्पुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
 बन्ध्यामेका वृद्धाश्चाय तेभ्योऽन्यत्र निरोपत ॥४२॥
 आपके तेजोमय अग्नि में दग्ध भूयिष्ठा इनको वह अग्नि सम होकर फिर

प्रजा का सम्बर्द्धन करेगा ॥३६॥ इसवे पश्चात् सोम के बचन से उन प्रचे-
ताओं ने वृक्षों में कोप का सहार करके धम से मारिषा को पत्नी रूप में ग्रहण
किया था ॥३६॥ इसवे धनन्तर उन्होंने मारिषा से मन से गर्भ धारण कराया
था । दश प्रचेताओं से मारिषा से प्रजापति महान् तेज वाला सोम के घस से
घोर्ययान् दश उत्पन्न हुआ था । आदि में मानव प्रजाओं का सृजन किया था
इसके अनन्तर दश ने मैथुन से सृजन किया ॥३८-३९॥ दश ने चर-मचर-
द्विरद और चतुणदों का मन से विशेष रूप से सृजन करके पीछे स्त्रियों का
सृजन किया था ॥४०॥ उसने अर्वाह् दश ने दशतों धम के लिए दी-कश्यप
को तेरह और बाल के भयन में युक्त सत्साईन इन्दु के लिए दी थी ॥४१॥
इनको देकर फिर अन्य चार अरिष्टनेमि को दी—दी वाहु पुत्र के लिए—दो
आङ्गिरस के लिये और एक बन्धा वृषाश्व के लिये दी । अब उनसे जो सन्तति
हुई उसे भी आप जोष भली भाँति समझ लो ॥४२॥

अन्तर चाक्षुषस्यात्र मनो पञ्चन्तु हीयते ।
मनोर्ववस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापते ॥४३॥
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवा ।
गन्धर्वाप्सरसश्च व जतिरेज्याश्च जातयः ॥४४॥
तत प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसम्भवा ।
सङ्कल्पादर्शनात्पदात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥४५॥
देवानां दानवानाञ्च देवर्षीणाञ्च ते शुभ ।
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महारमन ॥४६॥
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया ।
कथं प्राचेतसत्त्वञ्च पुनर्लभे महातपाः ॥४७॥
एतन्नः सशयं सूत व्याख्यातु त्वमिहाहसि ।
स दीहि त्रिंशश्च सोमस्य कथं श्वशुरताङ्गतः ॥४८॥
उत्पत्तिश्च निराधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमा ।
ऋषयोऽन्ये न गृह्णन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ॥४९॥
यहाँ १८ चाक्षुष भनु का छट्वाँ अन्तर हीयमान होता है । प्रजापति

सप्तम वैवस्वत मनु का भी समस्त होता है । उन में देव-स्रग-गौ-नाग-दितिज-दानव-गन्धर्व-अप्सरा और अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई थी ॥४३-४४॥ इसके पश्चाद् सभी से लेकर इस लोक में मनुष्यसे जन्म ग्रहण करनेवाली प्रजा हुई थी । इससे पहिले जो हुए थे उन पूर्व में होने वालों की सृष्टि सद्गुण-दर्शन-स्पर्शन से ही कही जाती है ॥४५॥ ऋषिया ने कहा—आपने देवों का-दानवों का और देवर्षियों का शुभ जन्म महात्मा दश वे पहिले बतलाया है ॥४६॥ आपने प्रजापति ब्रह्म का जन्म ब्राह्म से बतलाया है । फिर महातप ने प्राचेतरात्मा को कैसे प्राप्त किया था ॥४७॥ हे सूत ! यह हमको बड़ा सशय होता है । आप इसकी पूरी व्याख्या करने के योग्य होने हैं । वह सोम का दीहिष्ठ इवसुर कैसे बन गया था ? ॥४८॥ श्री सूतजी ने कहा—हे सप्तमी ! प्राणिमो में उत्पत्ति और निरोध निरत्य ही होता है । इस विषय में ऋषि लोग और जो विद्या वाले मनुष्य हैं वे मोह को प्रसन्न नहीं होते हैं ॥४९॥

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजा ।
 पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वास्तत्र न भुङ्क्षति ॥५०॥
 ज्यैष्ठ्य कानिष्ठ्यमप्येषा पूर्व नासीद्द्विजोत्तमा ।
 तत्र एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥५१॥
 इमा विसृष्टि यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् ।
 प्रजानामायुस्तीक्ष्ण स्वर्गलोके महीयते ॥५२॥
 एष सर्गं समाख्यातश्चाक्षुषस्य समा सत ।
 इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मका ।
 स्वायम्भुवाद्याः सप्तोपाद्वाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ॥५३॥
 एते सर्गा यथाप्रज्ञ प्रोक्ता ये द्विजसत्तमा ।
 नैवस्वतनिमर्गेण तेषा ज्ञेयस्तु विस्तर ॥५४॥
 अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वत ।
 भारोग्यायुध्रमाख्येन धर्मत कामतोऽर्थतः ।
 एतानेव गुणमेति य पठत्यनमूयक ॥५५॥

वैवस्वतस्य वक्ष्यामि साम्प्रतस्य महात्मनः ।

समासाद्ब्रह्मासत् सर्गं भ्रुवतो मे निबोधत ॥५६॥

हे द्विज धृन्व ! ये समस्त दश आदि युग-युग मे होते हैं और फिर निरुद्ध हुआ करते हैं । उसमे विद्वान् पुरुष कभी मोहित नहीं होता है ॥५७॥ हे द्विजोत्तमो ! पहिले इनकी ज्येष्ठता और कनिष्ठता अर्थात् छुटपन और बड़पन नहीं होती थी । तब ही एष बड़ा हुआ था और प्रभाव ही कारण था ॥५८॥ जो आद्युप की इस अराचर विषेय मृष्टि को जानता है वह अनामों की आयु की उत्तीर्ण होगया और स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित हुआ है ॥५९॥ मैंने यह आद्युप मन्वन्तर का सर्ग संक्षेप से कहा है । ये मन्वन्तरात्मक अर्थात् मन्वन्तर के स्वरूप वाले छै विसर्ग अगन्त होते हैं । स्वायम्भुव के आठ वाले आद्युप के अन्त वाले यथाक्रम संक्षेप मे वर्णित हैं । अर्थात् इनमे से छै मे स्वायम्भुव प्रथम है और आद्युप अन्तिम है ॥६०॥ ये समस्त सर्ग प्रजा के अनुसार हे द्विजोत्तमो । मैंने कहे हैं । वैवस्वत विसर्ग से ही उनका विस्तार जान लेना चाहिये ॥६१॥ ये समस्त सर्ग विवस्वान् से न तो अनन्त हैं और न अतिरिक्त ही हैं । आरोग्य और आयु प्रमाण से-धर्म से तथा काम से इनके ही गुण से जो अनसूयक इसे पकता है हो जाता है । अब साम्प्रत महात्मा वैवस्वत का सर्ग समाप्त और विस्तार दोनों से मैं कहूँगा उसे आप लोग बताने वाले सुभमे जान लो ॥६२-६६॥

प्रकरण ४६-वैवस्वत-सर्ग वर्णन

सप्तमे त्वय पश्यमि मनोर्वैवस्वतरय ह ।

मारोचत्कश्यपाद् देवा जज्ञिरे परमर्षयः ॥१॥

आदित्या वसवो रुद्रा साध्या विश्वे मरुद्गणा ।

भृगवोऽङ्गिरसश्चैव ह्यष्टौ देवगणाः स्मृताः ॥२॥

आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेया कश्यपात्मजाः ।

साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणाः ॥३॥

भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्यङ्गिरोऽङ्गिरस सुतः ।
 वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नित्यं ते च्छन्दजा सुराः ॥४॥
 एष सर्गस्तु मारीचो विज्ञेयः साम्प्रतः शुभः ।
 तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबलः ॥५॥
 अतीतानामता ये च वर्तन्ते ये च साम्प्रतम् ।
 सर्वे मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥६॥
 भूतभव्यभवन्नाथ सहस्राक्षः पुरन्दरः ।
 मधवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गिणो वज्रपाणयः ।
 सर्वे ऋतुसत्तेनेष्टं पृथक् सतगुणेन तु ॥७॥

श्री सुनजी ने कहा—इसके अनन्तर वैवस्वत ऋतु के सप्तम पर्वाय में मारीच से कश्यप से देव और परमपिण्ड उत्पन्न हुए ॥१॥ आदित्य-वसुगण-शुक्र-साम्य-विश्वे-मरुदगण-भृगु-अङ्गिरस ये आठ देवगण कहे गये हैं ॥२॥ आदित्य-मरुत और शुक्र ये कश्यप के पुत्र जानने चाहिए । साम्य-वसुगण-विश्वे ये तीन गण धर्म के पुत्र हैं ॥३॥ भृगु वा भार्गव देव पुत्र है और अङ्गिरस वा अङ्गिरा पुत्र हुआ । इस वैवस्वत अन्तर में नित्य छन्दज सुर हैं ॥४॥ यह मारीच सर्ग जानना चाहिए जो कि साम्प्रत और शुभ है । साम्प्रत धर्मान् इस वर्तमान समय में होंगे वाता उनमें तेजस्वी और नाम से महाबल इन्द्र हैं ॥५॥ जो अतीत और अनागत हैं और जो इस समय में वर्तमान हैं वे सब मन्वन्तरेन्द्र तुल्य लक्षण वाले ही जानने चाहिए ॥६॥ भूत भव्य और भव्य के सहस्राक्ष-पुरन्दर और मधवन्त वे सब शृङ्गी-वज्र पाण्ड हैं । सबों के द्वारा सतगुण से मज्जत किया गया है जो कि पृथक् सत गुण से युक्त हैं ॥७॥

त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि यतिमन्त्यवलानि च ।
 अभिभूयावतिष्ठन्ते धर्माद्यैः कारुण्यैरपि ॥८॥
 तेजसा तपसा बुद्ध्या वनधुत्तपराक्रमे ।
 भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णवः ।
 एतन्मयं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वतो मे निबोधत ॥९॥

भूत भव्यं भविष्यं तत् लोकत्रयं द्विजैः ।
 भूर्लोकोऽयं स्मृतो भूमिरन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ।
 भव्यं स्मृतं दिवं ह्येतत्तेषां वक्ष्यामि साधनम् ॥१०॥
 ध्यायतः पुत्रकामेन ब्रह्मणाग्रे विभाषितम् ।
 भूरिति व्याहृतं पूर्वं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ॥११॥
 भूतत्त्वायाः स्मृतो धातुस्त्वयाऽसौ लोकदर्शने ।
 भूतत्वाद्दर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्ततः ।
 मत्तोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूद्विजैः स्मृतः ॥१२॥
 भूतेऽस्मिन् भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणा पुनः ।
 भवत्युत्पद्यमानेन कालशब्दोऽयमुच्यते ॥१३॥
 भवनात्तु भुवर्लोको निरुक्तजैर्निरुच्यते ।
 अन्तरिक्षं भुवस्तस्माद्वितीयो लोक उच्यते ॥१४॥

जीनोश्च मे जो सत्त्व गतिमाप् धीरं भवत है उनका अभिभव करके
 अवस्थित होते हैं । धर्माद्यं वारणो से-तेज से-तपसे बुद्धिसे धीर बल-भूत और
 पराक्रम से भूत-भव्य और भवघ्नाय होते हैं वे उषी प्रकार से प्रभविष्यु भी
 हैं । यह सब मैं बतलाऊंगा बोलने वाले मुझने भाष लोच सब जानकारी कर
 लो ॥१०॥ भूत-भव्य और भविष्य वह द्विजों के द्वारा लोहद्वय कहा गया ।
 यह भूमि भूर्लोक कहा गया है और अन्तरिक्ष भुवनोक इस नाम से कहा
 गया है । भव्य यह दिव्य कहा गया है अब उनके साधन बतलाऊंगा ॥१०॥
 पुत्र की कामना वाले ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने सबसे आगे "भू" यह बोला था
 तबसे ही यह भूर्लोक हो गया था ॥११॥ "भू" यह धातु सत्ता धर्म से कहा गया
 है तथा यह लोक दर्शन में भूतत्व और दर्शनतत्व होने के कारण से तभी से यह
 भूर्लोक हुआ था । इसीप्रकार यह प्रथम लोक भूतत्व होने से द्विजों के द्वारा भू
 कहा गया है । इस भूत में ब्रह्मा के द्वारा पुन द्वितीय भवन् यह कहा गया है ।
 भवति इस उत्पद्यमान के द्वारा यह काल शब्द कहा जाता है ॥१२॥१३॥ भवन
 होने से निरुक्त-वे ज्ञाताधी के द्वारा भुवर्लोक कहा जाता है । अन्तरिक्ष भुव
 होता है इससे यह द्वितीय लोक कहा जाता है ॥१४॥

उत्पन्ने तु भुवर्लोके तृतीयं ब्रह्मणा पुन ।
 भव्येति व्याहृत यस्माद्भाव्यो लोकस्तदाऽभवत् ॥१५॥
 धनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते ।
 तस्माद्भाव्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिव्य स्मृतम् ॥१६॥
 स्वरित्युक्त तृतीयोऽप्यो भाव्यो लोकस्तदाभवत् ।
 भाव्य इत्येष धातुर्व भाव्ये काले विभाव्यते ॥१७॥
 भूमितीय स्मृता भूमिरन्तरिक्ष भुव स्मृतम् ।
 दिव्य स्मृत तथा भाव्य त्रिलोक्यस्यैव सग्रहः ॥१८॥
 त्रिलोक्ययुक्तं व्याहारैस्तिस्त्रो व्याहृतयोऽभवन् ।
 नाप इत्येष धातुर्व धातुर्ज पालने स्मृतः ॥१९॥
 यस्माद् भूतस्य लोकस्य भाव्यस्य भवतस्तदा ।
 लोकत्रयस्य नापास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजं स्मृताः ॥२०॥
 प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च ।
 मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥२१॥

भुवर्लोक के उत्पन्न होने पर ब्रह्मा ने फिर तृतीय को भाव्य ऐसा कहा जिस कारण से तब वह भाव्य लोक हो गया था ॥१५॥ अर्थात् में भाव्य यह शब्द विभाजित हुआ है । इसमें यह लोक भाव्य नाम से कहा गया है ॥१६॥ एष यह कहा गया है कि अन्य तृतीय भाव्यलोक हुआ था । भाव्य यह धातु भाव्य काल में विभाजित होता है ॥१७॥ यह भूमि भू इस नाम से बही गई है—अन्तरिक्ष भुव इस नाम से कहा गया और भाव्य दिव्य इस नाम से कहा गया है—यही त्रिलोक्य का सग्रह होता है ॥१८॥ त्रिलोक्य से युक्त व्याहारों से “भूर्भुव स्व” तीन व्याहृतियाँ हो गई हैं । ‘नाप’—इस नाम से एक धातु है यह धातु के जल रक्षने वालों के द्वारा पालन प्रबंध में बही गई है ॥१९॥ जिस में भूत-भाव्य और भवत् लोक के उस समय में तीन लोक के के जो नाप के द्विजों के द्वारा वे इन्द्र बने बने हैं । २०॥ प्रधान भूत देवेन्द्र तथा गुणभूत मन्वन्तरा में जो देव हैं वे यज्ञ के भागधारी होते हैं ॥२१॥

यक्षगन्धर्वरक्षासि पिशाचोरमदानवाः ।

महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणान्नु सर्वश ॥२२॥

देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते ।

रक्षन्तीमा प्रजाः सर्वा धर्मशेह सुरोत्तमा ॥२३॥

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासतः ।

सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रत ये दिवि स्थिताः ॥२४॥

गाधिजः कौशिको धीमान् विद्वामित्रो महातपा ।

भार्गवो जमदग्निश्च ऊरुपुङ्गवः प्रतापवान् ॥२५॥

वृहस्पतिमुतश्चापि भारद्वाजो महातपा ।

श्रीनय्यो गोतमो विद्वाञ्छ्वरद्वान्नाम धार्मिक ॥२६॥

स्वायम्भुवोऽत्रिभंभवान् ब्रह्मकोशस्तु पञ्चमः ।

पष्ठो वासिष्ठपुत्रस्तु वसुमान् लोकविश्रुतः ॥२७॥

वत्सार काश्यपश्चैव सप्तर्षेः साधुसम्मतौ ।

एते सप्तर्षयः सिद्धा वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥२८॥

यक्ष-गन्धर्व-राक्षस-पिशाच-उरग-दानव-ये देवेन्द्रो के सब भौर से महिमारें कही गई हैं ॥२२॥ हे सुरोत्तमो ! देवेन्द्र-गुरु-नाथ-राजा-पितर ये सभी यहाँ धर्म से प्रजा की रक्षा किया करते हैं ॥२३॥ यह देवेन्द्रो का लक्षण संक्षेप से बतना दिया है । अब सप्तर्षियों के विषय में बतलाते हैं जो कि इस समय दिवि में स्थित रहते हैं ॥२४॥ गाधि से उत्पन्न होने वाले, कौशिक भौर धीमान् महात् तपस्वी विद्वामित्र—भार्गव जमदग्नि प्रताप वाता ऊरु का पुत्र—वृहस्पति का पुत्र महात् तपस्वी भारद्वाज—श्रीनय्य गौतम जो कि ब्रह्म विद्वांश्चरद्वान् नाम बान्ना परम धार्मिक है—स्वायम्भुव भगवान् धनि जो ब्रह्म का कोश भौर पाँचवा है—छत्वे वासिष्ठ पुत्र जो वसुमान् भौर लोक में परम विश्रुत है—वत्सार काश्यप ये साधुओं के द्वारा सहमत मान ऋषिभूत हैं । ये वर्तमान इस अन्तर में निवसित हुए सप्तर्षि होते हैं ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

इद्वानुश्र्वं च नाभागो घृष्ट शर्यातिरेव च ।

परिप्यन्तश्च मित्यातो नाम उद्दिष्ट एव च ॥२९॥

करुपश्च पृषधश्च वसुमान्निवम स्मृतः ।

मनोर्वेवस्तस्येते दश पुत्रा प्रकीर्त्तिताः ।

कीर्त्तिता ये मया ह्येते सप्तमञ्चैतदन्तरम् ॥३०॥

इत्येष वो मया पादो द्वितीयः कथितो द्विजाः ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च भूय किं वक्ष्याम्यहम् ॥३१॥

इहवाकु-नाभाय-गुप्त-दर्याति-नरिष्यन्त-विख्यात और उद्दिष्ट नाभ-
पृषध और तवम वसुमान् ये इस वैवस्वत मनु के दस पुत्र कहे गये हैं । मैंने
इनको कीर्त्तित कर दिया है और यह सप्तम अन्तर है । हे द्विजगण । यह मैंने
द्वितीय पाद कहा है । अब आप लोग ही मुझे बतलाइये पुनः विस्तार से तथा
मानुपूर्वी से मैं क्या बखानूँ ॥३०॥३१॥

॥ प्रकरण ४७--प्रजापति वंशानु कीर्तन ॥

श्रुत्वा पाद द्वितीयस्तु क्रान्त मूलेन धामता ।

अतस्तृतीयः प्रच्छ पाद वै शाशपायनः ॥१॥

पादः क्रान्तो द्वितीयोऽयमनुपङ्गोऽयस्त्वया ।

तृतीयः विस्तरात्पादः सोपोद्धातः प्रकीर्त्तय ।

एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतः प्रहृष्टोऽनन्तरात्मना ॥२॥

कीर्त्तयिष्ये तृतीयञ्च सोपोद्धातः सविस्तरम् ।

पादः समुदयाद्विप्राः गदतो मे निबोधतः ॥३॥

मनोर्वेवस्वतस्येम साम्प्रतस्य महात्मनः ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च निमग्नः शृणुत द्विजाः ॥४॥

चतुर्गुणैकसप्तत्या सङ्ख्यातः पूर्वमेव तु ।

सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवैः सह ॥५॥

पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा ।

मानुषैः पशुभिश्चैव पक्षिभिः स्यावरैः सह ॥६॥

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्यं जनलोके महर्षय ।
 ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ॥१८॥
 सर्वे वयं प्रसूयामश्वाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
 पितामहात्मजा सर्वे तत श्रेयो भविष्यति ॥१९॥
 स्वायम्भुवेऽन्तरे क्षप्ता समार्यं ते भवेन तु ।
 जज्ञिरे मे पुनस्ते ह जनलोकाद्विष्यता ॥२०॥
 देवस्य महतो यज्ञे वारुणी बिभ्रतस्तनुम् ।
 ब्रह्मणो जुह्वत शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सथा ।
 ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१॥

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! पहिले समुत्पन्न सप्तर्षिण कैसे सात मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमें बतसाइये । इसके पश्चात् महान् तीक्ष्ण-वाले पौराणिक सूत्रजी ने शुभ वचन बोले ॥१५॥ सप्तर्षिण कैसे सिद्ध हुए जो स्वायम्भुव अन्तर में वे सवितर को प्राप्तकर जोकि वैवस्वत नाम वाला था भव के अभिराष से सविद्ध होकर उन्होंने उस समय में वष को प्राप्त नहीं किया था । एकबार आगामी वे जनलोक में उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक में सब महर्षिलोग आपस में एक-दूसरे से बोले और पितृव वारुण ऋतु में महाभाग बोले ॥१८॥ हम सब वाक्षुष ऋतु के अन्तर में प्रसूयमान होते हैं । सब पितामह के भ्रातृज हैं । इससे श्रेय होगा ॥१९॥ स्वायम्भुव अन्तर में सात के लिये वे शिव के द्वारा अभिशप्त हुए वे पुन वहाँ जनलोक से दिव को गये हृषो में जन्म लिया था ॥२०॥ यज्ञमें वरुण के शरीर की धारण करने वाले महान् देव प्रजा की इच्छा से पहिले अग्नि में शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्मा से पूर्व में ऋषिलोग उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्यः पुलह ऋतु ।
 अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अथो ते ब्रह्मण सुता ॥२२॥
 तथास्य वितते यज्ञे देवाः सर्वे समागता ।
 यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥२३॥
 मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः ।

ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥२४

यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओङ्कारवदनोज्ज्वल ।

स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तमूक्तग्राह्यमन्त्रवान् ॥२५

सामवेदश्च वृत्ताढ्य सर्वंगेयपुर मरः ।

विश्वावस्वादिभिः साद्धं गन्धर्वैः सम्भृतोऽभवत् ॥२६

ब्रह्मा वेदस्तथा घोरं कृत्याविधिमिरन्वित ।

प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विजरीरशिरोऽभवत् ॥२७

लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तयः ।

आश्रयस्तु वपट्वारो निग्रहप्रग्रहावपि ॥२८

मृगु-भङ्गिरा-मरीचि-पुलस्त्य-पुलह-अतु-भन्नि और धमिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥२२॥ उसी प्रकार से यज्ञ के वितत होने पर समस्त देवगण वहाँ आये थे । ममस्त यज्ञ के प्रङ्ग और मूर्तिवान् वपट्वार-मूर्तिमान् साम-सहस्रो यजु और पद-क्रम आदि में विभूषित ऋग्वेद वहाँ पर था ॥२३॥२४॥ वृत्त से आढ्य और ओङ्कार के मुख से उज्ज्वल यजुर्वेद यज्ञ के अर्थ से संपृक्त मूक्त-ग्राह्य और मन्त्रों वाला वहाँ पर स्थित है ॥२५॥ समस्त गाने के योग्यों में अथली वृत्त से आह्वय सामवेद विदवाक्यादि के साथ गन्धर्वों के द्वारा सम्भूत था ॥२६॥ ब्रह्मवेद और कृत्या विधियों से युक्त और प्रत्यङ्गिरस योगों के द्वारा दो शरीर एवं शिर बना था ॥२७॥ लक्षण स्वर हैं, स्तोम निरुक्त स्वर और भक्ति हैं । आश्रय वपट्वार है और निग्रह तथा प्रग्रह भी हैं ॥२८॥

दीप्ता दीप्तिरिलादेवी दिश प्रदिशगीश्वरा ।

देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ॥२९

आपु सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे ।

मूर्तिमन्तः स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भूत ॥३०

स्वयम्भुवस्तु ता दृष्ट्वा रेत समपतद्भुवि ।

ब्रह्मर्षेर्भावमूतस्य विधानाच्च न सञ्चय ॥३१

कृत्वा जुहाव सुग्म्या-च सुवेण परिगृह्य च ।

आन्यवज्जुहुवाञ्चक्रे मन्त्रवच्च पितामह ॥३२

ऊचु सर्वे ततोऽन्योन्य जनलोके महर्षय ।
 ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते ऋतौ ॥१८॥
 सर्वे वयं प्रसूयामश्वाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
 पितामहात्मजा सर्वे तत श्रेयो भविष्यति ॥१९॥
 स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ता सप्तार्यं ते भवेन तु ।
 जज्ञिरे न पुनस्ते ह जनलोकादिगं गता ॥२०॥
 देवस्य महतो यज्ञं वारुणो बिभ्रतस्तनुम् ।
 ब्रह्मणो जुह्वत शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया ।
 ऋपयो जज्ञिरे पूष द्वितीयमिति न श्रुतम् ॥२१॥

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! पहिले समुत्पन्न सप्तर्षिगण कैसे सात मानस पुत्रत्व से कल्पित हुए ? यह हमें बतलाइये । इसके पश्चात् महान् तेज वाले पौराणिक सूतजी ने कुछ वचन बोले ॥१५॥ सप्तर्षिगण कैसे सिद्ध हुए जो स्वायम्भुव अन्तर मे थे मन्वन्तर की प्राप्तकर जोवि वैदस्वत नाम वाला था भव के अभिक्षाप से सविद्ध होकर उन्होंने उस समय मे तप को प्राप्त नहीं किया था ! एकबार भ्रातामी ने जनलोक मे उपपन्न थे ॥१६॥१७॥ तब जनलोक मे सब महर्षिलोग आपस मे एक-दूसरे से बोले और वितत वारुण ऋतु मे महाभाग बोले ॥१८॥ हम सब वाक्षुष मनु के अन्तर मे प्रसूयमान होते है । सब पितामह के भ्रातामज हैं । इससे श्रेय होगा ॥१९॥ स्वायम्भुव अन्तर मे सात के लिये वे शिव के द्वारा अभिक्षप्त हुए वे पुन यहाँ जनलोके से दिव को गये हमों ने जन्म लिया था ॥२०॥ यज्ञमे वरुण के शरीर को धारण करने वाले महान् देव प्रजा की इच्छा से पहिले अग्नि मे शुक्रका हवन करते हुए ब्रह्मा मे पूष मे ऋषिलोग उत्पन्न हुए थे । यह हमारा द्वितीय श्रुत है ॥२१॥

भृगुरङ्गिरा मरीचि पुलस्त्य पुलह ऋतु ।
 अत्रिश्च वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मण मुता ॥२२॥
 तथास्य वितते यज्ञ दत्ता सर्वे समापता ।
 यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥२३॥
 मूर्तिमति च सामानि यजूंषि च सहस्रश ।

पुनरवे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ।
 वासुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभु ॥२६॥
 द्वितीयन्तु तत शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभु ।
 प्रङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि सहितानि ततोऽङ्गिरा ॥४०॥
 सम्भूति तस्य ता दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् ।
 रेतोधास्तुम्यमेवाह द्वितीयोऽय ममास्त्विति ॥४१॥
 एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पति ।
 तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति न श्रुतम् ॥४२॥

उसमें शुक्र के सुत होने पर इसके अनन्तर महर्षिगण प्रादुर्भूत हुए थे जो शरीर से ज्वलत थे और वे सात प्रत्यक्ष गुणों से युक्त थे ॥३६॥ अग्नि में एक बार शुक के हृत किये जाने पर ज्वाला से कवि निमृत् हुए । ज्वाला का भेदन कर उसकी निकला हुआ ब्रह्मा ने देखा और तू भृगु है ऐसा कहा इसीसे यह भृगु हुए हैं ॥३७॥ महादेव ने उसे इस प्रकार से उत्पन्न होता हुआ देखकर ब्रह्माजी से कहा हे प्रभो ! पुत्र की कामना वाले दीक्षित मेरा यह है जो यह भृगुदेव उत्पन्न हुआ है यह मेरा पुत्र होजावे ॥३८॥ ब्रह्माजी न—ऐसा ही होवे—इस तरह से अनुज्ञा प्राप्त होजाने वाले महादेव ने भृगु को अपना पुत्र मान लिया था । इससे वासुण भृगु हुए और उनकी सन्तति प्रभु हैं ॥३९॥ इसके अनन्तर प्रभु ने द्वितीय शुक को अङ्गारों में डाला था । अङ्गारों में अङ्गिर-प्रङ्ग सहित फिर उससे अङ्गिरा हुआ । उसकी इस प्रकार की सम्भूति को देखकर अग्नि ने ब्रह्माजी से कहा मैं तुम्हारे लिये ही रेतोषा हुआ हूँ । यह दूसरा मेरा होजावे ॥४०॥४१॥ ऐसाही होवे—इस प्रकार से वह सदसस्पति ब्रह्मा के द्वारा समनुज्ञात होगये थे । इससे अङ्गिरस आग्नेय हुए ऐसा हमने श्रुत किया है ॥४२॥

पट्कृत्यस्तु पुन शुक्र ब्रह्मणा लोचकारिणा ।
 हृत समभवस्तत्र पद् ब्रह्माण इति श्रुति ॥४३॥
 मरीचि प्रथमस्तत्र मरीचिम्य समुत्थित ।
 अतो तस्मिन् सुतो जज्ञे यतस्तस्मात्स वै क्रतु ॥४४॥

ग्रह तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रि स कीर्त्यन्ते ।
 केशश्च निशितंभूत पुलस्त्यस्तेन स स्मृत ॥४४॥
 केशोर्लम्बे समुद्भूतस्तस्मात्तु पुनह स्मृत ।
 वसुमध्यात्समृत्पञ्चो वसुमान् वसुधाश्रय ॥४५॥
 वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञं प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि ।
 इत्येते ब्रह्मण पुना मानसाः यण्महर्षयः ॥४७॥
 लोकस्य सन्तानकरास्तैरिमा वर्द्धिता प्रजा ।
 प्रजापतय इत्येव पठ्यन्ते ब्रह्मण सुता ॥४८॥
 अपरे पितरो नाम एतरेव महर्षिभि ।
 उत्पादिता ऋषिगणा सप्त लोकेषु विभृताः ॥४९॥

लोक के पारण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा शुक के छै भाग कर हवन
 करते पर वही छै ब्रह्मा हुए थे ऐसी स्तुति है ॥४३॥ उनमें मरीचि प्रथम है जो
 मरीचियो से समुत्पन्न हुए हैं । उस कंतु से सुन उत्पन्न हुआ इसीलिए वह कंतु
 नाम धामे हुए थे ॥४४॥ मैं तीसरा हूँ इस धर्म वाला इसीसे वह भक्ति कहा
 जाता है । निशित केशा से हुआ इससे वह पुलस्त्य कहा गया है ॥४५॥ सन्ने
 केशो से समुद्भूत हुआ था इससे वह पुनह-इय नाम से कहा गया है । वसु के
 मध्य से उत्पन्न हुआ इससे वसुधा का आश्रय वाला वसुमान् हुआ था ॥४६॥
 ब्रह्मवादी सत्त्वज्ञ ने वसिष्ठ ऐसा कहा है । शनै ये ब्रह्मा के छै मानस महर्षि
 उत्पन्न हुए थे ॥४७॥ ये इस लोका के सन्तति के करने वाले थे और उनके द्वारा
 ही यह वर्द्धित हुई है । ये ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति इस प्रकार से भी पढ़े जाया
 करते हैं ॥४८॥ दूसरे पितर भी इन्हीं महर्षियों के द्वारा उत्पन्नित है जो मातृ
 लोको में विभृत ऋषिगण हैं ॥४९॥

मारीचा भार्गवाश्चैव तयैवाङ्गिरसोऽपरे ।
 पोलस्त्या पोलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विभृता ।
 आनेयाश्च गणा प्रोक्ता पितृणां लोकविभृता ॥५०॥
 एते समासतरतात पुरेव तु भुणास्त्रय ।
 अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विभृता ॥५१॥

तेषा राजा यमो देवो यमैर्विहितवल्मपा ।
 अगरे प्रजाना पतयस्ताञ्छुष्वगस्तन्निता ॥१२॥
 कर्दम कदमप दोषो विक्रान्त सुश्रुवास्तया ।
 बहुपुत्र कुमारश्च विवस्यान् स शुचिधवा ॥१३॥
 प्रचेतसोऽरिष्टनेमिवंहुनश्च प्रजापति ।
 इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वरा ॥१४॥
 कुशोच्चया बालसित्या सम्भूता परमर्षय ।
 मनोजवा सर्वगता सार्वभौमाश्च तेऽभवन् ॥१५॥
 जाता भस्मव्यपोहिन्या ब्रह्मपिंगणसम्भता ।
 वैजानसा मुनिगणास्तप श्रुतपरायणा ॥१६॥
 श्रोतोम्यस्तस्य श्रोतपद्मावदिवनो रूपसम्भिता ।
 विदुर्जग्माक्षरजसो विमला नेत्रसम्भवा ॥१७॥
 ज्येष्ठा प्रजाना पतय श्रोतोम्यस्तस्य जज्ञिरे ।
 श्रुपयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवा ५८

मारोच-भार्गव-माङ्गिर-गौतम-गौतम-वाशिष्ठ और प्राण्य ये हुए
 सोनो मे प्रतिष्ठ गिबरो मे कहे गये हैं ॥१०॥ हे तात । ये सबैय ते पहिले ही
 सोन गुण ये अपूर्व-ब्रवात और विधत ऋषिदिमन्त ये बहे जाने हैं उनका राजा
 देवयम है । यमा के द्वारा विहित वल्मप दूमरे प्रजापति के पति होते हैं उनको
 अब अतन्द्रित होकर सुनो मैं कहता हूँ इसलिये तुम्हें सुनना चाहिये यह भावार्थ
 है ॥११॥१२॥ कर्दम-कदमप-दोष-विक्रान्त-सुश्रुवा-बहुपुत्र-कुमार-विवस्यान्-
 शुचिधवा-प्रचेतस-अरिष्टनेमि-बहुन और प्रजापति एवमादि तथा प्राण्य भी बहुत
 मे प्रजेभर होते हैं ॥१३॥१४॥ कुशोच्चय-बालसित्य परमर्षि उत्पन्न हुए तथा
 मनोजव-सर्वगत और सार्वभौम वे हुए हैं ॥१५॥ ब्रह्मपिंगण सम्भत तप और
 धृत मे परामण वैजानस मुनिगण भस्मव्यपोहिनी मे उत्पन्न हुए हैं ॥१६॥
 उगरे सोनो मे रूप सम्भित अधिनीकुमार उत्पन्न हुए । उगरे श्रोतो से विदुर्ज-
 ग्माक्षर जग-विमत-नेत्र सम्भव-ज्येष्ठा प्रजापति के पनि उत्पन्न हुए । तथा स्वेदमन्त
 से उद्भव जाने श्रुपि रोम रूपों से उत्पन्न हुए ॥१७॥१८॥

दारुणा हि स्ते मासा निर्वाणा पक्षसन्धयः ।
 चत्सरा ये स्वहोरात्रा पित्रं ज्योतिश्च दारुणम् ॥१६८॥
 रौद्र लोहितमित्याहुर्लोहित कमक स्मृतम् ।
 तन्मंत्रमिति विज्ञेय धूमश्च पद्मवः स्मृता ॥१६९॥
 येऽर्चिषस्तस्य रद्रास्तयादित्या समुद्भवाः ।
 अङ्गारेभ्य समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषा ॥१७०॥
 आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मासमुद्भवः ।
 सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ॥१७१॥
 ब्रह्मा गुरुगुरुस्तत्र विदलं सप्रसीदति ।
 इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजा सर्वाः प्रजेद्वराः ॥१७२॥
 सर्वे प्रजानो पतयः सर्वे चापि तपस्विनः ।
 तत्प्रसादादिमांस्लोकान्धारयेयुरिमा विद्या ॥१७३॥
 द्वन्द्वं सवर्द्धयामास तव तेजोविवर्द्धनम् ।
 देवेषु वेदविद्वांसः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥१७४॥

इन में मास दारुण वे, जो निर्वाण हैं वे पक्षों की सन्धियाँ भी, जो
 चारों ओर घहोरात्र, पित्र दारुण ज्योति रौद्र की लोहित कहते हैं लोहित की
 कनक कहा गया है । उन्में मंत्र ऐसा जानना चाहिए और धूम पद्म बहे गये
 हैं ॥१६८-१७०॥ उनको मंत्रियों की वे ३२ तथा आदित्य उत्पन्न हुए । अङ्गारों में
 दिव्य मानुष ज्योतिषों समुत्पन्न हुई ॥१७१॥ आदिमान लोक का ब्रह्मा ब्रह्म से
 समुद्भूत हुआ । यहाँ पर कन्या की उदाहृत करत हुए सर्व कामद ऐसा कहते
 हैं ॥१७२॥ यहाँ देवों के माघ गुरुगुरु ब्रह्म गम्भीर गहरे हैं । वे प्रजेद्वर तमस्त
 प्रजामों की उत्पन्न करेंगे ॥१७३॥ वे सब प्रजामों के रक्षक हैं और वे सब तपस्वी
 हैं । उनमें प्रजापति में वे विद्याएँ इन माओं की पाठ्य करती हैं ॥१७४॥ माओं
 तेज के विवर्द्धन करते हुए द्वन्द्व का सवर्द्धन दिया था । देवों में समस्त राजविगा
 वेद के विद्वान् हैं ॥१७५॥

वेदमन्त्र परा गर्भे प्रजापतिगुणोद्भवाः ।

अनन्त ब्रह्म गत्यस्य तपस्य परम भुवि ॥१७६॥

सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसव प्रभो ।

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचरा ॥६७॥

मरीचिमादित कृत्वा देवाश्च ऋषिभि सह ।

अपत्यानीय सञ्चिन्त्य तेऽपत्यङ्गामयामहे ॥६८॥

तस्मिन् यज्ञ महाभागा देवाश्च ऋषिभि सह ।

एतादृशसमुद्भूता स्थानकालाभिमानिन ॥६९॥

न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमा प्रजा ।

युगादिनिधनाश्चैव स्थापयेयुरिमा प्रजा ॥७०॥

ततोऽब्रवीत्लोकगुरु परमित्यविचारयन् ।

एव देवा विनिश्चित्य मया सृष्टा न सशय ।

भवता वशसम्भूता पुनरेते महर्षय ॥७१॥

तेषां भृगो कीर्तयिष्ये वश पूर्वमहात्मन ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापते ॥७२॥

सब प्रजापति के गुणों से उद्भूत होने वाले देवों के मन्त्रों में परायण । । अनन्त और सत्य ब्रह्म—मू में परम तप ये सब और हम हैं प्रभो । आपका प्रसव है जिनमें ब्रह्म और ब्राह्मण तथा चराचर लोक हैं ॥६६-६७॥ मरीचि गदि लेकर ऋषियों के साथ देवगण यहाँ पर सन्तति की चिन्ता कर उन अपने अपत्य (सन्तान) की कामना की थी ॥६८॥ उस यज्ञ में महान् भाग वाले विता ऋषियों के साथ स्थान और काल के अभिमानों इस वश में समुद्भूत थे ॥६९॥ और उन्हीं रूप से इन प्रजाओं की स्थापना नहीं करनी चाहिए किन्तु युगादि निधन से इनको स्थापित करो ॥७०॥ इसके अनन्तर लोक गुरु से विचार न करते हुए कहा—मैंने इस प्रकार ॥१॥ विनिश्चय करके देवताओं को सृष्ट किया है इसमें सशय नहीं है । फिर ये महर्षिगण सबके वश में सम्भूत हुए हैं ॥७१॥ उनमें से महात्मा भृगु के वश को पहिले बतलाऊँगा जो कि प्रथम प्रजापति है इसे विस्तारानुपूर्व से कहूँगा ॥७२॥

भार्या भृगोरप्रतिभे उत्तमेऽभिजने शुभे ।

हिरण्यकशिपो वन्या दिव्या नाम परिश्रुता ।

पुनोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वर वर्णिनी ॥७३॥

भृगोस्त्वजनयद्विद्या काव्य वेदविदा वरम् ।
 देवामुराणामाचार्यं शुक्रं क्विसुतं ब्रह्मम् ॥७४॥
 स शुक्रश्चोशना स्यात् स्मृत काव्योऽपि नामत ।
 पितृणा मानसी कन्या सोमपाना यशस्विनी ।
 शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजज्ञे चतुर सुतान् ॥७५॥
 ब्राह्मण तेजसा युक्तं स जातो ब्रह्मवित्तम ।
 तस्यामेव तु चत्वार पुत्रा शुक्रस्य जज्ञिरे ॥७६॥
 त्वष्टा बरुनी द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तादुभौ ।
 ते तदादित्यसङ्काशा ब्रह्म कल्पा प्रभावत ॥७७॥
 रञ्जन पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहद्गिरा ।
 बह्विषा सुता ह्येते ब्रह्मिष्ठा सुरयाजका ॥७८॥
 इज्याधर्मविनाशार्थं मनु मेत्याभ्ययोजयन् ।
 निरस्थमानं वै धर्मं दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत् ॥७९॥
 एतरेव तु काम त्वा प्रापयिष्यामि याजनम् ।
 श्वत्सेन्द्रस्य तु तद्वानय तस्माद् देशादपाक्रमन् ॥८०॥

भृगु की भार्या हिरण्यकशिपु के उत्तम-शुक्र-अग्रिम अभिजात मे पिध्या
 इस नाम से परिश्रुत होने वाली कन्या से वेदों के शास्त्राग्रे से परमभेद काव्य
 को उत्पन्न किया था जो कि देवामुरो के आचार्य से और क्विसुत शुक्र ब्रह्म
 है ॥७४॥ वह शुक्र उशना इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और नाम से काव्य भी
 कहा गया है । सी मय पितृणु की याचनी यशस्विनी कन्या जो कि शुक्र की
 अङ्गी नाम वाली भार्या थी उसने चार पुत्र उत्पन्न किये थे ॥७५॥ ब्रह्म तेज से
 युक्त वह ब्रह्मवेत्ताग्रे से श्रेष्ठ वह उत्पन्न हुआ था । शुक्र के चार पुत्र उभौ से
 हुए हैं ॥७६॥ त्वष्टा-बरुनी हो से और शण्डा तथा मर्क ये दोनों उत्पन्न
 हुए । वे उस समय आदित्य से तुल्य और प्रभाव से ब्रह्मा के ही तुल्य थे ॥७७॥
 रञ्जन-पृथुरश्मि और बृहद्गिरा ये बरुनी के अतिष्ठ और सुरो से यजन करने
 वाले पुत्र थे ॥७८॥ इज्या के धर्म को विनाश करने के लिये मनु के समीप
 जाकर योजना की । इन्द्र ने धर्म को निरस्थमान देमवर मनु से कहा—॥७९॥

इनके द्वारा ही इच्छापूर्वक साजन तुमको प्राप्त करजेंगा । इस इन्द्र के वाक्य को सुनकर उस देश से अपात्रान्त होमये ॥८०॥

तिराभूतेषु तेष्विन्द्रो धर्मपत्नीश्च चेतनाम् ।
 ग्रहेण मोचयित्वा तु ततः सोऽनुसंगार ताम् ॥८१॥
 तत इन्द्रविनाशाय यतमानान् यतीस्तु तान् ।
 तत्रागतान् पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्र प्रहृत्य तु ।
 सुत्वाप देवदेवस्य वेद्यां वै दक्षिणे ततः ॥८२॥
 तेषान्तु भयमाणाः तत्र शालावृक्षं सह ।
 क्षीर्पाणि न्यपतस्तानि खजूं राभ्यभवस्ततः ॥८३॥
 एव वरुणिण पुत्रा इन्द्रेण निहता पुरा ।
 यजन्या देवयानी च शुक्रस्य दुहिताश्भवत् ॥८४॥
 प्रिशिरा बिद्वरुगस्तु त्वष्टु पुत्रोऽभवन्महान् ।
 बिद्वरुपानुजश्चापि बिद्वरुकर्मा यम स्मृत ॥८५॥
 भृगोस्तु भृगो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजाः ।
 देव्या तान्मुपुवे सर्वान्वाव्यश्चैवात्मजान्प्रभु ॥८६॥
 भुवनो भावनश्चैव प्रत्यश्चान्यायतस्तथा ।
 मनु श्रयाश्च मूर्धा च व्यजयो व्यश्रुपश्च यः ।
 प्रसवश्चाप्यजश्चैव द्वादशोऽधिपति स्मृत ॥८७॥
 इत्येते भृगवो देवा स्मृता द्वादश याजिराः ।
 पीताम्बजनयत्पुत्रं ब्रह्मिष्ठं वसिनं विभुम् ॥८८॥
 व्याधितं सोऽष्टमं भासि गर्भंऋरेण कर्मणा ।
 च्यवनान्च्यवनासोऽथ चेतनस्तु प्रचेतमः ।
 प्राचेतसाञ्च्यवनकोधादप्यानं पुण्यादजः ॥८९॥
 जनयामास पुत्री द्वौ सुरन्यायाश्च भार्गवः ।
 प्रात्मवान् दधीनञ्च सापुत्रो मापुत्रमनी ॥९०॥

उत्ते निरोधून हो जान पर इन्द्र ने धर्म की पत्नी चेतना को ग्रह से पृथक्कर इनके परदार बढ़ उगवा दी धनुमण्डल करने लगा था ॥८१॥ इनके

पश्चात् इन्द्र के विनाश करने के लिये यत्न करते हुए उन पत्थरों को वहाँ भाँसे हुए कुशों को पुन देसकर इन्द्र उनका हनन कर देवे । फिर दक्षिण में देवदेव को वेदी में तो गया था ॥८२॥ घाता वृत्तों के साथ गायें हुए उनसे वहाँ पर शीपें गिर गये थे जो कि फिर मरूँद होगये थे ॥८३॥ इस प्रकार से पहिले बत्ती के पुत्र इन्द्र के द्वारा मारे गये थे । यज्ञनी में देश्यानी मुक्त की वेदी हुई थी ॥८४॥ स्वर्ण के शिशिरा और विश्वरूप महात् पुत्र उत्पन्न हुआ । विश्वरूप का अनुज भी विश्वकर्मात्म्य कहा गया है ॥८५॥ मृगु के भृगव देव बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे । प्रभु काश्य ने उन समस्त पुत्रों को देवी में उत्पन्न किया था ॥८६॥ पुवन-भावन-अय-मायायन-अनुभवा-मूर्द्धा-अपजय-आधुप-प्रसव-प्रज और बारहवीं यपिपति कहा गया है ॥८७॥ ये छाने बारह वासिक भृगव देव कहे गये हैं । पोतोमी ने वृद्धिष्ठ-वृष्टी-विभु पुत्र को उत्पन्न किया था ॥८८॥ गर्भ मूर कर्म से वह अष्टम मास में व्याधि से मुक्त हुआ था । व्यवन से व्यवनास और प्रवेणा से चेतन-प्राचेत्यस व्यवन कोय से पुरय से प्रज ने शम्बा को इस प्रकार भार्गव ने सुकन्या में दो पुत्रों को उत्पन्न किया था जोकि आत्मवान और दधीच थे दोनों बहुत ही शत्रु सम्पत् हुए थे ॥८९-९०॥

सारस्वत सरस्वत्या दधीचाध्वोपपद्यते ।
 रची पत्नी महाभागा आत्मवानस्य नाहुपी ॥९१॥
 तस्य ऊर्वोऽर्धं पिबंते ऊरु मित्वा महायशाः ।
 भौर्वस्यासीदचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभः ॥९२॥
 जमदग्निर्ऋचोक्तस्य सत्यवत्या व्यजायत ।
 भृगोरच रुचिपर्याये रोद्रवैष्णवयोस्तथा ॥९३॥
 जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ।
 रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम् ।
 ग्रहाक्षत्रमय राम सुपुत्रेऽमिततेजसम् ॥९४॥
 भौर्वस्यासीत्पुत्रशत जमदग्निगुरागेमम् ।
 तेपा पुत्रसहस्राणि भार्गवाणां परस्परात् ॥९५॥

श्रुप्यन्तरेषु दी वाह्या वह्यो भार्गवा स्मृताः ।
 वत्सो विश्वोऽश्विपेणश्च पाण्डः पथ्य सशोभव ।
 गोत्रेण सप्तमा ह्येते पदा ज्ञेयास्तु भार्गवाः ॥६६॥
 शृणुताङ्गिरसो वनमग्ने पुत्रस्य धीमत ।
 यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजाः सगीतमाः ।
 देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विपुमन्तो महीजसः ॥६७॥

दधीच से सरस्वती में सारस्वत पुत्र उत्पन्न हुआ है । धामवान की महान् भाग वाली नरूप की पुत्री रवि पत्नी हुई थी ॥६६॥ महान् यश वाले ऋषि ने उसके ऊरुओं का भेदन करके ऊरुओं में धीवँ ऋषीक दीप्त अग्नि की प्रभा के गहन हुआ था ॥६७॥ ऋषीक के सरस्वती में जमदग्नि उत्पन्न हुए । उसी प्रकार ते शीघ्र वैष्णवों के रवि पर्याय में शृगु के हुए ॥६८॥ वैष्णव अग्नि के जमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए । जमदग्नि में रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रम वाले ब्रह्म और क्षत्र में पूर्ण अमिष्ठ तेज वाले राम (परशुराम) को उत्पन्न किया था ॥६९॥ धीवँके जमदग्नि से वह्नि होने वाले सो पुत्र हुए थे उन भार्गवों के प्रापस में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥७०॥ श्रुप्यन्तरी में बहुत से वाह्य य वे भार्गव रहे गये हैं । वत्स-विश्व-अश्विपेण-पाण्ड-पथ्य-तशीनक गोत्र में ये भार्गव सप्तमा पक्ष जानने के योग्य होने हैं ॥७१॥ अब अग्नि के भीमान् पुत्र अङ्गिरस के वन का श्रवण करो जिसके वन में भगीतम भारद्वाज उत्पन्न हुए थे । इपुमान् महान् ओत्र वाले अङ्गिरस देव मुख्य थे ॥७२॥

सुरुपा चैव भारीचो कार्दमी च तथा स्वराट् ।
 पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्गा भववर्षण ।
 इत्येताङ्गिरस पत्न्यस्तासु वदयामि सन्ततिम् ॥७३॥
 अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाता कुलोद्बहा ।
 उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ॥७४॥
 बृहस्पति सुरुपाया गीतम सुपुत्रे स्वराट् ।
 अवन्ध्य वामदेवश्च उत्थयमुशिजन्तथा ॥७५॥

विष्णु पुत्रस्तु पथ्याया सवर्त्तंश्चैव मानस ।
 विचित्तश्च तथायस्य शरद्वाष्पाप्युत्थज ॥१०१॥
 अक्षिजो दीर्घतमा बृहदुत्थो वागदेवज ।
 विष्णो पुत्र सुयन्वान ऋपमश्च सुयन्वन ॥१०२॥
 रथकारा स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुता ।
 बृहस्पतेभरद्वाजो विश्वत सुमहायज्ञा ॥१०३॥
 अङ्गिरसस्तु सवर्त्तो देवानङ्गिरस ऋणु ।
 बृहस्पतेर्षर्वायसो देवा ह्यङ्गिरस स्मृता ॥१०४॥
 भीरसाङ्गिरस पुत्रा मुरुषाया विजजिरे ।
 भीरार्यायुर्दंमुर्दंको दधं प्राणस्तथैव च ।
 हविष्माश्च हविष्णुश्च ऋतु सत्यश्च ते दश ॥१०५॥
 अयस्यस्तु उत्तम्यश्च वामदेवस्तथोणिज ।
 भारद्वाजा शक्रतिका गार्म्यकाश्वरयीतरा ॥१०६॥
 मुद्गला विष्णुबृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा ।
 तथा भाक्षा भरद्वाजा आर्येभा किम्भयास्तथा ॥१०७॥
 एते ह्यङ्गिरस पक्षा विजया दश पञ्च च ।
 ऋष्यन्तरेषु चैवाह्या यद्वोऽङ्गिरस स्मृता ॥१०८॥
 मुरुषा-भारीकी-कादमी तथा स्वराट्-पथ्या-मालवी भीर कन्धा री

तीन अर्षर्वा की भार्या थी । ये इनकी अगिरस की भार्या थी उनमें जो सन्नि
 हुई उसको मैं प्रथम बतलाता हूँ ॥१६८॥ अर्षर्वा के दाम्याद कुसोद्वह उनमें उत्पन्न
 हुए थे और भावित भारमा वाला के बहान् तथा स उत्पन्न हुए थे ॥१६९॥ मुरुषा
 में बृहस्पति ने गौवम ने स्वराट् प्रभूत किया । उसी प्रकार से श्वन्ध-वामदेव
 उत्तम्य और उदिज को उत्पन्न किया था ॥१७०॥ पथ्या में विष्णु पुत्र हुआ
 सवर्त्त मानस हुआ । विचित्त-तथा मस्य-दारद्वाज-उतमाज-गणिज-दीर्घतमा-
 बृहदुत्थ ये वामदेव से जन्म लेने वाले थे । विष्णु के पुत्र सुयन्वान-ऋपम और
 सुयन्वन थे ॥१७१॥१७२॥ वे देव रथकार कहे गये हैं जो वि ऋषि परिश्रुत
 थे । बृहस्पति से अङ्गिरस यज्ञ याना भरद्वाज विश्वत हुआ था ॥१७३॥ अङ्गिरस

मे सम्बन्तं दृष्ट्वा श्रवणं श्रुत्वा देवो का श्रवणं करो । बृहस्पति के जो छोटे देव हैं वे ही अग्निरस बहे गये हैं ॥१०४॥ अङ्गिरा के और पुत्र सुरुषा नाम वाली मे उत्पन्न हुए थे । औदार्यायु-दनु-दक्ष-दभं-शरण-हविष्मान्-हविष्णु-क्रतु और मरुत वे दक्ष थे ॥१०५॥ अयस्य-उतथ्य-वामदेव-उजिज-भारद्वाज-शाकृ-तिव-गायं-काव्य-रषीतर-मुद्गल-विष्णु बृद्धहरित-वायव-भाक्ष-भरद्वाज-आपंभ-विम्भय ये अग्निरस दक्ष और पाँच पक्ष जानने के योग्य होते हैं । ऋष्यन्तरो मे बहून से बाह्य अग्निरस बहे गये हैं ॥१०६-१०७-१०८॥

मारीच परिवदयामि वशमुत्तमपूरुषम् ।

यस्यान्ववाये सम्भूत जगत्स्यावरजङ्गमम् ॥१०९

मरीचिराश्वरुमे ताभिध्यायन्प्रजेप्सया ।

पुत्र सर्वंगुणोपेत प्रजावान् सुरुचिर्दिति ।

संपूज्यते प्रशस्ताया मनसा आविता प्रभु ॥११०

आहूताश्च तत सर्वा आप समवसत्प्रभु ।

तामु प्रणिहितात्मानमेव सोऽजनयत्प्रभु ॥१११

पुत्रमप्रतिमभ्राम्मारिष्टनेमि प्रजापति ।

पुत्र मरीच मूर्याभि वधीवेशो व्यजीजनत् ॥११२

प्रध्यायन् हि सता वाच पुत्रार्थी सन्निधे स्थित ।

सप्तवर्षमहलाणि तत सोऽप्रतिमोऽभवत् ॥११३

वश्यप सवितुर्पितृन्मतेन स श्रद्धाज सम ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु ग्राह्याणां तेन जायते ॥११४

बन्धानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिता प्रजा ।

अपिवत्स तदा वश्य वश्य मत्तमिहोच्यते ॥११५

हृदचेत्मा हि विज्ञेया व्रताणा वश्य उच्यते ।

वश्य मत्तं स्मृतं विप्रं वश्यपानात् वश्यप ॥११६

अथ मारीच उत्तम पुण्यो वान वन वो वनलाना है जिसके

समस्त श्यावर और जन्म जन्म उत्पन्न दृष्ट्वा था ॥१०६॥ मरीच उत्पन्न हिंदे और प्रजा की इच्छा मे उनके द्वारा ध्यान करते हुए

यदास्य मनसा सृष्टा न व्यवदन्त ता प्रजा ।

अपघ्नाता भगवता महादेवेन धीमता ॥१२७॥

मैथुनेन च भावेन सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।

असिकनी चावहत् पत्नी वीरणस्य प्रजापतेः ॥१२८॥

मुता सुमहता युक्ता तपसा लोकधारिणीम् ।

यया धृतमिदं सर्वं जगत् स्यादवरजङ्गमम् ॥१२९॥

अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकी प्राचेतस प्रति ।

दक्षस्योदहतो भार्यामसिकनी वीरिणी पराम् ॥१३०॥

फिर धीमान् ने अपने प्रापको मनुष्य-उरग-राक्षस देव-असुर-गन्धर्व-दिव्य सहननप्रजा-ईश्वर रूप-धन और तेज से अपने ही तुल्य विभाजित किया था ॥१२४॥ उसी प्रकार से परम मुदित होते हुए अन्य गतिमान् और ध्रुव मानम ही प्राणियों को एक अनेक प्रकार की प्रजाओं का सृजन किया था ॥१२५॥ ऋषियों को-देवों को-गन्धर्वों को-मनुष्य-उरग और राक्षसों को, वक्ष-भूत और पिशाचों को पक्षी-पशु और मृगों को जिस समय इसने मनसे सृजन किया था तो वह प्रजा की वृद्धि नहीं हुई थी । क्योंकि वह प्रजा धीमान् महादेव भगवान् के द्वारा अपघ्नान थी ॥१२७॥ फिर मैथुन के भाव से अनेक प्रकार की प्रजा का सृजन किया था । प्रजापति वीरण की असिकनी पत्नी को सहन किया था ॥१२८॥ प्रजापति वीरण की मुता सुमहान् तपसे युक्त थी और लोकों को धारण करने वाली थी जिसने इस सम्पूर्ण स्यावर और जङ्गम जगत् का धारण किया था ॥१२९॥ परम वीरिणी असिकनी भार्या का उदहन करने वाले दक्ष प्राचेतस के प्रगति ये दो श्लोक हैं जिनको यहाँ पर भी उदाहृत किया जाता है ॥१३०॥

कूपानां नियुतं दक्ष सर्पिणा साभिमानिनाम् ।

नदीगिरिषु सर्ज्जस्ता पृष्ठतोऽन्यगौ प्रभु ॥१३१॥

त दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रोक्तं प्रतिष्ठास्यति वै प्रजा ।

प्रथमात्रं द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापते ॥१३२॥

तथागच्छद्यथाकालं कूपानां नियुते तु स ।

असिकनी वीरिणी यत्र दक्ष प्राचेतसोज्ज्वलत् ॥१३३॥

अथ पुत्रमहस्र स वैरिण्याममितीजसा ।

असिकन्या जनयामास दक्ष प्राचेतस प्रभु ॥१३४

तास्तु दृष्ट्वा महातेजा स विवर्द्धयिषून् प्रजा ।

देवपि प्रियसवादो नारदो ब्रह्मण. सुत. ।

नाशाय वचन तेषा दापायैवात्मनोऽब्रवीत् ॥१३५

य. स वै प्रोच्यते विप्र. कश्यपस्येति कृत्रिम ।

दक्षणापभयाद्भीतो ब्रह्मपिस्तेन कर्मणा ॥१३६

य कश्यपनुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत ।

मानस. कश्यपस्येह दक्षणापभयात् पुन १३७

तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीय मानसोऽभवत् ।

सहि पूर्वसमुत्पन्नो नारद परमेष्ठिन ॥१३८

येन दक्षस्य पुत्रास्ते ह्ययंश्वा इति विश्रुता ।

निन्दार्थं नाशिता सर्वे विनष्टाश्च न सशय १३९

तस्योद्यतस्तदा दक्ष क्रुद्धो नाशाय वो प्रभु ।

ब्रह्मर्षिन् वं पुरस्कृत्य याचित परमेष्ठिना ॥१४०

राभिमानो सभी बूधो का एक निमुन नदी घोर पर्वतो मे सर्जन करते हुए प्रभु दक्षने उनके पीछे अनुगमन किया था ॥१३१॥ उसको देखकर श्रुपियो ने कहा प्रजापति को प्रनितित करेगा । यहाँ प्रजापति दक्षकी प्रथमा है, द्वितीया तो यथावात उमी प्रकार मे बूधो के निमुन मे खसी गई उन प्राचेतस दक्ष ने जहाँ पर बैरिणी अगिकनी का उद्धहन किया था ॥१३२॥१३३॥ इसके अनन्तर उग प्राचेतस दक्ष ने बैरिणी अगिकनी मे अपरिमित धोज मे एक महम पुत्र उत्पन्न किए थे ॥१३४॥ महान् तेजवाले जमन प्रजापति के बडाने की इच्छा वाले उनको देगकर ब्रह्मा के पुत्र दक्षपि प्रिय मग्बाद वाले नारद ने उनके नाम के निमे ही वचन बोला ॥१३५॥ ओ वह कश्यप का कृत्रिम मित्र है यह कहा जाता है । ब्रह्मपि उम कर्म मे दक्ष के शाप के भय से दग्गया ॥१३६॥ इसके अनन्तर जो कश्यप मुनका परमेष्ठी उत्पन्न हुआ था दक्ष के शाप के भय से फिर यहाँ कश्यप का मानस पुत्र हुआ ॥१३७॥ इनमे वह कश्यप का द्वितीय मानस हुआ

था । वह परमेशी का नारद पूर्व में समुत्पन्न हुआ ॥१३८॥ जिससे दश के वे पुत्र हयंश्व इम नगर से प्रसिद्ध हुए थे । निन्दा के लिये नाश कर दिये गये थे और सभी विनष्ट होगये इसमें सन्देह नहीं है ॥१३९॥ उग समय प्रभु दश क्रुद्ध होकर उनके नामों के लिये उद्यत होगये थे । तब परमेशी के द्वारा ब्रह्मर्षियों को प्राप्ति करके उसमें याचना की गई थी ॥१४०॥

ततोऽभिसन्धित चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना ।

कन्याया नारदो महा तव पुत्रो भवत्विति ॥१४१॥

ततो दक्ष सुता प्रादात् प्रिया वै परमेष्ठिने ।

तस्मात् स नारदो जज्ञे भूय शान्तो भयादपि ॥१४२॥

तदुपश्रुत्य विप्रास्ते जातरीतूहलाः पुन ।

अपृच्छन् वदता श्रेष्ठ सूत तन्वार्थदर्शितम् ॥१४३॥

कथं विनाशिता पुत्रा नारदेन महात्मना ।

प्रजापतिसुतास्ते वै प्रजा प्राचेतसात्मजा ॥१४४॥

स तथ्यं वचनं श्रुत्वा जिज्ञासासम्भवं शुभम् ।

प्रोवाच भगुर वाक्यं तेषां सर्वगुणान्वितम् ॥१४५॥

दक्षपुत्राश्च हयंश्वा विवर्द्धयिषव प्रजा ।

समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥१४६॥

बालिश्वा वत यूयं वै न प्रजानीथ भूतसम् ।

अन्तमूर्द्धमघश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजा ॥१४७॥

किं प्रमाणान्तु मेदिन्या स्रष्टव्यानि तपैव च ।

अविज्ञायेह स्रष्टव्यमन्यथा किं नु स्रक्ष्यथ ।

अल्पं वापि बहुर्वापि तत्र दोषस्तु दृश्यते ॥१४८॥

इसके पश्चात् दक्ष ने परमेशी के साथ अभिसन्धित किया कन्या में नारद मेरे लिये तुम्हारा पुत्र होगावे ॥१४१॥ इसके अनन्तर दक्ष ने प्यारी पुत्री को परमेशी के लिये दे दिया उसमें वह नारद ऋषि फिर भय से शान्त उत्पन्न हुए ॥१४२॥ उन विप्रों ने यह सुनकर कौतूहल वाले होते हुए बोलने वालों में घेष्ठ और तत्त्वार्थ को देखने वाले मूलजी से पूछा ॥१४३॥ ऋषियों ने कहा—महान्

आत्मा जाने नारद ने पुत्रों को कैसे विनाशित किया था वे तो सब प्रजापति के पुत्र और प्राचेतस के भात्मज थे ॥१४४॥ उसने शुभ और जानने की इच्छा से होने वाले ऋषियों के तथ्य वचनों को सुनकर उनको मधुर समस्त गुणों से भन्वित वाक्य बोले ॥१४५॥ प्रजा के विवर्द्धन करने की इच्छा वाले हर्यश्च नाम वाले दश के पुत्र जो महान् वीर्य वाले वहाँ आगये और नारद ने उनमें कहा—॥१४६॥ तुम सब महामूर्ख हो अन्त-ऊर्द्ध और अघस्तस अर्थात् नीचे-भाग इस भूतल को नहीं जानते हो फिर तुम कैसे प्रजा का सृजन करोगे ? ॥१४७॥ इस मेदिनी का क्या प्रमाण है तथा क्या प्रमाण वाले सृजन करने के योग्य हैं । यहाँ पर यह न जानकर अन्धसा सृजन करना चाहिये, क्या तुम सृजन करोगे ? धरूप है या बहुत है, वहाँ पर दोष स्पष्ट दिखलाई देना है ॥१४८॥

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
 वायुन्तु समनुप्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ॥१४९॥
 अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्तो वायुमिधिता ।
 एव वायुपथं प्राप्य भ्रमन्ते ते महपथ ॥१५०॥
 स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु दश प्राचेतस पुन ।
 वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभु ॥१५१॥
 प्रजा विवर्द्धयिष्व शबलाश्वा पुनस्तु ते ।
 पूर्वमुक्तं वचस्तत्र आविता नारदेन ह ॥१५२॥
 तच्छ्रुत्वा वचनं सर्वे कुमारस्ते महीजस ।
 अग्न्योऽग्न्यभूवुस्ते सर्वे सम्यगाह महानृषि ।
 भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशय ॥१५३॥
 शात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं लक्ष्यामहे प्रजा ।
 तेषां तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्वतोदिशम् ।
 अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापागा ॥१५४॥
 ततः प्रभृतिं वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रत ।
 प्रयातो नश्यति तथा तत्र कार्यं विजानता ॥१५५॥

उन लोगो ने नारद का यह वचन सुना और उसे सुनकर वे सब दिशाओं में चले गये । वायु को समनुप्राप्त कर वे पराभव को प्राप्त हुए ॥१५१॥ वे वायु में मिश्रित होने हुए आज तरु भी भ्रमण करते हुए ही हैं और नहीं लौट पा रहे हैं । इस प्रकार से वायु के पथ को प्राप्त होकर वे महर्षिगण भ्रमण किया करते हैं ॥१५०॥ अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने फिर वैरिणी पत्नी में ही उस प्रभु ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१५१॥ प्रजा के विवर्जन करने की इच्छा वाले वे श्वलाश्व फिर नारद के द्वारा वहाँ पर वह पूर्व में वहा हुआ वचन भुनाये गये थे ॥१५२॥ महान् भोज वाले वे सब कुमारों ने उस वचन को सुनकर आपस में एक दूसरे से बोले महर्षि ने ठीक ही कहा है । भाइयों की पत्नी अर्थात् मार्ग को जानना चाहिए, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१५३॥ पृथ्वी का प्रमाण जानकर प्रजा का सुख पूर्वक मृगन करेंगे । वे सब भी उसी मार्ग से सम्पूर्ण दिशाओं की ओर चले गये थे । समुद्रों में गई हुई नदियों की भाँति वे भी अभी तक नहीं लौट रहे हैं ॥१५४॥ तभी मैं लेकर भाई-भाई के अभ्येषण करने में रत होता हुआ प्रयाण करता था और वहाँ नष्ट हो जाता है क्योंकि जब प्रकार से कार्य की जानकारी नहीं रहती थी ॥१५५॥

नष्टेषु श्वलाश्वेषु दक्ष क्रुद्धोऽभवद्विभु ।

नारद नाशमेहीति गर्भवास वसेति च ॥१५६॥

तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मनु पुरा किल ।

पट्टिकन्याऽसृजद्दक्षो वैरिष्यामेव विश्रुता ॥१५७॥

तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यप प्रभुः ।

धर्मः सोमस्तु भगवास्तथैवान्ये महर्षय ॥१५८॥

इमा विमृष्टि दक्षस्य कृत्स्ना यो वेद तत्त्वत ।

आयुष्मान् कीर्त्तिमान् धन्यः प्रजावाञ्च भवत्युत ॥१५९॥

श्वलाश्व पुत्रों के नष्ट होजाने पर विभु दक्ष बहुत ही अधिक क्रोधित हुआ था और 'नारद नाश को प्राप्त होजा तथा गर्भ के आवास अर्थात् गर्भ में निवास प्राप्त कर' ऐसा शाप दे दिया था ॥१५६॥ पहिले समय में उस प्रकार

से उन महान् आत्मा वालों के नष्ट हो जाने पर दय न बैरिणी पत्नी में ही प्रसिद्ध साठ बन्ध्याओं का मृज्जन किया था ॥१५७॥ उन समस्त बन्ध्याओं ने पत्नी के रूप में प्राप्त होने के लिये प्रभु कश्यप को स्वीकार किया था । भगवान् धर्म-भोग और उन्नी प्रकार से धन्य महर्षिगण थे ॥१५८॥ जो कोई पुरुष दक्ष प्रजापति की इस विशेष रूप वाली मृटि को सम्पूर्ण रूप से तत्त्वपूर्वक जानता है वह परमानु वाला-जीतिवाला और प्रजावाला धन्य होता है ॥१५९॥

प्रकरण ४८--ऋषि वंशानु कीर्तन

एष प्रजामु सृष्टामु कश्यपेन महात्मना ।
प्रतिष्ठितामु सर्वामु स्थावरामु चरासु च ॥१॥
अभिषिच्याधिपत्येषु तेषां मुख्यं प्रजापति ।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥२॥
द्विजातीनां वीरुधाश्च नक्षत्राणां ग्रहे सह ।
यज्ञानां तपमाञ्छंश्च भोगं राज्येऽभ्यपेक्षयत् ॥३॥
वृद्धस्पतिं तु विश्वेना ददावर्द्धिरना पतिम् ।
भृगुणामधिपश्चैव काश्यपं राज्येऽभ्यपेक्षयत् ॥४॥
आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम् ।
प्रजापतीनां दक्षश्च मरुतामथ वासवम् ॥५॥
देवतानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम् ।
नारायणं तु साध्वानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥६॥
विप्रचित्तिश्च राजानं दानवानामथादिशत् ।
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञा वैश्रवणं पतिम् ।
यक्षाणां राक्षसानाञ्च पायिबानां घनस्थं च ॥७॥

श्री कृतज्ञी ने कहा—महान् आत्मा वाले कश्यप के द्वारा इस प्रकार से प्रजाओं का मृज्जन करने पर और समस्त स्थावर तथा जङ्गम भजाओं के प्रतिष्ठित किये जाने पर उनके आधिपत्य के स्थान पर उनमें से मुरख को प्रजापति

का अधिपेव करके इसके पश्चात् कम से राज्यो का आदेश करने का उपक्रम किया था ॥१-२॥ द्विजानियो के वीरयो के ब्रह्म और नक्षत्रो के साथ दशो का घोर तपो का राज्य में सोम को अभिषिक्त किया था अर्थात् उक्त सबका अधिपति चन्द्र को बनाया था ॥३॥ अङ्गिरा विश्वेशो का पति बृहस्पति और भृगुओ का अधिप काश्य को राज्य में अभिषिक्त किया था ॥४॥ आदित्यो का विष्णु को—वसुओ के पावक को—प्रजापतियो का दक्ष को और महो का इन्द्र को राज्य में अधिप अभिषिक्त किया था ॥५॥ इसके पश्चात् दैत्यो का राजा शितिनन्दन प्रह्लाद को—साध्यो का अधिप नारायण को—वदो का अधिप वृषभ-ध्वज को बनाया था ॥६॥ दानवो का अधिप शरा विप्रचित्ति को आविष्ट किया था—जलो का स्वामी वदण को और सब राजाओ के राज्य में वैधवण (कुबेर) को पति बनाया था वक्षो और राक्षसो का—पाषिवां का घोर धन का भी अधिप भी कुबेर को ही अभिषिक्त किया था ॥७॥

वदस्वत पितृणाञ्च यम राज्ञेऽभ्यवेचयत् ।

सर्वभूतपिशाचानां गिरिश झूलपाणिनम् ॥८॥

शैलानां हिमवन्तश्च नदीनामथ सागरम् ।

गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे निवरथ तदा ॥९॥

उच्चैः श्वसत्समश्वाणां राजानञ्चाभ्यवेचयत् ।

मृगाणामथ शार्ङ्गल गोवृषञ्च चतुष्पदाम् ॥१०॥

पक्षिणामथ सर्वेषां गरुड पततां वरम् ।

गन्धानां मानुषञ्चैव भूतानामनरीरिणाम् ॥११॥

शब्दाकाशवलानाञ्च वायु बलवतां वरम् ।

सर्वेषां दक्षिणां देय नागानामथ वासुकिम् ॥१२॥

सरीसृपाणां सर्पाणां नागानाञ्चैव तक्षकम् ।

सागराणां नदीनाञ्च मेघानां वपितस्य च ।

आदित्यानामन्यतम पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥१३॥

सर्वाप्सरोगणानाञ्च कामदेव तथैव च ।

ऋतूनामथ मासानामात्तवानां तथैव च ॥१४॥

पक्षाणाञ्च विपक्षाणां मुहूर्तानाञ्च पर्वणाम् ।

कलाकाक्षाप्रमाणानां गते रयनयोस्तथा ।

गणितस्याय यागस्य चक्रे सवत्सरं प्रभुम् ॥१५॥

पितृपण का स्वामी बंस्वन यम का राज्य म अधिर अभिषिक्त किया था । समस्त भूतगणों और पिशाचों का स्वामी गूल पाणि गिरिध को बनाया ॥१॥ शैला का स्वामी हिमाचल को—नदियों का पति सागर को—गंधर्वों का अधिपति उस समय में चित्ररथ को बनाया था ॥६॥ इन्द्रो का राजा उच्चैश्रवा को राजा बनाकर अभिषिक्त किया था । समस्त मृग भर्षान् पशुओं का राजा गार्दूल को और चतुष्पदों का अधिप बोवृष को बनाया था ॥१०॥ समस्त पक्षियों का स्वामी पक्षिया में परमश्रेष्ठ गरुड को बनाया । गन्धों के स्वामी को और बिना शरीर वाले प्राणी शब्द—आकाश और बल इन सबका स्वामी बलवानो म श्रुत वायु का तथा सम्पूर्ण बद्धाधारी जीवों का अधिप दोष को और नाग का स्वामी वासुकि को अभिषिक्त किया था ॥११-१२॥ सरीसृप—नाग और मर्षों का राजा तक्षक को बनाया था । सागरों का—नदियों का—मेघों का—वर्षा का आदित्यो का अवनम पञ्चम को स्वामी अभिषिक्त किया था ॥१३॥ समस्त म मरामा के समुदाय का राजा कामदेव को अभिषिक्त किया था । श्रुतों का—भागों का—आत्तवों का—पणा का—विपणा का—मुहूर्तों का—पर्वों का—कला एवं काष्ठा प्रमाणों का—गति का तथा दोनों अयना का—गणित का और याग का स्वामी सम्बत्सर को बनाया था ॥१३ १४ १५॥

प्रजापतवै रजस पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतम् ।

पुत्र नाम्ना सुनामान राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥१६॥

पश्चिमाया दिशि तथा रजस पुत्रमच्युतम् ।

केतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यपेचयत् ॥१७॥

मनुध्याणामधिपति चक्रे चैव सुत मनुम् ।

तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।

ययाप्रदेगमद्यापि वर्मण परिपाल्यते ॥१८॥

स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः ।
 नृपा ह्येतेऽभिषिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ॥१६॥
 मन्वन्तरेऽध्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्ष्णिवा ।
 एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे पुन ।
 भतीतानागता सर्वे स्मृता मन्वन्तरेऽश्वरा ॥१७॥
 राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमः ।
 वैदवृष्टेन विधिना कृतो राजा प्रतापवान् ॥१८॥
 एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासन्तानकारणान् ।

रजका प्रजापति पूर्व दिशा में बहुत ही प्रसिद्ध सुधामा नाम वाले पुत्रको
 उसने राजा अभिषिक्त किया था । ॥१६॥ पश्चिम दिशा में रजसु के पुत्र अश्वरुत
 को महान् आत्मा वाले केतुमान् को उसने राजा अभिषिक्त किया था ॥१७॥
 और समस्त मनुष्यों का स्वामी मनु पुत्र को बनाया । उसके द्वारा यह समस्त
 सात द्वीपों वाली भूमि और पत्तनो (नगर) के सहित प्रदेशके अनुसार राजनृक धी
 धर्म के साथ परिपालित की जाती है ॥१८॥ स्वायम्भुव यन्त्र ॥ पहिले ये सब
 ब्रह्मा ने अभिषिक्त किये थे । जो मनु होने हैं ये नृप अभिषिच्यन्त किये जाते हैं
 ॥१६॥ इन मन्वन्तरो के भतीत होजाते पर पार्ष्णिवा खने गये थे । फिर अन्य
 मन्वन्तर प्राप्त होने पर अन्य इसी प्रकार से अभिषिक्त किये जाते हैं । भतीत
 तथा भूतगत समस्त मन्वन्तरेऽश्वर कह गये हैं ॥१७॥ इन छेड़ मानवी के द्वारा
 राजसूय में पृथु अभिषिक्त किया गया था जोकि वैदवृष्टे विधि से प्रतापवान्
 राजा बनाया गया है ॥१८॥

पुनरेव महाभाग प्रजाना पतिरीश्वर ॥१९॥
 कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परम तप ।
 पुत्रो गोत्रवरो मह्य भवेतामित्यचिन्तयत् ॥२०॥
 तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मन ।
 ब्रह्मणोऽजो सुतो पश्चान् प्रादुर्भूतो महोजसो ॥२१॥
 यत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
 यत्सारान्निघ्नौ जज्ञे रम्यश्च स महायशाः ॥२२॥

रैम्यस्य रैम्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत ।

च्यवनस्य सुकन्याया सुमेधाः समपद्यत ॥२६॥

निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ।

असितस्यैवपर्णाया ब्रह्मिष्ठ समपद्यत ॥२७॥

शाण्डिल्याना वच श्रुत्वा देवनः मुमहावशा ।

निध्रुवा शाण्डिल्या रैम्यास्तथ पञ्चासु कश्यपा ॥२८॥

वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्तिवमा ॥२९॥

प्रजा की वृद्धि के कारण मे इन पुत्रा को उत्पन्न कराकर पुन प्रमाप्नो के पति महान् भाग वाले—ईश्वर कश्यप कोई मोक्ष की कामना रखते थे, परम तपस्या को धारण किया था और मनम यह स्वरूप मोक्षा था कि दो पुत्र मेरे मोक्ष के बनाने वाले उत्पन्न होजावें ॥२७॥॥२८॥ प्रवृष्ट रूप से ध्यान करने वाले महात्मा कश्यप के पीछे ब्रह्मा क धर्म स्वरूप दा पुत्र महान् भोज वाले प्रादुर्भूत हुए ॥२४॥ वामार और अग्नि व दोनों ही ब्रह्मवादी थे । वामार से निध्रुव उत्पन्न हुआ और महान् धन वाला वह रैम्य हुआ ॥२५॥ रैम्य के जो हुए व रैम्य कहलाये और निध्रुव की सब जानबारी करे । च्यवन की सुकन्या म मुमषा समुत्पन्न हुए ॥२६॥ निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायियों की माता थी । अग्नि की वरपर्णा म ब्रह्मिष्ठ उत्पन्न हुआ ॥२७॥ शाण्डिल्यो के वचन को सुनकर मुन्दर जब महान् यक्षबाने देवल ने निध्रुव—शाण्डिल्य और रैम्य से तीन और पीछे कश्यप और वह प्रभूति दय थे सब देवल की प्रजा थी ॥२८॥॥२९॥

मानसस्य अग्न्यन्तस्तस्य पृथो दम किन् ।

मानसस्तम्य दायादमृगबिन्दुरिति श्रुत ॥३०॥

त्रेतायुगमुमे राजा तृतीये सम्बभूव ह ।

तम्य कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रनिमाभवत् ।

पुलस्तयाय म गजपिस्ता कन्या प्रत्यपादयन् ॥३१॥

अपिरिडविशायान्नु विथवाः समपद्यत ।

तस्य पत्न्यभनयः पु नस्त्यनु नवर्देना ॥३२॥

बृहस्पतेर्वृहत्कीर्तिर्देवाचार्यस्य कीर्त्तिनः ।

वन्या तस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम् ॥३३॥

पुष्पोत्पटाश्च वाषाश्च मुते मात्स्यवत स्थितौ ।

न कसी मानिनः वन्या तातान्तु शृणुत प्रजा ॥३४॥

ज्येष्ठ वैश्वरुण तस्य सुपुत्रे देववर्णिनी ।

दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रुतेन च ।

राक्षसेन च रूपेण चामुरेण बलेन च ॥३५॥

त्रिपाद सुमहाकाय स्थूलशीर्ष महातनुम् ।

अष्टदंष्ट्र हरिच्छमधु शकुबलं विलोहितम् ॥३६॥

ह्रस्वबाहु प्रबाहुश्च पिङ्गल सुविभीषणम् ।

वैवर्तज्ञानसम्पन्न सम्बुद्ध ज्ञानसम्पदा ॥३७॥

एवविध सुत दृष्ट्वा विद्वद्रूपधर तथा ।

पिता हृष्ट्वाग्रकीर्त्तन कुबेरोऽयमिति स्वयम् ॥३८॥

करिष्य मरण मानस उत्तरे दम पुत्र हुआ । उत्तरा दामाद मानस या जोकि वृणविन्दु हम नामने विश्रुत हुआ था ॥३०॥ वृतीय मैता पुत्र के पुत्र म राजा हुआ था । उत्तकी दहविडा थी जोकि रूप म अग्रनिमा थी । उस राजपि ने उस परम सुन्दरी क या को पुनस्तय के सिय देवी थी ॥३१॥ ऋषि पुलस्त्य ने दहविडा म विश्रवा को जन्म दिया । पीररक्ष कुप के बडाव वाली उमकी बार पत्तिदा थी ॥३२॥ देवो के आचार्य बृहस्पति का बृहत्कीर्ति कहा गया है । नाम से देववर्णिनी उमकी कया के साथ उत्तने विवाह किया था ॥३३॥ मात्स्यवाम की पुष्पोत्पटा और वाका दो गुताण थी-मात्री की कंदभी वन्या थी, भर उनकी प्रजाओ का धरण करो ॥३४॥ देव वर्णिनी ने उमके सबसे बड़े वैश्वरुण को उत्पन्न किया जोकि दिव्य विधि और आर्षेण से पूजनया सम्पन्न था । साथ ही उमके राक्षस का रूप था और असुर बल भी था ॥३५॥ तीन पैरो वाल-बहुत बड़े शरीर वाले-स्थूल शीर्ष से युक्त-महान् तनुमे सम्पन्न-आठ दादा वाले-हरी रंग की शमधु से युक्त-शकुबल-त्रिनोहि-छोटी भुजाया वाले-प्रबाहु-पिङ्गल-सुविभीषण-वैवर्त ज्ञान स युक्त तथा ज्ञान की सम्पत्ति ने

उम्मुद इग प्रकार के विवरण की धारणा करने वाले पुष को देखकर पिता ने
बर्हा पर देताने हुए कहा यह तो स्वयं कुबेर है ॥३६॥३७॥३८॥

वृत्ताया विप्रतिपत्तौ शरीर वेम्बुव्यते ।
कुबेरः कुसरोग्रयात्मा तेन च सोऽङ्घ्रिनः ॥३६॥
यस्माद्विधवमोऽपत्य साहस्याद्विभवा इव ।
सस्माद्विप्रवणो नाम नाम्ना तोते भविष्यति ॥३७॥
प्रादुर्भा कुबेरोऽज्जनयद्विभूत नमस्तुभ्यम् ।
रावण मुम्भवशांश्च वन्यां द्रुपदगान्ध्याम् ।
विभीषण चतुर्धास्तावन्वसत्यजनयत्पुत्रान् ॥३८॥
शत्रुवर्गो दनाप्रोवः पिङ्गवो रक्तमूर्द्धव ।
चतुर्धाद्विचनिभुजो महाबायो महाबल ॥३९॥
जात्याश्चननिभो दष्टो मोहिनप्रोव एव च ।
गजमेनो जययुक्तो स्पेण च गवेन च ॥४०॥
गम्यमुद्रिहं डनतू राक्षसैरेव रावण ।
निगर्गाहारण धूरो रावणाद्रावणान्मुगः ॥४१॥
हिरण्यवनिगुम्भामोह्य गजानां गुरजन्मनि ।
चतुर्धुनानि गजानां जयोदय ग राक्षस ॥४२॥

शूर था, रावण करने से ही वह रावण कहलाया है ॥४२॥४३॥४४॥ तेरह वह राक्षस है ॥४५॥

ता पञ्चवोट्यो वर्षाणामास्याता सहस्रधया द्विर्ज ।

नियुतान्येरुपष्टिश्च सहस्रधाविद्भिरदाहता ॥४६॥

पष्टिगतसहस्राणि वर्षाणान्तु स रावणः ।

देवताना ऋषीणाञ्च घोर कृत्वा प्रजागरम् ॥४७॥

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपस क्षयात् ।

राम दाशरथिं प्राप्य सगण क्षयमोयिवान् ॥४८॥

महोदय प्रहस्तश्च महापाशुखरस्तथा ।

पुष्पोत्कटाया पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥४९॥

त्रिशिरा द्रूपणश्चैव विद्युजिह्वश्च राक्षसः ।

कन्या ह्यसतिका चैव वाकाया प्रसवा स्मृता ॥५०॥

इत्येते क्रूरवर्माणा पीलस्त्या राक्षसा दश ।

दारुणाभिजना सर्वे देवैरपि दुरासदा ॥५१॥

सर्वे लब्धवराश्चैव पुत्रपौत्रसमन्विता ।

यक्षाणाम्चैव सर्वेषा पीलस्त्या ये च राक्षसा ॥५२॥

ये वर्षों की पाँच कराड द्विजा के द्वारा सस्याप्त कही गई हैं । सस्याप्त के शाताग्रो के द्वारा इक्ष्मण नियुक्त कही गई है ॥४६॥ साठसौ हजार वर्ष तक उस रावण ने देवताओं और ऋषियों का घोर प्रजागर करके चौदीसवें त्रेता-युग में तपस्या का क्षय होने में दशरथ के पुत्र श्रीराम का प्राप्त किया और वह रावण गणों के साथ क्षय को प्राप्त हुआ था ॥४७-४८॥ पुष्पोत्कटा के महोदय प्रहस्त-महापाशुखर पुत्र थे तथा कुम्भीनसी नाम वाली एक कन्या हुई थी ॥४९॥ त्रिशिरा-द्रूपण-विद्युजिह्व राक्षस तथा नाका के असतिका नाम वाली कन्या ये सब प्रसव कहे गये हैं ॥५०॥ ये दश पीलस्त्य राक्षस क्रूर वर्म करने वाले थे । ये सब दारुणाभिजन वाले और देवा के द्वारा भी दुरासद थे ॥५१॥ ये सभी वरदान प्राप्त करने वाले और पुत्रों तथा पौत्रों से युक्त थे अर्थात् पुत्र पौत्र वाले थे । और समस्त यक्षा के ये पीलस्त्य राक्षस थे ॥५२॥

आगस्त्यवैश्वामित्राणा ऋषीणा ब्रह्मरक्षसाम् ।
 वेदाध्ययनशीलाना तपोव्रतनिषेविसाम् ॥५३
 तेषामंडविडो राजा पौनस्त्य सव्यपिङ्गल ।
 इतरे वै यज्ञमुष्पास्तेन रक्षोगण स्वय ॥५४
 यानु धाना ग्रहाधाना वात्ताश्चैव दिवाचरा ।
 निशाचरगणास्तेषा चत्वार पवित्रि भृता ॥५५
 पौनस्त्या नैष्टं तादृचं आगस्त्या वीगिवास्तया ।
 इत्येताः मम तेषा वै जानया राक्षसा स्मृता ॥५६
 तेषा रूपं प्रवक्ष्यामि स्वभावेन अवस्थितम् ।
 पृत्ताशा पिङ्गलाश्चैव महाबाया महोदरा ॥५७
 अष्टदंष्ट्रा गजुवर्णा ऊर्ध्वं रोमाणा एव च ।
 भावर्गं शरितास्याश्च मुञ्जधूमाढं मूर्धं जा ॥५८
 स्थूलनीपां मिताभाश्च ह्रस्वराश्च प्रवाहुरा ।
 ताम्रास्या लम्बजिह्वीश्च लम्बभूस्थूलनासिका ॥५९
 नीनाद्वा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा विभीषणा ।
 महापौण्ड्रस्वराश्चैव विरटा बटपिण्डिरा ॥६०
 स्थूलाश्च तुङ्गनामाश्च शिवागहनता दृढा ।
 दाहणाभिजना ऋषा प्रायण विनष्टवर्मिणा ॥६१
 गजुवर्णा दंष्ट्रापीडा मुकुटाष्णीपधारिणा ।
 विवित्र यम्बामग्नाश्चित्रयगनुत्पेना ॥६२
 घमादा पिङ्गितादाश्च पुण्ड्रादाश्च त स्मृता ।
 इत्येते द्रुपमाधर्म्ये राक्षसानां बुध स्मृतम् ।
 न गमन्वन्न बुद्ध यथा मायाकृतं नित्यम् ॥६३

गण कवियों के द्वारा कहे गये हैं ॥५५॥ पीनत्व-नीरुत-प्राणस्य-शोषित ये उनकी मात जानियां हे जो राक्षस कहे गये हैं ॥५६॥ अब उनका स्वभाव से व्यवस्थित रूप बतलाऊंगा । शोन शीघ्रो वाचे-पिङ्गल वणं धाने-महान् काम से युक्त-महान् उदर वाचे-घाट दाडा वाले-जंकु के समान जानो वाले-ऊपर वा उठे हुए शीघ्रो से युक्त-जानो तक फटे हुए मुखो वाचे-भूज तथा धूम्रा जैसे ऊर्ध्व वयो वाच-म्यून नाथे वाले-मित माभा वाचे-छोटे कद वाले-प्रवाहूक-नामम दश मुखो स युक्त-सम्भी जीम शीर लम्बे होटा वाले-सम्भी शीर मोटी नाक वाले-नीले भङ्गी वाचे-ताहित वणं की शीवा (गर्दन) वाले-गहरे नेत्रो स युक्त-विशेष रूप म डरावने-महान् घोर ध्वनि वाले-विष्ट-वृद्ध पीडी वाले-माटे-तुङ्ग नासिका वाले-शिवा के समान सहनत धाने-मन्नून दारण अभिजन वाचे-कूर शीर बहुधा स्पिष्ट कर्म करने बान तथा कुरङ्गल-मङ्गद और भावीड धारण करने वाले एव मुकुट शीर उष्णीष की धारण करने वाले विचित्र वस्त्र एव आभरण वाले-विन माता शीर मनुलेपन बान-अन्न भक्षण करने बान तथा मान खाने वाले एव पुरुषो वद भक्षण करने वाले वे सब बताये गये हैं । इस प्रकार का रामसी के रूड का साधर्म्य बुधजनों के द्वारा कहा गया है । यह समस्त बात सुद्ध नहीं है किन्तु यह भाषा इत भी होना है ॥५७-५८-५९ ६० ६१-६२ ६३॥

पुनहस्य मृगा पुत्रा सब व्यानाश्च शृष्टिण ।

भूता पिशाचा सर्पाश्च भ्रमरा हस्तिनातया ॥६४॥

बानरा विमराश्चैव यमनिम्बुष्पाम्बुषा ।

येऽन्ये चैव गरिष्ठान्ता मायानाधवशानुया ॥६५॥

अनपत्य ऋतुस्तस्मिन् स्पृनो मेवस्ततेऽनरे ।

न तस्य पुत्र पोत्रा वा तेज मक्षिष्य वा स्थित ॥६६॥

अग्नेर्वश प्रवश्यामि तृतीयस्य प्रजापते ।

तस्य पत्न्यश्च मुन्दर्यो दग्नेवामन्यतिवता ॥६७॥

भद्रास्वम्य धृताच्यौ वै दशाप्यगमि मूलव ।

भद्रा द्यूता च भद्रा च दानदा मतदा तथा ॥६८॥

यवीयसी मुता तस्यामजला ब्रह्मवादिनी ।

अनाप्युदाहरन्तीम श्लोक पौराणिका पुरा ॥७६॥

अत्रे पुत्र महात्मान शान्तात्मानमकल्मषम् ।

दत्तात्रेय तनु विष्णो पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥७७॥

स्थभानु के द्वारा सूर्य के हन होने पर दिव म मही पर पतमान हुआ था । इस लोक के उस समय अन्धकार में एकदम अभिभूत होने पर जिनमें प्रभा को प्रवर्तित किया था ॥७१॥ यहाँ गिरता हुआ वह दिवाकर उन समय तेरा ब्रह्माग हुआ—इस प्रकार से कहा गया था । उस ब्रह्मि के वचन से दिव से मही पर नहीं गिरा ॥७२॥ जिस महात् तपस्वी ने अत्रिप्रेष्ठ गोत्री को किया था और जो अत्रिप्रेष्ठ यज्ञा म देवों के द्वारा प्रवर्तित किया गया था । उसने महात् तप में भाविण प्रभा जाने उनमें ही भवानक अपने समान दत्ता पुत्री को उत्पन्न किया था ॥७३-७४॥ स्वस्त्यात्रेय इस नाम से विख्यात वेद के पारंगामी ऋषिगण थे उनमें विद्वान् ब्रह्म जाने महात् श्रोत्र में युक्त परम ब्रह्मिष्ठ दो पुत्र थे ॥७५॥ उनमें दत्तात्रेय सबसे बड़ा था और उसका छोटा भाई दुर्वासा थे । उनकी छोटी भवता और ब्रह्मवाद वाली पुत्री थी । यहाँ पर भी पहिले पौराणिक लोग इस श्लोक को कहा करते हैं ॥७६॥ महात् आत्मा जाने कल्मष रहित और शान्तात्मा अत्रि के पुत्र की जिसका नाम दत्तात्रेय था, पुराणों के शाता लोग उन्हें विष्णु का तनु कहा करते हैं ॥७७॥

तस्य गोशान्त्रये जाताश्चत्वार प्रथिता भुवि ।

श्यामाश्चमुद्गलाश्चैव बलारकगविष्टिरा ।

एते नृणान्तु चत्वार स्मृता पक्षा महोजसाम् ॥७८॥

कश्यपानारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा ।

जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तानिवाचत सत्तमा ॥७९॥

नारदस्तु वसिष्ठाचारुन्धती प्रत्यपादयत् ।

ऊर्ध्वरेता महातेजा वृक्षपापात्तु नारद ॥८०॥

पुरा देवाऽरे तस्मिन्सग्रामे तारकामये ।

इवेता वृग्गाश्च योगाश्च श्यामा धूम्रा समुलिना ।

ऊष्मपा दारुवाश्च नीनाश्चैव पराशरा ।

पराशराणामष्टौ ते पक्षा प्राक्ता महात्मनाम् ॥८७॥

अथ ऊर्ध्वं निबोधस्वविन्द्रप्रतिमसम्भवम् ।

वनिष्ठस्य वणिश्चर्या घृताच्या समपचत ।

कुशीतिय समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ॥८८॥

पृथो मुनाया सम्भूत पुत्रस्तस्या भवद्वयम् ।

उपमन्यु मुतस्नस्य यस्येमे उपमन्यव ॥८९॥

मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुता ।

एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुता ।

एते पक्षा वसिष्ठाना स्मृता एकादशैव तु ॥९०॥

इत्येते ब्रह्मण पुत्रा मानसा ह्यष्ट विश्रुता ।

आतर शुभहाभागा तेना वक्षा प्रतिष्ठिता ॥९१॥

श्रीलोकान्धारयन्तीमा-देवपिगणमकुतान् ।

तेषा पुत्राश्च पौत्राश्च अतशोऽथ सहस्रतः ।

संख्याता पृथिवी सर्वा सूर्य्यस्त्वेव गभस्तिभि ॥९२॥

य छं दुःख के पीवगी म उत्पन्न हान हैं—भूरिश्रवा-शत्रु-शम्भु-काल

गौर पञ्चम गौर और नीतिमयी रज्या जा योगवाता हठ अत धानी ब्रह्मदत्त

की माता थी और सात्व गुह की पत्नी थी ॥८१॥८२॥ अत-हृत्-गौर-

रयाम-बृह-ममूनिव-ऊष्म-द्वारक-नील और पराशर-महान् आत्मा बाने

पराशरो ने ये पाठ पक्ष कहे गये हैं ॥८७॥ इसके साथ इन्द्र प्रतिम सम्भव का

जान लो । वनिष्ठ की कणिष्ठुली घृताची म कुशीतिय कहा वक्ष उत्पन्न हुआ

जोकि इन्द्र प्रतिम कहा जाता है ॥८८॥ पृथु की मुना सेउमका वमु पुत्र हुआ ।

उसका पुत्र उपमन्यु था जिसके ने सब उपमन्यु गण हैं ॥८९॥ और मित्रावरुणो

के कुण्डिन हुए जो एकार्षेय वणिष्ठुत हुए थे । उसी प्रकार से अन्य वनिष्ठ नाम

से विश्रुत हुए थे । ये ग्यारह पक्ष वसिष्ठो के कहे गये हैं ॥९०॥ ये पाठ पुत्र

ब्रह्माके मानस प्रतिष्ठ हुए हैं । भाई सुन्दर एवं महान् भाग वालेहैं और उनके वक्ष

एक ही प्रजानि-इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ था ॥४॥ प्रजानि क अनिज नाम
 बाना वीयवान् पुत्र हुआ था । उसका श्रीमान् महान् यज्ञ बाना क्षुप-इस नाम
 का पुत्र हुआ ॥५॥ क्षुप का पुत्र विंश हुआ जिसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी । विंश
 का पुत्र कल्याण जिसका नाम विविश था और वह बहुत धार्मिक था ॥६॥
 विविश का पुत्र धर्मात्मा और प्रताप वाला खनिन्य था । उसका पुत्र करन्धम
 हुआ जोकि येना युग के आरम्भ में हुआ था ॥७॥

करन्धमसुतश्चापि आविशिन्नाय वीयवान् ।
 आविशितो व्यनिक्रामत् पितरं गुणवत्तया ॥८॥
 महतो नाम धर्मात्मा चक्रवर्त्तिसमो नृप ।
 सवर्त्तेन दिव नीत समुहत् सह सान्धव ॥९॥
 विवादोऽत्र महानासीत् सवत्तस्य बृहस्पति ।
 श्रद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पति ॥१०॥
 सवर्त्तेन हत यज्ञं चुकाप मुभृगन्तदा ।
 लोकानां स हि नाशाय श्वेतर्हि प्रसादित ॥११॥
 महसश्चक्रवर्त्ती स नरिष्य तमवाप्तवान् ।
 नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरा दम ॥१२॥
 तस्य पुत्रस्तु विक्रातो राज सीमावृद्धेन ।
 सुधृती तस्य पुत्रस्तु नर सुधृतिर्न सुत ॥१३॥
 केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धुमान् केवलात्मज ।
 अथ बन्धुमत पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृप ॥१४॥

करन्धम का पुत्र वीयवान् आविशिन्ना नाम बाना था । गुणा की सप्त
 सता से आविशिन्ना ने अपना पिता को भी व्यतिक्रान्त कर दिया था ॥८॥
 महत् नाम वाला राजा चक्रवर्त्ती के समान हुआ था । मित्रों और वाधकों के
 सहित वह सवर्त्त के द्वारा दिव लोक को ले जाया गया था ॥९॥ इसमें सवर्त्त
 बृहस्पति का महान् विवाद था । यज्ञ की श्रद्धि को देखकर बृहस्पति उससे
 बहुत क्रुद्ध हुआ था ॥१०॥ सवत्त के द्वारा यज्ञ के हत हो जाने पर उस समय
 वह बहुत ही अधिक कुपित हुआ और वह लोकों के नाश करने के लिए उद्यत

होगया था । देवगण के द्वारा उसे प्रमत्त किया गया था ॥११॥ चक्रवर्ती जो मरन्त था उसने नरिष्यन्त को प्राप्त किया था । नरिष्यन्त का दायाद् दणुधरद्वय राजा था ॥१२॥ उसका पुत्र परम विक्रम वाला राष्ट्रवर्धन राजा था । उसका पुत्र सुपुत्री था और उसका पुत्र नर था ॥१३॥ उसका नेवल पुत्र था और केवल वर धारमज बन्धुमान् था । इसके पश्चात् बन्धुमान् का पुत्र धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ ॥१४॥

बुधो वेगवत पुत्रस्तृणविन्दुबुधारमज ।
 त्रेतायुगमुत्ते राजा तृतीये सबभूष ह ॥१५॥
 वन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्ववसो हि सा ।
 पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधार्मिक ॥१६॥
 विशालस्य समुत्पन्ना विशाला नयनिर्मिता ।
 विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महावतः ॥१७॥
 मुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् ।
 मुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ॥१८॥
 धूम्राश्वतनयो विद्वान् मृज्जय समपद्यत ।
 मृज्जयस्य सुत श्रीमान् सहदेव प्रतापवान् ॥१९॥
 कृशाश्व सहदेवस्य पुत्र परमधार्मिक ।
 कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्त प्रतापवान् ॥२०॥
 सोमदत्तस्य राजर्षे सुतोभूज्जनमेजय ।
 जनमेजयात्मजश्च प्रमतिर्नाम विश्रुत ॥२१॥

वेगवान् का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र तृणविन्दु हुआ था जो कि तृतीय त्रेतायुग के मुत्त (धारम्भ) में राजा हुआ था ॥१५॥ उसकी वन्या द्रविडा थी जो कि विश्ववसु की माता हुई थी । इनका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ था ॥१६॥ विशाल की नय निर्मित विद्याना उत्पन्न हुई थी और विशाल का पुत्र महावतवान् हेमचन्द्र राजा हुआ था ॥१७॥ हेमचन्द्र के अनन्तर मुचन्द्र इन नाम से विख्यात पुत्र हुआ । मुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व परम विख्यात हुआ ॥१८॥ धूम्राश्व का पुत्र बहुत विद्वान् मृज्जय नामुत्पन्न हुआ

था । सृञ्जय वा पुत्र श्रीमान् एव प्रताप वाला सहदेव हुआ ॥१६॥ सहदेव वा पुत्र परम धार्मिक कृशाश्व हुआ और कृशाश्व वा पुत्र महान् तेजवाला एव प्रतापी सोमदत्त हुआ ॥२०॥ राजपि सोमदत्त के जनमेजय पुत्र उत्तरप्र हुआ था । जनमेजय के प्रमति इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२१॥

सृणुविन्दुप्रसादेन सर्वे वैशाखका नृपा ।
 दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्त सुधामिका ॥२२॥
 शर्यातिमिथुन त्वासीदानार्तो नाम विश्रुत ।
 पुत्र सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ॥२३॥
 भानात्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीर्यवान् ।
 भानर्त्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥२४॥
 रेवस्य रेवत पुन ककुघो नाम धार्मिक ।
 ज्येष्ठो भ्रातृघातस्यासीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥२५॥
 कन्यया सह श्रुत्वा च गन्धर्व प्रहृणोऽन्तिके ।
 मुहूर्त्तं देवदेवस्य मार्त्य बहुयुग विभो ॥२६॥
 भ्राजगाम युवा चैव स्वा पुरी यादववृताम् ।
 कृता द्वारवती नाम बहुद्वारा मनोरमाम् ॥२७॥
 भोजवृष्ट्यन्धर्वभुंक्ता वभुदेवपुरोगमं ।
 ताङ्कथा रेवत श्रुत्वा यथातत्त्वमरिन्दम ॥२८॥
 कन्या तु बलदेवाय सुव्रता नाम रेवतीम् ।
 दत्त्वा जगाम शिखर मेरोस्तपति सस्थित ॥२९॥

ये समस्त राजा सृणुविन्दु के प्रसाद से वैशाखक हुए थे । ये समस्त दीर्घ आयु वाले—महान् आत्मा से युक्त—वीर्य वाले और मली भौति से धर्म के मानने वाले हुए थे ॥२२॥ शर्याति के एक जोड़ा हुआ था—एक पुत्र था जो भानार्त्त इस नाम से प्रसिद्ध था और एक कन्या थी जिसका नाम सुकन्या था और वह च्यवन ऋषि की भार्या हुई थी ॥२३॥ भानात्त वा दायाद शर्यात् दाय के ग्रहण करने वाला पुत्र वीर्यवान् रेव नाम वाला हुआ जिसका देश तो भानात्त था और पुरी कुशस्थली थी ॥२४॥ रेव का पुत्र रेवत हुआ था जिसका नाम

ककुक्षी था और वह परम धार्मिक हुआ था जो सौ भाइयों का ज्येष्ठ था और कुशस्थली को प्राप्त कर राजा हुआ था ॥२१॥ विष्णु देवों के देव के एक मुहूर्त्त मान समय तक जोकि मत्स्यों के बहुत से युग थे, ब्रह्मा के समीप में गन्धर्व को कन्या के साथ में सुनकर युवा यादवों से वृत अग्रणी पुरी में भागया जोकि बहुत द्वारों वाली बहुत सुन्दर द्वास्वती नाम वाली की गई थी, तमसेव जिनमें अग्रणी थे ऐसे भोज वृष्टि और गन्धर्वों के द्वारा वह पुरी सुरक्षित थी । उस कथा को शत्रुओं के दमन करने वाले रैवत ने यथातत्त्व सुना था ॥२६-२७-२८॥ सुन्दर व्रत वाली रैवती नाम से युवत कन्या को बलदेव को देकर सप्तशतिका में सन्विष्ट होता हुआ मेरुगिरि के तिरछर पर चला गया ॥२९॥

रैमे रामश्च धर्मात्मा रैवत्या सहित किल ।

ता कथामृपय श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥३०॥

कथ बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ।

न जरा रैवती प्राप्ता पलितञ्च कुत प्रभो ॥३१॥

मेव यतस्य वा तस्य शम्यति सन्तति कथम् ।

म्यिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥३२॥

क्रियन्ता वा सुरगणा गन्धर्वास्तत्र कीदृशा ।

यच्छ्रुत्वा रैवत कालान् मुहूर्तमिव मन्यते ॥३३॥

न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभय तत ।

न च रोग प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ॥३४॥

गान्धर्व प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमा ।

ततोऽहं सप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ॥३५॥

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशति ।

तालाश्च कोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥३६॥

पङ्कजपंभो च गान्धारो मध्यम पञ्चमस्तथा ।

धन्वतदवापि विज्ञेयस्तथा चापि निपादवान् ॥३७॥

धर्मात्मा बलराम ने रैवती के साथ भ्रमण किया । उस कथा को सुन

कर इसके अनन्तर श्रुतिगो ने पूछा ॥३०॥ श्रुतिगण बोले—हे सूत नन्दन !

हे प्रभो ! बहुत यूगो वाले काल के व्यतीत हो जाने पर रेवती वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं हुई और पलित कैसे प्राप्त नहीं हुआ है ? ॥३१॥ जब शर्पाति मेघ पर चला गया तो उसकी सन्तति कैसे हुई जोकि आज तक भी इस भू मण्डल पर स्थित है । यह तत्त्व पूर्वक सब वृत्त सुनना चाहते हैं ॥३२॥ कितने सुरगण ये और किस तरह के गन्धर्व ये जिसको सुनकर रंजित कालों को ग्रहण की भांति मानता था ॥३३॥ श्री सूतजी ने कहा—ब्रह्मलोक में जाने वाले को न बुढ़ापा होता है और न मूल-व्यास ही लबती है । मृत्यु का भय भी नहीं होता है और न किसी रोग का भय ही रहा करता है ॥३४॥ हे मुनिधेयो ! गान्धर्व के विषय मैं जैसा भी मुझसे पूछा गया है वह मैं हे मुद्रता ! यथावय से अर्थात् बिल्कुल ठीक ठीक बतलाऊँगा ॥३५॥ सात स्वर पङ्क्ति होते हैं, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएँ होनी हैं । उनवास ताल होते हैं—यह इतना स्वर मण्डल होता है ॥३६॥ स्वरों के नाम—दर्शन-ऋषभ-गान्धार-मध्यम-पञ्चम धैवत और निषाद ये सात हैं ॥३७॥

सौवीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च ।

स्यात्कलोपबलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमा ॥३८॥

शार्ङ्गी च पावनी चैव दृष्टाका च यथाक्रमम् ।

मध्यमग्रामिका स्याता पङ्कजग्राम निबोधत ॥३९॥

उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता ।

शुद्धपङ्कजा तथा चैव जानीयात् सप्तमा च ताम् ॥४०॥

गान्धारग्रामिकाश्चान्यान् कीर्त्यमानान् निबोधत ।

आग्निष्टोमिवमाद्यन्तु द्वितीय वाजपेयिकम् ॥४१॥

तृतीय पौण्ड्रक प्रोक्त चतुर्थ चाश्वमेधिकम् ।

पञ्चम राजसूय च षष्ठ चक्रसुवर्णकम् ॥४२॥

सप्तम गोसव नाम महावृष्टिर्मष्टमम् ।

ब्रह्मदानश्च नवम प्राजापत्यमनन्तरम् ॥४३॥

नागपक्षाथय विद्याद्गोतरश्च तथैव च ।

हयक्रान्त मृगक्रान्त विधगुक्रान्त मनोहरम् ॥४४॥

सूर्यक्रान्त वरेण्यश्च भक्तवोकिलवादिनम् ।
 सावित्रमदं सावित्र सर्वतो मद्रमेव च ॥४५॥
 सुवर्णश्च सुमन्द्रश्च विष्णुवैष्णुवरावुभौ ।
 सागर विजयश्चैव सर्वभूतमनोहरम् ॥४६॥
 हंस ज्येष्ठ विज्ञानोमस्तुम्बुरुप्रियमेव च ।
 मनोहरमघाश्वश्च गन्धर्वानुगतश्च यः ॥४७॥
 अलम्बुपेष्ठश्च तथा नारदप्रिय एव च ।
 कथितो भीमसेनेन नागराणां यथा प्रिय ॥४८॥
 करोपनीत विनता श्रीराख्यो भागवप्रिय ।
 विशतिर्मध्यमग्राम पङ्जग्रामश्चतुर्दश ॥४९॥

सावीरी-मध्यम ग्राम-हरिणास्या-कनोपवतोपेता-शुद्धमध्यमा चतुर्थी-
 साङ्गी-पावनी-दृष्टाका ये यथाक्रम मध्यम स्वर की ग्रामिका हैं और इन्ही नामों
 से प्रसिद्ध हैं । अब पङ्क नाम को समझायो ॥४६॥ उत्तर मन्द्रा-रजनी-
 उत्तरायता-शुद्धपङ्क और सप्तमा ये जाननी चाहिये ॥४७॥ अब बतलाई जाने
 वाली अन्य जो गान्धार की ग्रामिका हैं उन्हें समझ लेनी चाहिये । अग्निष्टोमिका
 प्रथम है और द्वितीय वाजपेयिक है । तीसरी पौरुषिक कही गई है । चौथी
 आश्वमेधिक है । पाँचवी राजसूय और छठी चक्र सुवर्णक है । सातवी गौसव
 महावृष्टिक प्राठवी होती है । नवम ब्रह्मदान है इनके अनन्तर प्राजारय है ॥४८॥
 ॥४९॥४९॥४९॥ नाम पक्षाश्व-गोतर-द्वयक्रान्त-मनोहर-मृगक्रान्त-सूर्यक्रान्त-
 परण्य-भक्तवोकिल वादी-सावित्र-अदं सावित्र-सर्वतोभद्र-सुवर्ण-सुमन्द्र-विष्णु
 वैष्णुवर-सागर-विजय-सर्वभूत मनोहर-हंस जो ज्येष्ठ जानते हैं-तुम्बुरुप्रिय-
 मनोहर-अघाश्व-गन्धर्वानुगत-अलम्बुपेष्ठ नारद प्रिय-भीमसेन के द्वारा नामों
 की प्रिय कही गई है-करोपनीत विनता श्री-इस नाम वाली-भागव प्रिय-
 ये बीम मध्यम स्वर के ग्राम हैं । पङ्क के चौदह ग्राम हैं ॥४९॥४९॥
 ४९॥४९॥४९॥

तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्थितान् ।

ससौवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपनीयते ॥५०॥

उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा वै देवताञ्च च ।
 हरिदेवसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ।
 मूर्च्छेना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदेवतम् ॥११॥
 करोपनीतवितता मरुद्भिः स्वरमण्डले ।
 सा कालोपनता तस्मान्मारुतश्चाय देवतम् ॥१२॥
 मनुदेवसमुत्पन्ना मूर्च्छेना शुद्धमध्यमा ।
 मध्यमोज्ज्वल स्वर शुद्धो गन्धर्वश्चात्र देवता ॥१३॥
 गृमै राह सञ्चरते सिद्धाना मार्गदर्शने ।
 यस्मात्तस्मात् स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता १४
 सा चाश्रमममायुक्ता घनेकान् पीरवान् रवान् ।
 मूर्च्छेना योजना ह्येषा रजसा रजनी तत ॥१५॥
 ताल उत्तरमन्द्रात् पङ्कजदेवतका विदुः ।
 तस्मादुत्तरतालञ्च प्रथम स्वायतं विदुः ।
 तस्मादुत्तरमन्द्रोऽय देवतास्य ध्रुवो ध्रुम् ॥१६॥

इसी प्रकार में गाण्धार स्वर के ग्राम गस्थित पन्द्रह चाहते हैं । मगी-
 बीरा-गाण्धारी जो ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ करती है । उत्तरादि स्वर का
 यहाँ पर ब्रह्मा ही देवता होना है । हरिदेव समुत्पन्ना-हरिणास्या ही मूर्च्छेना है
 और इन्द्र देवता अधिपतारी देवता होता है ॥११॥१२॥ स्वर्गों के मण्डल में
 मरुतों के द्वारा करोपनीत विनता होती है । वह करोपनता है इनमें पावन है
 यहाँ पर अधिदेवत होता है ॥१२॥ मनु देव में समुत्पन्न मूर्च्छेना शुद्ध मध्यमा
 है । यहाँ मध्यम स्वर है और शुद्ध मध्यम देवता है ॥१३॥ गिद्धों के मार्ग के
 दर्शन में मृगों के साथ मध्यचरण करती है । इसी कारण से वह मार्गी बही गई
 है और इसका मृगेन्द्र देवता होता है ॥१४॥ और वह आश्रम में ममायुक्त होती
 है और घनेक पीरवाँ जो रथ बाने कर देती है । यह मूर्च्छेना यात्रता है, रजसे
 रजनी होती है ॥१५॥ इसका नाम उत्तर मन्द्रा होता है और इसको पङ्क
 देवता बानी जाननी चाहिये । इसमें उत्तर नाम प्रथम स्वायत जान लेंगे । इस
 पर उत्तर मन्द्र है और इसका ध्रुव स्थित देवता है ॥१६॥

अपानादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायणम् ।
 स्यादियं मूर्च्छना ह्येव पितर आद्भदेवता ॥१७॥
 शुद्धपङ्कजस्वरं कृत्वा यस्मादग्निं महर्षयम् ।
 उपतिष्ठन्ति तस्मान् जानीयाच्छुद्धपङ्कजिकम् ॥१८॥
 यः सता मूर्च्छनां कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् ।
 यक्षीणा मूर्च्छना सा तु याक्षिका मूर्च्छना स्मृता ॥१९॥
 नागदृष्टिर्विषा गीता नोपसर्पन्ति मूर्च्छनाम् ।
 भवन्तीव रहता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवता ।
 अहीना मूर्च्छना ह्येषा वरुणाश्चात्र देवता ॥२०॥
 शकुन्तकानां कृत्वा च उपमा यान्ति किन्नरा ।
 उत्तमा मूर्च्छना तस्मात् पक्षिराजोऽत्र देवता ॥२१॥
 गान्धाररागशब्देन गा च धारयतेऽर्थतः ।
 तस्माद्विशुद्धगान्धारी गन्धर्वश्चाधिदैवतम् ॥२२॥

अपान और उत्तरत्व होने से धैवत का उत्तरायण यह मूर्च्छना है । इस प्रकार से आद्भ देवता पितर होते हैं ॥१७॥ त्रिम कारण से महर्षिगण शुद्ध पङ्कज स्वर को करके फिर अग्नि का उपस्थान किया करते हैं । इसलिये उसे शुद्ध पङ्कजिक जानना चाहिये । जो सत्पुरुषों की मूर्च्छना को करके पञ्चम स्वर होता है वह यक्षियों की मूर्च्छना है और वह याक्षिका मूर्च्छना कही गई है ॥१९॥ ॥१९॥ विषागीता नागदृष्टि मूर्च्छना का उपसर्ग नहीं करती है और ये नाग-देवता ब्रह्मा के द्वारा हूत होजाते हैं । यह अहिषो अर्थात् नागों की मूर्च्छना होती है और वरुण यही देवता है ॥२०॥ किन्नर पक्षियों की उपमा करके जाते हैं । इससे उत्तमा मूर्च्छना है और इससे पक्षिराज यहाँ देवता है ॥२१॥ गान्धार राग के मन्त्र से गा की अर्थ से धारण करता है इससे वह विशुद्ध गान्धारी होता है और उसका गन्धर्व अधिदेवता होता है ॥२२॥

गान्धारानन्तरं गत्वा मृष्टेय मूर्च्छना यतः ।
 तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चात्र देवता ॥२३॥

सेय खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता ।
 पङ्जेय मूर्च्छना तस्मात् स्मृता ह्यनलदेवता ॥६४॥
 दिव्येय चायता तेन मन्दपष्टा च मूर्च्छने ।
 निवृत्तगुणनामान पञ्चमञ्चात्र धंवतम् ॥६५॥
 पूर्णा सप्त स्वरा ह्येव मूर्च्छना सप्रकीर्तिता ।
 नानासाधारणाश्चैव पठेवानुविदस्तथा ॥६६॥

जिससे गाँधार के अनन्तर यह मूर्च्छना सृष्ट हुई उस कारण से उत्तर
 गाँधारी हुई और यहाँ बसु अधिष्ठात्री देवता है ॥६३॥ वह यह महाभूता पिता
 मह को उपस्थित हुई यह पङ्ज मूर्च्छना है और इससे यह अनल देवता वाली
 कही गई है ॥६४॥ यह दिव्या और आयता है इससे मन्द पष्टा मूर्च्छनायें पञ्चम
 और धंवत की होती हैं जोकि निवृत्त गुण और नाम वाले हैं । इन प्रकार से
 सात स्वरो वाली पूर्ण मूर्च्छना कही गई है । यह अनेक और साधारण जै ही
 अनुविद होती हैं ॥६६॥

प्रकरण ५०--गीता लंकार निर्देश

पूर्वोच्यमन्त बुद्धा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्व्वश ।
 त्रिशत वै अलङ्कारास्तान् मे निगदत भृगु ॥१॥
 अलङ्कारास्तु वक्तव्या स्वै स्वैर्वर्णैः प्रहेतव ।
 सस्यानयोगैश्च तथा पादानां चान्ववेक्षया ॥२॥
 वाक्यार्थपदयोगार्थै रलङ्कारस्य पूरणम् ।
 पदानि गीतकस्याहुः पुरस्तान् पृष्टनोऽथवा ॥३॥
 स्थानानि त्रीणि जानीयादुर कण्ठशिरस्तथा ।
 एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तम ॥४॥
 चत्वारः प्रवृत्ती वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधः ।
 विक्लपमष्टधा चैव देवा योऽङ्गधा विदुः ॥५॥

स्थायी वर्णं प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम् ।
 आरोहणं चतुर्थन्तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥६॥
 तत्रैकं सचरस्थायी सचरास्तचरीभवन् ।
 अथ रोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥७॥

अब पूर्व में हुए आचार्यों के मत को जानकर आनुपूर्वी के साथ तीन ही अंगद्वारों को बनसाया जाना है । उन्हें बतसाने वाले मुझमें आप लोग भली भाँति जानकारी कर लेवें और श्रवण करें ॥१॥ अपने अपने वर्णों में प्रकृष्ट हेतु वाले अलङ्कार सस्थान योयो से और पाशो की प्रन्ववेधा से कथन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वाक्य-अर्थ-पद और योगार्थों से अलङ्कार की पूर्णता होती है । पृष्ठ से और आगे गीतरु के पद कहे गये हैं ॥३॥ स्थान उर स्थल-जगह और गिर ये तीन जानने चाहिए । इन तीन स्थानों में उत्तम विधि प्रवृत्त होती है ॥४॥ प्रकृति में चार वर्ण और चार प्रकार का प्रविचार होता है । विरूप जाठ प्रकार के तथा देव सोनह प्रकार के जाने गये हैं ॥५॥ स्थायी वर्ण प्रसंचारी और लीसरा अवरोहण चतुर्थ आरोहण वर्ण वर्णों के वेना लोग जाते हैं ॥६॥ यहाँ एक मचरास्तचरी होता हुआ सबर स्थायी होता है । इनके अनन्तर रोहण वर्णों का अवरोहण विनिर्दिष्ट करना चाहिए ॥७॥

आरोहणेन चारोहवर्णं वर्णविदो विदुः ।
 एतेषामेव वर्णानामलङ्काराभिबोधत ॥८॥
 अलङ्कारास्तु चत्वारः स्थापनी क्रमरेजिनः ।
 प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥९॥
 विस्वरोष्ट्रकलाश्चैव स्थानादेकान्तरं गताः ।
 भावस्तस्थानगोत्पत्ती द्वे कार्ये परिमाणतः ॥१०॥
 कुमारमपरं विशाद्विस्तरं वमनं गतम् ।
 एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारेवः कलाधिकः ॥११॥
 श्येनस्त्वेकान्तरे जातः कलामात्रान्तरे स्थितः ।
 तस्मिन् चैव स्वरे वृद्धिस्ति उने तद्विनशना ॥१२॥

श्येनस्तु अपरोहस्तु उत्तरः परिकीर्तितः ।

बलाकलप्रमाणाच्च स बिन्दुर्नाम जायते ॥१३॥

बिन्दुरेककला कार्या वर्णान्तिस्यामिनी भवेत् ।

विषयंयस्वरोऽपि स्याद्यस्य दुर्घटितोऽपि न ॥१४॥

बलों के जाता सोम आरोहण से आरोह बलों जाना करते हैं । अब इन्हीं बलों के घनद्वारों को समझ लो ॥१३॥ घनद्वार चार होते हैं—स्था-पनी—क्रमरेखी—प्रमाद और अप्रमाद ये चार उनके नाम होते हैं । अब उनके लक्षण बतलाता हूँ ॥१४॥ विम्बरोक्षकला स्थान में एक के अन्तर में गये हुए घावर्त्त की अक्रम और उत्पत्ति परिणाम से दो करने चाहिए ॥१०॥ अवर को बिस्तर बमन को गया हुआ कुमार जानना चाहिए । और यही कुमार बला-पिच घनाङ्ग है ॥११॥ जो श्येन होता है वह स्थित रहता है । और उमी स्वर में उनमें बिलक्षण वृद्धि स्थित हुआ करती है ॥१२॥ श्येन और अपरोह उत्तर कहा गया है और पञ्चाङ्गन प्रमाण में वह बिन्दु नाम धाला होता है ॥१३॥ बिन्दु एक बना करनी चाहिए और वर्णान्ति स्थायिनी होती है । विषयंय स्वर भी होता है त्रिमयी दुर्घटित भी नहीं होता है ॥१४॥

एवान्तर्ग तु वायन्तु पङ्जनः परमः स्वरः ।

आशेषाहरन्दनं चार्थं वाक्चम्येवोत्तपुष्पलम् ॥१५॥

गन्तारी ती तु सञ्चारी चार्थं वा करणं तथा ।

प्राक्षितभरगोह्यापि प्रोक्षमयन्त्येन च ॥१६॥

द्वादशश्च कलास्थानमेतान्तरगतन्तन ।

प्रक्षान्तिममन्दारमेव स्वरमयन्ति तम् ॥१७॥

स्वरमग्रामराज्यैव तन प्रोक्षन्तु पुष्पलम् ।

प्रक्षितमेव मनया पादानीतरयोर्भवेत् ॥१८॥

द्विज वा यथा भूत यत्तद् द्वागिमयुच्यते ।

उद्वागद्विस्वरान्ता तथा पाष्टमरान्तरम् ॥१९॥

यन्तु स्यादग्रोहो वा नागो मन्दनोऽपि वा ।

एतान्तरद्विजान्तामेव मयस्वरमन्तवः ॥२०॥

मक्षिप्रच्छेदनो नाम चतुष्पल्लवः स्मृतः ।

अनन्दुरा भवन्त्येते त्रिशत्ये वं प्रकीर्तिताः ।

वर्णम्यानप्रयोगेण कनामाना प्रमाणात् ॥२१॥

एकान्तरा काष्ठ तो पट्ट मे परम स्वर होना है । आनेपारचन्दन बार भी मीनि उच्च गुणवत् करना चाहिए ॥११॥ ये दोनों गन्धार मध्यार करते के योग है, कारण हो अथवा कार्य हो । आश्रित का अवरोहण करते भी उमी प्रकार मे प्रोक्षमद्य होना चाहिए ॥१६॥ एकान्तर मे गया हृषा वारहवी कला का स्थान होता है । इनके आगे हम प्रकार मे प्रेक्षोचिन अनन्दुरा स्वर से समन्वित होता है ॥१७॥ स्वर के मजामक होने मे ही वह विर पुष्पल कहा गया है । पाशकीर्णो य कला के द्वारा प्रमित ही होता है ॥१८॥ अथवा हो कला वाचा जैसे हृषा वह ज्ञामिन कहा जाता है । उच्चार मे विश्वराम्य तथा पट्ट स्वगन्धर नामा होता है ॥१९॥ आ तार मे अथवा मन्द्र मे अवरोह होता है ये गवान् रहित अन्त उमी स्वर म होते है ॥२०॥ मक्षिप्रच्छेद नाम घाम, चतुष्पल्लव कहा गया है । य अनन्दुरा जो कि तीस वें वय है, मी है, ये वर्ण दोर स्वात के प्रयोग त कनामान के प्रमाण मे होते है ॥२१॥

गम्यान्वय प्रमाणं च विहारो नक्षत्रान्वयाः ।

चतुष्टयमिदं त्रयमन्तुः प्रतीकनम् ॥२२॥

यथात्मना ह्यनन्दुरा त्रिवर्गोऽनिरहितः ।

यथात्मना ध्वनितुं विषम ह्यात्मनश्चरात् ॥२३॥

नानाभरणनानावाद्यवा नावा विभक्तम् ।

प्रयोविशत्य शीतिस्तु तेषामेतद्विपर्ययः ।

पङ्कजपक्षोऽपि तत्त्वादी मध्यो हीनस्वरो भवेत् ॥२८॥

अलङ्कार का प्रयोजन चार प्रकार का जानना चाहिए जोकि मस्थान-
प्रमाण-विकार और लक्षण होना है ॥२२॥ जिस प्रकार से अपने शरीर का
अलङ्कार विपर्ययस्त अर्थात् उल्टा-पल्टा हुआ अत्यन्त गहिक्त अर्थात् बुरा हो
जाता है । आत्म सम्भव होने में वहाँ को भी अलङ्कृत करने में विषम हो जाता
है ॥२३॥ अनेक प्रकार के आभरणों के योग से जिस तरह नारी का विभूषण
हुआ करता है उसी प्रकार से वहाँ का भी अलङ्कार होता है और यह भी यदि
विपर्यस्त होता है तो अत्यन्त गहिक्त हो जाता है ॥२४॥ जिस तरह चरण में
झुण्डल कभी नहीं पहिने हुए देखे गये हैं और कभी कण्ठ में रसना अर्थात्
बरघनी (कौयनी) नहीं पहिनी जाया करती है । इसी तरह से विपरीत स्थिति
में रहने वाला अलङ्कार अत्यन्त बुरा हुआ करता है ॥२५॥ किया हुआ भी
अलङ्कार जो राग को दिला देवे प्रयादिष्ट मार्ग वाले कर्तव्य के लिए जिसका
विधान किया जाता है ॥२६॥ लक्षण-पर्यवस्था और वल्लिकाषो द्वारा प्रवर्तन
मामोद्भूत और मुक्षोद्भूत ठीक ठीक रूप से बतलाता है ॥२७॥ उनका यह
विपर्यय तेईस और अस्सी होता है । तत्त्व के आदि में पङ्कज पक्ष भी मध्य और
हीन स्वर वाला हो जाता है ॥२८॥

पङ्कजमध्यमयोश्चैव ग्रामयो पर्ययस्तथा ।

मानोयोत्तरमन्द्रस्य पङ्केवात्राविकस्य च ॥२९॥

स्वरालप्रत्ययश्चैव सर्व्वेषां प्रत्यय स्मृतः ।

अनुगम्य बहिर्गीतं विज्ञातं पञ्चदैवतम् ॥३०॥

गोरूपाणां पुरस्तात्तु मध्यमाशस्तु पर्ययः ।

तयोविभागो गीतानां तावण्यमामसस्थितः ॥३१॥

अनुपङ्गं मयोद्दिष्टं स्वसारञ्च स्वरान्तम् ।

पर्ययः सप्रवर्तनं सप्तस्वरपदक्रमम् ॥३२॥

गान्धाररागेन गीयन्ते चत्वारि मन्द्रकणि च ।

पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निपादजे ।
 पङ्कजपद्मश्च जानीमो मन्द्रकेष्वेव नान्तरे ॥३३॥
 द्वे चापरान्तिके विद्याद्वयशुक्लाष्टकस्य तु ।
 प्राकृते वैष्णवेश्चैव गान्धाराशे प्रयुज्यते ॥३४॥
 पदस्य तु त्रय रूप सप्तरूपन्तु कौशिकम् ।
 गान्धाराशेन कात्स्न्येन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ।
 एवञ्चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमाशस्य मध्यमः ॥३५॥

पङ्कज और मध्यम नामों का पर्यय मानोयोत्तर मन्द्र का और मात्रा-
 विक का धै होता है ॥३३॥ स्वरास प्रत्यय सबका प्रत्यय कहा गया है ।
 बहिर्गति का अनुगमन करके पाँच देवता जाने गये हैं ॥३०॥ गोरूपों के पहिले
 मध्यमाश पर्यय होता है । उन दोनों का विभाग गीतों के लाक्षण्य मार्ग में
 सन्निहित होता है ॥३१॥ मैंने स्वरांतर स्वमार और अनुपङ्ग को उद्दिष्ट किया
 है । पर्यय सप्तस्वर पदक्रम को सप्रवर्तित होता है ॥३२॥ चार मन्द्रक गान्धा-
 राश से गाये जाते हैं । पञ्चम और मध्यम ही धैवत निपादज-पङ्कज और
 ऋषभों से मन्द्रको ही में जानते हैं, अन्तर में नहीं ॥३३॥ और दो अपरान्तिक
 जानने चाहिए । हय शुक्लाष्टक का प्राकृत में वैष्णवों से ही गान्धाराश में प्रयोग
 किया जाता है ॥३४॥ पद के तीन रूप हैं और कौशिक मात रूप वाला होता
 है । पूर्ण गान्धाराश से पर्यय की विधि बही गई है । इसी प्रकार में क्रमोद्दिष्ट
 और मध्यमाश का मध्यम होता है ॥३५॥

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषतः ।
 तत्तु सप्तस्वर कार्यं सप्तरूपं च कौशिकम् ॥३६॥
 भङ्गदर्शनमित्याहुमनि द्वे समवे तथा ।
 द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥३७॥
 उत्तरे च प्रवृत्त्येव मात्रा तत्तीयते तथा ।
 हन्तारः पिण्डको यत्र मात्राया नातिवर्तते ॥३८॥
 पादेनैवेन मात्रायां पादोनामति धीरणा ।
 सख्यामात्रोपहननं तत्र यानमिति स्मृतम् ॥३९॥

द्वितीय पादभङ्गश्च ग्रहेणामिप्रतिष्ठितम् ।

पूर्वमष्टतृतीये तु द्वितीयं चापरीतके ॥४०॥

अद्वं न पादसाम्यस्य पादभागाच्च पञ्चके ।

पादभाग सपाद तु प्रकृत्यामपि सस्थितम् ॥४१॥

चतुर्थमुत्तरे चैव मद्रवत्या च मद्रके ।

मद्रके दक्षिणस्यापि यथोक्ता वर्तन्ते कला ॥४२॥

जो गीत विशेषता से रूप से कहे गये हैं वह तो सप्त स्वर करना चाहिए और कौशिक सप्त रूप करना चाहिये ॥३६॥ सम दो मान भङ्गदर्शन यह कहते हैं । द्वितीयभावाचरण मात्र अभिप्रतिष्ठिता नहीं है ॥३७॥ और उत्तर में प्रकृति से ही इस तरह माना तत्समीप होनी है जहाँ पर हस्तार पिएटक मात्रा में प्रति-वृत्तन नहीं करता है ॥३८॥ एक पाद से मात्रा ॥ पादोना मतिवीरणा है और सख्या का उपहनन होता है जहाँ पर यानम्-यह कहा गया है ॥३९॥ द्वितीय पादभङ्ग है जो ग्रह से अभि प्रतिष्ठित होता है । अष्ट तृतीय म तो पूर्व है और अपरीतक म द्वितीय है ॥४०॥ अद्वं से पाद साम्य का और पञ्चक म पाद भाग में, पाद भाग सपाद तो प्रकृति में भी सस्थित होता है ॥४१॥ उत्तर में चतुर्थ और मद्रवती म मद्रक और मद्रक म दक्षिण की भी यथोक्त कला होनी है ॥४२॥

पूर्वमेवानुयोगन्तु द्वितीया बुद्धिरिष्यते ।

पादो चाहरण चास्मत् पार नात्र विधीयते ॥४३॥

एकत्वमुपयोगस्य द्वयोश्च द्विजोत्तम ।

अनेकसमवायस्तु पताकाहरिण स्मृतम् ॥४४॥

तिमृणा चैव वृत्तीना वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा ।

अष्टौ तु समवायास्ते सौवीरा मूर्च्छना तथा ।

कुशतयनुत्तर सत्य सप्त सन्वस्वर तु यः ॥४५॥

पूर्व ही अनुयोग ता है द्वितीया बुद्धि इच्छित होती है । पाद भार चाहरण यहाँ पर अस्मत् पार बार का पिधान नहीं होना है ॥४३॥ हे द्विजोत्तम ! उपयोग का एकत्व और जो दोना है तथा अनेक का समवाय है वह

पताका हरिण कहा गया है ॥४४॥ और तीन वृत्तियो का और वृत्ति मे दक्षिणा वृत्ता के घाठ समवाय हैं और सीवीरा मूच्छना होती है । कुत्तयनुत्तर जो सत्य सति मन्वस्वर होता है ॥४५॥

प्रकरण ५१—वैवस्वत मनु वंश वर्णन

ककुप्तिस्तु त लोक रैवतस्य गतस्य ह ।

हता पुण्यजनै सर्वा राक्षसै सा कुशस्यली ॥१॥

तद्वै भ्रातृशत तस्य धार्मिकस्य महात्मन ।

निवध्यमाना रक्षोभिदिश सप्राद्रवन् भयात् ॥२॥

तेषान्नु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियास्तन तत्र हि ।

भववायस्तु सुमहान् महास्वन्न द्विजोत्तमा ॥३॥

प्रयता इति विद्यता दिक्षु सर्वासु धार्मिका ।

घृष्टस्य धाष्टक क्षत्र रणघृष्ट बभूव ह ॥४॥

त्रिसाहस्रान्तु सगरा क्षत्रियाणा महात्मनाम् ।

नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीरवान् ॥५॥

भ्रम्वरोपस्तु नाभागिविरूपस्तस्य चात्मज ।

पृषदभ्यो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतर ॥६॥

एते क्षत्रप्रसूता व पुनश्चाङ्गिरस स्मृता ।

रथीतराणा प्रवरा क्षत्रोपेता द्विजातय ॥७॥

श्री मूकजी ने कहा—ककुप्ति के उन लोक का रैवत के खले जाने में

उत्तरी की कुत्तयली की वह सब पुण्यजनो राजाओं के द्वारा हत हो गई ॥१॥

उमके जो ती भाई थे जोहि बड़ा धर्म के मानने वाला और महान् पत्मा वाला

या राक्षसों के द्वारा निवध्य मान जाने हुए भय से शिवाघो में भाग गया थे ॥२॥

हे द्विजो में उत्तम । उनमें भय से भागा न ब क्षत्रिय वहाँ-वहाँ हो गये और

यह सुमहान् भववाय महान् ही गया ॥३॥ गमस्त शिवाघो में धार्मिक लोग

प्रयता इस नाम से विख्यात हुए । घृष्टा रणभूमि में उन वाला धाष्टक

क्षत्रिय दृष्टा या ॥४॥ महान् धात्मा बाले क्षत्रियो वा सगण तीन हजार या ।
नम्रग के दाय का हृत्कार बडा पराक्रमी नाभाग नाम वाला दृष्टा ॥५॥
नाभागि अम्बरीष दृष्टा और उसका पुत्र विरुष दृष्टा । विरुष का पुत्र पृषदस्व
और उसका पुत्र रथीतर नाम वाला दृष्टा या ॥६॥ ये सब क्षत्रियो की सति
आङ्गिरस कही गयी है । रथीतरो मे जो प्रवर थे और क्षात्र धर्म से समन्वित
वे वे द्विजाति थे ॥७॥

क्षवतस्तु मनो पूर्वमिदवाकुरभिनि सुत ।
तस्य पुत्रशतं त्वासोदिदवाकोभूरिदक्षिणम् ॥८॥
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिदण्डश्च ते त्रयः ।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पचाशतस्तु ते ॥९॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महीक्षित ।
अत्वा रिशत्तथाष्टौ च दक्षिणस्याश्च ते दिशि ॥१०॥
विशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः ।
इदवाकुस्तु विकुक्षि वै अष्टकायामथादिशेत् ॥११॥
मासमानय आद्वेयं मृगान् हत्वा महाबल ।
आढमद्य नु कर्तव्यमष्टकाया न सप्तय ॥१२॥
रा गतस्तु मृगव्या वै वधनात्तस्य धीमत ।
मृगान् सहस्रसो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्यवान् ।
भक्षयच्छशकन्तत्र विकुक्षिर्मृगयाद्गतः ॥१३॥
आगते स विकुक्षौ तु समासे सहस्रनिके ।
वसिष्ठश्चोदयामास मास प्रोक्षयतामिति ॥१४॥

भनु के पूर्व क्षुव से इदवाकु अभिनिभृत हुए । उस इदवाकु के सो पुत्र
थे जोकि भूरि दक्षिणा वाले थे ॥८॥ उन एक शत पुत्रो मे जो सबसे बडा पुत्र
था उसका नाम विकुक्षि था और नेमिदण्ड यो वे तीन थे । उनके शकुनि
जिनमे प्रधान था ऐसी रीति से पचिसो पुत्र हुए थे ॥९॥ वे सब नृप उत्तरा
पथ के रक्षा करने वाले थे । उनमे चालीस और आठ दक्षिण दिशा मे गये
थे ॥१०॥ जिसमें विशति सबसे प्रमुख थे ऐसे वे दक्षिणा पथ के रक्षा करने

वाले हुए थे । इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को ग्रष्टका में आदेश दिया था ॥११॥ राजा बोले—हे महान् बल वाले ! जगत में जाकर श्राद्ध करने के योग्य सामग्री लाना चाहिए । आज ग्रष्टका में श्राद्ध करना चाहिए । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१२॥ वह बुद्धिमान् इस यात्रय को ग्रहण कर वन में जा पहुँचा । वह परम वीर्यवान् शिकार करते करते परिश्रान्त हो गया था । मृगया करने गये हुए विकुक्षि ने वहाँ पर कुछ आहार कर लिया था ॥१३॥ सैनिका के सहित विकुक्षि के आने पर राजा ने वसिष्ठ जी को प्रेरित किया कि वे सामग्री का प्रोक्षण करें ॥१४॥

तयेति चोदितो राजा विधिवत्समुपस्थितः ।
 स दृष्टोपहत मास क्रुद्धो राजानमव्रवीत् ॥१५॥
 शूद्रेणोपहत मास पुत्रेण तव पार्थिव ।
 शशभक्ष्यादभोज्य वै तव मास महायुते ॥१६॥
 शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ ।
 तेन मासमिदं दुष्ट पितृणां नृपसप्तम ॥१७॥
 इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमव्रवीत् ।
 पितृकर्मणि निर्दिष्टो मया त्वं मृगयाङ्गत ।
 शश भक्षयसेऽरण्ये निर्धृंशं पूर्वमद्य नु ॥१८॥
 तस्मात्परित्यजामि त्वां गच्छ त्वं म्वेन वर्म्मणा ।
 एवमिदवाकुना त्यक्तो वसिष्ठवचनात् सुत ॥१९॥
 इक्ष्वाकौ सस्थिते तस्मिञ्छशी स पृथिवीमिमाम् ।
 प्राप्तं परमधर्मात्मा स चायोभ्याधिपोऽभवत् ॥२०॥
 तदाकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदित ।
 ततः स्तेनेन सा पूर्णा राज्यावस्था महोपते ॥२१॥

राजा के द्वारा उस प्रकार प्रेरित वसिष्ठ मुनि विधिपूर्वक उपस्थित हुए । सामग्री का देखकर क्रुद्ध होने हुए राजा से कहा—॥११॥ हे पार्थिव ! हे महान् धृति वाले ! आपने पुत्र शूद्र ने सामग्री को उपहृत कर दिया है । वन भक्षण कर मेने से यह सामग्री भोजन करने के योग्य नहीं है ॥१६॥ हे अनघ !

हे नृपो म थोष्ठ । इम दुरात्मा ने पहिले ही जगत् में आहार कर लिया है ।
 इससे यह समस्त सामग्री दूषित होगयी है और पितरों के योग्य नहीं रही है
 ॥१७॥ तब तो इक्ष्वाकु बहुत ही क्रुद्ध हुआ और विकृति से बोला—मैंने तुम्हें
 पितृ-कर्म में निर्दिष्ट किया था और तभी तू शिवार करने यहाँ से गया था ।
 निर्घृण तूने आज पहिले ही जगत् में आहार कर लिया है ॥१८॥ इस कारण
 से मैं आज तेरा त्याग करता हूँ और त्याग तेरे ही अपने कर्म से किया जा रहा
 है । इस प्रकार से वह पुत्र वसिष्ठ व वचन से इक्ष्वाकु के द्वारा त्याग दिया गया
 था ॥१९॥ इन इक्ष्वाकु व ससिधत्त हाने पर उस क्षत्री ने इस पृथ्वी को प्राप्त
 किया और परम धर्मात्मा वह अयोध्या का स्वामी हुआ था ॥२०॥ वसिष्ठ के
 द्वारा परिप्रेरित हुए उसने उस समय राज्य किया था । इसके अनन्तर राजा की
 यह राज्यावस्था स्नेह से पूर्ण हुई ॥२१॥

कालेन गतवास्तत्र स च न्यूनतराङ्गतिम् ।
 ज्ञात्वंवमेतदारयान ना विधिभक्षयेत्तु वै ॥२२॥
 मास भक्षयितामुन यस्य मासमिहादम्यहम् ।
 एतन्मासस्य मासत्वं प्रवदन्ति मनोपिण ॥२३॥
 दशदस्य तु दायद वक्रुत्स्यो नाम वीर्यवान् ।
 इन्द्रस्य वृषभूतस्य कक्रुत्स्यो जायत पुरा ॥२४॥
 पूष्यमाडीवके युद्धे वक्रुत्स्यस्तेन स स्मृत ।
 अनेनास्तु वक्रुत्स्यस्य पृथुरोमा च स स्मृत ॥२५॥
 वृषदश्व पृथो पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान् ।
 आन्ध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मजः ॥२६॥
 जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावन्ती येन निर्मिता ।
 श्रावस्तस्य तु दायदो वृहददो महायशा ॥२७॥
 वृहददमुतश्रापि बुबलाश्व इति श्रुति ।
 य स पुं-पुष्यप्राज्ञा पुन्धुमारत्वमागत ॥२८॥

मान व न्यून होने व वहाँ पर वह न्यूनतर गति को प्राप्त हुआ । इस
 प्रकार से इस आरयान को जानकर बिना विधि के भक्षण नहीं किया चाहिये

॥२२॥ परलोह मे मांस आदि क भक्षण करने वालो मे जिनके मांस को मैं यहाँ भक्षण करता हूँ । वह हममे मांस को खायगा इस भाँग का मांसत्व मनीषीगण बहा करते हैं ॥२३॥ सशाद का दायाद (पुत्र) वीर्यवान् वकुत्स्य हुआ । पहिले वृषभूत इन्द्र का वकुत्स्य उत्पन्न होता है ॥२४॥ पहिले आडीवरु युद्ध मे उसके द्वारा वह वकुत्स्य स्मरण किया गया था—घर्षान् बहा गया था । इसके द्वारा वकुत्स्य क पृथुरोमा हुआ ॥२५॥ पृषु का पुत्र वृषदध्व और उससे वीर्यवान् अ ध हुआ । उसके आध्र—यवनरूप और आवस्त ये पुत्र हुए ॥२६॥ आवस्तक राजा हुआ जिसने आवस्तो नाम वाली पुरी का निर्माण किया था । आवस्त का दायाद महान् यश वाला बृहदश्व हुआ था ॥२७॥ बृहदश्व का पुत्र भी कुबसाश्व हुआ यह श्रुति है । जो वह राजा धुन्धु के वध से धुन्धु मारत्व को प्राप्त होगया था ॥२८॥

धुःधुवध महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ।

यदर्थं कुबलाश्व स धुन्धुमारत्नमागत ॥२९॥

बृहदश्वस्य पुत्राणा सहस्राण्येव विजति ।

सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदा ॥३०॥

यभूवुर्दार्मिका सर्वे यज्वाना भूरिदक्षिणा ।

कुबलाश्व महावीर्यं सूरमुत्तमघामिवम् ॥३१॥

बृहदश्वोऽग्नयिञ्चत् तस्मिन् राष्ट्रे नराधिप ।

पुत्रस्तत्रामितश्रीस्तु वन राजा विवेश ह ॥३२॥

बृहदश्व महाराज सूरमुत्तमघामिवम् ।

प्रयात तमुत्तङ्गस्तु अर्ह्यपि प्रत्यवारयत् ॥३३॥

भवतो रक्षण कार्यं तत्तावत् वतुं महंति ।

निरद्विग्नस्तप वतुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥३४॥

ममाथमनमोपेपु समेपु मरघन्वसु ।

समुद्रो बालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपने ॥३५॥

श्रुतिमो ने कहा—हे महान् परिरुन । हम धुःधु व वध को सुनना चाहते हैं और विस्तारपूर्वक वचन करने की इच्छा करते हैं जिनमे विये वह

बुवलाश्व धुन्धु मारुत्व को प्राप्त होयना था ॥२६॥ श्री मूडवी ने कहा—बृहदश्व के एक बीस सहस्र पुत्र थे । वे सब विद्याओं में निष्णात, बड़े ही बतवाले और दुरासह थे ॥२७॥ सब बहुत दक्षिण वाले यन्त्रा परम धार्मिक हुए थे । बृहदश्व राजा ने महान् धीरे बलि-शूरवीर-उत्तम धर्म के मानने वाले उस बुवलाश्व को उस राष्ट्र में राजा अभिषिक्त किया था । जब पुत्र ने समस्त राज्य भी प्राप्त करलीया था तब राजा ने वनमें प्रवेश कर लिया था ॥२८-३२॥ उत्तम धार्मिक और दूर महाराज बृहदश्व की वन में प्रयाण करने वाले की ब्रह्मपि उत्तङ्क ने उसको रोका था ॥३३॥ उत्तङ्क ने कहा—हे पार्थिव ! आपका रक्षा करना धर्म है, आपको उसे करना चाहिये । मैं उद्वेग रहित होकर तप नहीं कर सकता हूँ ॥३४॥ हे ब्रूषते ! मेरे आश्रम के समीप सब मरुत्वनाम्नों में बालुना से परिपूर्ण समुद्र वहाँ पर स्थित रहता है ॥३५॥

देवतानामवध्यन्तु महाकायो महाबल ।

अन्तर्भूमि गतस्तत्र बालुकान्तर्हिता महात् ॥३६॥

स मनोस्तनय क्रूरो धुन्धुर्नाम मुदारुण ।

शल लोकाविनाशाय तप आस्याय दारुणाम् ॥३७॥

सबत्सरस्य पर्वन्ते स निश्वास प्रमुञ्चति ।

पदा तदा मही तत्र क्षलिता स्म सक्वना ॥३८॥

तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।

आदित्यपथमावृत्य सप्ताह भूमिकम्पनम् ॥३९॥

सविम्फुलिङ्ग सज्वाल सधूममतिदारुणम् ।

तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन् स्थातु स्व आश्रमे ॥४०॥

त वारय महाबाहो लोकाना हितवाम्यया ।

तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाप्याययिष्यति ॥४१॥

सोऽत्र स्वस्या भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽमुरे ।

त्व हि तस्य यवायाद्य समर्थं पृथिवीपते ॥४२॥

यह महान् पाया वाला और महान् वन वाला देवताओं का भवध्य है अर्थात् देवों ने द्वारा सब करने की योग्य नहीं है । यह भूमि के अन्तर्गत वहाँ

वायुकाशो से छिपा हुआ रहता है ॥३६॥ वह भुवुका पुत्र है, धुन्धु उसका नाम है और वह बड़ा दारुण है । वह दललोको के विनाश करने के लिये दाहण रूप में स्थित होकर रहता है ॥३७॥ वह सम्बत्सर पर्यन्त में निश्वास का मोचन किया करता है । जब वह अपना निश्वास छोड़ता है तब यह समस्त भूमि वनो के सहित जनाबमान होजाया करती है ॥३८॥ उसके निश्वास की वायु से बहुत रज उठती है और सूर्य के मार्ग को आवृण करलेती है तथा सप्ताह तक भूमि का क्षयन हुआ करता है ॥३९॥ वह क्षयन भी सामान्य नहीं होता है उसमें स्फुल्लिङ्ग ध्वनि ध्वनिकण होते हैं ज्वाला युक्त, धूम से समन्वित और अत्यन्त ही दारुण होता है । हे राजन् ! इस कारण से उस अपने धायम में मैं ठहर नहीं सकता हूँ ॥४०॥ हे महान् बाहुशो वाये ! उसका निवारण करो और हमारे हितकी कामना से उसे हटाओ । आपका तेज महाविष्णु है आप तेजसे भी शोक दे गे ॥४१॥ उस असुर के मृत होजाने पर आज शोक स्वल्प होवें । हे पृथिवी के पति ! आपही उसके वध करने में सधर्म होते हैं ॥४२॥

विद्रागुना च वरो दत्तो मम पूर्वं ततोऽनघ ।
न हि धुन्धुर्महावीर्य्यंस्तेजसात्पेन क्षयते ॥४३॥
निर्दग्धु पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह ।
वीर्य्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ॥४४॥
एवमुक्तस्तु राजपिरुतङ्कने महात्मना ।
कुबलाश्व मुत प्रादात्तस्मिन् धुन्धुनिवारणे ॥४५॥
राजा सम्यस्तशस्त्रोऽहमयन्तु तनयो मय ।
भविष्यति द्विज श्रेष्ठ धुन्धुमारो न मम ॥४६॥
स त व्यादिश्य तनय धुन्धुमारणमुद्यतम् ।
जगाम पर्व्वतार्य्यं तपसे क्षमितवत् ॥४७॥
कुबलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुवचनमास्थित ।
सहस्रं रेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिव ।
प्रायादुत्तङ्क सहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥४८॥

समाविशत्ततो विष्णुर्भगवान् स्वेन तेजसा ।

उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया ॥४९॥

हे अनप ! विष्णु ने मुझे पहिले खरदान दिया था महान् वीर्य वाला धुंधु अल्प तेज वाले किसी के भी द्वारा मारा नहीं जा सकता है ॥४३॥ हे पृथिवी पाल ! तू वर्षों में भी वह निदग्न नहीं किया जा सकता है ! उसका पराक्रम बहुत ही अधिक है जिससे कि देवगण भी सहन नहीं कर सकते हैं ॥४४॥ महात्मा उत्तङ्क के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस राजपि ने उस धुंधु के हटाने के कार्य के लिये अपने पुत्र कुवलाश्व को दे दिया था ॥४५॥ मैं शस्त्र त्याग करने वाला होगया यह मेरा पुत्र राजा है । यह धुंधु के मारने वाला होगा, हे द्विज श्रेष्ठ ! इससे कुछ भी शङ्क नहीं है ॥४६॥ वह धुंधु के मारण में उद्यन उस पुत्र को आज्ञा देकर स्वयं मशित ब्रतवाना होते हुए तप करने के लिये पक्ष पर चला गया था ॥४७॥ धर्मात्मा कुवलाश्व पिता के वचनो में आस्थित होकर एक विशति मशाल पुत्रो के साथ वह राजा उत्तङ्क के साथ धुंधु के निवारण करने के कार्य में दिया था ॥४८॥ हमके पश्चात् भगवान् विष्णु ने तेज के द्वारा उत्तङ्क के नियोग से लोकों के हित की कामना से उसमें प्रवेश किया था ॥४९॥

तस्मिन् प्रयाते दुर्दुर्षे दिवि शब्दो महानभूत् ।

अद्यप्रभृत्येष नृपो धुंधुमारो भविष्यति ॥५०॥

दिव्यं पुष्पैश्च त देवा समसत अद्भुतम् ।

स गत्वा पुरुष व्याघ्रस्तनयं सह वीर्यवान् ॥५१॥

समुद्रं खनयामास बालुकार्णवमव्ययम् ।

नारायणेन राजपिस्तेसाप्यायितो हि स ॥५२॥

बभूवातिबलो भूय उत्तङ्कस्य वशे स्थित ।

तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुवान्तहितस्तदा ॥५३॥

धुंधुरासादितस्तत्र दिशमाधित्य पश्चिमाम् ।

मुलजेनाग्निना क्रुद्धो लोवानृदत्तं यन्निव ॥५४॥

वारि शुश्राव योमेन महोदधिरिवोदये ।
 सोमस्य सोमपथं च धारोर्मिबलिलो महान् ॥१५॥
 तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिर्हृन्नास्त राक्षसाः ।
 ततः स राजातिबलो घुन्धुवन्धुनिबर्हण ॥१६॥
 तस्य वारिमयं वेगमपिवत् स नराधिप ।
 योगी यागेन बर्हिषा समयामास वारिणा ॥१७॥
 निरस्यत्त महाबायं बलेनोदकराक्षसम् ।
 उत्तच्छू दक्षयामास कृतवर्म्माम् नराधिप ॥१८॥

उम दुष्य के प्रयाण करने पर दिव म एा महान् गव्य हुमा कि आज
 स नरक यह राजा धुधु मार इस नाम से प्रसिद्ध हो जायगा । यह आकाशवाणी
 हुई थी ॥१५॥ देवगण ने इन्द्र पुत्रों के द्वारा अति मज्जुत उसका समर्थन
 किया था और यह पुरुष व्याघ्र पीय वाला पुत्रों के साथ वहाँ गया था ॥१६॥
 नारायण के क्षेत्र से आम्वायित उम राजा ने वहाँ उम बाबुबाण्ड भय्य समुद्र
 का मनन किया था ॥१७॥ यह अत्यन्त बलवान् राजा उत्तच्छू के वन में
 स्थित हुमा था । उस समय स्नान करने बाद उस राजा के पुत्रों ने धानुकामों
 में खड़ा हुमा वह धुधु प्राप्त कर दिया था जोकि वस्त्रिभूति म आधम बना
 कर युग में उत्तम अग्नि में मानो उड़ने का उद्घाटन करता हुमा था बहुत ही
 मज्जु हो रहा था ॥१८॥ सोम के उत्पन्न म समुद्र की भक्ति योग से जल
 छोड़ा है सोम पान करने वाले म श्रेष्ठ । मन्त्र धार की उमिया स वरिष्ठ
 होयगा था ॥१९॥ उमने पुत्र निर्दग्ध हो गये थे राक्षस तीन म वम य हुमके
 मन्त्र धार धुधु के वधुओं का निबर्हण करने वाले धनि बनवान् नराधिप न उमके
 जनमय वेग की ही किया था । योगी ने योग के द्वारा अग्नि कर जल से गमन
 कर लिया था ॥२०॥ बल से उदक राक्षस मन्त्र नाम बान् उमरा निरस्त
 कर लिया और नराधिप ने अपना बाण समाप्त कर उत्तच्छू की दिगता दिया
 था ॥२१॥

उत्तमं च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञ महत्तमम् ।

अदात्तम्यागं च वित्तं गन्तुभिश्चाप्यधृष्यताम् ॥२२॥

धम्मं रतिञ्च सततं स्वर्गं वासं तथाक्षयम् ।
 पुत्राणां चाक्षयात्लोकान् स्वर्गं ये राक्षसा हृताः ॥६०॥
 तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
 भद्राश्वः कपिलाश्वश्च कनीयासौ तु तौ स्मृतौ ॥६१॥
 धोन्धुमारिहं द्वादशस्तु हर्षस्वस्तस्य चात्मजः ।
 हर्षस्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥६२॥
 सहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविदारदः ।
 वृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च सहताश्वः सुतावुभौ ॥६३॥
 तस्य पत्नी हैमवती सता मतिदृढवती ।
 विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥६४॥
 युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिश्रुतिः ।
 अत्यन्तयामिनी गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥६५॥
 अभिशस्ता तु सा भर्ता नदी सा बाहुदा कृता ।
 तस्मारतु गौरिव पुत्रश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥६६॥
 मान्धाता यौवनाश्वो वै श्रीलोक्यविजयी नृपः ।
 अथाप्युदाहरन्तीमौ श्लोकी पौराणिका द्विजा ॥६७॥
 यावत्तमूषं उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति ।
 सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥६८॥

उत्तङ्ग ने उस महान् आत्मा वाले राजा को बरदान दिया था और
 उसे ब्रह्मचर्य करने तथा वनवास के द्वारा अध्विन होने का भी वर दिया था । ॥६९॥
 मुनि ने राजा को धर्म में प्रेम मर्यादा स्वर्ग में निवास जोकि कभी क्षीण न हो,
 पुत्रों को असंख्य लोक जोकि स्वर्ग में राक्षस दख हुए, दिया था ॥६०॥ उसके
 तीन पुत्र दोष रहे उनमें द्वादश कहल जाया है । भद्राश्व और कपिलाश्व दो
 छोटे बड़े भग्न हैं ॥६१॥ द्वादश धोन्धुमारि या और उभय हर्षस्व हुआ था ।
 हर्षस्व का क्षत्रधर्म में रति रखने वाला निकुम्भ पुत्र हुआ था ॥६२-६३॥
 निकुम्भ या रण विधाता परम परिष्ठत सहताश्व पुत्र हुआ था । सहताश्व के
 वृशाश्व और अक्षयाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ सत्पुरुषों की मति

हृषीकेश हैमवती ग्राम वाली उमकी पत्नी थी जो कि तीनों लोकों में परम विद्वान् थी, उमका पुत्र प्रद्युम्नवित् हुआ था ॥६४॥ उसका पुत्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध भूतिवाता पुननारव हुआ था जोकि अत्यन्त धार्मिक था उसकी पति-वत्ता पत्नी योगी थी ॥६५॥ वह उसके स्वामी के द्वारा अभिषिक्त हुई और वह बाहुदा गद्दी कर दी गई थी । उमका पुत्र गौरिक चक्रवर्ती हुआ था ॥६६॥ माण्डाता यौवनारव श्रीनक्षत्र के विनाश करने वाला राजा हुआ था । यहाँ पर भी पौराणिक द्विज दो श्लोको को बहा करते हैं ॥६७॥ जब तब सूर्य उदित होता है और जब तब वह यहाँ प्रतिष्ठित रहता है वह सप्तम यौवनारव माण्डाता का क्षेत्र बहा जाता है ॥६८॥

अभाप्युदाहरन्तीम श्लोक वराविदो जना ।
यौवनारव महात्मान यज्वानममितीजसम् ।
माण्डाता तु तनुविष्णोः पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥६९॥
तस्य चैश्वर्यो भार्या शशविन्दो मुताऽभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥७०॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा ।
तस्यामत्पादयामास माण्डाता त्रीन् सुतान् प्रभु ॥७१॥
पुरतुस्ममम्बरीष मुबुवन्दश्च विश्रुतम् ।
अम्बरीषस्य दायादो मुबनास्वोऽजर स्मृत ॥७२॥
हरितो मुबनादयस्य हारिता शूरय स्मृता ।
एते ह्यङ्गिरस पुत्रा दाश्रोपेता द्विजातय ॥७३॥
पुरातुसस्य दायादस्यसहस्रमुमहापगा ।
नर्मदाया समुत्पन्न सम्भूतमनस्य चात्मज ॥७४॥
गम्भूतम्यात्मज पुत्रो ह्यनरथ्य प्रनायवान् ।
गवण्डन हनो यन् तिस्रोऽविजये पुरा ॥७५॥
यहाँ पर वरा के देवपुत्र इन श्लोकों को उदाहरण करते हैं । महाद

धाम्ना बाना-गम्भ-वर्धन बाणवाना यौवनारव का माण्डाता तो विष्णु का तनु वा पुराणों के ज्ञाता ऐसा करो है ॥६९॥ उसकी चैश्वर्यो मायां हुई थी

सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपा ।

महर्षिः कौशिकस्तातस्तेन वीर्येण मोक्षित ॥६०॥

भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने इसको आश्रम नहो दिया और धीमान् वह सत्यव्रत पिता के द्वारा मुक्त किया गया । और स्वपाको के घर के समीप में रहने लगा और इसका पिता वन में चला गया था ॥८४॥ उसके उस देश में इंद्र ने वर्षा नहीं की और उस समय उस अघर्म से बारह वर्ष पूरे वर्षा नहीं हुई ॥८५॥ महान् तपस्वी विश्वामित्र ने उसके देश में स्त्रियों को छोड़ कर सागरानूप में बड़ा भारी तप किया था ॥८६॥ उसकी पत्नी ने मध्यम और सपुत्र को गले में बाँधकर शिक्षा से मरणार्थ क लिये सी गौँ देवदिया था । नरी में श्रेष्ठ सुव्रत ने उसको गले में बाँधा हुआ और विक्रीत देव कर उस महर्षि पुत्र को धर्मात्मा ने मुक्त करा दिया था ॥८७-८८॥ महान् बुद्धि वाले सत्य व्रतने उनका भरण किया था और यह विश्वामित्र के सन्तोष तथा अनुकम्पा के लिये ही किया था ॥८९॥ वह महा तपस्वी गले में बद्ध गालव नाम वाला हुआ था । महर्षि कौशिक उसके तात थे क्योंकि उसने पराक्रम से मुक्त कराया था ॥९०॥

तस्य व्रतेन भूतधा च कृपया च प्रतिज्ञया ।

विश्वामित्रकलत्रञ्च बभार विनये स्थित ॥९१॥

हृत्वा मृगान् वराहाश्च महिषाश्च बनेचरान् ।

विश्वामित्राश्रमाभ्यासे तन्मासमपचत्ततः ॥९२॥

उपाशुव्रतमास्थाय दीक्षा द्वादशवार्षिकीम् ।

पितुर्नियोगादभजन्तृषे तु वनमास्थिते ॥९३॥

अयोध्याश्च व राज्यश्च तथैवान्त पुर मुनि ।

याज्योपाध्यायरायोगाद्वरिष्ठ परिरक्षित ॥९४॥

समव्र तस्तु, वाल्यास्तु भाविनोऽर्थस्य वै वलात् ।

वसिष्ठेऽन्यधिक मन्यु धारयामास मन्युना ॥९५॥

पित्रा रदस्तदा राष्ट्रात् परित्यक्त स्वमात्मजम् ।

न वारयामास मुनिर्वसिष्ठ वारणेन वै ॥९६॥

उमके वत से-भक्ति मे-नृपा मे घोर प्रतिज्ञा मे विनय मे स्थित होकर विद्वामित्र की स्त्री का भ्रमण किया था ॥६१॥ मृगों को बराहो को घोर वनमें बिचरणा करने वाले महिलाओं को मार कर विद्वामित्र के आश्रम के समीप में उनके मांस को पकाया था ॥६२॥ उषानु वन में घातित होकर वारह वर्ष की दीक्षा को राजा के वनमें चले जाने पर निता की आज्ञा से मेघन किया था ॥६३॥ अयोध्या को-गन्ध से तथा अन्त-पुर को याज्ञोपाध्याय से योग में मुनि बमिष्ठ ने परिचयित किया था ॥६४॥ सत्यव्रत ने वात्स्यायन से भावि धर्म के बल से बमिष्ठ पर अत्यधिक क्रोध धारण किया था ॥६५॥ निता के द्वारा रोने हुए उन समय राष्ट्र में परित्याक्त अपने धारयन को मुनि बमिष्ठ ने कारण वश कारण नहीं किया था ॥६६॥

पाणिप्रहणमन्त्राणा निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ।

एव सत्यव्रतस्तान् ये कृतवान् सप्तमे पदे ॥६७॥

जानन् धर्मान् बमिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति ।

इति सत्यव्रते रोप बसिष्ठो मनसाकरोत् ॥६८॥

गुरुबुद्ध्या तु भगवान् बमिष्ठः कृतवास्तदा ।

न तु सत्यव्रतो बुद्ध्या उपागुद्वतमस्य वै ॥६९॥

तस्मिन्प्रोवरते यो यत्पितुरासीन्महामना ।

तेन द्वादशवर्षाणि नाशयन् पावशासनः ॥७०॥

तेन शिवदानी बहूषा दीक्षा ता दुर्बला भुवि ।

कुत्राप्य निष्कृति स्वस्य कृतेयस्य नरोदिति ॥७१॥

ततो बसिष्ठो भगवान् पिता स्वतः न्यवारयत् ।

अभिष्टेयाम्यह राज्ञे पञ्चादेनमिति प्रभुः ॥७२॥

न तु द्वादशवर्षाणि दोषान्तामुद्धहन् बली ।

अविद्यमान मागे तु बमिष्ठस्य महारमनः ॥७३॥

मर्त्येयमनुयायेन मर्त्यं नृपायजः ।

तां वै ब्रूयाद् महाश्व यमार्घ्यं व सुधान्वितः ॥७४॥

कालिदास के कर्मों की निष्ठा प्राप्त कर में होती है । एही प्रकार के

सत्यव्रत ने सप्तम पद में उनको किया था ॥६७॥ वसिष्ठ मुनि धर्मों को जानते हुए वहाँ पर मन्त्रों को नहीं चाहते हैं । इसलिये वसिष्ठ ने सत्यव्रत पर मन से रोप किया था ॥६८॥ भगवान् वसिष्ठ ने उस समय बुद्धि से शुरू किया था । सत्यव्रत ने इसकी बुद्धि से उपाशुव्रत नहीं किया था ॥६९॥ उसके उपरत होने पर जो जिसके पिता का महामना था उससे इन्द्रदेव बारह वर्ष तक नहीं बरमे थे ॥१००॥ हमसे इस समय प्रायः उस दुर्बल दीक्षा को भूमि पर कुत्तरी और अपनी निष्कृति यह की हुई होनी चाहिए ॥१०१॥ इसके पश्चात् भगवान् वसिष्ठ ने पिता के द्वारा त्यक्त को निवारण किया था और प्रभु ने पीछे में इसको राज्यासन पर अभिषिक्त करूँगा—कहा—॥१०२॥ बली उसने द्वादश वर्ष तक दीक्षान्ता को उद्धृत करते हुए महात्मा वसिष्ठ के मास के अविद्यमान होने पर नृपात्मज ने ममस्त कामनाओं के दोहन करने वाली धेनु को देखा था और उसको देखकर क्रोधित—मोहने और श्रमसे दुधा से युक्त हुआ ॥१०४॥

दस्युधर्मं गतो दृष्ट्वा जघान बलिना वरः ।

स तु माम स्वयं चैव विद्वामित्रस्य चारुमजान् ॥१०५॥

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्त तदात्यजत् ।

प्रोवाच चैव भगवान् वसिष्ठस्त नृपात्मजम् ॥१०६॥

पातये क्रूर हे क्रूर तव शकुमयोमयम् ।

यदि ते त्रीणि शत्रूनि न स्युर्हि पुरुषाधम ॥१०७॥

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोष्प्रीवधेन च ।

अप्रोपितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रम ॥१०८॥

एव स त्रीणि शत्रूनि दृष्ट्वा तस्य महातपा ।

त्रिशकुरिति होवाच त्रिशकुस्तेन स स्मृत ॥१०९॥

विद्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे वृते ।

ततस्तस्मै वर प्रादात्तदा प्रीतिस्थिशङ्खवे ॥११०॥

बलियो में श्रेष्ठ ने देववर दम्पु के धर्म को प्राप्त हुए धेनु हनन किया और उसने स्वयं माँह को विद्वामित्र के आत्मजों को लिनाया था । यह श्रवण करने वसिष्ठ ने उगे उभी समय त्याग दिया था और भगवान् उग नृप के

आत्मज में बोले ॥१०५-१०६॥ हे क्रूर ! हे पुष्पो मे प्रथम ! यदि तुझे तीन शकु नहीं हो तो तुझे शकुमय अय मे पानन करता हू ॥१०७॥ पिता के अपरि-
तोष होने मे—गुरु की दोग्घ्री धेनु के वध करने से और अप्रोषित के उपयोग से
तेरा तीन प्रकार का व्यतिक्रम है ॥१०८॥ इस प्रकार से उसके तीन शकुओं
को देखकर महातपस्वी उमे त्रिशकु इम नाम स बोले और इससे वह त्रिशकु
कहा गया है ॥१०९॥ प्राये हुए विश्वामित्र ने दारामो के भरण करने पर तब
त्रिशकु स प्रमत्त होते हुए उसे वरदान दिया था ॥११०॥

छन्दमानो वरेणाय गुरु द्रवे नृपात्मज ।
अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके ॥१११॥
अभिषिक्त्य राज्ये पित्र्ये याजयामास त मुनि ।
मिपता देवतानाञ्च वसिष्ठस्य च कौशिक ।
सशरीर तदा त वै दिवमारोपयत् प्रभु ॥११२॥
मिपतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् ।
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोको पौराणिका जना ॥११३॥
विश्वामित्रप्रमादेन त्रिशकुदिवि राजते ।
देवै साद्धं महातेजानुग्रहात्तस्य धीमत ॥११४॥
दानर्यात्यवला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता ।
अलङ्कृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशकुग्रहभूषिता ॥११५॥
तस्य सत्यरता नाम भार्या केकयवशजा ।

कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमवल्मपम् ॥११६॥

बारह वष के अनावृष्टि के भय के बले जाने पर वर मे छन्दमान होते
हुए नृपात्मज गुरु से बोला ॥१११॥ पिता के राज्य पर अभियेष्ट करते कौशिक
मुनि ने मिप होने बाले देवतामा के और वसिष्ठ के लिय यजन कराया था ।
तब प्रभु विश्वामित्र ने उस त्रिशकु को शरीर के महित स्वयं म आरोपित
कराया था ॥११२॥ मिप होते हुए वसिष्ठ को वह एक अद्भुत काय जैसा हुआ
था । यहाँ पर भी पौराणिक पुरुष इन दो श्लोको को उदाहन किया करते हैं
॥११३॥ विश्वामित्र मुनि के प्रमाद से त्रिशकु स्वयं म शोभा देता है । पद्म

धीमान् उमके धनुषह से जोकि महान् तेज से युक्त है वह तिसकु देवों के साथ स्वर्ग में विराजमान होता है ॥११४॥ तिसकु ग्रह से भूषित तीन भावों से अलङ्कृत चन्द्र से मण्डित रम्य अङ्गला हेमन्त में धन धन जाती है ॥११५॥ उसकी सत्य में रत रहने वाली अर्थात् सत्यरता इस नाम वाली भार्या जोकि नेक्य के वश में जन्मी थी उसने कल्मष से रहित हरिश्चन्द्र कुमार को जन्म दिया था ॥११६॥

स तु राजा हरिश्चन्द्रशैशङ्ख इति श्रुतः ।

आहर्ता राजसूयस्य सन्नाडिति परिश्रुतः ॥११७॥

हरिचन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् ।

हरितो रोहितस्याय चचुहारीत उच्यते ॥११८॥

विजयश्च सुदेवश्च चचुपुत्रो बभूवतु ।

जेता सर्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृतः ॥११९॥

रुक्मस्तनयस्तन राजा धर्मार्थकोविदः ।

रुक्मादघृतवः पुत्रस्तस्माद्वाहुश्च जज्ञिवान् ॥१२०॥

हेहयस्तालजङ्घश्च निरस्तो ध्वसनो नृपः ।

शक्यैर्वनवाग्ध्वोऽत्र पारदो पल्लवैरतथा ॥१२१॥

नात्यर्थं घाम्मिवोऽभूत् स धर्म्यो सत्ययुगे तथा ।

सगरस्तु गुता बाहान्तं सह गयेण वै ।

भृगोराश्रममामाद्य मुबैश्च परिरक्षितः ॥१२२॥

आग्नेय मन्त्रं लब्ध्वा तु भार्गवात् समरो नृपः ।

जघाम पृथिवीं ह्रत्वा ताम्रजघान् सहेहयान् ॥१२३॥

वह राजा हरिश्चन्द्र शैशङ्ख इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । वह राजगुरु का आश्रम करने वाला तथा सन्नाद परिश्रुत हुआ था ॥११७॥ सन्नाद हरिश्चन्द्र का पुत्र वीर्यवान् रोहित नाम वाला था । रोहित का हरित अर्थात् चचुहारीत कहा जाता है ॥११८॥ चचु हारीत ने विजय और सुदेव दो पुत्र दिए थे । समस्त क्षत्रियों को वह जीतने वाला था इसलिए वह विजय कहा गया है ॥११९॥ वहीं रुक्म पुत्र हुआ जोकि धर्म और धर्म का परिष्कृत राजा था । रुक्म से

हनुक पुत्र हुआ और उससे बाहु उत्पन्न हुआ ॥१२०॥ वह व्यसनी राजा हैहय—
सायजङ्ग—राज—यवन—नाम्बोज—गारुड और पल्लवों के द्वारा निरस्त किया गया
था ॥१२१॥ वह अत्यन्त धार्मिक उस धर्म मुक्त सत्य युग में नहीं हुआ था ।
बाहु का पुत्र सगर गङ्गे के भाग्य उत्पन्न हुआ था । श्रृंग के आश्रय में पट्ट कर
तन के द्वारा परिरक्षित हुआ था ॥१२२॥ उस सागर नृप ने भार्गव से धानिप
ग्रहण को प्राप्त कर शृङ्गी पर जाकर उसने सायजङ्गों की हैह्यों का हनन किया
था ॥१२३॥

शकना पल्लवानाश्च धर्म्मश्रिरसदच्युत ।

शत्रिपाराता तथा तेषा पारक्षानाश्च धर्म्मवित् ॥१२४

कथं स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् ।

किमर्थश्च शकादीना क्षत्रियाणा महौजसाम् ।

धर्म्मान् नुलोचिनान् क्रुद्धो राजा निरसवच्युत ॥१२५

वाहोर्व्यसनिनस्तस्य हत राज्य पुरा किन ।

हैह्यैस्तालजपैश्च शकै साद्धं समागतं ॥१२६

यवना, पारदाश्चैव नाम्बोजा पल्लवास्तथा ।

हैह्यादी पराक्रान्ता एते पञ्चवणास्तदा ॥१२७

हत राज्य वसीषोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवै ।

हतराज्यस्तदा बाहु सन्यस्य नु तदा नृप ।

वन प्रविश्य धर्म्मात्मा सह पत्न्या तपोञ्चरन् ॥१२८

वरयचित्तवच कालस्य तेषामर्थं प्रस्थितो नृप ।

वृद्धराहुर्व्यमत्वास्त्रि अन्तरा म ममार च ॥१२९

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्टनोज्ज्वलान् ।

सपत्न्या तु गरस्तस्य दत्तो गर्भजिघासया ॥१३०

धम्युन ने शत्रु को तथा पहनवा को धर्म में निरस्त कर दिया था ।

धर्म के ज्ञान ने हमी प्रकार उन क्षत्रिय पारदों को भी कर दिया था ॥१२४॥

श्रुतिर्मा ने कहा—वह सगर राजा गङ्गे के भाग्य किन तरह उत्पन्न हुआ था ?

और किमर्थ शकादि क्षत्रिय को महान् शोक बाने थे, धम्युन राजा ने वृद्ध

होकर कुन्तोचितो को घमों को निरस्त किया था ॥१२५॥ श्री मूरती ने कहा—
 पहिले समय मे व्यमन वाले बस बाहु राजा का सम्पूर्ण राज्य हरण कर लिया
 था और उनके हरण वाले शब्दों के साथ घाने हुए हैहय और ताजह्व वे ।
 ॥१२६॥ यवन—वारह—काम्बोज और पल्लव ये पाँच बण उसम श्रेष्ठ धनिक
 बल बातों के द्वारा उनके राज्य का हरण किया गया था । जब उन समय वह
 राज्य हीन होगया तो वह बाहु राजा सन्वाप्त ग्रहण करके यन मे प्रविष्ट होगया
 और धर्मात्मा उसने अपनी पत्नी के साथ सपत्न्या की थी ॥१२७॥ किमी काल
 के बल के लिये राजा ने प्रस्थान किया था किन्तु वह वृद्ध होने के तथा दुर्बल
 होने के कारण ते बीच मे मर गया था ॥१२८॥ उसकी पत्नी यादवी गर्भ मे
 युक्त थी वह भी उसके पीछे से गई थी । उसकी सपत्नी ने गर्भ के मारने की
 इच्छा मे उसे मर दे दिया था ॥१२९॥

सा तु भर्तुश्चिता कृत्वा बह्वौ त समरोहयत् ।
 श्रीर्वस्ता भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्त्तयत् ॥१३१॥
 तस्याश्रमे तु तज्जर्म ना गरेण तदा सह ।
 व्यजायत महाबाहु सगर नाम धार्मिकम् ॥१३२॥
 श्रीर्वस्तु जातकर्मादीन् कृत्वा तस्य महात्मन ।
 अध्याप्य वेदनास्त्राणि ततोऽत्र प्रत्यनादयत् ॥१३३॥
 जामदग्न्यात्तदग्नेयमसुरैरपि दुमहम् ।
 स तेनास्त्रवलेनैव बलेन च समन्वित ।
 जघान हैहयान् क्रुद्धो रुद्र पशुगणानिव ॥१३४॥
 ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदास्तथा ।
 पल्लवाश्चैव नि मेपान् कर्तुं व्यवसितो नृप ॥१३५॥
 ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ।
 वसिष्ठ दारण मर्त्वं प्रपन्ना शरणैपिण ॥१३६॥
 वमिष्ठस्तान् तथेत्पुक्त्वा समयेन महामुनि ।
 सगर वारयामास तेषान्दत्त्वाऽभयन्तदा ॥१३७॥
 उन यादवी ने अपने स्वाधी की जिना बनाकर अग्नि मे उनके साथ

समाह्वय होगयी थी । जीवें भार्गव ने उसे देखकर वरुणा से उसे निवारण किया था ॥१३१॥ उनके आश्रम में उस समय उमने उन यमों को गर (विष) के साथ महान् वाहुओं वाले परम धार्मिक सगर नाम वाले को जन्म दिया था ॥१३२॥ जीवें ने उन महात्मा ने जात वर्मादि मन्त्रारो को करके फिर वेद शास्त्रों का पढ़ाया और इसके अनन्तर अश्वों की विद्या मिलाकर अस्त्र दिये ॥१३३॥ जामवग्न्य से वह आग्नेय अस्त्र प्राप्त किया औरकि प्रभुरो को भी दु महु था । उमने उस अस्त्र के घन से ही तथा वन से समन्वित होठे हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर जैसे रत्न पशुगणों को हनन करते हैं उमी भीति उसने हँहयो का वध कर दिया ॥१३४॥ इसके अनन्तर नरो को-पवनो को-वाय्वो को-पारदों को तथा पशुओं को सबको नि रोग करने का राजा ने स्थिर कर लिया था ॥१३५॥ और और महान् आत्मा वाले सगर ने द्वारा वध्यमान के सब क्षरण की इच्छा वाले होत हुए वसिष्ठ मुनि की शरणागति में उपरित होगये थे ॥१३६॥ वसिष्ठ मुनि ने उनको 'तुम्हारी रक्षा होगी' तथास्तु यह कहकर महामुनि ने प्रतिज्ञा की और उन सबको अभय दा देकर सगर को वध करने से वारण कर दिया था ॥१३७॥

सगर स्वाम्प्रतिज्ञाश्च गुरोर्वक्त्रिय निशम्य च ।

धर्मं जघान तेषा वै वेपान्यत्य चकार ह ॥१३८॥

अद्धं शकाना दिग्गसो मुण्डायत्वा व्यसजंयत् ।

यवनाना शिर सर्वं वाम्बोजानन्तधौव ॥१३९॥

पादा मुक्तकेशाश्च पशूना इमथ्रुधारिण ।

नि स्वाध्यायप्रपट्वारा वृतास्तेन महात्मना ॥१४०॥

शका यवनवाम्बोजा पशूना पारदे सह ।

बेनिस्पदा माहिपिका दावाश्चना खसास्तथा ॥१४१॥

सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषा निरावृत्त ।

वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ॥१४२॥

स धर्मविजयो राजा त्रिजित्यमा यमुन्धराम् ।

अस्य विचारयामास वाजिमेघाय दाश्रित ॥१४३॥

तस्य चारयत सोऽश्व समुद्रे पूर्वदक्षिणे ।

वेलासमीपेऽपत्हतो भूमिर्ध्वं प्रवेशित ॥१४४

सगर ने अपनी प्रतिज्ञा को और शुरू के वाक्य को श्रवण कर उनके धर्म का हनन किया और वेपान्यत्व किया था ॥१३८॥ श्व जाति वालों का आधा शिर मुँहवा कर उन्हें छोड़ दिया—यवन जाति वालों का समस्त शिर मुँहवा दिया और काम्योजों को भी ऐसा ही किया था ॥१३९॥ पारदों को मुक्त केश और पल्लवों को श्मश्रुधारी—स्वाध्याय से हीन तथा वषट्कार से रहित उस महात्मा ने कर दिया था ॥१४०॥ श्व—यवन—काम्योज—पल्लव—पारद—वेसिस्पर्त—माहिषिन्—दाव—बोल और लम ये समस्त दार्त्रियों के औ गण थे इन सबका वसिष्ठ मुनि के वचन से महात्मा सगर ने धर्म निराकृत कर दिया था ॥१४१॥ ॥१४२॥ उस धर्म से विजय प्राप्त करने वाले राजा सगरने इस समस्त भूमण्डल को जीत कर शशिगण बल के करने के लिये शीघ्रित होते हुए उसने यज्ञ के भस्व को विचरण कराया था ॥१४३॥ उसका पुताया जाने वाला वह भस्वनेध यज्ञ का घोड़ा पूर्व दक्षिण समुद्र पर वेला के समीप में अपहरण किया गया था और उसे अपहृत करके भूमि के अन्दर प्रवेशित कर दिया गया था ॥१४४॥

स तन्देश सुते, सर्वे सनयामास पाणिवः ।

आसेषुश्च ततस्तस्मिस्तदन्तस्ते महारणवे ॥१४५

तमादिपुरप देव हरि कृष्ण प्रजापतिम् ।

विष्णु कपिलरूपेण ह्य नारायण प्रभुम् ॥१४६

तस्य वक्षु समासाद्य तेजस्तत् प्रतिपद्यते ।

दग्धा पुनास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिता ॥१४७

बहिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्म्मरतस्त्रय ।

क्षूर पञ्चवनश्च तस्य वक्षकरा प्रभो ॥१४८

प्रादाच्च तस्य भगवान् हरिर्नारायणो वरान् ।

अक्षयत्व स्ववशस्य वाजिमेघशत तथा ।

विभु पुन समुद्रश्च स्वर्गो वस तथाक्षयम् ॥१४९

त समुद्रोऽश्वभादायव वन्दे (?) सगितापति ।
सागरत्वं च सेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५०॥
त चाश्वमेधिक सोऽयं समुद्रात् प्राप्य पायिव ।
आजहाराश्वमेधाना शत चैव पुन पुन ॥१५१॥

गङ्गादू सगर ने उसी स्थान की पुत्री के द्वारा जो कि सन्ध्या में साठ हजार धे मुरवाया था । इसके अनन्तर उस स्थान में उसके नीचे महाएवं के उन्होंने देखा कि वहाँ आदि पुरुष हरि-वृष्ण-प्रजापति-विष्णु-हम-ब्रह्म नारा-यण वणिम मुनि के स्वरूप में स्थित हैं ॥१४४-१४६॥ उनके नेत्र के सामने प्राप्त होते ही उगका तेज ऐश्वरीय था कि उगी समय के सब अलवर दग्ध एवं भस्मी भूत होकर के केवल चारही अवशिष्ट बचे थे ॥१४७॥ जो बाद वचनमें से से बहिर्वेतु-मवेतु-धर्मरत के तीन थे और चार पञ्चजन था जो कि उसके वश के करने वाले थे ॥१४८॥ भगवान् हरि नारायण ने उसकी वरदान दिया था कि अपने वश का अद्यतन-नी-आजमेघ-विशु पुत्र और समुद्र तथा स्वर्ग में अशीष निधान हो ॥१४९॥ वह कदियों का पनि समुद्र अस्व की लेकर आया और वन्दना की । उस वरमें त उसने सागरत्व की प्राप्ति की थी ॥१५०॥ उस राजा ने समुद्र में उस आश्वमेधिक अश्व की प्राप्ति कर फिर बार-बार तो अश्व-मेघ दात दिये थे ॥१५१॥

पट्टिपुत्रगह्वराणि दाधान्यद्वानुसारिणाम् ।
सेपा नारायण तेज प्रविष्टाना महात्मनाम् ।
पुत्रागन्तु गह्वराणि पट्टिस्तु इति न श्रुतम् ॥१५२॥
मगरम्यात्मजा राज्ञ कथं जाता महाजला ।
विमान्ता पट्टिमाह्वरा विधिना चैन वा वद ॥१५३॥
द्वे पत्न्यौ मगरम्यास्तां तपसा दग्धनिन्त्रिये ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता चैत्रिणी नाम नामत ॥१५४॥
गनीपमी तु या तस्य पत्नी गरमयमिणी ।
अरिष्टनेमिदुरिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥१५५॥

श्रीर्वंस्ताभ्या वरं प्रादात् तपसाराधितः प्रभुः ।
 एका जनिष्यते पुत्र वंशकर्तारमीप्सितम् ।
 पष्टिपुत्र सहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥१५६॥
 मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केजिनी पुनमेककम् ।
 वंशस्य कारणं श्रेष्ठा जग्राह नृपसप्तदि ॥१५७॥
 पष्टिपुत्रसहस्राणि सुपुत्रं भगिनी तथा ।
 महात्मनस्तु जग्राह सुमतिः स्वमतिर्यथा ॥१५८॥

उस प्रद्वेषेय यज्ञ के अथवा वे पीछे अनुसरण करने वाले उस राजा के
 साथ सहस्र पुत्र दान होगये और उन महात्माओं में नारायण के तेज ने प्रवेश
 किया था । वे पुत्र साठ हजार थे ऐसा हमने सुना है ॥१५२॥ ऋषियों ने कहा—
 राजा सगर के महान् बलवाले परम निक्रान्त साठ सहस्र किस विधि से उत्पन्न
 हुए थे कृपा करके यह हमें बतलाइये ॥१५३॥ श्री सूतजी ने कहा—राजा सगर
 की तपस्या से पापी को दण्ड करने वाली दो पत्नियाँ थी । उनमें जो ज्येष्ठ थी
 वह विदर्भ की पुत्री नाम से केजिनी थी ॥१५४॥ छोटी को उस राजा सगर
 की पत्नी थी वह बहुत ही अधिन धर्म वाली थी और अग्निष्ट नेत्रि की पुत्री थी
 जो कि इस भूमि में अत्यन्त अग्रनिभ रूप—मोन्दर्य से युक्त थी ॥१५५॥ तप से
 प्राराधना किये हुए प्रभु श्रीर्व ने उन दोनों की वरदान दिया था कि उनमें से
 एक तो वंश के चलाने वाला अष्टौ पुत्र जनेगी और दूसरी साठ हजार पुत्रों को
 जनन देगी ॥१५६॥ केजिनी ने मुनि के वचन को सुनकर जो कि एक पुत्र वंश
 चलाने वाला बनाया था उसी वरदान को नृप सप्तद ने उसके स्वीकार कर लिया
 था ॥१५७॥ सुपुत्र की भगिनी ने जैसी अच्छी अपनी मति थी उसके अनुसार
 महात्मा के साठ सहस्र पुत्रों वाले वरदान को ग्रहण किया था ॥१५८॥

अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठ पुत्र व्यजायत ।
 असमञ्ज इति श्राव्य कानुत्पन्नसगरात्मजम् ॥१५९॥
 सुमतिस्तत्रापि जज्ञे वं गर्भन्तुम्व यद्रश्मिनी ।
 पष्टिपुत्रमहस्याणि तुभ्यमध्यादिनि मृता ॥१६०॥

धृतपूर्णेण कुम्भेषु तान् गर्मान् गृहयत्तन ।
 घात्रीश्र्वं कैशं प्रादात् तावती पोषणे नृप ॥१६१॥
 ततो नवमु मासेषु समुत्सृज्यंश्चामुग्रम् ।
 कुमारस्ते महाभागा सगरप्रीतिवर्द्धना ॥१६२॥
 बालेन महता चैव गौवनं प्रनिषेहिरे ।
 पुत्रपट्टिमहस्ताणि तेषामश्चानुमारिणाम् ॥१६३॥
 स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्र सगरस्पात्मसम्भवः ।
 असमञ्ज इति श्वातो बहिवैतुमहायनः ॥१६४॥
 पौराणामहिरो युक्त पिना निर्वामित पुरा ।
 तस्य पुत्रोऽनुमानास असमञ्जश्च वीर्यवान् ॥१६५॥

इसके अनन्तर समय आने पर जो बड़ी गनी थी उसने ज्येष्ठ पुत्र को
 उत्तर दिशा की ओर वह सबर का पुत्र काकुत्स्थ असमञ्जस इम नाम से प्रसिद्ध
 हुआ था ॥१५६॥ अश्विनी मृगशिरा ने भी गध का एक तूमा पंदा दिया जिस
 तूम्ब ने माठ हजार पुत्र निकल पड़े थे ॥१५७॥ पुत्र से भरे हुए कलशों में उन
 गधों को रख दिया गया था । गधा न एक एक धाय उन सब के पोषण करने
 के लिये दही थी ॥१५८॥ इसका बाद भीमाम के समाप्त होने पर मगर की प्रीति
 के बहाने जाने महाभाग ने युक्त मुख पूत्रक के समस्त कुमार उठ लड़े हुए थे
 ॥१५९॥ महान् बान बंझीत हाजाने पर वे मर गीवनावस्था को प्राप्त हुए
 थे । उन अदम्य के अश्व का अनुमण्डल करने बान य ही साठ मह्य सगर के
 पुत्र थे ॥१६०॥ जो सब से बड़ा मगर या नर व्याघ्र पुत्र था वह 'असमञ्जस'-
 इम नाम से स्थान हुआ था । बहिवैतु महान् बलवान् था ॥१६१॥ वह क्योंकि
 नगर निवासी जना का अहित किया करता था । इसलिये पिता ने उसको
 निजान दिया अर्थात् दण निराना द दिया था । उस असमञ्जस का महा परा-
 यमी अनुमायु नाम थावा पुत्र हुआ था ॥१६२॥

सत्यं पुत्रम्नु चर्मान्वा दिवीप इति विश्रुतः ।

दि शीपात्तु मरानेजा वीरो जाय भगीरथ ॥१६३॥

येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानंरूपशोभिता ।
 ईजाग्नेन समुद्राद्व द्रुहितृत्वेन कल्पिता ।
 अनाद्युदाहरन्तीम दलोक पौराणिका जना- ॥१६७॥
 भगीरथस्तु ता गङ्गामानयामास कर्मभिः ।
 तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वशवित्तमं ॥१६८॥
 भगीरथमुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह ।
 नाभागस्तस्य दायदो नित्य धमपरायण ॥१६९॥
 अम्बरीष सुतरतस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।
 एव वशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥१७०॥
 नाभागेरम्बरीपस्य भुजाभ्या परिपालिता ।
 बभूव वमुधात्यर्थ तापत्रयविवर्जिता ॥१७१॥
 अयुतायु सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ।
 अयुतायास्तु दायदो ऋतुपर्णो महायसा ॥१७२॥

उस अशुमान् का का पुत्र राजा दिलीप हुआ जोकि उत्पन्न प्रसिद्ध और
 परम धर्मात्मा हुआ था । दिलीप से महान् तेज के धारण करने वाला राजा
 भगीरथ उत्पन्न हुआ ॥१६६॥ जिसने समस्त नदियों में परमश्रेष्ठ गङ्गा को जो
 कि विमानों से उपशोभित इसने समुद्र से द्रुहिता के स्वरूप में कल्पित की थी ।
 यहाँ पर भी पौराणिक लोग इस लोक को उदाहृत किया करते हैं ॥१६७॥
 भगीरथ कर्मों के द्वारा उस गङ्गा को यहाँ लाया था । इसीलिये उसके वश के
 ज्ञाताओं के द्वारा गङ्गा भगीरथी इस नाम से कही जाती है ॥१६८॥ भगीरथ
 का पुत्र श्रुत नाम वाला हुआ था और उसका दायदो नित्य ही धर्म में परायण
 नाभाग—इस नाम वाला हुआ था ॥१६९॥ उसका पुत्र राजा अम्बरीष हुआ
 उसका पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ था । इस तरह वंश के पुण्य को जानने वाले गान
 करते हैं—यह सुना है नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुआ जिसकी भुजाओं से यह
 वमुधा तीनों तापों में रहित होनी हुई परिपालित हुई थी ॥१७१॥ उस सिन्धु
 द्वीप का पुत्र अयुतायु बड़ा वीर्यवान् हुआ था और अयुतायु का दायदो महान्
 यश वाला ऋतुपर्ण हुआ था ॥१७२॥

जन्म ग्रहण किया था ॥१७६॥ ऐडिउड प्रतापवान् श्रीमान् वृत्तशर्मा था । उम
पुत्रीक का पुत्र विश्व महान् उत्पन्न हुआ ॥१८०॥

दितीपस्तस्य पुनोऽभूत् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ।

येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।

त्रयोऽभिसहिता लोका बुद्ध्या सत्येन चैव हि ॥१८१॥

दीर्घं वाहु सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ।

शज पुत्रो रघोश्चापि तस्माञ्ज्जो स वीर्यवान् ।

राजा दशरथो नाम हृदयाकुबुलनन्दन ॥१८२॥

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबल ॥१८३॥

माधव लवण हत्वा गत्वा मधुवनञ्च तत् ।

शत्रुघ्नेन पुरी तस्य मथुरा सन्निवेणिता ॥१८४॥

तुषाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहिताबुभी ।

पालयामासन् सुनू बंदेह्यौ मथुरा पुरीम् ॥१८५॥

अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजाबुभी ।

हिमवत्पर्वताभ्यामे स्फीतो जनपदो तयो ॥१८६॥

अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी ।

चन्द्रकेतोस्तु मलयस्य चन्द्रवक्ता पुरी शुभा ॥१८७॥

उमका पुत्र दिलीप हुआ जो खट्वाङ्ग दम नाम से प्रतिष्ठ था जिसने
स्वर्ग से यहाँ भूमण्डल में आकर मुहूर्त्तभर जीवन पाकर बुद्धि से और सत्य से
तीनों लोकों को अभिसहित कर दिया था ॥१८१॥ उस खट्वाङ्ग का पुत्र दीर्घ
वाहु हुआ और फिर उस दीर्घवाहु रघु ने जन्म ग्रहण किया था । राजा रघु
का पुत्र महान् पराक्रमी शज हुआ और उस शज से हृदयाकु कुल का नन्दन
दशरथ राजा हुआ ॥१८२॥ दशरथ ने पुत्र दाशरथि राम बड़े वीर-धर्मज्ञ और
लोकविश्रुत हुए और महान् बलवान् भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए ॥१८३॥
माधव लवण को मारकर और मधुवन को जाकर शत्रुघ्न ने उसकी पुरी मथुरा
को सन्निवेजित किया था ॥१८४॥ शत्रुघ्न ने माय मुवाहु और शूरसेन बंदेह्य

दोनो पुत्रों ने मधुरापुरी का पात्रा दिया था ॥१८३॥ अह्मर घोर चन्द्ररेतु ये दो लक्ष्मण के पुत्र हुए थे घोर उन दोनों के जनपद हिमानम पर्वत के गर्भीय में विस्तृत हुए थे ॥१८६॥ अह्मर की राज्यक्षेत्र में अह्मरक्षेत्र नाम वाली पुरी थी मोर चन्द्ररेतु की जोरि मन्त्र के शुभ चन्द्रक्षेत्र नाम की पुरी थी ॥१८७॥

भरतस्य आत्मजो धीर्गो तक्ष पुण्डर एव च ।

गान्धारविषये मिद्रे तपो पुर्यो महात्मनो ॥१८८॥

तक्षस्य दिक्षु विख्याता गम्या तक्षमित्रा पुरी ।

पुण्डरस्यापि घोरस्य विख्याता पुण्डरावती ॥१८९॥

गाथा चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जना ।

रामे निबद्धास्मत्सार्था माहात्म्यास्तस्य धीमत ॥१९०॥

ध्यामो युवा सोहिनाथो दीप्तास्यो मितभाषित ।

आजानुवाहु सुमुग तिहस्वन्धो महाभुज ॥१९१॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ।

अकम्पामयजुषा घापा ज्वालोपश्च महास्वन ॥१९२॥

अविच्छिन्नाऽभवद्वाट्टं दीयता भुज्यतामिति ।

जनस्थान वसन् कार्यं निदक्षानाञ्चकार स ॥१९३॥

तमावस्कारिणु पूर्वं पीनस्त्य मनुजवर्षम् ।

सीताया पदमन्त्रिच्छन् निजघान महावशा ॥१९४॥

भरत के पुत्र बहुत घोर तक्ष घी- पुण्डर नाम बान धी से । उन दोनों मन्त्र अरथा बानों की गान्धार देश में तिह पृथ्वी थी ॥१८८॥ तक्ष की मन्त्र दिक्षामा में विख्यात तक्षमित्रा न म मे मृत सुन्दर पुरी थी । घोर पुण्डर की भी पुण्डरावती नाम वाली पुरी विख्यात हुई थी ॥१८९॥ जो पुराणों के ज्ञान रखने वाले विद्वान् हैं वे यहाँ इस विषय में गाथा का गान दिया करते हैं । धीमार् राम के माहात्म्य में राम में ममन्त्र सत्सार्थ निबद्ध थे ॥१९०॥ ध्याम वर्ण बाने-युवावस्था में मस्थित-नोहित नया में वृत्त-दीप्तिपुक्त मुख बान-मित आकाश बाने बाने-जातु पर्यंत नन्वी भुजाया बाने-मुन्दर मुख की आदृति में ममन्त्र-मिह के समान न-गे बाने-महात् भुजायो बान धीराम

थे ॥१६१॥ उन श्रीराम ने दश सृष्ट्य वर्ष तब राज्य किया । श्रीराम के राज्य में ऋक्-साम और यजुर्वेद की ध्वनि सबत्र होती थी और धनुष की प्रत्याशाओं की भी महान् ध्वनि होती थी ॥१६२॥ श्रीराम के राज्य में उनवे शासन के समय में सबत्र मवंश 'दान दो-भोजन करो यह ध्वनि अविच्छिन्न रूप से निरन्तर होती रहती थी । जनों के स्थान में निवास करते हुए उन्होंने देवों का कार्य किया था ॥१६३॥ मनुष्यों में परमश्रेष्ठ महान् यश प्राप्त श्रीराम ने सीता के पद अर्पण स्थान को लोचने हुए पहिले अपराध करने वाले उस पुत्रस्य के नाती पौलस्त्य रावण का वध किया था ॥१६४॥

सत्त्वान् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।

अति भूयश्च वह्निश्च रामो दाशरथिर्वभी ॥१६५॥

एवमेव महाबाहुरिक्वाकुकलनन्दन ।

रावण सगण हत्वा दिवमाचक्रमे विभु ॥१६६॥

श्रीरामस्यात्मजो जज्ञ वृश इत्यभिधीयते ।

लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशी निबोधत ॥१६७॥

वृशस्य कोशला राज्य पुरी वापि कशस्यली ।

रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसानुषु ॥१६८॥

उत्तराकोशले राज्य लवस्य च महात्मन ।

श्रावस्ती लोकविख्याता कशवश निबोधत ॥१६९॥

कृशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथि सुप्रियातिथि ।

अतिथेरपि विख्यातो निपधो नाम पार्थिव ॥२००॥

निपधस्य नल पुत्रो नभ पुत्रो नलस्य तु ।

नभस पुण्डरीकस्तु क्षेमघन्वा तत स्मृत ॥२०१॥

सत्त्वान् गुणसम्पन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।
श्रीराम ने सूर्य को और वह्नि क अपन तेज से दीप्त किया था ॥१६५॥ इसी प्रकार से महान् बाहु बाल और इन्द्राकु राजा के कुल को जान द देने वाले विभु राम न अपन गणा के साथ रावण को भारकर स्वर्ग में भेज दिया था ॥१६६॥ श्रीराम का पुत्र वृश इस नाम वाले उत्पन्न हुए । और लव अन्य

महार बोधं जाने पुत्र ये । धन उनके देशों को भी जान लेना चाहिए ॥१६७॥
 पुत्र वा राज्य बोधना या धीर उसकी पुरी का नाम बुधस्थली यो जिसको कि
 बहून ही गुन्दर विन्ध्य पर्वत के निधरो म उमने निवेनित किया था ॥१६८॥
 महात्मा नव वा राज्य उत्तरा कोशल में था धीर उसकी पुरी श्रावस्ती नाम
 वाली शोर में परम विख्यात थी । धन बुर के धन को अवश्य करो ॥१६९॥
 पुत्र वा धर्मा मा सुप्रिय अतिवि बाना अतिवि पुत्र था । अनिमि वा निषम
 नाम बाना पारिव पुत्र था ॥१७०॥ निषम वा नत पुत्र हुआ धीर नन वा
 नम नाम बाना पुत्र हुआ था । नम का पुण्डरीक हुआ धीर उसका क्षेमधन्वा
 हुआ ॥१७१॥

क्षेमधन्वगुतो राजा देवानीक प्रतापवान् ।

मासीदहीनगुर्नाम देवानी कार्मज प्रभु ॥१७२॥

अहीनगोस्तु दायाद पारियात्रो महायथा ।

दलस्तस्यात्मजश्चापि तस्माद्भ्रज बली नृप ॥१७३॥

भीरो नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो यभूव ह ।

यज्जनाभः सुतस्म्य सारुण्यस्तस्य चात्मज ॥१७४॥

सारुण्यस्य गुतो विद्वान् ध्युपितास्व इति श्रुत ।

ध्युपितास्व सुतश्चापि राजा विद्वत्सह विल ॥१७५॥

हिरण्यनाभ वीरस्य वसिष्ठस्तत्पुत्रोऽभवत् ।

पीत्रस्य जंभिने जिप्यः स्मृत सवपु शर्मन् ॥१७६॥

सत्तानि सत्तानान्नु पथ योऽप्योतवास्तत ।

तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥१७७॥

पुष्यस्तस्य मुनो विद्वान् ध्युयमन्यश्च सत्पुनः ।

मुदसन्मनस्य मुनो अग्निवरणः मुदजनान् ॥१७८॥

धमक वा का पुत्र प्रतापी देवानीक राजा हुआ धीर देवानीक का

मसीदु नाम बाना पुत्र था ॥१७२॥ मसीदु का दायाद महात्मा था बाना

पारियात्र मा धीर हुआ पुत्र दम नाथक वा तथा दमक अप नाम बाना नृप

उत्तम हुआ था ॥१७३॥ दल दलपुत्र धीरु—दम नाम बाना परम धानि

बल का पुत्र हुआ था । उसका पुत्र बज्र नाम हुआ और बज्र नाम का पुत्र
 बाह्वण उत्तम हुआ था ॥२०४॥ बाह्वण का पुत्र परम विद्वान् ध्युपिताश्व का
 पुत्र राजा विश्वमह हुआ ॥२०५॥ हिरण्यनाभ वीरल्य वसिष्ठ उसका पुत्र हुआ
 जो ममरत शर्मों में जैमिनि के पौत्र का जिव्य कहा गया है ॥२०६॥ जिसने पाँच
 सौ सहिताद्यो का अध्ययन किया था और उससे धीमान् याज्ञवल्क्य न योग का
 ज्ञान प्राप्त किया था ॥२०७॥ उसका पुत्र पुण्य था जो विद्वान् था और उसका
 पुत्र भ्रुव सन्धि नाम वाला था । उसका पुत्र सुदर्शन और सुदर्शन से अग्निवर्ण
 उत्पन्न हुआ था ॥२०८॥

अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मनु स्मृत ।

मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थित ।

एकानविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्त्तक प्रभु ॥२०९॥

प्रभुश्रुतो मनो पुनः मुसन्धिस्तस्य चात्मज ।

सुमन्धेश्च तथामप सहस्वाशाम नामत ॥२१०॥

आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति ।

तस्यासीद्विश्रुतवत पुनो राजा बृहद्वल ॥२११॥

एते इक्ष्वाकुदायदा राजान प्रायश स्मृताः ।

यशे प्रधाना ये तेऽस्मिन् प्राधान्येन तु कीर्तिता ॥२१२॥

पठन् सन्ध्यागिमा मृष्टिमादित्यस्य विवस्वन ।

प्रजावानेति सायुज्य मनोर्वैवस्वतस्य स ॥२१३॥

श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजाना पुष्टिदस्य च ।

विषात्मा त्रिरजाश्चैव धायुध्मान् भवतेऽच्युत ॥२१४॥

राजा अग्निवर्ण के शीघ्र हुआ और शीघ्रक के मनु उत्पन्न हुआ ।

मनु तो योग में आस्थित होकर कलाप ग्राम में आस्थित होगया था । यह
 उन्नीसवें प्रयुग में क्षत्र प्रावर्त्तक प्रभु हुआ है ॥२०९॥ मनु का पुत्र प्रभुश्रुत और
 उसका पुत्र सुमन्धि हुआ । सुमन्धिका अप नाम से सहस्वान् था सहस्वान् का
 पुत्र राजा विश्रुतवान् था और विश्रुतवान् का पुत्र राजा बृहद्वल हुआ । ये सब
 इक्ष्वाकु वंश के दावाद राजा प्राय कह गये हैं । जो वंश में प्रधान ये वे यही

ब्रह्माय गवर्हः । इमं ब्राह्मिण्यं कीं मृत्तिं यो भवतीं मीतिं पठत ह्येष प्रजापतान् श्रीर
वैवस्वतं मनुं च तथा प्रजाधो पुष्टिं दत्ते वा न देव आद्यदेवः च सामुज्यं यो प्राप्ति
हन्ता है । विष्णोः विरजं तथा ब्रह्मपुष्पान् एव अभ्युव हन्ता है । २१० त २१४।

प्रकरण ५२—सामोत्पत्तिवर्णन

योऽसौ निवेशयाभास गुर-देवपुराणमम् ॥१
जयन्तर्मितिविश्रुता गौतमस्याश्रमाभित ।
यस्वान्ववाय यज्ञं वै जनवाहपिसत्तमात् ॥२
नमिर्नाम सुधर्मिणा सर्वसत्त्वनमस्तुत ।
आसीत् पुत्रो महाप्राज्ञ इदवातोभू रितजस ॥३
स सापेन वसिष्ठस्य विदेह समपद्यत ।
तस्य पुत्रा मिदिर्नाम जनितं पवभिस्त्रिभि ॥४
अरण्या भव्यमानाया प्रादुभू ता महायशा ।
नाम्ना मिधिरिति त्याता जननाज्जनकोऽभवत् ॥५
मिधिर्नाम महावीर्यो यनासो मिधिराभवत् ।
राजासौ जनवा नाम जनराज्ञाप्युद वसु ॥६
उदावगा सुधर्मरमा जनिता नन्दिबद्ध न ।
नन्दिबद्धे नत दूरं सुवर्तुर्नाम धामिव ॥७
सुवर्तारपि धर्मात्मा दयराता महाजन ।
दयरातरस्य धर्मात्मा बृहदुच्छ इति श्रुति ॥८

गुनकी बात—विशुद्धि व छोटे भाई निमि क वग को समझना । ३।
इमं देवापुर व समान पुर का निवेशन दिया था ॥१॥ जो गौतम व आश्रम
व रामन जनन—इम नाम स विस्वान था । जिनमे अरण्याय दन म क्रिया
म भद्र वाच स ननि—इम नाम वात अरण्याय तत्र यान् इदवापु का पुन था
जा भती प्रवार स धर्मात्मा समस्त शक्तिया व दाय नमस्तुत धर्मात् नमस्तुत

प्राप्त करने वाला और महान् परिहृत था ॥२॥३॥ यह वसिष्ठ के शाप से विदेह हो गये । उसका पुत्र मिथि नाम वाला तीन पत्नी से बन्या था ॥४॥ भरणी के मथन करने पर यह महान् यश वाला प्रादुर्भूत हुआ था । नाम से मिथि प्रसिद्ध हुआ और जनन होने से जनक हुए थे ॥५॥ मिथि नाम वाले महान् पराक्रम वाले थे जिसमे यह मिथिमा हुई थी । यह जनक नाम वाला राजा था और जनक से उदावसु हुआ ॥६॥ उदावसु से सुन्दर धर्ममय धर्ममा वाला नदिबद्धन जन्मा । नदिबद्धन से धार्मिक और दूरबीर सुवर्तु उत्पन्न हुआ ॥७॥ सुवर्तु से महान् बलवाला धर्मत्मा देवरात हुआ और देवरात के धर्मत्मा बृहदुष्ण हुआ—यह धृति है ॥८॥

बृहदुच्छस्य तनयो महावीर्यं प्रतापवान् ।
 महावीर्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चारमज ॥९॥
 सुधृतेरपि धर्मत्मा धृष्टकेतु परन्तप ।
 धेष्टकेतु सुतश्चापि ह्यश्वो नाम विधुत ॥१०॥
 ह्यश्वस्य मरु पुत्रो मरो पुत्रे प्रतिश्वक ।
 प्रतिश्वकस्य धर्मत्मा राजा कीर्तिरथ सत ॥११॥
 पुत्र कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुत ।
 देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृति ॥१२॥
 महाधृतिमुतो राजा कीर्तिराज प्रतापवान् ।
 कीर्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति श्रियुत ॥१३॥
 महारोमेणस्तु विख्यात स्वर्णरोमा व्यजायत ।
 स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरायामवन्नुप ॥१४॥
 ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सौरध्वज इति श्रुति ।
 उद्भिन्ना कृपता यन गीता राज्ञा यमम्बिनी ।
 रामभ्य महिषी माध्वी सुग्रतातिपतिग्रता ॥१५॥
 यय सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी ।
 विमर्षश्चावृपद्राजा श्रेय यस्मिन् बभूव ह ॥१६॥

वृहदुच्च का पुत्र प्रताप वाला महावीर्य हुआ और महावीर्य के धृतिमान्
हुआ और उसके सुवृत्ति पुत्र हुआ था ॥६॥ सुवृत्ति के धार्मिक और धनुषों को
तयाने वाला धृष्टकेतु पुत्र हुआ । धृष्टकेतु का पुत्र भी हृष्यश्व-इस नाम से विभूत
होने वाला उत्पन्न हुआ था ॥१०॥ राजा हर्षस्य के यह पुत्र उत्पन्न हुआ और
मरु के प्रतिवक हुआ तथा प्रतिवक के परम धार्मिक राजा कीर्तिरथ पुत्र हुआ
था ॥११॥ कीर्तिरथ का पुत्र देवमीड हुआ और देवमीड के विबुध तथा विबुध
के धृति नाम वाला सुत उत्पन्न हुआ था ॥१२॥ महाधृति का पुत्र प्रतार्ता राजा
कीर्तिराज हुआ । कीर्तिराज का आत्मज मरुत निशान् महारोमा परम प्रसिद्ध
हुआ था ॥१३॥ महारोमा राजा का पुत्र परम प्रसिद्ध स्वमारोमा उत्पन्न हुआ
था । स्वमारोमा का पुत्र राजा हस्वरोमा हुआ ॥१४॥ हस्वरोमा का आत्मज
विह्वान् सीरध्वज नाम वाला हुआ था— ऐसी धृति है । जिस राजा ने भूमिका
वर्षण करते हुए धर्मज्ञ जाते हुए परम वशवासी सीता को उद्भिन्न किया था
जो जीना धीराम को पटरानी हुई थी और अत्यन्त माखी-बति पातिव्रत धर्म
का पालन करने वाली एवं सुन्दर व्रत वाली थी ॥१५॥ शम्भुनाथ ने कहा—
कृप्यमाण होनी हुई सीता किस प्रकार से ममुत्पन्न हुई थी ? जो कि परम यश-
स्विनी थी । राजा ने किन्तु लिये भूमिका कथण किया था किन्तु करने में वह
हुई थी ? ॥१६॥

अग्निक्षेत्रे कृप्यमाणो यश्चमेध महात्मन ।

विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्ता तु मनुष्यता ॥१७॥

सीरध्वजात् जातस्तु भानुमान्नाम मंथिल ।

भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्यधिपतिर्नृप ॥१८॥

तस्य भानुमत पुत्र प्रद्युम्नश्चप्रतापवान् ।

मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादुज्ज्वल स्मृत ॥१९॥

उज्ज्वलात् सुतद्वाज अकुनि स्तस्य चात्मज ।

स्वामत अकुने पुत्र सुवर्वास्तस्मृत स्मृत ॥२०॥

श्रुतो यस्तस्य दायाद सुभ्रूतस्तस्य चात्मज ।

सुभ्रूतस्य जय पुत्रो जयस्य विजय सुतः ॥२१॥

विजयस्य ऋत पुत्र ऋतस्य सुनय स्मृत ।

सुनयाद्रीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृति ॥२२

धृतेस्तु बहुलाश्वोऽमूढहुलाश्वमुत कृति ।

इत्येते मैथिला प्रोक्ता सोमस्यापि निबोधत ॥२३

श्री भूतजी ने कहा—महान् आत्मा वायु के अश्वमेध में अग्नि दीव के कर्पण करने पर और विधि को अभी भीति मुन्दरता के साथ प्रयुक्त करने से उससे से वह सीता समुत्पित हुई थी ॥१७॥ भीरध्वज में भानुमान् नाम वाला मैथिल उत्पन्न हुआ था । उसका भाई कुसध्वज था और वह काशी का स्वामी रूप था ॥१८॥ उस भानुमान् का पुत्र प्रताप वाला प्रहृन्न था । उसका पुत्र मुनि हुआ और उससे ऊर्जबहु हुआ था ॥१९॥ ऊर्जबहु से सुनद्राज हुआ और उसका पुत्र द्युनि हुआ था । द्युनि का स्वागत हुआ और स्वागत का सुवर्षा-नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥२०॥ उसका धर्मात् सुवर्षा का शयाद (पुत्र) भूत हुआ और उसका पुत्र गुभृत हुआ था । गुभृत का पुत्र जय हुआ जय का पुत्र विजय हुआ ॥२१॥ विजय के ऋत नामक पुत्र था और ऋत के सुनय पुत्र उत्पन्न हुआ था । सुनय से वीत हव्य हुआ और वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ ॥२२॥ धृति से बहुलाश्व हुआ और बहुलाश्व का पुत्र कृति नाम वाला था । उसमें महान् आत्मा वाला जनक का वंश सम्स्थित रहता है । ये इनमें मैथिल बनाये गये हैं । अब सोम का वंश जान ना ॥२३॥

प्रकरण ५३—सामोत्पत्तिवर्णन

पिता सोमस्य यो विप्रा जज्ञेऽग्निभगवानृषि ।

सोऽति तस्यौ सर्वलोवान्भगवान्त्वेन तेजसा ॥१

वर्मणा मनसा वाचा धुमान्येव समानरन् ।

वाष्टबुध्यगिलाभूत ऊर्ध्वबाहुमहाधृति ॥२

सुदुश्चर नाम तपो येन तम महत्पुत्र ।

त्राणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः धृतम् ॥३

सामोत्पत्ति वर्णन [

तस्योद्धरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्पृहम् ।
 सोमत्वतनुरापेदे महाबुद्धिं स वै द्विज ॥४॥
 ऊर्द्धमाचक्रमे तस्य सोमत्व भावितात्मन ।
 सोम सुम्नाव नेत्राम्या दश वा द्योतयन् दिश ॥५॥
 त गभं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ।
 समेत्य धारयामासुर्न च ता समशक्नुवन् ।
 स तान्य सहसैवाथ दिग्म्यो गभं प्रभान्वित ।
 यथावभासयैल्लोकाञ्छोताशु सर्वभावन ॥७॥
 यदा न धारणो यक्तास्तस्य गभंस्य ता क्षिप ।
 तत स ताभि दीताशुनिपपात वमुन्धराम् ॥८॥

श्री मूनजी ने कहा—हे विप्रा । सोम के पिता ऋषि अग्निभगवान् ने जन्म ग्रहण किया था । वह अग्नि भगवान् अपने तेज के समस्त लोकों में प्रति-स्थित हुए थे ॥१॥ ब्रह्म-मन और बचन के द्वारा शुभ का भी समाचरण करते हुए महान् बुद्धि वाले ऊर्ध्वबाहु होकर काष्ठ और कुण्डल शिखा के समान हो गए । ॥२॥ हमने यह सुना है कि तीन हजार दिव्य वर्षों तक जिसने पहिले महान् बठिन तप किया था ॥३॥ वही पर स्थित ऊर्द्धरेता उनके अनिमिष स्पृह सोमत्व तनु को महान् बुद्धि वाले उस द्विज के प्राप्त किया था ॥४॥ भावित आत्मा जान उनके ऊपर सोमत्व चलता था । नेत्रों से दशो दिशाओं का प्रका-शित करता हुआ सोम श्रवण करता था ॥५॥ उस गभ को उस समय ब्रह्मा के द्वारा आदेश प्राप्त करने वाली दश देवियां भ एकत्रित होकर धारण किया था किन्तु वे उस न सहन कर सकीं ॥६॥ इस के अनन्तर उन दिशाओं से वह गभ महमा ही प्रभा में युक्त हो गया जिससे सबका अन्धकार लपने वाला दीताशु सांखी को अवभासित कर रहा था ॥७॥ जब वे स्थिरां उस गभ के धारण करने में समर्थ न हुईं तो फिर वह शीतानु उनसे पृथ्वी पर गिर गया था ।

॥८॥

एतन्त सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामह ।
 रथमारोपयामास सोवाना हितकाम्यया ॥९॥

स हि देवमयो विप्रा धर्मार्थी सत्य सङ्गः ।
 युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि न श्रुतम् ॥१०॥
 तस्मिन्निपतिते देवा पुत्रेऽग्रे परमात्मनि ।
 तुष्टुबुधं हारण पुत्रा मानसा सम विद्युता ।
 तत्र वाङ्मिरसस्तस्य भृगोश्च वात्मजस्तथा ।
 ऋग्भिर्पञ्जुर्भिवंहुभिरचर्वाङ्मिरसैरपि ॥१२॥
 ततः सस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः ।
 आप्यायमाना लोकास्त्रिंशो भावयामास सर्व्वशः ॥१३॥
 समेन रथमुच्येन सागरान्ता वसुन्धराम् ।
 श्रुत्वा तत्कृतवो वितुलश्रवणमभिप्रवक्षिणम् ॥१४॥
 तस्य यच्चापि तत्तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।
 ओषध्यस्ताः समुदभूतास्तेजसा सज्ज्वलन्त्युत ॥१५॥
 तामिषार्य्येत्ययं लोकान् प्रजाश्चापि चतुर्विधाः ।
 पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो हि द्विजोत्तमाः ।

समस्त लोको के पिता यह ब्रह्माजी ने सोम को गिरजा कुम्भा देखकर
 लोको के हित की कामना से रथ को आरोपित कर दिया था ॥१॥ हे विप्र-
 वृन्द ! यह देवों से परिपूर्ण, धर्म का अर्थी, सत्य सङ्गार और श्वेत वर्ण वाले
 सहस्र प्रज्वो से युक्त था—ऐसा हमने सुना है ॥१०॥ उस परमात्मा अग्नि के पुत्र
 के निपतित होने पर जो सात ब्रह्म के प्रसिद्ध मानस पुत्र हैं उन्होंने स्तुति की
 थी ॥११॥ वही पर ही वाङ्मिरस और उस भृगु के पुत्र ने उसी प्रकार स
 ऋग्वेद—यजुर्वेद और बह्वृत से वाङ्मिरसों में स्तवन किया ॥१२॥ इसके अनन्तर
 भली-भाँति स्तुति किये गये उस भावमान सोम के तेज ने लोकों को आप्यायित
 करते हुए सब ओर से आवृत किया था ॥१३॥ उसने सब मुस्यरथ के द्वारा
 सागर पर्यन्त वसुन्धरा की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की थी ॥१४॥ उसका जो
 भी तेज था वह पृथ्वी में अनुपम हो गया और वे औषधियों के स्वरूप में समु-
 त्पन्न हुई जो कि अपने तत्र से भली भाँति ज्वलित हो रही हैं ॥१५॥ हे द्विजो

तमवृन्द । उन श्रीपण्डितों में यह सोचों को धारण करता है और भगवान् मोम
भाग्य प्रकार की प्रजाओं को तथा जगत् का भी परम पोषक है ॥१६॥

स नक्षत्रतेजोऽस्तपसा मस्तवैस्तैश्च कर्मभिः ।

तपस्तेपे महाभाग पदानां ददातीदृश ॥१७॥

हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।

विभुस्तासाम्भवेत्सोम प्रस्थात स्वेन कर्मणा ॥१८॥

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदा वरः ।

वीजोपनिषु विप्राणामपाञ्च द्विजसत्तमा ॥१९॥

सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट् ।

लोकानां भावयामास स्वभावात्तपता वरः ॥२०॥

सप्तविंशतिग्निदोस्तु दाक्षायण्यो महावता ।

ददौ प्राचेतसो दक्षा नक्षत्राणीति या विदुः ॥२१॥

स तत्प्राप्य महद्वाज्यं सोमं सोमवता प्रभुः ।

समाजज्ञे राजमूयं सप्तविंशतदक्षिणम् ॥२२॥

हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा यज्ञास्त्वमेपिबान् ।

सदस्यस्तनं भगवान् हरिर्नागायणः प्रभुः ।

मनसुमारप्रमुखैर्गर्भं ब्रह्मपिभिवृत्तं ॥२३॥

दक्षिणामददत्सोमस्त्रीन्लोकानिति न धुतम् ।

तेभ्यो ब्रह्मपिमुह्येम्य मदस्येम्यश्च वै द्विजा ॥२४॥

बह्म सन्तवो और उन कर्मों के द्वारा तथा बप से तेज प्राप्त करने वाला
होगया और उस महाभाग ने दक्षती दक्ष पदा तक तपस्या की थी ॥१७॥ जो
हिरण्य वर्ण वाली देवियों थी उन्होंने जगत् का धारण किया है उनका विभु
सोम हुआ जो अपने कर्म के द्वारा प्रस्थात है ॥१८॥ ब्रह्म वेत्ताओं से श्रेष्ठ ब्रह्मा
ने हे द्विजा मे श्रेष्ठ । वीजोपनिषों में विप्रों का और जलो का राज्य उसे दीश्या
था ॥१९॥ नपम्बा करने वालों में श्रेष्ठ वह अभिषिक्त होता हुआ इस महाद्
राज्य से राजाओं का राज्य तथा महान् तेजस्वी स्वभाव में लोग को आनन्दित
किया करता था । २०॥ प्राचम्भ दक्ष ने इन्द्र को महान् वन वाली वस्तुओं

दाशायणी दे दी जो कि नक्षत्र नाम से जानी गई हैं ॥२१॥ सोम वाली के स्वामी उस सोमने उस महान् राज्य को प्राप्त करने सहस्र शत दक्षिणा वाला राजनूय यज्ञ किया था ॥२२॥, उसमे हिरण्य गर्भ उद्गाता हुए और ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए अर्थात् ब्रह्मा बने तथा सनत्कुमार आदि प्रमुख ब्रह्मपियों से व्रत भगवान् नारायण प्रभु हरि सदस्य हुए थे ॥२३॥ हमने ऐसा सुना है कि सोम ने उन ब्रह्मपि मुन्ध सदस्यों के लिये, हे द्विज वृन्द ! सीनी सोवी को दक्षिणा में था ॥ २४ ॥

त सिनी च बृहश्च वपुः पुष्टि प्रभा वसु ।
कीर्त्तिधृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्य सिपेविरे ॥२५॥
प्राप्यावभृथम-यत्र मन्वंदेवपिपूजित ।
अतिराजातिराजेन्द्रो दशधातापयद्दिश ॥२६॥
तदा तत् प्राप्य दुष्प्रापमंदवर्यमृपिमस्तुतम् ।
स विभ्रममतिविभ्रा विनये विनयो हत ॥२७॥
बृहस्पते स वै भार्यान्तारा नाम अशस्विनीम् ।
जहार सहसा सवर्चनवमत्याङ्गिरःमुताम् ॥२८॥
स याच्यमानो देवश्च तथा देवर्षिभिश्च ह ।
नैव व्यसर्जयत्तारा तस्मायाङ्गिरसे तदा ॥२९॥
उशनास्तस्य जग्राह पाप्णिमङ्गिरसो द्विजाः ।
स हि शिष्यो महातेजा पितु पूर्वं बृहस्पते ॥३०॥
तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पते ।
पाप्णिमग्राहोऽभदेव प्रगृह्याभगवन्धनु ॥३१॥
तेन ब्रह्मपिमुख्येभ्य परमास्त्र महात्मना ।
उद्दिश्य देवानुत्सृष्ट येनैषा नाशित यश ॥३२॥

उम राजा सोम की सिनी-बृह-वपु-पुष्टि-प्रभा-वसु-कीर्त्ति-धृति और लक्ष्मी इन नौ देवियों ने सेवा की थी ॥२५॥ भवभूत को प्राप्त करने व्ययता से रहित और ममस्त देव तथा ऋषियों के द्वारा पूजित अति राजाओं का अति राजेन्द्र उसने दश प्रकार से दिशाओं को तापित किया था ॥२६॥ हे विप्रो !

उम समय में श्रुतियों के द्वारा मन्त्रुत उम दुष्प्राप्त ऐश्वर्य को प्राप्त करके वह विनय में हृत एक भीतिहीन विशेष रूप से भ्रान्त मतिवाना होगया था ॥२७॥
उमने ममन्त घाट्टिर पुत्रोको घबमानित कर बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी साय नाम भारी का सह्या हरण किया था ॥२८॥ उम गगन में देवों के द्वारा तथा ममन्त देवधियों के द्वारा वह वाचिन् किया गया अर्थात् तारा के वाचिन् दे देने की याचना की गई थी किन्तु उम उम घाट्टिरम का तारा नहीं छोड़ी थी ॥२९॥ हे द्विज वृन्द ! उम समय उम घाट्टिरम का ५४ भयवा साथ उराना ने ग्रहाय किया था वह महान् तेजस्वी बृहस्पति के पिता का पहिमा सिध्य था ॥३०॥ उम स्वेष्ट ने भयवान् एत इव अत्रपव धनुष ग्रहण करके उम बृहस्पति के पाप्माप्राह अर्थात् सहायता करने को हुए थे ॥३१॥ उम महात्मा ने ब्रह्मपि मुग्धों के दिने परम अन्त देवा को उद्देश करके छोड़ा था किन्तु इनके यश को लप कर दिया था ॥३२॥

तत्र तद्युद्धमभवत् प्रत्यधन्नागवामयम् ।
देवाना दानवानाश्च तापधपवर महन् ॥३३॥
तत्र मिष्टाश्रया देवान्तुषिताश्च व ये स्मृता ।
ब्रह्माग अग्न जम्भुगदिदेव पिनामहम् ॥३४॥
तनो निवार्योशनर्म एत ग्यहश्च पाट्टरम् ।
ददावर्द्धिरमं तारा स्वयमेव पिनामहम् ॥३५॥
अन्तर्बन्धो य ता हृष्टा तारान्नाराक्षिताननाम् ।
गर्भमुत्पृजने न त्व विप्र प्राह बृहस्पति ॥३६॥
मर्त्तयादा तनो योनो गर्भो धाय बयश्चन ।
अयो नायमुत्सन्तु कुमार दग्नुहन्मयम् ॥३७॥
ईधिरास्तम्यमामाश अक्षन्ममिष पावकम् ।
आतमानोऽय भयवान् देवानामाक्षिपद्गु ॥३८॥
तत्र मगयमागमागमागमयम् मुख ।
मत्स्य ब्रह्मि मुन बन्ध मोमग्याय वृहस्पते ॥३९॥

ह्लीयमाणा यदा देवान्नाह सा साध्वसायु वा ।
तदा ता शप्नुमारब्ध कुमारो दस्युहन्तमः ॥४०॥

उस समय वहा पर देव और दानवों का लोको के क्षय को करने वाला महान् प्रलयक तारकामय युद्ध हुआ था ॥३३॥ उस समय में तीन शिष्ट देव जो वि लुपिता कहे जाते हैं आदि देव ब्रह्माजी पितामह की शरणागति में प्राप्त हुए थे ॥३४॥ इसके अनन्तर पितामह ने स्वयं ही उशना को और ज्येष्ठ शङ्कर रुद्र को निवारण कर आदिदेव के लिये तारा देदी थी ॥३५॥ उस चन्द्रमुखी तारा को उस समय गर्भवती देखकर विप्र बृहस्पति ने उससे कहा कि तू गर्भ का उत्सर्जन मत करे ॥३६॥ मेरे तनु योनि में किसी भी प्रकार से गर्भ-धारण करना चाहिये । इसके अनन्तर उस दस्यु हन्तम कुमार का अवसर्जन नहीं किया था ॥३७॥ ईपिका-स्तम्भ को पाकर अग्नि की भाँति उत्पन्न होते ही भगवान् ने देवों के शरीर पर आशेष किया था ॥३८॥ तबनों सशय को प्राप्त होने वाले देवों ने तारा से कहा—तुम सत्य सत्य बतला दो—यह पुत्र किमका है ? बृहस्पति का है या सोम का है ? ॥३९॥ तब लज्जित होनी हुई उमने जो ठीक या बेठीक था देवों को बतला दिया । उस समय कुमार दस्युहन्तम ने उसको खाप देने का आरम्भ किया था ॥४०॥

सन्निवार्यं तदा ब्रह्मा तारा चन्द्रस्य संशय ।
यदत्र तथ्यन्तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥४१॥
सा प्रज्जलिरुवाचेद ब्रह्माण वरद प्रभुम् ।
सोमस्येति महारमान कुमारन्दस्युहन्तमम् ॥४२॥
तत स तमुपाध्याय सोमो दाता प्रजापति ।
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमत ॥४३॥
प्रतिपूर्व्वञ्च गमने समम्युत्तिष्ठते बुधः ।
उत्पादयामास तदा पुत्रं वं राजपुत्रिका ॥४४॥
तन्य पुत्रो महातेजा बभूवैनः पुरुरवा ।
उर्वंश्या जज्ञिरे तस्य पुत्राः पट् सुमहोजसः ॥४५॥

प्रसह्य धपितस्तत्र विवशो राजयक्षमणा ।
 ततो यक्षमाभिभूतस्तु सोम प्रक्षीणमण्डल ।
 जगाम शरणायाय पितर सोऽग्निमेव तु ॥४६॥
 तस्य तत्पापशमन चकाराग्निर्महायशा ।
 स राजयक्षमणा मुक्त श्रिया जज्वान सर्व्वञ्ज ॥४७॥
 एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तित द्विजसत्तमा ।
 वगन्तस्य द्विजध्रेष्ठा कीर्त्यमान निबोधत ॥४८॥
 धन्यमारोग्यमायुष्य पुष्य कल्मषशोधनम् ।
 सोमस्य जन्म श्रुत्वंव सर्वपापे प्रमुच्यते ॥४९॥

उम समय में ब्रह्माजी ने मंत्रिवारण कर जो चन्द्र का मण्डल था उसके विषय में कहा—हे तारा । यहाँ पर जो भी तप्य हो वह बतादो कि यह किमका पुत्र है ॥४१॥ वह प्राञ्जलि होकर अर्घ्या हाथ जोड़कर वर देने वाले प्रभु ब्रह्माजी ने यह बोली कि कुमार दम्पुहन्तस्य सोम का ही है ॥४२॥ इसके पश्चात् उसने अर्घ्या ब्रह्मा ने उमका उपाध्याय करके सोमदत्ता प्रजापति है और उसके धीमात् पुत्र का नाम बुध यह खला था ॥४३॥ और अनिपूर्व के गमन में बुधो से समन्वयित होता है । तब राजिका ने पुत्र को उत्पन्न किया था ॥४४॥ उमका महान् तेज वाला पुष्करवा ऐल पुत्र हुआ । उसके उर्वशी में महान् श्रोत्र वाले छै पुत्रो ने जन्म ग्रहण किया था ॥४५॥ वहाँ बलपूर्वक राजयक्षमा के द्वारा विवश होते हुए धपित किया गया था । इसके अनन्तर राजयक्षमा ने अग्निभक्ष पाने वाला होकर सोम प्रक्षीण मण्डल वाला हो गया । इसके पश्चात् वह पिता अग्नि के ही शरण में गया था ॥४६॥ महान् वध वाले अग्नि ने उसके उस पाप का क्षमन किया था और वह राजयक्षमा से छुटकारा पाकर सर्व प्रकार का शोभा जाज्वल्यमान हो गया था ॥४७॥ हे द्विज ध्रेष्ठो ! यह मैंने सोम का जन्म बतला दिया है । अब उमका वध द्विजा में थोड़ा आप समझनो जिसको कि मेरे द्वारा कहा जा रहा है ॥४८॥ यह सोम के जन्म की कथा का वर्णन परम धन्य—आरोग्य और आयु देने वाला पवित्र है । यह पापों का नाशक है । मनुष्य सोम के जन्म की कथा को सुनकर ही समस्त पापों से छूट जाता है ॥४९॥

प्रकरण ५३-चन्द्रवंश कीर्तन

सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरुरवा ।
 तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिण ॥१॥
 ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः ।
 आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनाञ्च ददौ महीम् ॥२॥
 सत्यवाक् कर्मबुद्धिश्च वान्तः सवृतमैधुनः ।
 भर्ता च पुत्रो लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ॥३॥
 त ब्रह्मवादिन दान्तः धर्मज्ञः सत्यवादिनम् ।
 उर्वशीं वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥४॥
 तथा सहावसद्राजा दशवर्षाणि चाष्ट च ।
 सप्त पटं भूमिं चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान् ॥५॥
 वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।
 अलकाया विद्याताया नन्दने च वनोत्तमे ॥६॥
 गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे ।
 उत्तराक्ष कुम्भे प्राप्य कलापग्राममेव च ॥७॥
 एतेषु वनमृग्येषु सुरैराचरितेषु च ।
 उर्वंश्या महितो राजा रेमे परमया मुदा ॥८॥

श्री मूलकी ने कहा—सोम का पुत्र बुध हुआ और बुध का पुत्र पुरुरवा हुआ और बहुत ही तेजस्वी—दान देने के स्वभाव वाला—यजन करने वाला तथा बहुत दक्षिणा देने वाला था ॥१॥ पुरुरवा ब्रह्मवादी था तथा शत्रुओं के द्वारा पराक्रान्त हुआ एवं युद्ध में वह दुर्जय था अर्थात् रणभूमि में कोई भी आत्मा नहीं उसे जीत नहीं सकता था । वह अग्निहोत्र का आहरण करने वाला था और यज्वाओं को उसने भूमि का दान दिया था ॥२॥ वह सत्य वचन बोलने वाला, सवृत मैधुन, सुन्दर और कर्मों के सम्पादन में बुद्धि रखने वाला हुआ था । लोको में वह पुत्र अत्यन्त ही रूप में अनुपम हुआ था ॥३॥ उस समशील धर्म के ज्ञान वाले—सत्यवादी और ब्रह्म की चर्चा करने वाले राजा की उर्वंशी ने

मान का त्याग कर करण किया जोकि उर्वशी बड़े ही सदा वाली थी ॥४॥
 वीर्य वाला राजा उनके साथ घठारह वर्ष तथा चरानोम—बौनठ और घरगी
 वर्ष तक रहा था ॥५॥ मन्दाकिनी के छठ पर, परम रम्य चैत्रम्ब वन में,
 विशाल मलकापुरी में और वनो में सर्वश्रेष्ठ मन्दन वन में विवास किया था ॥६॥
 गन्धमादन पर्वत की तराई में, बिरियो में उत्तम मेरु के शिखरों पर और उत्तर
 कुवन्तो को प्राक्त पर तथा कलाप ग्राम में जाकर काम किया था ॥७॥ इन उक्त
 मुख्य वनो में जोकि देखो के द्वारा यैबिन ये राजा न प्रियशी उर्वशी के साथ
 रहने हुए परमानन्द के साथ रमण किया था ॥८॥

गन्धर्वा चोर्वशी देवी राजान् मानुष ययम् ।
 देवानुत्सृज्य सम्प्रामा तथो ब्रूहि बहुभ्रुत ॥९॥
 ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुष समुपस्थिता ।
 ऐत तु त वरारोहा समयेन व्यवस्थिता ॥१०॥
 आत्मन आपमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु ।
 अतस्तदज्ञानं च भक्तमात् सह मयुतम् ॥११॥
 द्वी मेघौ शयनाभ्यामे स तावद्व्यवतिष्ठते ।
 घृणमानं तथाहारः कालमेवन्तु पार्श्व ॥१२॥
 यद्यपि ममया राजन् यावत्वालम्बे ते हृदम् ।
 तावत्कालं नु वरस्यामि एष न समम कृत ॥१३॥
 तस्यास्तु समयं सर्वं म राजा पर्यपालयत् ।
 एव सा चावमन् तस्मिन् पुष्कवसि भामिनी ॥१४॥
 वर्षाप्रियं चतुर्षष्टि तद्भुक्त्वा आपमात्रिणा ।
 उर्वशी मानुष प्राप्ता गन्धर्वाश्चिन्तयान्विता ॥१५॥
 चिन्तयध्वं महायागा यथा सा तु वगाङ्गना ।
 प्रागच्छेत्तु पुनर्ह्वानुर्वशी स्वर्गभूपला ॥१६॥

ऋषियो ने कहा—हे बहुभ्रु । यद्यपि बहुत परिश्रम के गुनने वाले
 या ज्ञान वाले । उर्वशी देवी तो गन्धर्व जाती की थी जोकि देवा की ही एक
 गायन करने वाली विनोद जानि है, उसके मनुष्य जाति के राजा को समस्त

देवताओं को छोड़कर किम तरह वरण किया था अर्थात् वह देवाङ्गना होते हुए मनुष्य को कैसे प्राप्त होगई—यह स्पष्ट बतलाइये ॥६॥ थी मृतजी ने कहा— वह उर्वशी ब्रह्म ऋषि ने अभिभूत होकर मनुष्यता को प्राप्त हुई थी उस बरागेहा ने (वह जिनके घोर के भङ्गों का अग्रिम भागेहण होता है) कुछ समय तक नियम पालनपूर्वक व्यवस्थित होकर ऐल के पाम निवास किया था ॥१०॥ उसने अपने ऋषि की भक्ति के लिए कुछ नियम (घर्त) किये थे और वे ये थे— एक तो नानावस्था में दर्शन नहीं करना था और दूसरा बिना काम की वापना के मैथुन करने का था ॥११॥ वह राजा अपनाभ्याम में दो भेय तक व्यवस्थित रहता था और राजा केवल एतवार घुन का ही आहार करने वाला रहता था ॥१२॥ उर्वशी ने ये घर्त तय करनी थी और राजा से कह दिया था कि हे राजन् ! आपकी ये घर्तें जब तक टूटना के साथ पालन की जावेंगी उतने ही समय तक मैं आपके साथ निवास करूँगी—यह हमारा किया हुआ समय अर्थात् नियम तथा घर्त है ॥१३॥ उस उर्वशी के द्वारा किए हुए उस नियम को उस राजा ने पूर्ण रूप से पालन किया था और इस प्रकार में वह भामिनी (उर्वशी) उस पुरुषवा के पाम निवास करती थी ॥१४॥ इसके अनन्तर ऋषि मोहित उर्वशी की उसकी भक्ति में खोमठ वरं अर्पित होगये थे । उर्वशी मनुष्य जाति के राजा के पाम चली गई—इस बात में गन्धर्व लोग अत्यन्त विन्ता से युक्त होगये थे ॥१५॥ गन्धर्वों ने कहा—हे महान् भाग वागो ? ऐसा कोई उपाय मोचो, कि वह बराङ्गना उर्वशी जिस रीति में फिर देवा के पाम वापिन आजावे क्योंकि वह तो हम स्वर्गमोच की सोचा करने वाले भूपल के समान है ॥१६॥

ततो विश्वावमुनिमि तत्राह वदता वर ।

नया तु समयस्तत्र वियमाणो मनोऽनघ ॥१७॥

समयव्युत्तमान् सा वै राजान त्यज्यते यथा ।

तदह वच्मि यः सर्वं यथा त्यज्यति मा नृपम् ॥१८॥

महमा योगमेध्यामि युष्मान कार्यमिदमे ।

एवमुक्तरा गनन्तत्र प्रनिष्ठान महायना ॥१९॥

स निशायामथागम्य मेपमेक जहार वं ।
 मातृवद्वर्त्तते सा तु मेपयोश्चारुहासिनी ॥२०॥
 गन्धर्वागमनं ज्ञात्वा शयनस्थाय यक्षस्विनी ।
 राजानमब्रवीत्मा तु पुत्रो मे ह्लियतेति वं ॥२१॥
 एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वं नृप ।
 नग्नं द्रक्ष्यति मा देवो समयो वितथो भवेत् ॥२२॥
 ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेपमाददु ।
 द्वितीयेऽप्यहते मेपे ऐल देवी तमब्रवीत् ॥२३॥
 पुत्री मम त्वत्पौ राजघननायाया इव प्रभो ।
 एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावित ॥२४॥

इसके अनन्तर उस समय वही पर बोमने वाली मे श्रेष्ठ विद्वावसु नाम
 वाला गन्धर्व घोला कि उसने वही पर भय से रहित समय (नियम या कर्त)
 किया हुआ माना है ॥१७॥ उस किये हुए समय (नियम) के व्युत्क्रम होने से
 ही राजा को त्याग देगी और जिस तरह उस समय का व्युत्क्रम हो सकता है
 वह सब मैं तुमको बतलाता हूँ कि जिसके कारण वह राजा का त्याग करदे
 ॥१८॥ मैं तुम्हें ही आप लोग के कार्य की मिट्टि के लिये योग को प्राप्त
 होऊँगा । वह कहकर वह महान् यशवाला विद्वावसु उस प्रतिष्ठान पर पहुँच
 गया था ॥१९॥ उसने राजा से आकर उन दो मेपों में से एक का हरण कर
 लिया था । वह बार अर्थात् सुन्दर हास वाली उर्वशी उन दोनों मेपों की माता
 की भाँति रहती है ॥२०॥ शयन में स्थित रहती हुई यक्षस्विनी उस उर्वशी ने
 राजा से कहा मेरा पुत्र का हरण हुआ है ॥२१॥ इस तरह कहा गया राजा
 नग्न स्थित हो जाना है वह निश्चय करके कि वह देवी मुझे नग्न का देवेगी तो
 जो समय था (प्रपञ्च कर्त थी) वह असत्य हो जायगा ॥२२॥ इसके बाद पुनः
 गन्धर्वों ने दूसरा मेप भी ले लिया था । दूसरे मेप के अपहृत हो जाने पर वह
 देवी उर्वशी ऐल मे बोली ॥२३॥ हे प्रभो ! हे राजन् ! भगवा की भाँति मेरे
 दोनों पुत्र अपहृत हो गये हैं । ऐसा कहा गया राजा उस समय नग्न हो उठ
 कर दौड़ा ॥ २४ ॥

मेपाभ्या पदवी राजन् गन्धर्व्व्युत्थितामथ ।
 उत्पादिता तु महती माया तद्भवन महत् ॥२५॥
 प्रकाशितन्तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा ।
 नग्न दृष्ट्वा तिरोभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ॥२६॥
 तिरोभूतान्तु ता ज्ञात्वा गन्धर्वास्तत्र तावुभौ ।
 मेपो त्यक्त्वा च ते सर्वे तगैवान्तर्हितामवन् ॥२७॥
 उत्सृष्टावुरणी दृष्ट्वा राजा गृह्यागत प्रभु ।
 अपश्यस्ता तु वै राजा विलम्बाय मुदु खित ॥२८॥
 चचार पृथिवी चैव मार्गमाणस्ततस्ततः ।
 अथापश्यच्च ता राजा कुरुक्षेत्रे महाबल ॥२९॥
 प्लक्षतीर्षे पुष्करिण्या विगाडेनाम्बुनाप्नुताम् ।
 श्रीङ्गन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभि सह शोभनाम् ॥३०॥
 अपश्यत्सा तत मुञ्चू राजानमविदूरत ।
 उर्वशी ता सखी प्राह अयं स पुरपोत्तम ॥३१॥
 यस्मिन्नहमवात्स हि दर्शयामास त नृपम् ।
 तत आविर्बभूवुस्ता पञ्चचूडाप्सरास्तु ता ॥३२॥

हे राजन् ! मेपा ने द्वारा बनी हुई पदवी को अर्थात् मार्ग में राजा ने
 दौड़ लगाई थी और गन्धर्वों के द्वारा बनी माया उत्पन्न करदी गई थी कि वह
 महान् भवन सहसा प्रकाश से युक्त होगया और फिर उस उर्वशी ने राजा को
 नग्न देख लिया था तथा नगनावस्था में राजा को देखकर वह कामरूप धारण
 करने वाली अप्सरा तिरोभूत होगई थी ॥२५-२६॥ वहाँ पर उन गन्धर्वों ने
 जब यह जान लिया कि वह उर्वशी छिप गई है यानी तिरोहित होगई है तो ये
 दोनों मेपो को वहाँ पर छाड़ कर वे सब भी वही अन्तर्धान होगये थे ॥२७॥
 उन त्यागे हुए मेपो को लेकर राजा आया तो वहाँ उस अप्सरा उर्वशी को न
 देखते हुए बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगी ॥२८॥ हमके पदचात् वह
 राजा उसे धर-उधर खोजता हुआ पृथिवी पर विचरगु कर रहा था और हमके
 पदचात् महा बलवान् राजा न उमका कुरुक्षेत्र में देखा था ॥२९॥ वह उर्वशी

प्लक्ष तीर्थ में जो पुष्करिणी है उसमें खूब गहरे जल में आप्नुत थी और पाँच अप्सराओं के साथ क्रीडा करती हुई परम सौभा से युक्त वहाँ उस को राजा ने देखा था ॥३०॥ उस मुझू ने निवट से राजा का देखा और इसके पश्चात् अपनी उन सहेलियों से उर्वशी ने कहा कि वह यह अष्ट पुरुष है ॥३१॥ जिसके साथ मैंने निवास किया था—यह कहकर उनको वह राजा दिखला दिया था । इसके अनन्तर वे सब प्रकट होगईं थी । पञ्चवृद्धा अप्सरा थी ॥३२॥

दृष्ट्वा तु राजा सा प्रीत प्रलापान् कुरुते बहून् ।

आयाहि तिष्ठ मनसा धीरे वचसि तिष्ठ हे ॥३३॥

एवमादीनि सूदमाणि परस्परमभाषत ।

उर्वशी त्वग्रवीच्च ल समर्भाह त्वया प्रभो ॥३४॥

सवत्सरात् कुमारस्ते भविता नव सशयः ।

निशामेकान्तु वै राजा ह्यवसत्तु तया सह ॥३५॥

सन्प्रदृष्टो जगामाथ स्वपुत्रन्तु महायशाः ।

गते सवत्सरे राजा उर्वशी पुनरागमत् ॥३६॥

उपित्वा तु तया सार्द्धं मेकरात्र महामनाः ।

वामार्त्तञ्चा अवीदीनो भव नित्य ममेति वै ॥३७॥

उर्वश्ययात्रवीच्च ल गन्धर्वास्ति वरं ददुः ।

त वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतास्त्वमेव हि ॥३८॥

वृणे नित्य हि सालोक्य गन्धर्वाणां महात्मनाम् ।

तत्तत्पुक्त्वा वर वयं गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥३९॥

स्थालीमग्ने पुरयित्वा गन्धर्वाश्च तमब्रुवन् ।

अनेन दृष्ट्वा लोकन्त प्राप्स्यसि त्व नराधिप ॥४०॥

राजा ने उसकी देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की और वह बहुत से प्रलाप करने लगा जैसे—आओ, ऊहरो, मनसे धीरे वचन में स्थित होजा, इत्यादि अनर्थक वचन राजा ने कहे ॥३३॥ इस प्रकार से बहुत-सी सूक्ष्म बातें आपस में बोलीं और फिर उर्वशी ने ऐत से कहा—हे प्रभो ! मैं आपसे गर्भ वाली होगई हूँ ॥३४॥ एक वर्ष में तुम्हारा कुमार उत्पन्न होगा—इसमें कोई भी संशय

मेघाम्या पदवी राजन् गन्धर्व्य्युं स्थितामथ ।
 उत्पादिता ॥ महती माया तद्भूवन महन् ॥२५॥
 प्राशितन्तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा ।
 नग्न दृष्ट्वा तिरोभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ॥२६॥
 तिरोभूतान्तु ता ज्ञात्वा गन्धर्वान्वित्र सानुभो ।
 मेघो त्यक्त्वा च ते सर्वे सत्रीवान्तर्हिताभवन् ॥२७॥
 उत्सृष्टावुराणो दृष्ट्वा राजा मृह्यागत्र प्रभु ।
 अपश्यस्ता तु यै राजा विललाप मुदु खित ॥२८॥
 चचार पृथिवी चैव मार्गंमालस्ततस्ततः ।
 यथापश्यच्च ता राजा बुरशेने महाबल ॥२९॥
 प्लक्षतीर्ये पुष्करिण्या विगाहेनाभ्युनाप्नुताम् ।
 श्रीङ्गतीमप्सरारोभिश्च पञ्चभि सह शोभनाम् ॥३०॥
 अपश्यस्ता तत गुभ्रू राजानमबिहूरत ।
 उर्वशी ता सखी प्राह भय स पुरपोत्तम ॥३१॥
 यस्मिन्नहमवात्स हि दर्शयामाम त नृपम् ।
 तत आधिर्वभूवुस्ता पञ्चचडाप्सरास्तु ता ॥३२॥

हे राजन् ! मेघा के द्वारा बनी हुई पदवी को अपर्णा मार्ग में राजा ने
 ॥ लगाई थी और गन्धर्वों के द्वारा बनी माया उत्पन्न करदी गई थी कि वह
 तद् भवन सहसा प्रकाश में युक्त होगया और फिर उस उर्वशी ने राजा को
 देख लिया था तथा नग्नावस्था में राजा को देखकर वह कामरूप धारण
 न वाली अप्सरा सिराभूत होगई थी ॥२५-२६॥ वहीं पर उन गन्धर्वों ने
 यह जान लिया कि वह उर्वशी छिप गई है यानी तिरोहित होगई है तो वे
 में मेघो को वहाँ पर छोड़ कर वे सब भी वही अन्तर्धान होगये थे ॥२७॥
 त्यागे हुए मेघो को लेकर राजा आया तो वहाँ उस अप्सरा उर्वशी को न
 ते हुए बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगी ॥२८॥ इसके परचात् वह
 ता उसे इधर उधर खोजता हुआ पृथिवी पर विचरण कर रहा था और इसके
 वात् महा बलवान् राजा ने उसका कुरुनेत्र में देखा था ॥२९॥ वह उर्वशी

प्लक्ष तीर्थ में जो पुष्करिणी है उसमें खूब गहरे जल में धाप्तुत थी और पाँच
अप्सरसों के साथ खीड़ा करती हुई परम शोभा से युक्त वहाँ उस को राजा ने
देखा था ॥३०॥ उस सुभू ने निकट से राजा को देखा और इसके पश्चात्
अपनी उन सहेलियों से उर्वशी ने कहा कि वह यह श्रेष्ठ पुरुष है ॥३१॥ जिसके
साथ मैंने निवास किया था—यह कहकर उनको वह राजा दिखता दिया था ।
इसके प्रगल्भ वे सब प्रकट होगई थी । पञ्चभूषा अप्सरा थी ॥३२॥

दृष्ट्वा तु राजा ता प्रीत प्रलापान् कुरुते बहून् ।

आयाहि तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ हे ॥३३॥

एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत ।

उर्वशी त्वप्रवीक्षं ल सगर्भाह त्वया प्रभो ॥३४॥

सवस्तरात् कुमारस्ते भविता नव सद्यः ।

निशामेकान्तु वं राजा ह्यवसत्तु तया सह ॥३५॥

सन्प्रदृष्टो जगामाथ स्वपुरन्तु महायशा ।

गते सवत्सरे राजा उर्वशी पुनरागमत् ॥३६॥

उपित्वा तु तया सार्द्धमेकरात्र महामनाः ।

कामार्तञ्चा ब्रवीद्दीनो भव नित्य ममेति वं ॥३७॥

उर्ध्वक्षयाववीक्षं ल गन्धर्वास्ते वर ददु ।

त वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतास्त्वमेव हि ॥३८॥

वृणो नित्य हि सालोक्य गन्धर्वाणां महात्मनाम् ।

तत्तयुक्त्वा वर वञ्चे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥३९॥

स्थालीमग्ने पूरयित्वा गन्धर्वाश्च तमब्रूवन् ।

अनेन दृष्ट्वा लोकन्त प्राप्स्यसि त्व नराधिप ॥४०॥

राजा ने उसको देखकर परम असन्नता प्राप्त की और वह बहुत से प्रलाप
कर्म लगा जैसे—आभो, ठहरो, मनसे घोर वचन में स्थित होजा, इत्यादि
अनर्थक वचन राजा ने कहे ॥३३॥ इस प्रकार से बहुत-सी सूक्ष्म बातें आपस
में बोली और फिर उर्वशी ने ऐस से कहा—हे प्रभो ! मैं आपसे गर्भ वाली
होगई हूँ ॥३४॥ एक वर्ष में तुम्हारा कुमार उत्पन्न होगा—इसमें कोई भी सद्य

मही है । यह राजा एक रात बड़ा उगरे गाय रहा ॥३५॥ वह राजा पाप प्रगल्भ होता हुआ मरान् यज्ञ घाता धनने पुर को बारिष चला गया था । एक वर्ष के समाप्त होजाने पर राजा ऐम पुन वही उर्वशी के पास आया था ॥३६॥ महान् मन घाता वह राजा गार्ध एक रात्रि तब वही उगरे गाय निवाम करके घोर वाम से घात होना हुआ दीन होकर उर्वशी से बोला तुम मेरी नित्य ही रहने वाली होजाओ ॥३७॥ घोर इनके अन्तर्गत उर्वशी ने ऐम से कहा उन गन्धर्वों ने नरदान दिया है—उमका वरण कर—नो हे महाराज ! तुमही इनमें बहो ॥३८॥ महामा गन्धर्वों के नित्य गालोप्य को करा । 'तथास्तु'—यह कह कर घर्षान् ऐमा ही होके गन्धर्वों ने वर दिया ॥३९॥ घोर स्थाली को घनि से भर कर गन्धर्वों ने उसमें कहा—नरो के स्वामी ! इनमें यज्ञन काके तू उस लोक को प्राप्त हो जायगा ॥४०॥

तमादाय कुमारन्तु भगरायोपचममे ।

निःक्षिप्य समरण्याञ्च स पुत्रन्तु गृहं ययी ॥४१॥

पुनरादाय हृदयान्निमद्वत्य तत्र दृष्टवान् ।

समीपतस्तु त दृष्ट्वा हृद्वत्य तत्र विस्मितः ॥४२॥

गन्धर्व्यम्यस्तथास्यातुमग्निना या गतस्तु सः ।

श्रुत्वा तमर्थमपिलमरणि तु समादिशत् ॥४३॥

अद्वत्थादरणि कृत्वा मयित्वाग्नि यथाविधि ।

तेनेष्ट्वा तु सलोक नः प्राप्स्यसि त्व नराधिप ।

मयित्वाग्नि त्रिधा कृत्वा ह्ययजत्स नराधिप ॥४४॥

दृष्ट्वा यज्ञैर्वहुविधं गंतस्तेषां सलोकताम् ।

वासाय च स गन्धर्व्यं स्त्रेताया स महारथः ।

एकोऽग्नि पूर्वमासीद्व ऐलस्त्री स्तान्कल्पयत् ॥४५॥

एवप्रभावो राजासीदलस्तु द्विजसत्तमाः ।

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलकृते ॥४६॥

राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवी पतिः ।

उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायज्ञा ॥४७॥

तस्य पुत्रा वमूबुहि पडिन्द्रोपमतेजस ।

गन्धर्व्यलोके विदिता आयुर्दीमानमावमुः ॥४८॥

विदवायुश्च गतायुश्च गतायुश्चोर्वदीमुता ।

प्रमायमोस्तु यं जातो भीमो राजाय विदरजिन् ॥४९॥

उग कुमार को लेकर नगर के लिये चर दिया था वह उग पुत्र को धरणी में दायकर गृह बना गया ॥४९॥ फिर साकर हृदय अग्नि अदरप (पीपन) को वही देगा था । गमोप में उमे अदरप को देगा वही शिमिल होगया ॥४९॥ गन्धर्वों में उग प्रचार में रहने के लिये अग्नि के द्वारा भूमि में गया हुआ वह उग गमरन अर्थ को अरुण कर अग्नि को आजा दी ॥४९॥ अदरप में धरणी में करके धीर अग्नि को यथा विधि के अनुसार मथन कर है नगधिप । मुम उगमे यजन करके धाय हमारे मोह को प्राप्त हो जायेंगे । अग्नि का मथन करके उग राजा ने उगरे तीन भाग करके यजन दिया था ॥४९॥ वह महारथ गन्धर्व वृत्त प्रचार के यज्ञ के द्वारा यजन करके प्रेता में उनकी गमोरता को प्राप्त हुआ धीर वाग के लिये योग्य बना था । पहिले एक अग्नि का राजा ऐम न उस तीन बना दिया था ॥४९॥ एक प्रचार के प्रभाव वाला वह राजा ऐम हुआ है । है द्विज थेडो । राजा ऐम महर्षियों के द्वारा अदरप धीर वाग पुण्य देम में हुआ था ॥४९॥ वह महान् यज्ञवाला भूपति यमुना के उत्तर के तट पर प्रतिष्ठान में प्रयाग में राज्य किया जाता था अर्थात् उगने अपनी राजधानी प्रयाग की बनाया था ॥४९॥ उगरे हृद के समान लेकर ही पुत्र हुए थे जोहि गन्धर्वों के मोह में बिलि थे । उनके नाम-धायु-भीमान्-धमायु-विदवायु-गतायु धीर गतायु थे जोहि उरेंडी के पुत्र थे उमायु में समान एक विदर को जीतने वाला राजा भीम उगम्ल हुआ ॥४९-४९॥

भीमान् भीमस्य दायादो राजामोतराश्चनग्रम ।

विद्वान्नु वाश्चनम्यापि गुणोचोऽमुन्महावन ॥५०॥

गुणोत्तमामरज्जह्नुः केनिहागमंममरः ।

प्रतिगम्य तपो यज्ञा विपने यज्ञवर्मंति ॥५१॥

प्लावयामास त देश भाविनोर्धस्य दर्शनात् ।

गङ्गाया प्लावित दृष्ट्वा यज्ञवाट समन्तत ॥५२॥

मौहोत्रिवरद क्रुद्धा गङ्गा सरक्तलोचन ।

यस्य गङ्गे ज्वलेपस्य सद्य फलमवाप्नुहि ॥५३॥

एनन्ते विफल सर्व्वं पीतमम्भ करोम्यहम् ।

राजपिशा ततः पीता गङ्गा दृष्ट्वा मुरप्य ॥५४॥

उपनिन्युमंहाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ।

यौवनाश्वस्य पीत्रोन्तु कावेरोज्जह्नु रावहत् ॥५५॥

युवनाश्वस्य शापेन गङ्गा येन विनिर्ममे ।

कावेरी सरिता त्र्येष्टा जह्नु भाव्यामिनिन्दिताम् ॥५६॥

जह्नुश्च दयित पुत्र मुहोत्र नाम धार्मिकम् ।

कावेर्या जनयामास अजकस्तस्य चात्मज ॥५७॥

श्रीमान् भीम का दायाद अर्थात् पुत्र काञ्चनप्रभ राजा था और काञ्चनप्रभ राजा का पुत्र महान् बलवान् तथा परम विद्वान् सुहोत्र नाम वाला हुआ था ॥५०॥ सुहोत्र का पुत्र केशिका के गर्भ से उत्पन्न होने वाला जह्नु नाम वाला हुआ । जिसके विस्तृत यज्ञ कर्म में गङ्गा ने भाकर उस भाग को होने वाले प्रयोजन के दर्शन के कारण से पूर्णतः प्लावित कर दिया था । गङ्गा के द्वारा जब और से प्लावित यज्ञवाट को सुहोत्र के पुत्र जह्नु ने देखा ॥५१-५२॥ धरद जह्नु गङ्गा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसके नेत्र क्रोधावेशसे लाल होगये थे—उसने कहा—हे गङ्गा ! इस घमण्ड का तू तुरन्त ही फल प्राप्त कर ॥५३॥ यह नेरा जल जब पाल कर मैं विफल कर देता हूँ । शेषपियो ने उस राजपि के द्वारा गङ्गा को पीत अर्थात् पाल भी हुई देखा ॥५४॥ पीत गङ्गा को देखकर महान् भाग वाले सुरपियो ने उसको जह्नु राजा की पुत्री उपनीत किया था । जह्नु राजा ने यौवनाश्व की पौत्री कावेरी के साथ विवाह किया था ॥५५॥ युवनाश्व के जिन शाप से गङ्गा ने त्र्येष्ट सरिता कावेरी को जह्नु की प्रतिनिधित्व भाषा बनाया था ॥५६॥ जह्नु राजा ने दयित पुत्र जोकि परम धार्मिक था ऐसा सुहोत्र नाम वाला कावेरी में उत्पन्न किया था और उसका चात्मज अजक हुआ था ॥५७॥

अजकस्य तु दायादो वलाकाश्वो महायया ।
 वभूवुश्च गय शीलः कुञ्जस्तस्यात्मज स्मृत ॥१८॥
 कुशपुत्रा वभूवुश्च चत्वारो वेदवचंस ।
 कुशाश्व. कुशनाभश्च अमूर्त्तारिष्यशिवगुः ॥१९॥
 कुशस्तम्बस्तपस्वेपे पुत्रार्थी राजसत्तमः ।
 पूर्णो वर्षसहस्रे वे क्षतक्रानुमपश्यत ॥२०॥
 समुपेतपत्तं दृष्ट्वा राहस्याल पुरन्दरः ।
 समर्थं पुत्रजनने स्वयमेयास्य शाश्वतः ॥२१॥
 पुत्रत्व कल्पयामास स्वयमेव पुरन्दरः ।
 गाधिर्नामाभवत्पुत्र कौशिक. पाकशासनः ॥२२॥
 पौरुषुत्तामवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत ।
 पूर्व्वं कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभाम् ।
 ता गाधिपुत्र काव्याय ऋचीकाय ददौ प्रभु ॥२३॥
 तस्या पुत्रस्तु वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दन ।
 पुत्रार्थे साधयामास चर गाधेस्तथैव च ॥२४॥
 तथा चाहूय मुष्टतिष्ठ'चीको भार्गवस्तदा ।
 उपयोज्यश्चररय त्वया मात्रा च ते शुभे ॥२५॥

अजक का पुत्र महान् यशः वाता बनायाश्च दुष्टा या भीर उतने पुत्र
 गय-शील तथा कुशक हुए ॥१८॥ कुश क वेदवचंस वाते कुशनाभ-कुशनाभ-
 अमूर्त्तारि और यगीतगु ये चार पुत्र हुए ये ॥१९॥ राजाशो ये परमश्रेष्ठ कुश-
 स्तम्ब ने पुत्र की प्राप्ति का इच्छुक होने हुए पुरे एक महान् वर्ष तक तपस्या
 की थी और इन्द्र का दान प्राप्त किया था ॥२०॥ महर्षि नेत्रो वाते इन्द्र ने
 उगरी उग्र तपस्वर्षा करने वाते को देखकर हमने पुत्र उत्पन्न होने से स्वयं ही
 साधन समर्थ होयगा था ॥२१॥ इन्द्र ने स्वयं ही पुत्रत्व की कन्या को भी
 और पाकशासन (इन्द्र) गाधि नाम वाता कौशिक पुत्र हुआ था ॥२२॥ पौरु-
 षुत्ता नाम वाती भार्या को उससे गाधि उत्पन्न हुए । पहिले महान् भाग वाली
 सत्यवती नाम वाती उस शुभ कन्या को प्रभु गाधि पुत्र ने ऋचीक काय का

दी यी ॥६३॥ उसमें भृगुनन्दन मरण करने वाले भाग्यव पुत्र हुए । पुत्र के लिए गाधि से चरु का मापन किया था ॥६४॥ उस समय मुमुनि को बुलाकर ऋचीक भाग्यव ने कहा—हे मुने । इस चरु का तुझे और तेरी माता को उपयोग करना चाहिए ॥६५॥

तस्या जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभ ।

अजेय क्षत्रियैर्मुद्धे क्षत्रियर्षभसूदन ॥६६॥

तवापि पुत्रं वस्याणि वृत्तिमन्त तपोधनम् ।

शमात्मक द्विजध्रेष्ठं चरुरेप विधास्यति ॥६७॥

एवमुक्त्वा तु ता भार्यामृचोको भृगुनन्दन ।

तपस्यभिरतो नित्यमरण्य प्रविवेश ह ॥६८॥

गाधिः सदारस्तु तदा क्षचीकाथमम्यगात् ।

तीर्थंयानाप्रसङ्गेन मुक्ता द्रष्टु मरेश्वर ॥६९॥

चरुद्वयं गृहीत्वा तु श्रपेः सत्यवती सदा ।

भर्तुर्वचनमम्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥७०॥

माता तु तस्य दंष्ट्रेण दुहित्रे स्व चरु ददौ ।

तस्याश्चरुमयाज्ञानादात्मन सा चकार ह ॥७१॥

अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकर शुभम् ।

धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ॥७२॥

तमृचीवस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुमृश्य च ।

तदाश्र्वीद्विजथ्रेष्ठ स्वा भार्यां वरवरिणीम् ॥७३॥

मातुः सिद्धयति ते भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ।

जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुण ॥७४॥

उसमें ऐसा एक पुत्र उत्पन्न होना जो क्षत्रियो में परमश्रेष्ठ और दीप्तिमान् होगा जिसको युद्ध में क्षत्रियो के द्वारा जीता नहीं जा सकता है, वह क्षत्रियर्षभ सूदन होगा ॥६६॥ हे कल्याणी ! तुझको भी यह चरुवृत्ति बाना—तपोधन, शम के स्वरूप वाला और द्विजों में श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥६७॥ इस प्रकार मे भार्या से कहकर ऋचीक भृगुनन्दन नित्य ही तपस्या में अभिरति रखने वाला

होकर अरण्या में प्रविष्ट होगये थे ॥६८॥ उस समय गात्रि पत्नी के साथ ऋचीक के आश्रम में गये । वह नरेश्वर स्त्रीर्चना करने से प्रसन्न भू भवनी पुत्री को देखने के लिये आश्रम में पहुँचे थे ॥६९॥ सत्यवती ने ऋषि के चरित्र अर्थात् दोनों चरित्रों को लेकर सदा स्थायी के वचन से प्रभाव रहती हुई प्रसन्न होकर अपनी माता से निवेदन किया था ॥७०॥ माता ने देववर्णान् उस धेनू के लिए अपना चर दे दिया और यज्ञान से उसके चर को अपना कर दिया था ॥७१॥ इसके अनन्तर सत्यवती ने क्षत्रियों के भन्त तक कर देने वाला शुभ गर्भ धारण किया था जिसका शरीर अति द्यौत था और उसमें वह घोर दर्शन वाली थी ॥७२॥ ऋचीक ने उसे देखकर और फिर योग के द्वारा भी विचार कर तब वह शिशु में श्रेष्ठ अपनी वरवर्णिनी भार्या से बोला ॥७३॥ हे भद्र ! चात के व्यस्यमान (उत्सव-पलट) के कारण से तुझे माता का चर प्राप्त हुआ है अतः तेरे क्रूरकर्म करने वाला अत्यन्त दक्ष पुत्र पैदा होगा ॥७४॥

माता जनिष्यते वापि तथाभूत तपोधनम् ।
 विद्वद् हि ब्रह्मा तपसा मया तत्र समर्पितम् ॥७५॥
 एवमुक्ता महाभाषा भर्त्रा सत्यवती तदा ।
 प्रसादयामास पतिं मुनी मे नेहशो भवेत् ।
 ब्राह्मणापसदस्त्वग्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥७६॥
 नैप सङ्कलित वामो मया भद्रे तथा त्वया ।
 उग्रकर्मा भवेत् पुत्र पितुर्मित्रश्च वारणात् ॥७७॥
 पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ।
 इच्छंल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥७८॥
 रामात्मजमृजु मत्तं पुत्र मे दातुमर्हसि ।
 काममेवविध पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ॥७९॥
 मय्यन्यथा न शक्य वै वक्तुं मेव द्विजोत्तम ।
 ततः प्रसादमकरोत् ॥ तस्यास्तापसो बलात् ॥८०॥
 पुत्रे नास्ति विज्ञेयो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।
 त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥८१॥

तस्मात् सत्यवती पुन जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतन्दान्त जमदग्नि शमात्मवम् ॥८२

तेरी माता ऐसा परम तपस्वी पुत्र पैदा करेगी मैंने वहाँ तप के द्वारा ब्रह्म को समर्पित किया है ॥७१॥ इस प्रकार से अपने पति के द्वारा नहीं गई सत्यवती उस समय पति को प्रसन्न करने लगी कि मेरा पुत्र इस प्रकार का जन्म लेवे । अथ ब्राह्मणपत्न्य है इस प्रकार से कहे गये मुनि बोले ॥७६॥ हे भद्र ! इस प्रकार की यह इच्छा मैंने नया तूने कभी नहीं की थी । उपक्रम करने वाला पुत्र पिता और माता के कारण से होता है ॥७७॥ फिर इस प्रकार से नहीं गई सत्यवती यह वचन बोली—हे मुने ! इच्छा करते हुए तो लोगों का भी सृजन करते हैं फिर पुत्र के विषय में क्या बात है ॥७८॥ हे स्वामिन् ! सीधा और राम स्वरूप वाला पुत्र मुझे देने के योग्य हैं । हे प्रभो ! इच्छानुकूल इस प्रकार का पुत्र मेरा हो जावे आप ऐसा कह दें ॥७९॥ हे विजोत्तम ! मुझमें अथवा नहीं किया जा सकता है । इसके अन्तर तप के बल से उसने उस पर प्रमत्तता की थी ॥८०॥ हे वरवर्णिनि ! मेरे पुत्र अथवा पौत्र में विशेषता नहीं है । तूने जैसा कहा है हे भद्र ! वैसा ही बचन होगा ॥८१॥ इससे सत्यवती ने तप में अभिरति रखने वाला—वान्त और श्लाघ्यक जमदग्नि भार्गव पुत्र को जन्म दिया था ॥८२॥

भृगोश्चरुविषयसि रौद्रवैभ्रणवयो पुरा ।
यमनाद्वृण्वस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ॥८३
विश्वामित्र तु दायाद गाधि कुशिकनन्दन ।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसंहिनो (सविता) जगाम ब्रह्मणा वृत ॥८४
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यवतगरायणा ।
वैशिकीति समाख्याता प्रवृत्तय महानदी ॥८५
परिल्लुता महाभागा वैशिकी सारता वरा ।
इषाबुवने त्वभवत्मुवेणुर्नाम पाषिव ॥८६
तस्या कन्या महाभागा कामनी नाम रेणुका ।

रेणुकायानु कामल्यां तपोधृतिसमन्वित ।

धार्चोको जनयामास जमदग्नि मुदारुणम् ॥८७॥

सर्वविद्यान्तग श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।

राम क्षत्रियहन्तार प्रदीप्तमिव पावकम् ॥८८॥

ध्रोव्स्यैवमृचोक्तस्य सत्यवत्या महामना ।

जमदग्निस्ततो वीर्यज्जिज्ञे ब्रह्मविदा वरः ।

मध्यमश्च शुन.शेफः शुन.पुच्छ कनिष्ठक ॥८९॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथ स्मृतः ।

जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाहंशवर्द्धन ॥९०॥

पहिले भृगु के गौड और वैष्णव के चर के व्यत्यस्त होने पर वैष्णव अग्नि के यमन से जमदग्नि उत्पन्न हुए थे ॥८३॥ कुशिक बन्दन बाधि ने दायार विश्वामित्र को प्राप्त कर ब्रह्मपियो के सहित ब्रह्मा से वृत्त होकर गया था ॥८४॥ वह सत्यवती परम पवित्र और सत्य के व्रत में परावण थी जोकि कौशिकी इस नाम से प्रवृत्त वह महानदी कहाई थी ॥८५॥ सरिताग्नो ये श्रेष्ठ महाद् भाग धानी कौशिकी परित्युत हुई थी । इक्ष्वाकु के वंश में वेणु नाम वाला राजा हुआ था ॥८६॥ उसकी महाद् भाग वाली कन्या कामली नाम वाली रेणुका थी । रेणुका कामलीमें धार्चोको जमदग्नि ने जोकि तप और धुनि में समन्वित थे, मुदारुण को उत्पन्न किया था ॥८७॥ जोकि समस्त विद्याग्नो का पारगामी—शेफ और धनुर्वेद के परम परिष्कृत थे जिनका नाम राम था तथा प्रदीप्त पावक (धर्ति) के समान एव क्षत्रियो का हनन करने वाले हुए थे ॥८८॥ ब्रह्मवेत्ताग्नो में श्रेष्ठ, महाद् मन वाले जमदग्नि ने सत्यवती में धीरे धुषीक के बीर्य से राम को उत्पन्न किया था । और मध्यम शुन शेफ तथा सबसे छोटा शुन पुच्छ था ॥८९॥ विश्वामित्र तो बहुत ही धर्मात्मा थे और नाम से विश्वरथ कहे गये थे । भृगु के प्रसाद में कौशिक के वंश के बढ़ाने वाले उत्पन्न हुए थे ॥९०॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुन शेफोऽभवन्मुनिः ।

हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुत स वै । ॥१॥

देवदत्त ॥ वै यस्माद् वरातस्ततोऽभवत् ॥९१॥

विश्वामित्रस्य पुत्राणां सुन-शेफोऽग्रजः स्मृतः ।
 मधुच्छन्दो नपञ्च व कृतदेवौ ध्रुवाष्टकौ ॥६२॥
 कच्छपः पूरणश्च विश्वामित्रमुनास्तु वं ।
 तेषां गोश्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ॥६३॥
 पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्याः समर्पणाः ।
 उदुम्बरा उदुम्बलानास्तारका यममुच्चनाः ॥६४॥
 लोहिष्यो रेणवश्च तथा कारीपवः स्मृताः ।
 बभ्रव पाणिनश्च ध्यानजप्यास्तथैव च ॥६५॥
 शालावस्या हिरण्याक्षा स्यङ्कुता गालवा स्मृताः ।
 देवला यामदूताश्च शान्छ्वायनवाष्कलाः ॥६६॥
 ददाति वादराश्रान्ये विश्वामित्रस्य धीमताः ।
 ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहवः कौशिका स्मृताः ॥६७॥
 कौशिकासोऽश्रुमाश्चैव तथान्ये संधवायनाः ।
 पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य तु ॥६८॥

विश्वामित्र के पुत्र सुन शेफ मुनि हुए थे । वह राधा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में
 वसुत्व में नियुक्त किये थे । देवों के द्वारा वह दिया गया था इससे तब देवराज
 हुए थे ॥६१॥ विश्वामित्र के पुत्रों में सुन शेफ सबसे बड़ा कहा गया था । मधु-
 मच्छन्द और नप, कृतदेव ध्रुवाष्टक—कच्छप और पूरण ये भव विश्वामित्र के
 पुत्र थे । उन महात्मा कौशिकों के बहुत प्रकार के गोत्र हैं ॥६२-६३॥ पार्थिव—
 १. १।१०—याज्ञवल्क्य—समर्पण—उदुम्बर—उदुम्बल—तारक—यममुच्चन—लोहिष्य—
 १. १. ११—बभ्रव—पाणिन—ध्यान जप—शालावस्य—हिरण्याक्ष—स्यङ्कुत—
 १. १—यामदूत—शान्छ्वायन—वाष्कल और वादर ये धीमात्र विश्वामित्र
 के पुत्रों के गोत्र बड़े गये हैं । वे अन्य ऋषि के विवाह के योग्य बहुत कौशिक
 बड़े गये हैं ॥६४ ६५-६६-६७॥ पौरोरव, पुण्य, ब्रह्मर्षि कौशिक के कौशिक-
 सोऽश्रुम तथा अन्य संधवायन हैं ॥६८॥

दृषद्वतीसूतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टनः ।

अष्टरुस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नु मणो भया ॥६९॥

किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा ।

ब्राह्मण्य समनुप्राप्त विश्वामित्रादिभिर्नृपैः ॥१००॥

येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्य क्षत्रिया गता ।

विशेष ज्ञातुमिच्छामि तपस्या दानतस्तथा ॥१०१॥

एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् ।

अन्यायोपगतं द्रव्यैराहृत्य यजने धिया ।

धर्माभिकाक्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥१०२॥

धर्मं चैत समाख्याय पापात्मा पुरुषाधम ।

ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकानां दम्भकारणात् ॥१०३॥

जप कृत्वा तथा तीव्र धनलाभातिरकुश ।

रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति य ॥१०४॥

तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत ।

तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिमकस्य दुरात्मन ॥१०५॥

एव लब्ध्वा धनं मोहाद्दत्तो यजतश्च ह ।

सकलदृष्टकर्मणो दानं न तिष्ठति दुरात्मन ॥१०६॥

विश्वामित्र ने दृष्टद्वयी का पुत्र अष्टक हुआ । अष्टक का जो सुत था वह जलपुण्य में १६ दिया है ॥१६॥ श्रुतिपियो ने कहा—विश्वामित्र आदि राजाओं ने किस लक्षण वाले धर्म के द्वारा तपस्या से अथवा श्रुत से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥१००॥ जिस जिस अविधान में क्षत्रिय लोग ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे तब के द्वारा या दान के द्वारा हुए उसके विशेष को जानने की इच्छा है ॥१०१॥ इन प्रकार से कहे गये थे इनके पश्चात् यह धर्म से युक्त वाक्य बोले—अन्याय में उपगत द्रव्यो की लाकर उनसे यजन करने में जो बुद्धि ॥ धर्म का इच्छुक होकर यजन किया करता है वह धर्म का फल नहीं प्राप्त करता है ॥१०२॥ इसी धर्म कहकर जो पाप्मा मा अधम पुरुष लोको को दम्भ दिखाने के कारण से विपों को दान दिया करता है ॥१०३॥ धन के लोभ में निरकुश होकर तथा तीव्र तप करने राग और मोह से युक्त होता हुआ अन्त में पावन होने के निमित्त जो दान देता है ॥१०४॥ उसके द्वारा दिय हुए दान विफल होजाया करते हैं ।

हिमव-दुरात्मा घोर धर्म मे प्रवृत्ति रखने वाले उसके इग प्रकार मे (धन्याय से) धन को पाकर मोह मे डार देने वाले घोर यजन करने वाले एवं जो विनष्ट धर्म मे युक्त हो दुरात्मा का दान नहीं ठहरा करता है ॥१०५-१०६॥

न्यायागताना द्रव्याणा तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ।

यामाननभिमन्धाय यजते च ददाति च ॥१०७

स दानफलमाप्नोति तच्च दान मुक्तोदयम् ।

दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं मत्सेन गच्छति ॥१०८

तपसा तु मुक्तप्लेन लोकान् विष्टम्या तिष्ठति ।

विष्टम्य स तु तेजस्वी लोकेऽवानन्त्यमश्नुते ॥१०९

दानाच्छ्रेयास्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ।

सम्यागस्तपसः श्रेयास्तस्माज्ज्ञानं गुहं स्मृतम् ॥११०

श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा क्षात्रोपेता द्विजातयः ।

विश्वामित्रो नरपतिर्मन्धाता सकृति कपि ॥१११

कपेश्च पुरुरुरसश्च सत्यश्चानृहवानृगु ।

घ्राष्टिणोऽजमीढश्च भगान्योन्यस्तथैव च ॥११२

वक्षीवश्च शिजयस्तथान्ये च महारथाः ।

रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः ॥११३

क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषिताङ्गताः ।

एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं मुमहृतीङ्गताः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंश महात्मनः ॥११४

न्याय से भाव हुए द्रव्यो का तीर्थ स्थान मे अनी-भानि प्रतिपादन करना तथा अपनी कामनाओं का अभिस्त-धान न करके जो यजन करता है और दान देता है ॥१०७॥ वह दान का फल प्राप्त करता है और वह दान सुख के उदय वाला होता है । दान से भोगों की प्राप्ति किया करता है और सत्य से स्वर्ग को जाता है ॥१०८॥ अन्धो प्रकार से तपे हुए तप से लोकों का विष्टम्य करके रहा करता है । वह तेजस्वी विष्टम्य करके लोकों मे अनन्तता को प्राप्त किया करता है ॥१०९॥ दान से अधिक श्रेय करने वाला यज्ञ होता है और यन से

श्रेयस्कर तप होना है । तप से भी श्रेयान् सन्यास (अच्छी रीति से सबका त्याग करना) होता है । और उससे भी बड़ा ज्ञान कहा गया है ॥११०॥ मुने जाते हैं कि तपस्या में सिद्ध-क्षात्र धर्म में युक्त-त्रिजाति राजा विश्वामित्र, मान्धाता, सवृत्ति, कपि और कपि का पुरुकुत्स, सत्य, भानुहवान्, ऋधु, आर्तिपेरा, भगवोद तथा आणान्योन्व, कक्षीव, सिञ्जय एवं अन्य महारथ, स्थीतर, रुद्र और विष्णु वृद्ध प्रभृति राजा ये सब क्षत्रिय ये तपस्या के द्वारा ऋषित्व को प्राप्त होगये थे । ये सब राजर्षि थे जोकि महती सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे । इससे प्रागे महान् आत्मा वाले धनु के वक्त्र का वर्णन करूँगा ॥१११ में ११४॥

प्रकरण ५४—रजिपुद्ग वर्णन

एते पुत्रा महात्मान पञ्चवासन् महाबला ।
 स्वर्भानुतनया विप्रा प्रभाया जज्ञिरे नृपा ॥१॥
 नट्टप प्रथमस्तेषां पुत्रधर्म्मस्तत्र स्मृतः ।
 धर्म्ममृद्धात्मजश्च सुतहोत्रो महायशा ॥२॥
 सुतहोत्रस्य दायदास्त्रय परमधार्म्मिका ।
 काश क्षत्रश्च द्वावेतौ तथा गृत्समद प्रभु ॥३॥
 पुक्षो गृत्समदस्यापि मुनको यस्य शौनवः ।
 ब्राह्मणा क्षत्रियार्च्चव वैश्या शूद्रास्तथैव च ॥४॥
 एतस्य वशे सम्भूता विचित्रैः कर्म्मभिर्द्विजा ।
 शलात्मजो ह्याष्टिणेण श्ररन्तस्तस्य चात्मज ॥५॥
 शौनकाश्चाष्टिणेणाश्च दात्रोपेता द्विजातयः ।
 काशस्य काश्यो राष्ट्र पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६॥
 धर्म्मश्च दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः ।
 तपसा मुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमतः ।
 अधौनमृपयः प्रोबु मृत वाक्यमिमं पुनः ॥७॥

हिमव-दुरासपा घोर धर्म में प्रवृत्ति रखने वाले उगने इन प्रकार से (अन्याय में) धन को पाकर मोह से दान देने वाले घोर यजन करने वाले एवं जो विनष्ट धर्म में युक्त हो दुर्गमता का दान नहीं ठहरा करता है ॥१०५-१०६॥

न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ।

यामाननभिसन्धाय यजते च ददाति च ॥१०७॥

स दानफलमाप्नोति तच्च दानमुपोदयम् ।

दानेन भोगान्नाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥१०८॥

तपसा तु मुतप्लेन लोकान् विष्टम्या तिष्ठति ।

विष्टम्य म तु तेजस्वी लोकेऽवानन्त्यमश्नुते ॥१०९॥

दानाच्छ्रेयास्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ।

सन्ध्यामस्तपसः श्रेयास्तस्माज्ज्ञानं गुरु स्मृतम् ॥११०॥

श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा क्षात्रोपेता द्विजादयः ।

विद्वामिन्द्रो नरपतिर्मान्धाता सृष्टि कपि ॥१११॥

कपेश्च पुरुषुरसश्च सत्यश्चानृहवानृगु ।

आष्टिपेणोऽजमीढश्च भागान्योन्यस्तथैव च ॥११२॥

वक्षीवश्च यश्चिजयस्तथान्ये च महारथाः ।

रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः ॥११३॥

क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषिताङ्गताः ।

एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं सुमहतीङ्गताः ।

अत ऊढं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंश महात्मनः ॥११४॥

अन्याय से घाये हुए द्रव्यों का तीर्थ स्थान में भव्य-भानि प्रतिपादन करना तथा अपनी सामनाओं का अभिसन्धान न करके जो यजन करता है और दान देता है ॥१०७॥ वह दान का फल प्राप्त करता है और वह दान सुख के उदय वाला होता है । दान से भोगों की प्राप्ति किया करता है और सत्य से स्वर्ग की जाता है ॥१०८॥ अच्छी प्रकार से तपे हुए तप से लोकों का विष्टम्य करने रहा करता है । वह तेजस्वी विष्टम्य करके लोकों में अनन्तता की प्राप्त किया करता है ॥१०९॥ दान से अधिक श्रेय करने वाला यज्ञ होता है और यज्ञ से

श्रेयस्कर तप होता है । तप से भी श्रेयान् मन्वासा (अच्छी रीति से सधका त्याग करना) होता है । और उससे भी बड़ा ज्ञान कहा गया है ॥११०॥ मुने जाते हैं कि तपस्या से सिद्ध-क्षात्र धर्म से युक्त-त्रिजाति राजा विश्वामित्र, सान्धाता, सवृत्ति, कपि और कपि का पुरुकुत्स, सत्य, भानुहवान्, ऋषु, भारद्वाज, भजमोड तथा भागान्धोन्ध, पक्षीक, सिञ्जय एव अन्य महारथ, रथीतर, रुद्र और विष्णु वृद्ध प्रभृति राजा ये सब क्षत्रिय ये तपस्या के द्वारा ऋषित्व को प्राप्त होगये थे । ये सब राजर्षि थे जोकि महती सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे । इससे प्राये महाद् आत्मा यामे मयु के वंश का वर्णन करेंगे ॥१११ से ११४॥

प्रकरण ५४ — रत्निपुद्ग वर्णन

एते पुत्रा महात्मान पञ्च वासन् महाबला ।
 स्वर्भानुतनया विप्रा प्रभाया जजिरे नृपा ॥१॥
 नटुप प्रथमस्तेषां पुत्रधर्मा तत स्मृत ।
 धर्मं वृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायसा ॥२॥
 सुतहोत्रस्य दायादास्त्रय परमधार्मिका ।
 काश शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समद प्रभु ॥३॥
 पुत्नो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनक ।
 द्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव वैश्या ब्रूह्मास्तयेव च ॥४॥
 एतस्य धने सम्भूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजा ।
 शलात्मजो ह्याष्टिषेण श्ररन्तस्तस्य चात्मज ॥५॥
 शौनकाश्चाष्टिषेणाश्च क्षात्रोपेता द्विजातय ।
 कान्तस्य कान्तयो राष्ट्र पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥६॥
 धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान् घन्वन्तरिस्ततः ।
 तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमत ।
 भयेनमृषयः प्रोतु सूत वाक्यमिमं पुन ॥७॥

यथ धन्वन्तरिहोमो मानुषेऽपिह जनिवान् ।

एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रिय तथा ॥८॥

श्री गूतजी ने कहा—ये महान् बनवान् महान् शास्त्रा वाते पाँच ही पुत्र थे । स्वर्मातृ के पुत्र विप्र नृप प्रभा से उत्पन्न हुए थे ॥१॥ उनमें पुत्र धर्म बाना प्रथम न हुआ था । महान् यश बाला धर्म वृद्धा मज सुनहोन हुआ ॥२॥ सुनहोन के दायाद परम धामिज सीन हुए थे । बादा और धूम दो सी ये थे तथा तृतीय प्रभु गुप्तमद हुआ था ॥३॥ गुप्तमद का भी पुत्र सुनक हुआ जिसका बि सोनक हुआ था । प्रादर—शानिय—बंश्य और दूर इनके यश में हे द्विजगण । अपने विविध बर्गों के द्वारा उत्पन्न हुए थे । उत्पन्न पुत्र आदिषेण का और उसका पुत्र चरन्त हुआ था ॥४-५॥ सोनक और आदिषेण ये शान धर्म में उपेत द्विजाति थे । बरावा बागय—राष्ट तथा दीर्घनवा पुत्र हुए ॥६॥ दीर्घनवा का धर्म और इनके अनन्तर विडार धन्वन्तरि हुआ जो तपसे महान् एक सुन्दर तेज बाला धीमान् वृद्ध के उत्पन्न हुआ था । इनके अनन्तर ऋषिबृन्द से फिर श्री गूतजी से यह वाक्य बोले ॥७॥ ऋषियों ने कहा—देव धन्वन्तरि ने मनुष्यों में कैसे यहाँ जन्म लिया था । हम लोग यह जानना चाहते हैं सो आप यह प्रिय बान कृपा करके बताइये ॥८॥

धन्वन्तरे सम्भवोऽयं भूयनामिह वै द्विजा ।

स सम्भूत समुद्रान्ते मध्यमानेऽमृते पुरा ॥९॥

उत्पन्न सक्लात् पूर्वं सर्वतश्च श्रियावृत ।

सर्वसंसिद्धकाय त दृष्ट्वा विष्टम्भित स्थित ।

भ्रजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृत ॥१०॥

भ्रज प्रोवाच विष्णु त तनयोऽस्मि तव प्रभो ।

विधत्स्व भाग स्थानञ्च मम लोके सुरोत्तम ॥११॥

एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथा प्रोवाच स प्रभुः ।

वृत्तो यज्ञविभागस्तु यज्ञियेहि सुरेस्तथा ॥१२॥

वेदेषु विधियुक्तञ्च विधिहोत्र महर्षिभि ।

न शक्यमिह होमो वै तुल्य वस्तु कदाचन ॥१३॥

अर्वाविमुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो ।

द्वितीयायान्तु सम्भूत्या लोके ख्यातिं ज्ञमिष्यसि ॥१४॥

अणिमादिपुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ।

तेनैव च शरीरेण देवत्व प्राप्स्यसि प्रभो ।

आरुमन्त्रोऽं तैर्गन्धैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥१५॥

अथ च त्व पुनश्चैव आयुर्वेद विधास्यसि ।

अवदयम्भावी ह्यथोऽयं प्राग्दिष्टस्त्वब्जयोनिना ॥१६॥

द्वितीय द्वापर प्राप्य भविता त्व न सशय ।

तस्मात् तस्मै वर दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे ततः ॥१७॥

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्र स काशिराट् ।

पुनर्याम स्तपस्तेपे नृपो दीघतपास्तथा ॥१८॥

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजगण ! यहाँ पर धन्वन्तरि का यह जन्म मुनी ! वह पहिले अमृत के लिये समुद्र का मन्थन करने पर समुद्र के मध्य से उत्पन्न हुए थे ॥१६॥ मयने पूर्व और सर्व प्रकार से श्री से आवृत वह उत्पन्न हुए थे । मय प्रकार से सतिष्ठ काया वाले उनको देखकर सब विष्टम्भित होगये थे । आप अज हैं—यह बोले—इत कारण से वह अज कहे गये थे ॥१७॥ अज उन विष्णु से बले—हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ । हे सुरो मे उत्तम ! आप लोक मे मेरा स्थान और भाग का विधान कर दें ॥१८॥ इस कारण से कहे गये वह प्रभु देखकर इस तरह से बोले—मणिय सुरो के द्वारा यज्ञ का विभाग किया गया है ॥१९॥ वेदो मे विवि से युक्त और विधिहोत्र महर्षियो के द्वारा यहाँ पर होम कभी तुल्य नहीं किया जा सकता है ॥२०॥ हे देव ! हे प्रभो ! आप अर्वाविमुत हैं और नाम मन्त्र हैं । आप दूसरे जन्म मे लोक मे ख्याति को प्राप्त करेंगे ॥२१॥ आप जब गर्भ मे स्थित रहेंगे तभी आपको अणिमा प्रभृति से युक्त सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप उसी शरीर से देवस को भी प्राप्त करेंगे । द्विजाति गण सुन्दर मन्त्रो से—पुत मे और गन्धो के द्वारा आपका यजन करेंगे ॥२२॥ इसके अनन्तर फिर आप आयुर्वेद की रचना करेंगे । यह अवश्य ही होने वाला अर्थ है जोकि पहिले ही पचयर्षेण ब्रह्मणे आदिष्ट कर दिया है ॥२३॥ दूसरे द्वापर को

पाकर आप होंगे इनमें तनिक भी संशय नहीं है । इससे उनको वरदान देकर फिर विष्णु भगवान् वहीं पर अन्तर्धान होगये थे ॥१७॥ दूसरे द्वार पर युग के प्राप्ति के पर काशिराष्ट्र वह शीघ्र होय तथा दीर्घतया नृप ने पुनः भी कामना वाता होते हुए तप किया था ॥१८॥

अज देवन्तु पुत्रार्थं ह्यारिराघयिपुनृप ।

धरेण च्छन्दयामास प्रीतो धन्वन्तरिर्नृपम् ॥१९॥

भगवान् यदि सुष्टस्त्व पुनो मे धृतिमान् भव ।

तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत् ॥२०॥

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ।

काशिराजो महाराज सर्व्वरोगप्रणाशन ॥२१॥

आयुर्व्वेद भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम् ।

तमद्यथा पुनर्व्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२२॥

धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुतः ।

अथ केतुमतः पुत्री विभो भीमरथो नृप ।

दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥२३॥

एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी पुरा ।

शून्या विवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥२४॥

शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुम्भेन महात्मना ।

शून्या वर्षसहस्रं वै भविषीति पुनः पुनः ॥२५॥

तस्यास्तु शप्तमात्राया दिवोदासः प्रजेश्वरः ।

विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या मन्व्यवेशयत् ॥२६॥

पुत्र के लिये, अज देव की आराधना करने वाले नृप को परम प्रसन्ने धन्वन्तरि ने वरदान मागने के लिये कहा था ॥१९॥ राजा बोला—हे भगवान् !

यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो धृतिमान् आप भरे पुत्र होंगें । तथाम्बु (ऐसा ही होवे)—यह कहकर वहाँ पर ही धन्वन्तरि अन्तर्हित होपये ॥२०॥ तब उसके घर में देव धन्वन्तरि समुत्पन्न ॥२१॥ काशिराज महाराज समस्त रोगों के नाश करने वाले थे ॥२२॥ भरद्वाज ने निषद् क्रिया के साथ आयुर्व्वेद की प्राप्ति ।

तमद्यथा पुनर्व्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२३॥ धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुतः । अथ केतुमतः पुत्री विभो भीमरथो नृप । दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥२४॥ एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी पुरा । शून्या विवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥२५॥ शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भविषीति पुनः पुनः ॥२६॥ तस्यास्तु शप्तमात्राया दिवोदासः प्रजेश्वरः । विषयान्ते पुरी रम्या गोमत्या मन्व्यवेशयत् ॥२७॥

प्रकार से व्यक्त करने शिष्यो के लिये प्रतिपादित किया था अर्थात् शिष्या दी
यी ॥२२॥ धन्वन्नरि का पुत्र भी केतुमान् इस नाम से विद्युत्त हुआ । इसके
धन्वन्नर केतुमान् का पुत्र विभ भीमरथ रूप हुआ था । वह दिवोदास इस नामसे
विख्यात हुआ था और वाराणसी का स्वामी हुआ ॥२३॥ इस ही समय के बीच
मे पहिले वाराणसी पुरी मे दून्य मे दोमक नाम वाले राजस न प्रवेत किया
था ॥२४॥ पहिले समय मे महात्मा त्रिबुद्ध के द्वारा वह पुरी क्षण से युक्त हुई
थी कि बार-बार एव महत्त वषे तत्र यह दून्य होगी ॥२५॥ उम पुरी के क्षण
युक्त होने पर ही प्रजेस्वर दिवोदास ने विषयान्ध मे गोमती मे रम्यपुरी को
सन्निवेशित किया था ॥२६॥

वाराणसी विमर्चन्ता त्रिबुद्ध दासयान् पुरा ।
त्रिबुद्धश्चापि धर्मरिमा मिद्विषेत्र दासाप यः ॥२७॥
दिवोदासस्तु राजपिनंगरी प्राप्य पार्थिव ।
वसते स महातेजा स्फीताया वै नराधिप ॥२८॥
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वर ।
देव्या स प्रियवामस्तु वसानश्च सुरान्तिके ॥२९॥
देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधना ।
पूर्वोक्तं रूपविशेषस्तोषयन्ति महेश्वरीम् ॥३०॥
रहप्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु रहप्यति ।
जुगुप्सते सा नित्यञ्च देव देवो तथैव च ॥३१॥
मम पाद्वे त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः ।
हरिद्र सखं एवेह अविनष्ट सङ्गतेऽन्ये ॥३२॥
मात्रा तयोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावाग्र चाक्षमत् ।
स्मित कृत्वा तु वरदा हरपाद्वमयागमत् ॥३३॥
विषण्णयदना देवी महादेवमभाषत ।
नेह वरस्याग्यह देव नय मां स्व निवेशनम् ॥३४॥

श्रुतिसे ने कहा—पहिले त्रिबुद्ध के त्रिगणिवे वाराणसी पुरी को क्षण
दिया था । त्रिबुद्ध भी बड़ा धर्मात्मा था त्रिगने त्रि उम मिद्व क्षेत्र को क्षण

दिश था ॥२७॥ मूनजी ने कहा — राजा दिवोदास ने जोकि राजपि था, उस नगरी को प्राप्त कर वह महान् तेज वाला राजा स्वीत अर्थात् फैली हुई पुरी में निवास करता था ॥२८॥ इसी काल में दारा को करने वाले महेश्वर देवी के प्रिय कामना वाले वह मुने वे समीप में वास करने वाले थे ॥२९॥ देव की आज्ञा में लोपोषण विश्वरूप परिपक्व पूर्वोक्त रूप विशेषों के द्वारा महेश्वरी ने तोप देते थे ॥३०॥ उनसे महादेव को प्रसन्न होते हैं किन्तु मेना प्रसन्न नहीं होती है । वह निरय ही देवी और देव की बुराई करती है ॥३१॥ मेरे समीप में भनाचार है तुम्हारा स्वामी महेश्वर जो दक्षिण है । हे अनघे ! यहाँ सभी साधारण लाठ करते हैं ॥३२॥ माता के द्वारा उस प्रकार ने वाली से कही गई देवी सती स्वभाव के कारण सहन करने में समर्थ न हुई । बरदा ने स्मित करके उसके बाद हर के समीप में गई थी ॥३३॥ विषाद से युक्त मुख वाली देवी ने महादेव से कहा—हे देव ! मैं यहाँ वास नहीं करूँगी आप मुझे अपने घर पर ले चलिए ॥३४॥

तथोक्तस्तु महादेव सर्वाल्लोकानवेक्ष्य ह ।
 वासार्थं रोचयामास पृथिव्या तु द्विजोत्तमा ।
 वाराणसी महातेजा सिद्धक्षेत्र महेश्वरः ॥३५॥
 दिवो दासेन ता ज्ञात्वा निविष्टाभगरी भव ।
 पार्श्वस्थ स समाहूय गगेश क्षेमक ब्रवीद् ॥३६॥
 गणेश्वर पुरीङ्गत्वा शून्या वाराणसी कुरु ।
 मृदुना चाम्यु पायेन अतिवीर्यं स पार्थिव ॥३७॥
 ततः गत्वा निकुम्भस्तु पुरी वाराणसी पुरा ।
 स्वप्ने सन्दर्शयामास मद्धन नाम नापितम् ॥३८॥
 श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थान मे रोचयानघ ।
 मद्रूपा प्रतिमा कृत्वा नमस्कृत्य निवेशय ॥३९॥
 तथा स्वप्ने यथा दृष्ट सर्वं कारितवान् द्विजा ।
 नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानन्तु यथाविधि ॥४०॥

उत्पन्न हुआ । उस बालक पुत्र ने उसका फिर हस्त धर लिया था ॥६४॥ उस समय उस महान् राजा ने वैर का अन्त करते हुए ऐसा किया था । प्रतर्दन के दो पुत्र हुए । एक वत्स नाम वाला और दूसरा गर्ग इस नाम से प्रसिद्ध था ॥६५॥ वत्स का पुत्र अलर्क हुआ और उसका पुत्र सद्यस्ति हुआ था । अलर्क के प्रति राजर्षि गीत श्लोक पुरातन थे ॥६६॥ काशिसत्तम अलर्क युवा रूपसे साठ हजार छै मो साठ वष तक सम्पन्न रहा था ॥६७॥ ओषामुद्रा के प्रसाद से अलर्क ने परमायु को प्राप्त किया था ॥६८॥

जापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।

रम्यमावाप्तयामास पुरी वाराणसी नृप ॥६९॥

सनते रपि दायाद सुभोयो नाम धार्मिक ।

सुनीषस्य तु दायाद सुकेतुर्नाम धार्मिक ॥७०॥

सुकेतुर्नयश्चापि धमकेतुरिति श्रुति ।

धमकेतोस्तु दायाद मत्स्यकेतुर्महारथ ॥७१॥

सत्यकेतुस्तुश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वर ।

सुविभुस्तु विभो पुन सुकुमारस्तत स्मृत ॥७२॥

सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः स धार्मिक ।

धृष्टकेतोस्त दायादो वेणुहान प्रजेश्वर ॥७३॥

वेणुहोत्रमुतश्चापि गार्ग्यो वं नाम विभूत ।

गार्ग्यस्य गर्गभूमिस्तु वात्स्यो वत्सस्य धीमत ॥७४॥

ब्राह्मणा क्षत्रियार्ध्व तयो पुत्रा सुधार्मिका ।

विश्रान्ता वलवन्धश्च सिंहनुत्यपराक्रमा ॥७५॥

इत्येते काश्यपा प्रोक्ता रजेरपि निबोधत ।

रजे पत्रगतान्यासन् पञ्च वीर्यवतो भुवि ।

राजेयमिति निर्यात क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥७६॥

जाप के धन्त होजाने पर महाबाहु ने क्षेमक राक्षस का वध करके राजा ने रम्य वाराणसी पुरी को बसाया था ॥६९॥ मधनि का भी दायाद (पुत्र) सुनीष नाम राजा बहुत ही धार्मिक था । सुनीष का पुत्र सुकेतु नाम वाला

धामिष हृषा था ॥७०॥ गुर्वेनु का भी पुत्र धर्मवेनु हृषा—ऐसी धृति है ।
 धर्मवेनु का दायाद महारथ गत्ववेनु हृषा था ॥७१॥ गम्यवेनु का भी पुत्र प्रजेधर
 विभु नाम था हृषा था । विभु का पुत्र तुविभु था और उग्रका पुत्र गुरुमार
 था ॥७२॥ गुरुमार के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था वह बहुत ही धार्मिक था ।
 धृष्टवेतु के दायाद प्रजेश्वर वेणुहोत्र हृषा था वेणुहोत्र के पुत्र का नाम गार्ग्य
 प्रस्थात था । गार्ग्य की गर्गभूमि और धीमान् बल का वात्स्य था ॥७४॥ इन
 दोनों के पुत्र सुन्दर धर्म के पत्न बनने वाले ब्राह्मण और सत्रिय थे वे बड़े
 विक्रम वाले तथा बलवान् एवं मित्र के समान पराक्रम वाले थे ॥७५॥ ये इनके
 कारण बनलाये गये हैं धव रजि के भी समझ लो । भूमण्डल में वीर्यवान् रजि
 के पाँचसौ पुत्र थे । इन्द्र के भव देने वाला वह धव राजप—दस नाम से विख्यात
 था ॥७६॥

तदा दैवा सुरे युद्धे समुत्पन्ने मुदारुणे ।
 देवाश्च वासुराश्च पितामहमथायु वन् ॥७७॥
 ध्रुवयोर्भगवान् युद्धे विजेता को भविष्यति ।
 ब्रूहि न सर्व्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥७८॥
 येषामर्थाय सशामे रजिरात्तायुध प्रभु ।
 योत्स्यते ते विजेष्यन्ति श्रील्लोकान्नाग सशय ॥७९॥
 रजिर्वतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृति ।
 यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जय ॥८०॥
 तद्देवा दानवाः सर्वे तत श्रुत्वा रजेर्जयम् ।
 अभ्ययुर्जयमिच्छन्त स्तुवन्तो राजसत्तमम् ॥८१॥
 ते दृष्टमनस सर्वे राजान देवदानवा ।
 ऊचुरस्मज्जयाय त्व गृहाण वरकामुकम् ॥८२॥
 अहञ्छेऽप्यामि नो युद्धे देवान् शक्रपुंगवमान् ।
 इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि सद्युगे ॥८३॥
 प्रस्माकमिन्द्र प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे ।
 अस्मिस्तु समये राजस्तिष्ठेवा देव नोऽदिते ॥८४॥

उम समय परम दास्य दैवामुर युद्ध के उत्पन्न होने पर देवगण और
असुरगणद्वय ने धनन्तर पितामह से बोले ॥७७॥ हे सर्व सोने ! भगवान्
घतलावें कि हम दोनों के युद्ध में कौन विजयी होगा—यह हम सुनना चाहते हैं
॥७८॥ ब्रह्माजी ने कहा—जिनके निये सप्ताम में प्रभु रजि हयमार ग्रहण करने
चाला होकर युद्ध करेगा वे तीन लोगों को जीत लेंगे—हममें सशय नहीं है ॥७९॥
जहाँ रजि है वही सद्यमी है और जहाँ पर सद्यमी है वहाँ पर धृति होती है ।
जहाँ पर धृति है वहाँ धर्म रहता है और जहाँ धर्म है वही पर जय होती है
॥८०॥ तब तो देवता लोग और दानव सभी रजि की जय श्रवण कर जय की
इच्छा करते हुए राजाओं में परम श्रेष्ठ रजि की स्तुति करते हुए वहाँ गये ॥८१॥
वे सब देव और दानव प्रसन्न मन वाले राजा से बोले कि हमारे जय के लिये
आप श्रेष्ठ धनुष ग्रहण करें ॥८२॥ रजि ने कहा—मैं इन्द्र जिनका धन्यामी है
ऐसे देवों को युद्ध में नहीं जीतूंगा । धर्माला इन्द्र होना है तब युद्धभूमि में
लहूँगा ॥८३॥ दानवों ने कहा—हमारा इन्द्र प्रह्लाद है । उसके निये हम विजय
प्राप्त करते हैं । हे राजन् ! इस समय मैं यदि के वहाँ न ठहरिये ॥८४॥

स तपेति श्रुत्वाग्नेव देवैरप्यभिचोदितः ।

भविष्यसीन्द्रो जित्वेति देवं रपि निमन्त्रित ॥८५॥

जधान दानवान् सर्वान् समस्त वज्रपाणिन ।

स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीं श्रियं वशी ॥८६॥

निहत्य दानवान् सर्वान् व्याजहार रजि प्रभु ।

त तथा तु रजि तत्र देवैस्तह शतक्रतु ॥८७॥

रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वच ।

इन्द्रोऽसि राजन् देवानां सर्वपात्राग्र सशय ।

यस्याहमिन्द्रपुत्रस्ते रुषाति यास्यामि शत्रुहन् ॥८८॥

स नु शक्रवच श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया

तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाण शतक्रतुम् ॥८९॥

तस्मिन्स्तु देवसदृशे दिव प्राप्ते महीपतौ

दायाद्यमिन्द्रादाजह्नु राचार तनया रजेः ॥९०॥

तानि पुत्रसंतान्यस्य तच्च स्थानं जघोपत ।
 समक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥६१॥
 ततः काने बहुतिथे समतीते महाबल ।
 तद्वतराज्योऽब्रवीच्छत्रो तद्वतमागो बृहस्पतिम् ॥६२॥

वह तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवेगा—यह कहता हुआ तथा देवों के द्वारा भी बहुत प्रेरित हुआ और देवों के द्वारा निमज्जित होता हुआ जीतकर इन्द्र होगा यह कहा गया था ॥६१॥ बज्रबाण (इन्द्र) के समक्ष में उसने समस्त दानवों का हवन किया था । देवों की विनोद रूप में नष्ट हुई श्री को बग रक्षने वाला यह परम श्री होगया ॥६२॥ समस्त दानवों को मारकर प्रभु रजि ने कहा वही उस प्रकार से रजि को देवों के सहित इन्द्र ने मैं रजि का पुत्र हूँ—यह कहकर फिर बचन कहे । हे राजर् ! भाग्य समस्त देवों के इन्द्र है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । हे गुरुन ! जिस त्रेख में इन्द्र पुत्र हूँ—यह क्याति को प्राप्त करेगा ॥६३॥ वह इन्द्र के बचन को सुनकर उसने द्वारा भाषा से बलिष्ठ किया गया था । राजा ने तथास्तु—यह ही शत्रु ऋतु (इन्द्र) को प्रसन्न करते हुए कहा ॥६४॥ उस राजा के जोकि वेष्ट के सुख या स्वयं में प्राप्त होजाने पर रजि के पुत्रों ने इन्द्र से दायाद आन्तर को ले लिया था ॥६५॥ इसके उन पचिसों पुत्रों शची के वति इन्द्र के उस स्थान त्रिविष्टप स्वर्ग लोक को बहुत प्रकार से सक्रान्त कर लिया था ॥६६॥ इसके अनन्तर बहुत काल के व्यतीत होजाने पर महान् बल वाला राज्य के छित्त जाने वाला भाष्पहीन इन्द्र बृहस्पति से जाकर बोला ॥६७॥

वदरीफलमात्रं वं पुरादाश विधत्स्व मे ।
 ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेय तेजसाप्यायितस्ततः ॥६८॥
 ब्रह्मन् बृहदोऽयं विमना हूतराज्यो हूताशन ।
 हतोजा दुवनो मूढो रजिपुत्रं प्रसीद मे । ६९
 यद्येव चोदितं शत्रु त्वया स्या पूज्यमेव हि ।
 नाभविष्यन् त्वत्प्रियाय नावतव्यं ममानय ॥७०॥

पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते ।

गन्धैर्घू गंध्र माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च ॥४१॥

हे द्विजोत्तमो, उस प्रकार से कहे हुये महादेव ने समस्त लोको को देखकर वाम के लिए पृथिवी में महान् तेज वाले महेश्वर ने मिट्टीसे बाराणसी को पमन किया । दिव्योदाम के द्वारा उस नगरी को निविष्ट जानकर उन महादेव ने पाम में स्थित खेमक गणेश ने कहा ॥३६॥ हे गरुडेश्वर ! पुरी में जाकर बाराणसी को शून्य करदो । और मृदु अम्बुपाय में वह पार्थिव प्रतिबीर्य हो गया ॥३७॥ इसके अनन्तर निकुम्भ पुरी बाराणसी में जाकर पहिले मद्धन नाम नापित को स्वप्न में दिखाया था ॥३८॥ हे अनन् ! मैं तेरा श्रेय कहूँगा, मेरे स्थान को रोक्षित करो । मेरे रूप वालो प्रतिमा को बनाकर नगरी के अन्त में निवेष्टित करदो ॥३९॥ हे द्विज वृन्द ! स्वप्न में जैसा देखा था उस प्रकार का सब करा दिया था । और यथा विधि राजा को नगरी के द्वार पर अनुनापित करके नित्य ही महती पूजा गन्ध-रूप-दीप और प्रेक्षणीय माल्यो के द्वारा की जाती है ॥४०-४१॥

अन्नप्रदानमुक्तंश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ।

एव सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वर ॥४२॥

सतो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति ।

पुमान् हिरण्यमायू पि सर्व्वकामास्तथैव च ॥४३॥

राक्षस्तु महिषो येषां सुयशा नाम विश्रुता ।

पुनार्यमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता ॥४४॥

पूजान्तु त्रिपुला कृत्वा देवी पुत्रानयावत ।

पुन पुनरयागम्य बहुश पुनकारणात् ॥४५॥

न प्रयच्छति पुनास्तु निकुम्भ कारणेन तु ।

राज्ञा यदि तत् क्रुध्येत तत निश्चित् प्रवर्तते ॥४६॥

अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् ।

भूत त्विद महाद्वारि नगराणां प्रयच्छति ॥४७॥

प्रीत्या वराश्च शतशो न किञ्चित्तु प्रवर्त्तते ।
 मामकैः पूज्यते नित्यं नमयामि मम चैव तु ॥४८॥
 तथावितश्च बहुशो देव्या मे तत्र कारणात् ।
 न ददाति च पुत्र मे कृतघ्नो बहुभोजन ॥४९॥
 अतो नार्हति पूजान्तु मत्सकाशात् कथञ्चन ।
 तस्मात् नानाधिप्यामि तस्य स्थानं दुरात्मन ॥५०॥
 एवं तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राजं किंत्विषी ।
 स्थानं गणपतेस्तस्य नाक्षयामास दुर्मति ॥५१॥
 भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमगमत् प्रभु ।
 यस्माद्वृत्तेऽपराध मे त्वया स्थानं विनाशितम् ॥५२॥

और अन्न प्रदान से युक्तों के द्वारा अत्यद्भुत की तरह होगया था । इस प्रकार से वहाँ पर नित्य ही गणेश्वर की बहुत अच्छी तरह पूजा की जाती है ॥४२॥ इसके पश्चात् नगरों को बहुत वरदान देती है । पुत्रों को—हिरण्य को—आयु को और समस्त प्रकार के कामों का वरदान देती है । राजा की महिषी (पद्माभिषिक्ता रानी) श्रेष्ठ थी ओकि सुयशा इस नाम से विभूत थी । राजा के द्वारा प्रेरित होकर साध्वी रानी पुत्र के लिये वहाँ आई थी ॥४३-४४॥ देवी ने विपुल पूजा करके उतने पुत्रों की माचना की थी और पुत्र के कारण से बहुत बार वह पुन पुन वहाँ आती थी ॥४५॥ निकुम्भ पुत्रों की तो कारणवश नहीं देना है । राजा यदि क्रुद्ध होगा तो हमने पश्चात् कुछ प्रवृत्त होगया ॥४६॥ हमने अनन्तर लम्बे समय में राजा के हृदय में क्रोध ने प्रवेश किया था । नगरों के महा द्वार पर यह भूत की देता है ॥४७॥ प्रीति से सबको वरदान देना है किन्तु क्रुद्ध होगा नहीं है । मेरी नगरी में मेरे लोगों के द्वारा निश्च ही यह पूजित भी किया जाता है ॥४८॥ मेरे कारण से देवी के द्वारा यह बहुत बार पूजित हुआ है किन्तु इनपन और बहुत भोजन करने वाला यह पुत्र नहीं देना है ॥४९॥ इसलिए मेरे द्वारा किसी भी प्रकार से यह पूजा करने के योग्य नहीं है । इससे दग दुरात्मा के स्थान की मैं नष्ट करा दूंगा ॥५०॥ इस तरह में राजाओं में पानी दुष्ट उसने निश्चय करके दुष्ट बुद्धि वालों ने उग गणपति के स्थान को नष्ट कर

दिया था ॥११॥ प्रभु अपने आसन को भग्न हुआ देखकर राजा के पास आये कि जिससे बिना किसी अपराध के तुने मेरे स्थान को नष्ट करा दिया है ॥१२॥

अकस्मात् तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिपः ।

ततस्तेन तु क्षापेन शून्या वाराणसी तथा ॥१३॥

क्षमा पुरी निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् ।

शून्या पुरी महादेवो निष्कमे परमात्मना ॥१४॥

तुल्या देवविभूत्यास्तु देव्याश्च महात्मनः ।

रमते तत्र वं देवी रममाणे महेश्वर ॥१५॥

न रति तत्र वं देवी लभते गृहविस्मयात् ।

देव्या श्रीडार्ढमीशानो देवो वाक्यमथाववीत् ॥१६॥

नाह वेश्म विमोक्ष्यामि प्रविमुक्त हि मे गृहम् ।

प्रहस्येतामयोवाच अविमुक्त हि मे गृहम् ॥१७॥

नाह देवि गमिष्यामि गच्छरवेह रमाभ्यहम् ।

तस्मात्तदविमुक्त हि प्रोक्त देवेन वं स्वयम् ॥१८॥

एव वाराणसी क्षमा अविमुक्त च कीर्तितम् ।

यस्मिन् वसति वं देव सर्वदेवनमस्कृत ।

युगेपु त्रिपु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वर ॥१९॥

अन्तर्द्वानि कलौ याति तत्पुरन्तु महात्मनः ।

अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुगी सा वसते पुनः ॥२०॥

उन्होंने राजा से कहा है नराधिप ! अबाने तेरी यह पुरी शून्य हो

जायगी । इससे पश्चत् उस क्षमा से वाराणसी पुगी शून्य होगी थी ॥१३॥

निकुम्भ क्षमा से मुक्त उस पुरी में महादेव को ले आये थे । महादेव ने उस शून्य

पुरी का परमात्मा के द्वारा निर्माण किया था ॥१४॥ वह पुरी देवों की विभूति

के तुल्य थी और महात्मा की देवों के भी तुल्य थी । वहाँ पर महेश्वर के स्नान

करने पर देवी रमण करती है ॥१५॥ गृह के विस्मय के कारण से देवी को

रति प्राप्त नहीं होती है । देवी की क्रीडा के लिए देव ईशान (महादेव) यह

वाक्य बोले ॥१६॥ मैं गृह का त्याग नहीं करूँगा । मेरा घर अविमुक्त है ।

इसके अनन्तर हँस कर बोले मेरा गृह अविभूत होना है ॥१७॥ हे देवि ! मैं नहीं जाऊँगा, तुम जाओ, मैं यहाँ रहना करता हूँ। इससे देव ने स्वयं उस विभूत कहा है ॥१८॥ इस प्रकार मे वाराणसी पुरी क्षाप मे युवत है और वह अविभूत वही बई है। जिस पुरी मे समस्त देवों के द्वारा नमस्कृत-तीनों युगों मे परमात्मा महेश्वरदेव दवी के साथ निवास किया करते हैं ॥१९॥ बन्दिन म महान् धात्मा धाले का वह पुर भन्तर्द्धान को प्राप्त हो जाता है और उस पुर के भन्तर्द्धान होने पर वह पुरी पुन वस जाती है ॥२०॥

एव वाराणसी क्षप्ता निवेद्य पुनरागता ।

भद्रार्थं यस्य पुत्राणां क्षतमुत्तमधन्विनाम् ॥२१॥

हत्वा निवेद्ययामास दिवोदासो नराधिप ।

भद्रार्थेभ्यस्य राज्यन्तु तद्वत्तन्तेन वसीयसा ॥२२॥

भद्रार्थेभ्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम नामत ।

दिवोदासेन धालेति शृणुया स विवर्जित ॥२३॥

दिवोदामाहपद्वत्या धीरो जज्ञे प्रतर्द्दनः ।

तेन पुत्रेण धालेन प्रवृत्त तस्य वै पुन ॥२४॥

वैरस्यान्त महाराजा तदा तेन विवर्जिता ।

प्रतर्द्दनस्य पुत्रो द्वौ वरसो गर्गश्च विभ्रुत ॥२५॥

वरसपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मज ।

अलर्कं प्रति राजविर्गीतस्लोकी पुरातनौ ॥२६॥

पट्टिर्वर्षसहस्राणि पट्टिर्वर्षशतानि च ।

गुवा रूपेण सम्पन्नो ह्यलर्कं कागिसत्तम ॥२७॥

लोपामुद्रा प्रसादेव परमायुरवाप्तवान् ॥२८॥

इस तरह क्षाप युक्त हुई फिर निवेद्य को प्राप्त हुई भद्रार्थेभ्य के उत्तम धनुषधारी सौ पुत्रों का हनन करके दिवोदास राजा ने पुन इस निवर्जित किया था। उस वज्रपाश ने भद्रार्थेभ्य वं राज्य का हरण कर लिया था ॥२१-२२॥ भद्रार्थेभ्य का एक पुत्र नाम से दुर्दम था। दिवोदास ने उसे धालक है—इस शृणा से छोड़ दिया था ॥२३॥ दिवोदास से हपद्वती मे प्रतर्द्दन नामक वीर पुत्र

योवत्सुदेशप्रभव कौरवो जनमेजय ।

कुरो पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञ पारिक्षितस्य ह ।

जगाम स रथो नाश्र शापाद्गार्ग्यस्य धीमत ॥२१॥

गार्ग्यस्य हि सुत बाल स राजा जनमेजय ।

दुर्बुद्धिर्हिसयामास लोहगन्ध नराधिपम् ॥२२॥

स लोहगन्धो राजर्षि परिधावन्ति तस्ततः ।

पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म बर्हिचित् ॥२३॥

तत स दुःपसन्तप्तो नालभत्सविद क्वचित् ।

शशाप हेतुकृमृषि शरण्य व्यथितस्तदा ॥२४॥

वह रथ मन के समान वेग वाले भद्वों से युक्त था जिससे कन्वा समु-
द्वहन किया था । उसने उस मुख्य रथ के द्वारा मही को जीत लिया था ॥११॥
पयाति देवता और दानवा के द्वारा बुद्ध से प्रत्यन्त दुःख था । पौरवो म और
राजाओं म सबसे वह रथ हुआ था ॥२०॥ योवत्सुदेश से उत्पन्न होने वाला
कौरव जनमेजय था । राज कुरुके पुत्र और राजा पारिक्षित का वह रथ धीमान्
गार्ग्य के शाप से नाश को प्राप्त हुआ था ॥२१॥ उस राजा जनमेजय ने बालक
की अवस्था में दुर्बुद्धि होकर गार्ग्य के पुत्र लोहगन्ध नराधिप की हिंसा की थी
॥२२॥ वह राजर्षि लोहगन्ध इधर उधर बीडता हुआ पौरजन पदों के द्वारा
त्याग हुआ वही पर भी शान्ति को एवं कल्याण का प्राप्त नहीं हुआ ॥२३॥
इसके अनन्तर दुःख से सन्तप्त होने हुए वही पर भी मविद को प्राप्त नहीं किया
था । तब अत्यन्त व्यापा स युवन होकर उसने शरण्य हेतुकृ ऋषि का शाप दे
दिया था ॥२४॥

इन्द्रोतो नाम विद्याता योऽग्रे मुनिरुदारधी ।

योजयामास चेन्द्रात शोनको जनमेजयम् ।

अश्वमेधेन राजान पावनार्थं द्विजात्तमः ॥२५॥

स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावसथमेत्य ह ।

स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोऽर्धेदिपतेस्तथा ॥२६॥

तत शत्रुण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथ ।

ततो हत्वा जरासन्ध भीमस्त रथमुत्तमम् ।

प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दन ॥२७॥

स जरा प्राप्य राजपिर्ययातिनेहृपात्मज ।

पुत्र ज्येष्ठ वरिष्ठश्च यदुमित्यन्नवीद्वच ॥२८॥

जरावली च मा तात पलितानि च पर्यगु ।

काव्यस्योशनस क्षापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥२९॥

त्व यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।

जरा मे प्रतिगृह्णीष्व त यदु प्रत्युवाच ह ॥३०॥

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।

सा च व्यायाममाध्या र्वं न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥३१॥

जरामा बह्व्या दोषा पान भोजनकारिण ।

तस्माज्जरान् नै राजन् ग्रहीणुमहमुत्सहे ॥३२॥

जो उदार बुद्धि वाला मुनि इन्द्रात् नाम से विरपात था उस इन्द्रो

और द्विजोत्तम शौनक न जनमेजय राजा का पावन होने के लिये अश्वमेध यज्ञ

करने के लिए योजित किया था ॥२५॥ उस सोहृद ने उसके आवाज में

आकर उस रथ का विनाश कर दिया था । और वह दिव्य रथ धेदिपति वसु से

और इसके अनन्तर उससे वृद्धय सुष्ट होने वाले इन्द्र ने प्राप्त किया था । इसके

पश्चात् भीम न जरासन्ध को मार कर उस उत्तम रथ को कौरव नन्दन ने परम

प्रसन्नता से वासुदेव को दे दिया था ॥२६-२७॥ वह राजपि ययाति नहुष का

पुत्र वृद्धावस्था को प्राप्त कर अपने ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ पुत्र यदु से यह वचन बोला

॥२८॥ हे तात ! यह वृद्धता की अवस्था ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है

पलित बना दिया है मेरी यह दशा उशना काव्य के क्षाप हो गई है और

यौवन में अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ ॥२९॥ हे यदो ! तुम इस जरा अर्थात्

। के सहित पाप को ग्रहण करो जब यदु ने उत्तर दिया ॥३०॥ मैंने ब्राह्मण

अनिर्दिष्ट भिक्षा की प्रतिज्ञा की है और वह व्यायाम के द्वारा ही साध्य है

मैं इस आपकी वृद्धता को ग्रहण नहीं करूँगा ॥३१॥ इस वृद्धता के पान

तथा भोजन करने वाले बहुत से दोष होने हैं इस कारण से हे राजन् ! मैं उसे

ग्रहण करने को उत्साहित नहीं होना हूँ ॥३२॥

सितश्मश्रुघरो दीनो जरया शिथिलीकृत ।
 वलीसन्तगात्रश्च दुर्दृशो दुबलाकृति ॥३३
 अशक्त वायकरणे परिभूतस्तु यौवने ।
 महोपभीतिमिश्रं च ता जरात्राभिकामये ॥३४
 सन्ति ते बहव पुत्रा मत्त प्रियतरा नृप ।
 प्रतिगृह्य तु धर्मं पुत्रमन्य नृणोऽप्य न ॥३५
 स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वित ।
 उवाच वदता श्रुष्टो ज्येष्ठ त गहयन् सुतम् ॥३६
 आश्रमं बन्धु बान्धवोऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव ।
 मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदात्य नवदेशिक ॥३७
 एवमुक्त्वा यदु राजा दशपुत्रं स मन्त्रुमान् ।
 यस्त्व मे दृढयाज्जातो वयं स्व न प्रयच्छसि ॥३८
 तस्मात्त राज्यभागं मूढ प्रजा ते व भविष्यति ।
 तुवसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ॥३९
 न कामये जरा तात कामभोगप्रणाशिनीम् ।
 जराया बहवो दोषा पानभोजनवारिण ।
 तस्माज्जरा न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥४०

वृद्धता ॥ सकल दाढ़ी मूछ वाला होकर दीन और निधियार सा रहने
 वाला-बलवान् भी सन्त (भुके हुए) गात्रो वाला दुर्दृश व युक्त एव दुबल
 आकृति वाला यौवन में ही परिभूत होकर वाय वरने में धर्ममय होजाता है
 और उस महान् उपभोनिर्वाह का करता है इन कारणों से मैं आपकी वृद्धता को
 नहीं सना चाहता हूँ ॥३३ ३४॥ हे राजन् ! मुझ भी अविन प्रिय आपके वृद्ध
 स पुत्र हैं । हे धर्म ! वे हमें ग्रहण करें हमन्तिव किमी अन्य पुत्र का वरण
 करें ॥३५॥ यदु व द्वारा इस प्रकार से कहा गया वह बहुत ही तीव्र कोप से
 युक्त होकर बोलने वालों में परम श्रेष्ठ अपन ज्येष्ठ पुत्र को निन्ना करता हुआ
 बोला ॥३६॥ जीवनमा वह आश्रम है तथावा जीवनगी वह तरी धर्म की विधि है ?
 हे दुष्ट बुद्धि वाल ! हे भवन्निव ! ओकि तू मेरा घनादर करके ऐसा बोल रहा

हे ॥३७॥ क्रोधते युक्त यह राजा इस प्रकार से कहकर उभन यद्रु को शाप दे दिया कि तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ था और तू अपना जीवन मुझे नहीं दे रहा है ॥३८॥ हे मूढ़ ! तू इस बारण्य से राज्य का मागी नहीं होगा । हे तुर्वंगो ! तू मेरी वृद्धता के साथ मेरे काम पापको ग्रहण कर ॥३९॥ तुर्वंगु ने कहा—हे तान ! काम और भोग का नाश करने वाली इस वृद्धता को मैं नहीं चाहता हूँ । पान तथा मोहन करने वाल इस जगमे बहुत मे दोष हुआ करते हैं इसमें हे राजन् ! मैं इस जग को ग्रहण नहीं करना चाहता हूँ ॥४०॥

यस्त्व मे तृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

तस्मात् प्रजा समुच्छेद तुर्वंगो तव यास्यति ॥४१॥

अमङ्गीर्णा च धर्मणा प्रतिलोमवरेषु च ।

पितृतादिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यति ॥४२॥

गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा ।

पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यति न मणय ॥४३॥

एवमुक्त्वा तुर्वंगु क्षप्त्वा ययाति सुतमात्मन ।

शमिक्षाया सुत द्रुह्यमिद वचनमब्रवीत् ॥४४॥

द्रुह्यो त्व प्रतिपद्यस्व वरारूपविनाशिनीम् ।

जरा वर्षसहस्रं वं जीवनं स्वन्ददस्व मे ॥४५॥

पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि जीवनम् ।

स्वन्वादास्यामि भूमोऽह पाप्मानं जरया सह ॥४६॥

न गज न रथ नाश्व जीर्णो भुक्ते न च क्षियम् ।

न सङ्गश्चास्य भवति न जरा तेन कामये ॥४७॥

यस्त्व मे तृदयाज्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

तस्माद्द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते वदचित् ॥४८॥

ययाति ने कहा—तू मेरे हृदय ॥ उत्पन्न हुआ है और फिर भी अपना

जीवन मुझे देना नहीं चाहता है इससे हे तुर्वंगु ! तेरी सन्तान का समुच्छेद हो

जायगा ॥४१॥ तेरी प्रजा धर्म से प्रतिलोम वरो मे अमङ्गीर्ण होगी । हे मूढ़ !

और धर्म पिशित आदि मे राजा होगा ॥४२॥ गुरु की दारा मे प्रसक्त प्रयवा

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्वितार्थं महाद्युते ।

यथा भागश्च राज्यञ्च अचिरात् प्रतिपत्स्यसे ॥६६॥

तथा शक्र गमिष्यामि माभूत्ते विकलव मन ।

ततः कर्म चकारास्य तेजः सवर्द्धनं महत् ॥६७॥

तेषाञ्च बुद्धिसमोहमकरोद्बुद्धिसत्तम ।

ते यदा समुता मूढा रागोत्पन्ना विषमिण ॥६८॥

ब्रह्मद्विपश्च सवृत्ता हतवीर्यपराजमा ।

ततो लेभे मुरेश्वर्यमैन्द्रस्थान तपोत्तमम् ॥६९॥

हत्वा रजिसुतान् सर्वान्कामक्रोधपरायणान् ।

य इव पावन स्थानं प्रतिष्ठान् यतःकृतो ।

शृणुधाढ्या रजेर्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥७०॥

हे ब्रह्मर्षे ! मेरे लिए जदरी फल (वेर) के बराबर पुरोदश करो जिनमें मैं तेज ने भाग्याशित (पूत) होता हुआ ठहरे ॥६३॥ हे ब्रह्मर्ष ! मैं कृपण हूँ—उशास हूँ—छिने हुए राज्य वाला और छिने हुए भोजन वाला हूँ । रजि के पुत्रों के द्वारा हुन भोजन वाला—दुर्वल तथा मैं मूढ़ किया गया हूँ । आप मुझ पर प्रमथ होइये ॥६४॥ बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र ! यदि इस प्रकार मे तेरे द्वारा मैं पहिले ही प्रेरित होना तो हे जनप ! तेरे प्रिय के लिये मेरा अर्क्षत्वं न होता ॥६५॥ हे देवेन्द्र ! हे महान् क्षुति वाले ! उन तेरे हित के लिए ॥ प्रयत्न कर्त्तगा जिनमे शीघ्र ही तेरा भाग और राज्य प्राप्त हो जायगा ॥६६॥ हे शक्र ! उस तरह से मैं जाऊंगा तू अपना मन विकलव पूर्ण मन करे । इसके पश्चात् इसके महान् तेज के बढ़ाने वाला कर्म किया था ॥६७॥ बुद्धि के परम श्रेष्ठ ने उनकी बुद्धि का समोह कर दिया कि जिन समय में पुत्रों के महित उत्पन्न राग बाने—मूढ़ तथा विषमों होगये ॥६८॥ वे ब्रह्मर्षों से द्वेष करने वाले और शीघ्र तथा पराक्रम के बाधा कर देने वाले होगये ये फिर इसके बाद देवों के ऐश्वर्य इन्द्र के स्थान को जोकि परमोत्तम था, प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ कामवासना और क्रोध की आकम्पा से तत्पर रजि के समस्त पुत्रों को मारकर जो यह पावन

स्थान और इन्द्र का प्रतिष्ठान था प्राप्त नर लिया था । रजि के इस इतिहास को जो भी कोई सुनता है वह कभी दुरात्मा को प्राप्त नहीं होता है ॥१००॥

प्रकरण ५५—चन्द्रांश कीर्तन (२)

मरुतेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना ।
 त्रिवीर्याश्च महात्मानो जाता मरुतकन्यका ॥१॥
 आहवन् त मरुत्सोममन्नवाम प्रजेश्वरम् ।
 मासि मासि महातेजा पष्टिमवत्सरान् नृप ॥२॥
 तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोपिता ।
 अक्षय्यान्न ददु प्रीता सवकामपरिच्छदम् ॥३॥
 अन्नं तस्य सकृत्पक्वमहोरात्रे न क्षीयते ।
 वाटिशो दीयमानं च सूर्यस्योदयनादपि ॥४॥
 मित्राज्योतिस्तु कन्याया मरुतस्य च धीमत ।
 तस्माज्जाता महामत्त्वा धमज्ञा मोक्षदर्शिन ॥५॥
 सन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्यं समुपस्थिता ।
 यतिधममवाप्येह ब्रह्मभूमाय ये गता ॥६॥
 अनपायस्ततो जातस्तदा धर्मं प्रदत्तवान् ।
 क्षत्रधमस्ततो जात प्रतिपक्षो महातरा ॥७॥
 प्रतिपक्षमुतश्चापि शत्रुतो नाम विश्रुत ।
 सञ्जयस्य जय पुत्रो जयस्तस्य जग्मिवान् ॥८॥
 विजयस्य जय पुत्रस्तस्य हयन्दत स्मृत ।
 हर्यन्दुतस्ततो राजा सहदेव प्रतापवान् ॥९॥
 सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुत ।
 अदीनस्य जयत्मेनस्तस्य पुत्रोऽथ सकृति ॥१०॥

श्रुतिगण ने कहा—महात्मा मरुत ने राजा को कन्या के दो दत्त ।

और महात्मा मरुत की नन्हाएँ जा महान् आत्मा वाली थी जिस प्रकार के बीच

वाणी हुई थी ॥१॥ श्री मूनश्री ने कहा—यह नृ ने धर्म की वामना रखी
हुए प्रजेभर उत नाम का धोहन किया था । महान् तेज धारि राजा ने माग-
माग से धर्म प्रत्येक मास से गाठ वर्ष पर्यन्त ऐसा किया था ॥२॥ हमने वे
मदन गोम के द्वारा सोलित किये मये थे और परम प्रमद होने हुए उन्होंने
ममत्त कामाग्रो का परिचर्य धर्म्य धर्म द दिया था ॥३॥ उमका तुम्हार
पचापा हुआ धर्म एव धर्मोत्तम म नीम नहीं होता है और मूर्ख के उदय ने
भी बगोरी को दिया हुआ भी बाटे नहीं सीम नहीं होता है ॥४॥ मुद्रि-
मान् मन्त्री की कान्ता मे मित्राग्रोनि और उमने मोक्ष के देमने धर्म धर्मोत्तम
महा मन्त्र उत्पन्न हुए ॥५॥ वे मृदु धर्मों का भनी-भानि त्याग करने वैराग्य को
प्राप्त हुए वे धर्म पति धर्म को पारक के मन्त्र के स्वरूप को पट्टे मये थे
॥६॥ हमने धर्मनर धर्मोत्तम हुआ मन्त्र उमने धर्म प्रदत्तपाद पैदा हुआ
उमने फिर क्षत्रधर्म पैदा हुआ और उमने महान् सार राजा धर्म पति ने जन्म
ग्रहण किया था ॥७॥ धर्मपति का पुत्र भी मन्त्र हम नाम मे प्रसिद्ध हुआ था ।
मन्त्र के पुत्र का नाम जय था और उस जय के विजय नाम धर्म पुत्र उत्पन्न
हुआ था ॥८॥ विजय के पुत्र का नाम जय था और उमने पुत्र का नाम हर्षेन्दु
हुआ था हर्षेन्दु के पुत्र का नाम प्रताप धर्मा महदेव राजा था ॥९॥ महदेव
के धर्मोत्तम धर्मीन हम नाम मे विभूत हुआ था । धर्मीन के पुत्र का नाम जय-
शेन हुआ और उमने सृष्टि नामक पुत्र हुआ था ॥१०॥

महत्तेरपि धर्मोत्तम धर्मोत्तम महायथा ।

इत्येते क्षत्रधर्माणां नहुपस्य निबोधत ॥११॥

नहुपस्य तु दायादा पडिन्द्रोपमतेजस ।

उत्पन्ना पितृकन्याया विरजाया महोजसः ॥१२॥

यतिर्ययाति मयातिरायाति पञ्च नुदय ।

यतिर्ज्यैष्ठस्तु तेपा वै ययातिस्तु तनोऽपर ॥१३॥

कावुत्स्यकन्या गा नाम लेमे पानी यतिस्तदा ।

सयातिर्मां दामास्थाय गृहाभूतोऽभवन्मुनि ॥१४॥

तेषां मध्ये तु पञ्चानां ययाति पृथिवीपतिः ।

देवयानिमुत्तमस्य मुता भार्यामवाप ह ॥१५॥

शमिष्ठा मामुरी चैव तनया वृषपर्वणा ।

यदुं च तुवंसुं चैव देवयानिव्यंजायत ॥१६॥

द्रुह्यश्चानुश्च पूरुश्च शमिष्ठा वार्षपर्वणी ।

अजीजनन्महावीर्यान् मुतान्देवमुनोपमान् ॥१७॥

रथन्यस्मै ददौ रुद्र प्रीतः परमभास्वरम् ।

असङ्गं वाञ्छनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी ॥१८॥

मस्त्विति के पुत्र का नाम धर्मात्मा एवं महान् यज्ञ वाला कृतधर्मा हुआ था । ये इनने क्षत्र धर्म वाले हुए थे अब नहुष के वंश में जो उत्पन्न हुए थे उनको समझ लो ॥११॥ नहुष के दायाद छंद हुए थे जोकि इन्द्र के समान तेजस्वी थे और वे सब महान् धोत्र वाले पितृ कन्या विरजा में उत्पन्न हुए थे ॥१२॥ जिनके नाम यनि-ययाति-ययात्रि-यायानि और पञ्च एवं तुदय थे । उन सबमें यति सबसे बड़ा था और ययाति उससे छोटा था ॥१३॥ तब या नाम वाली काकुत्स्थ की कन्या को यनि ने पत्नी के रूप में प्राप्त किया था । भयनि मोक्ष के कार्य में स्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि होगया था ॥१४॥ उन पाँचों के बीच में ययाति जो था वह पृथिवी का स्वामी बना था । उसने उद्यन्त की पुत्री देवयानी को भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५॥ और मामुरी वृषपर्वी की पुत्री शमिष्ठा को प्राप्त किया था । देवयानी ने यदु और तुवंसु का उत्पन्न किया था वार्षपर्वणी शमिष्ठा ने मुह्यमनु और तुरु की जन्म दिया था जोकि पुत्र महान् वीर्य वाले एवं देव पुत्रों के समान थे ॥१७॥ उसके लिए परम प्रसन्न होने वाले भगवत् रुद्र ने अत्यन्त भास्वर-असङ्ग और काञ्चन दिव्य रथ प्रदान किया था तथा दो भक्षय महेषुधी दिये थे ॥१८॥

युक्तं मनो ज्वरं रश्म्येन कन्या समुद्रहत् ।

स तेन रथमुरयेन जिगाय च ततो महीम् ॥१९॥

ययातिमुं धि दुर्द्धपो देवदानवमानवं ।

पीरवाणा नृपाणाञ्च सर्वेषां मोक्षमवद्रथ ॥२०॥

नियंयोनि मे जाने वाले तथा यदा धर्मो मे एवं श्लेच्छो मे तू होगा—इसमे
 तनिक भी सशय नहीं है ॥४३॥ श्री गूतजी ने कहा—ययाति इस प्रकार से
 तुर्यंशु को धाप देकर जोबि धपना ही उसका पुत्र था फिर अमिष्ठा के पुत्र द्रुह्य
 ने यह वचन बोला ॥४४॥ हे द्रुह्य ! तू इस मेरी वर्य तथा रूप के विनाश
 करने वाली जरा को एक सहस्र वर्ष के निवे ग्रहण करने और धपना यौवन
 मुझे दे दे ॥४५॥ एक हजार वर्ष पूरे होजाने के पश्चात् तुझे तेरा यौवन वापिस
 दे दूंगा और मैं फिर अपने पाप के महित वृद्धता को वापिस से लूंगा ॥४६॥
 द्रुह्य ने कहा—जरासे जीर्ण पुष्ट हाथी-घोडा-रथ और स्त्री किसी का भी
 भोग नहीं कर सकता है और इसका शत्रु भी नहीं होता है अतएव मैं आपकी
 परा को ग्रहण करना नहीं चाहता हूँ ॥४७॥ ययाति ने कहा—ओ तू मेरे हृदय
 से उत्पन्न हुआ है और इस समय मुझे धपना यौवन नहीं देता है इससे हे द्रुह्य !
 वही भी तेरा प्रिय काम नहीं पूरा होगा ॥४८॥

नौप्यचोत्तरसञ्चारस्तत्र नित्य भविष्यति ।

अराजध्राजवशस्त्व तत्र नित्य भविष्यति ॥४९॥

अनो त्व प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।

एव पर्यसहस्रशु चरेय यौवनेन ते ॥५०॥

जीर्णं शिशुवर दत्ते जरया ह्यगुचि सदा ।

■ जुहोति स बालेऽग्नि ता जराग्नाभिरामये ॥५१॥

यस्त्य मे तृदयाञ्जातो वय स्वन्न प्रयच्छसि ।

जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्ते प्रतिपत्स्यते ॥५२॥

प्रजा च यौवन प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव ।

अग्निप्रस्वन्दनपरस्तः चाप्येव भविष्यसि ॥५३॥

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानञ्जरया सह ।

जरायली च भान्तान पलितानि च पर्यगु ॥५४॥

माव्यस्योशनसः दापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ।

मश्चित्वास्तञ्जयेयं वं विषयान् वयसा तव ॥५५॥

पूर्णं वर्षसहस्रं ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।

स्वर्चं च प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्चरया सह ॥५६॥

यहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तु भराज भ्राज वश वाला नित्य ही रहेगा ॥५६॥ हे धनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तु ग्रहण करमे । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से आनन्द प्राप्त करूँ ॥५७॥ अनु बोला—जरा से जोर्ण व्यक्ति सदा जरा से श्रेष्ठ वातक अशुचिता विद्या करता है । वह समय पर अग्नि म हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥५८॥ ययाति बोला—तू मेरे शरीर एवं हृदय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है । तूने जो यह जरा से शोष वतला दिये हैं । अच्छा तू इन दोषों को प्राप्त करेगा ॥५९॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो मृष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्वन्दन में ही परावण रहेगा ॥६०॥ हे पुरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले हे दात । वह जरावन्ती ने मुझको नष्ट भ्रात से पतित कर दिया है ॥६१॥ उसना काश्य के साथ मे मैंने अपने यौवन में हृति प्राप्त नहीं की है । तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करूँ और विषमों का उपभोग करूँ ॥६२॥ एक मह्य वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन मुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा का वापिस ले लूँगा ॥६३॥

एवमुक्तं प्रत्युवाच पुनः पितरमञ्जसा ।

यथानुमन्यसे तात वरिष्यामि तथैव च ॥६४॥

प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।

गृहाण यौवनं मत्तश्चर नामान् यथेप्सितान् ॥६५॥

जरयाह प्रतिच्छन्नो वयोऽपधरस्तव ।

यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थम् ॥६६॥

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्चैव ददामि ते ।

सर्वेनामसमृद्धा तं प्रजा राज्ये भविष्यति ॥६७॥

पुरोरनुमतो राजा ययाति स्वा जगन्तत ।

सन्नामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवरय तु ॥६८॥

यौवनेनाथ वयसा यथातिर्नहुपात्मज ।

प्रीतियुक्तो नरथ्रेष्ठश्चचार विषयान् स्वकान् ॥६२॥

यथाकाम यथोत्साह यथावास यथासुखम् ।

धर्माविरोधाद्राजेन्द्रो यथाहन्ति स एव हि ॥६३॥

देवानतपयद्यज्ञं पितृच्छ्राद्धंस्तथैव च ।

दीनाश्चानुग्रहेरिष्टं कर्मश्च द्विजसत्तमान् ॥६४॥

प्रतिथीनन्नपानैश्च वैश्याश्च परिपालनं ।

प्रातृशस्येन शूद्राश्च दस्यून् सनिग्रहेण च ॥६५॥

धर्मेण च प्रजा सर्वा यथावदनुरञ्जयन् ।

ययाति पालयामास साक्षादिन्द्र इवापर ॥६६॥

श्री मूनजी ने कहा—इस प्रकार स कहें हुए पुत्र १ तुरन्त ही पिता से कहा—हे नात । आप जो भी कहते हैं मैं उसी प्रकार से करूँगा ॥६७॥ हे राजन् । मैं आपके पाप को जरा के सहित प्राप्त करूँगा । आप मुझसे मेरा जीवन ग्रहण कर लाजिये और यथेष्ट विषयो का उपभोग करें ॥६८॥ मैं इस जरा में प्रतिच्छन्न होता हुआ तुम्हारी वय के रूप को धारण करने वाला आपको जीवन दकर यथावधि की भांति चरण करूँगा ॥६९॥ ययानि बोला—हे पुरो । मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ तेरा कल्याण हो मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूँ कि राज्य में तेरी प्रजा समस्त कामनाओं से समृद्ध होगी ॥७०॥ श्री मूनजी ने कहा—पुरु से अनुमत्त होने वाले राजा ययानि ने इसके अनन्तर अपनी जरा को उस समय भागव के प्रसाद से सकामित कर दिया था ॥७१॥ नहुप का पुत्र ययाति इसके अनन्तर जीवन की अवस्था में वह नरथ्रेष्ठ परम प्रमनता युक्त होत हुए अपने विषयो के उपभोगों को करने लगा था ॥७२॥ यया काम और उत्साह के अनुकूल—यया समय और सुगानुसार धर्म के अनुरोध से वह राजेन्द्र का भी याम्य होता है वही करता है ॥७३॥ यया ने द्वारा देवों को दत्त किया और थानों के द्वारा पितरों का सन्तुष्ट किया था और दीना पर उन्हें अनुग्रह करके तथा द्रव्य की कामना को पूरा करके द्विज थानों का सन्तुष्ट किया था ॥७४॥ अनिषियो को अन्न दान तथा पान के द्वारा—वैश्यो को परि

पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ।

स्वर्चं च प्रतिपत्स्यामि पाप्मानञ्चरया सह ॥१६॥

वहाँ पर नौकाप्लव का सञ्चार नित्य होगा और वहाँ तू धराज भ्राज वंश वाला नित्य ही रहेगा ॥१६॥ हे भनो ! मेरे पाप को जरा के साथ तू ग्रहण करने । इस तरह एक सहस्र वर्ष तक मैं तेरे यौवन से आनन्द प्राप्त करूँ ॥१७॥ भनो बोला—जरा से जोएँ व्यक्ति सदा जरा से श्रेष्ठ बालक अनुविता दिया करता है । वह समय पर अग्नि में हवन नहीं कर पाता है इसलिये मैं ऐसी जरा की इच्छा नहीं करता हूँ ॥१८॥ यथाति बोला—तू मेरे शरीर एवं हवय से उत्पन्न हुआ है और मुझ अपने पिता को अपना यौवन नहीं देना चाहता है । तूने जो यह जरा के दीप बत्ता दिया है । अच्छा तू इन दीपों को प्राप्त करेगा ॥१९॥ तेरी सन्तति जब यौवन को प्राप्त होगी तो नष्ट हो जायगी और तू भी अग्नि के प्रस्फन्दन में ही परायण रहेगा ॥२०॥ हे पुरो ! तू मेरे पाप को जरा के साथ ग्रहण करले है तात । यह जरावली ने मुझको सब और से पतित कर दिया है ॥२१॥ उसना काय्य के साथ से मैंने अपने यौवन में वृत्ति प्राप्त नहीं की है । तेरे यौवन से कुछ समय तक चरण करूँ और विषयों का उपभोग करूँ ॥२२॥ एक सहस्र वर्ष के पूरे होजाने पर तेरा यौवन तुझे दे दूँगा और अपने पाप के साथ जरा को वापिस ले लूँगा ॥२३॥

एवमुक्त प्रत्युवाच पुत्र पितरमश्नुता ।

ययानुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च ॥२४॥

प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।

गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ॥२५॥

जरयाह प्रतिच्छन्नो वयोस्पधरस्तव ।

यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि ययार्थं तत् ॥२६॥

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रन्ते प्रीतश्चैद ददामि ते ।

सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति ॥२७॥

पुरोरनुमतां राजा यथाति स्वा जरान्ततः ।

सक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु ॥२८॥

कामो के उपभोग में व्यतीत हुए एक सहस्र वर्षों का स्मरण किया था ॥७०॥
 और काल को तथा बला एवं काष्ठामो की परिणामना करके और उसी प्रकार
 से काल को पूरा मानकर फिर अपने पुत्र पूरु से बोना ॥७१॥ हे भरिदम ।
 मुझ के अनुसार और यद्योग्याह तथा काल के अनुबूल मैं तुम्हारे जीवन के
 द्वारा हे पुत्र । विषयों को स्वर सेवन किया है ॥७२॥ हे पुरो । मैं तुम से बहुत
 ही प्रसन्न हुआ हूँ तुम्हारा कल्याण हो अब तुम अपने जीवन को वापिस ग्रहण
 करो । और साथ ही इस राष्ट्र को भी तुम ग्रहण करो तुम ही मेरे प्रिय करने
 वाले पुत्र हो ॥७३॥ इस तरह बहुत के पुत्र ययाति राजा ने अपनी जरा को
 प्राप्त कर लिया था और पूरु ने पुन अपना जीवन प्राप्त कर लिया था ॥७४॥

अभिपेक्षुकामश्च नृप पूरु पुन वनीयसम् ।
 ब्राह्मणप्रमुखा वरुणा इव वचनमब्रुवन् ॥७५॥
 कथं शुक्रस्य नम्रार देवयान्या सुत प्रभो ।
 यं ह यदुमतिरम्य पुरो राज्यं प्रदस्यसि ॥७६॥
 यदुज्ज्वलस्तव सुतो जातस्तमनु तुवसु ।
 शर्मिष्ठाया सुतां द्रुह्यस्ततांस्तु पूरुरेव च ॥७७॥
 कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य वनीयान् राज्यमहति ।
 अतः सम्बोदयामि त्वा धम्म समनुपालय ॥७८॥
 ब्राह्मणप्रमुखा वरुणा सर्वे शृण्वन्तु मे वच ।
 ज्येष्ठं प्रति यथा राष्ट्रं न देयं मं कथञ्चन ॥७९॥
 माता पित्रावचनकृतस्य हि पुत्रः प्रशस्यते ।
 मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ॥८०॥
 प्रतिकूलं पिनुयश्च न स पुत्रः सता मते ।
 स पुत्रः पुत्रवदयश्च वत्तते पितृमातृषु ॥८१॥
 यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुवंसुनापि च ।
 द्रुह्य गां चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ॥८२॥

अपने छोटे प्रिय पुत्र पुत्र को राज्याभिषेक करने की इच्छा वाले राजा
 ययाति से ब्राह्मण प्रमुख सभी वरुण वान यह वचन बोले ॥७५॥ हे प्रभो । शुक

पालन के द्वारा तथा शूद्रों को कूरता के अभाव के द्वारा एवं दस्युओं को भली भाँति निग्रह के द्वारा सन्तुष्ट किया करता था ॥६५॥ धर्म पूर्वक अपनी समस्त प्रजा का अनुरञ्जन करते हुए संस्रान् दूसरे इन्द्र के समान राजा ययाति ने प्रजा का यथावत् पालन किया था ॥६६॥

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचर ।
अविरोधेन धर्मस्य चचार मुष्ममुत्तमम् ॥६७॥
स मार्गमाणः कामानामन्तर्दोषनिदर्शनात् ।
विश्वासहेतो रेमे वं वैभ्राजे नन्दने वने ॥६८॥
अपश्यत्स यदा ता वं बद्धमाना नृपस्तदा ।
गत्वा पूरो सबाश वं स्वा जरा प्रत्यपद्यत ॥६९॥
स सम्प्राप्य तु तान् कामास्तृप्त क्षिप्रञ्च पार्थिव ।
काल वपंसहस्र वं सस्मार मनुजाधिपः ॥७०॥
परिसङ्ख्याय कालञ्च कलाकाशास्तथैव च ।
पूर्णं मत्वा तत काल पूरु पुनमुवाच ह ॥७१॥
यथासुख यथोत्साह यथाकालमरिदम् ।
सेविता विषया पुत्र यौवनन मया तव ॥७२॥
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्र ते गृहाण त्व स्वयौवनम् ।
राष्ट्रञ्च त्व गृहाणेद त्व हि मे प्रियवृत्तसुत ॥७३॥
प्रतिपेदे जरा राजा ययातिर्नृपात्मज ।
यौवन प्रतिपेदे च पूरु स्व पुनरात्मन ॥७४॥

वह राजा सिंह के समान विक्रान्त-युवावस्था से पूरा विषय गोचर था किन्तु धर्म के विरोध न करने से उमने उत्तम सुख का चरण किया था ॥६७॥ वह कामों की अन्तर्दोषों के निदर्शन से खोज करता हुआ अपने विश्वास के हेतु से वैभ्राज नन्दन वन में रह रहा करता था ॥६८॥ जब उस राजा ने उस काम-वासना को बढती हुई ही देखा तो उस समय पूरु के पास जाकर अपनी वृद्धता का पुन उसने प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ उस राजा ने उन कामों की भली-भाँति प्राप्त करके तृप्त हुआ और क्षिप्र भी हुआ । उस मनुजों के स्वामी ने अपने

दिशि दक्षिणपूर्वस्या तुर्वमुं तु न्यवेशयत् ।
 दक्षिणाग्रतो राजा यदु श्रेष्ठ न्यवेशयत् ॥८८
 प्रतीच्यामुत्तरस्याश्च द्रुह्यञ्चानुश्च तावुर्भा ।
 सप्तद्वीपा ययातिस्तु जित्वा पृथ्वी ससागराम् ।
 व्यभजत् पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ॥८९
 तैरिय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सप्ततना ।
 यथाप्रदेय धर्मज्ञैर्धर्मैरेण प्रतिपाल्यते ॥९०
 एव विभृज्य पृथिवी पुत्रेभ्यो नाहुपस्तदा ।
 पुत्रसक्रामितश्चोस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ॥९१
 धनुर्व्यस्य पृपत्याश्च राज्यञ्च व सुतेषु तु ।
 श्री रामानभवद्वाजा भारभावेभ्य बन्धुषु ॥९२

पूष ने मेरे वचन का पूर्ण पालन किया और मेरा पिता की भाँति विशेष रूप से सम्मान किया था । मेरा यह छोटा पुत्र है किन्तु इमने मेरी आज्ञा मानते हुए मेरी वृद्धता को स्वयं धारण किया था । पुत्रकारी पूष ने मेरा समस्त काम किया और सभी कुछ किया है ॥८८॥ और उग्रना काश्यप्य ऋषि ने स्वयं वरदान दिया था कि 'हे महाशते' जो पुत्र तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करे वही राज्य का राजा होगा ॥८९॥ इस तरह से पूष आपका भी अनुमत है उसे राष्ट्र में अभिषिक्त कर दो । जो पुत्र गुणों से सम्पन्न हो और सदा माता-पिता का हित करने वाला हो वह छोटा भी प्रभु सम्पन्न बलवाण प्राप्त करने के योग्य होता है ॥९०॥ पूष हम राष्ट्र के श्रेष्ठ करने को योग्य है जो आपके प्रिय करने वाला और आपके प्रिय है । ऋषि के वरदान से अब कोई भी उत्तर कहा नहीं जा सकता है ॥९१॥ उस समय वीरजान पदों के द्वारा पूर्णतया मनुष्य होते हुए नहुष के पुत्र ययाति इस प्रकार से कहे गये और उन्होंने अपने पुत्र पूष को राष्ट्र में अभिषिक्त करके दक्षिण पूव दिशा में तुर्वमु की निवेशन कर दिया था और दक्षिण में अग्न्य दिशा में राजा ने श्रेष्ठ यदु को निवेशन दिया ॥८७ ८८॥ पश्चिम में और उत्तर में द्रुह्य और अनु इन दोनों की का निवेशन किया था । ययाति ने मागर के सहित मान द्वीप वाली पृथ्वी को जीत कर पाँच प्रकार में उसका

के नाती और देवयानी के पुत्र श्रेष्ठ यदु का अतिक्रमण करके पूरु को राज्य विस त्तरह आप दे दोगे ? ॥७६॥ यदु आपका सबसे बड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ था । उसके पदचान् उमसे छोटा तुवंसु पुत्र है । शमिथा का पुत्र द्रुह्यु बड़ा है उसके पदचान् उमसे छोटा पूरु है ॥७७॥ आप बड़े पुत्रों का सबका अतिक्रमण करके छोटे पुत्र को राज्य कैसे देने की योग्य होते हैं ? इसनिये हम आपको सम्पत् प्रकार से जान देने हैं कि आप घर्मे का पूर्ण पालन करें ॥७८॥ राजा ययानि ने कहा—हे ब्राह्मण प्रमुखों ? आप समस्त वर्ष वाले मव मरे वचन का अवण करें । जैसा कि उपयुक्त को राष्ट्र दिया जाता है किन्तु मुझे वह किसी प्रकार में भी नहीं देना है ॥७९॥ जो माता और पिता के वचनों का परिपालन करने वाला होगा है वह पुत्र प्रशस्तनीय माना जाता है । मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरे नियोग का अनुपालन नहीं किया था ॥८०॥ जो पिता के प्रतिकूल हो वह मजन पुष्टो ने पुत्र नहीं माना है । पुत्र वह ही है जो पुत्र की भाँति पिता और माता के विषय में व्यवहार किया करता है ॥८१॥ यदु ने तथा तुवंसु इन दोनों ने मेरी अवज्ञा करदी थी और छोटे द्रुह्यु ने भी इसी प्रकार से मेरी बहुत ही अधिक अवज्ञा की थी ॥८२॥

पूरुणा तु कृत वाक्य मानितश्च विशेषतः ।
 वनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम ।
 सर्वकाम सर्वकृत पूरुणा पुनकारिणा ॥८३॥
 शुक्रेण च वरो दत्त काव्ये मौशनसा स्वयम् ।
 पुत्रो यस्त्वानुवर्षेत स राजा ते महामते ॥८४॥
 भवतोऽनुमतोऽप्येव पूरु राष्ट्रेऽभिपिच्यताम् ।
 य पुत्रो गुणमम्पन्नो मातापित्रोर्हित सदा ।
 सर्वमर्हति वर ए वनीयानपि स प्रभु ॥८५॥
 अर्ह पूरुरिदं राष्ट्रं य प्रिय प्रियकृत्तव ।
 वरदानेन शुक्रस्य न शनय वक्तुमुत्तरम् ॥८६॥
 पौरजानपदस्तुष्टैरित्युक्तो नाद्रुपस्नदा ।
 अभिपिच्य तत पूरु स्वराष्ट्रे सुतमात्मन ॥८७॥

नही दृष्टा करता है । बाना के उग्रभोग में तो उम्मे के हृदि दामने में धनि की
 चरि घोर धरिष बड़ जाया करने है धर्षान् विदोष प्रदीप्त होना है ॥६४॥
 ओ भी दण पृथिवी में श्रीहि-यव-गुण-गुण घोर भिन्न धरि है वह सब
 एव को पुण एव धरिष नही है—यह देगने दृष्ट मोह को प्राप्त नही होता है ।
 ॥६५॥ विन समय में समय भूषों में पावक भाव करता है घोर वह भी धर्म-
 मन घोर यवन गनी प्रकाश के विद्या करता है तब वह धन को प्राप्त करता है
 ॥६६॥ अब धर्म नही करता है घोर सब धर्म के परको नहीं दण देता है ।
 अब कोई भी दण्ड नही करता है घोर न दण्ड करता है तब धन को प्राप्त
 करता है ॥६७॥ जो दुष्ट बुद्धि बानों के दुष्ट दुष्टवत् है घोर जो स्वयं जीर्ण
 होना के पर जीर्ण नही होता है वह सोपाप्राप्ति-निव गव है धर्षान् प्राप्ति के
 धर्म समय तब रहन कामा गव होता है उस मृग्या के स्वाग करने धर्म को
 ही मुग होता है ॥६८॥ जग में जीर्ण होने धर्म पुण के वेग भी जीर्ण होना के
 है तथा पाव ही जग की जीर्णता व द-न जीर्ण-धीन हो जाया करने है विगु
 तब जीर्ण रहन की भासा और धन प्राप्त करने की भासा जीर्ण होना के पर
 भी धन को जीर्ण नही दृष्टा करती है ॥६९॥ ओ तबान ध काशीभोग का
 मुग है घोर जो दिव्य महान् मुग है व तीनों मृग्या व स्वाग के मुग की
 मानही बना व बगबर भी नही है ॥७०॥

एवमुक्त्वा स राजर्षि मदार प्रस्थितो वनम् ।

भृगुमुद्ग्रे तपस्यन् एवा तत्रैव च महायशा ।

पालयित्वा व्रतगतं तत्रैव स्वर्गमाप्नुवान् ॥१०१॥

तस्य वशात्पु पश्चत्ते गुण्या देवपितरुताः ।

मेध्यामा पृथिवी कृत्वा सूर्यस्यैव ममस्तिभिः । १०२

धन्य प्रजावानामुष्मान् कीर्तिमात्र मधेध्रः ।

ययातेभ्रारित सर्वं पठञ्छ्वन् द्विजोत्तम ॥१०३॥

राजर्षि ने दण प्रचार में बहुर पत्नी के साथ वन में प्रस्थान कर दिया
 था । भृगु मुद्ग्रे पर तब करने घोर महान् यश धर्म ने वही पर ही मो वना
 का पानन करने वही पर ही स्वर्ग की प्राप्ति की थी ॥१०१॥ उसके ये पांच

नहुष के पुत्र ने उस समय में पुत्रों के लिये विभाजन कर दिया था ॥८६॥ उनके द्वारा यह समस्त पृथ्वी त्रिमम गात द्वीप हैं उभे पत्तनो (नगरो) के सहित प्रदेशो के धनुषार धर्म के ज्ञाताओं ने उन्हे धर्म पूर्वक पालन किया था ॥८७॥ इस प्रकार से नहुष के पुत्र ययाति ने उस समय पुत्रों के ऊपर पृथ्वी का भार छोड़कर पुत्रों में राज्यधी को सत्क्रामित करने वाला राजा बहुत ही प्रसन्नता को प्राप्त हुआ था ॥८९॥ धनुष और धृपत्तों को त्याग कर तथा पुत्रों को राज्य को तोप कर शत्रुओं पर अपना भार छोड़कर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था ॥९१॥

अथ गाथा महाराजा पुरा गीता ययातिना ।
 योऽभिप्रेत्याहरन् कामान् कूर्मोऽज्ञानीय सर्वस्य ॥९२॥
 न जानु कामः काम नामुपभागेन शाम्यति ।
 हविषा वृष्णावत्सर्वं भूय एवाभिवर्द्धते ॥९४॥
 यत् पृथिव्या ग्रीहियय हिरण्य पञ्चव स्त्रिय ।
 सालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥९५॥
 यदा तु कुर्वते भाव सर्वभूतेषु पावकम् ।
 कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥९६॥
 यदा पराप्त विभेति यदा त्वस्मान्न विभ्यति ।
 यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा । ९७॥
 या दुस्त्यक्ता दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यत ।
 दोषाप्रणान्तिको रागस्ता तृष्णान्स्पृजत सुखम् ॥९८॥
 जीर्यन्ति जीर्यत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
 जीविताशा घनाशा च जीर्यतोपि न जीर्यति ॥९९॥
 यच्चाकाममुख लोके यच्च दिव्य महत् सुखम् ।
 तृष्णास्य च सुखस्यैव कला नार्हति षोडशीम् ॥१००॥

यहाँ पर पहिले महान् राजा ययाति ने यह गाथा गायी है जिनसे अभि-
 प्राय करके समस्त कामनाओं को कूर्म के द्वारा अपने भङ्गो की भाँति सब ओरसे
 सकुचित कर लिया था ॥९३॥ कभी भी कामों के उपभोग करने उनका समन

मुष्मने उमे आप लोच जान लो ॥१॥ यदु के देव पुत्रा ने समान पाँच पुत्र हुए थे । उनके नाम सहस्रजित्-श्रेष्ठ-कोप्टु नील-जित और नषु होते हैं ॥२॥ सहस्रजित् का पुत्र श्रीमान् शतजित् नाम वाला राजा हुआ था और शतजित् के परम धार्मिक तीन पुत्र विष्पात हुए थे ॥३॥ जिनके नाम हैहय-हय और वेसु-हय ये थे । हैहय का पुत्र धमनस्व नाम वाला राजा हुआ था ॥४॥ उसके पुत्र धमत न-कीर्ति और सञ्जय थे । सञ्जय ने पुत्र का नाम महिष्मान् रखा था ॥५॥ महिष्मान् के पुत्र का नाम भद्रश्रेष्ठ था जोकि बड़ा प्रताप वाला हुआ है । यह चारण्यो का स्वामी राजा था जिगको कि पहिल ही बता दिया है ॥६॥ भद्रश्रेष्ठ का दायद दुमद नामक राजा था । फिर दुमद के भीमान् कनक नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥७॥ कनक राज्य के चार लोक में परम प्रतिष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम कृतवीर्य-शतवीर्य-वृत्तवर्मा और घोषा इत हैं ॥८॥

कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यत्तितोऽर्जुन ।

जङ्गे बाहुसहस्र ए समद्वीपश्वरा नृप ॥९॥

स हि वर्षायुत तप्त्वा तप परमदुश्चरम् ।

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽश्विसम्भवम् ॥१०॥

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजस ।

पूर्वं बाहुमहसन्तु स वयं प्रथम वरम् ॥११॥

अधर्मे दीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् ।

धर्मेण पृथिवीञ्जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥१२॥

सग्रामास्तु बहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रश ।

सग्रामे युद्धयमानस्य वधं स्यादधिकद्रुणे ॥१३॥

तेनेय पृथिवी कृत्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।

सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जना ॥१४॥

तस्य बाहुसहस्रन्तु युद्धयतं किल धीमत ।

योढो ज्वनो रथश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥१५॥

वदा है जो बड़े पुण्य है और देवपि ने द्वारा सत्कार पाने वाले हैं जिनो यह समस्त भूमण्डल व्याप्त हो रहा है जिन प्रकार भूयं नी निरखो से समस्त पृथ्वी व्याप्त होती है ॥१०२॥ जो द्विज श्रेष्ठ राजा ययानि ने इन समस्त चरित्र को पढ़ना या सुनना है वह परम धन्य-ग्रन्थावाला-आयु से युक्त और वह मनुष्य भीनिमान् होता है ॥१०३॥

प्रकरण ५६ —कार्तवीर्य अर्जुन उत्पत्ति

यदोवर्णं प्रवक्ष्यामि श्रेष्ठस्योत्तमतेजसः ।
विस्तरेणानुपूर्व्येण श्रुतं मे निबोधत ॥१॥
यदौ पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवमुतोपमा ।
सहस्रजिदयः श्रेष्ठ कोप्युर्नीलो जितो लघु ॥२॥
सहस्रजित्पुत्रः श्रीमान्छतजिन्नाम पाथिवः ।
शतजित्पुत्रा विख्यातास्तत्र परमधार्मिकाः ॥३॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः ।
हैहयस्य तु दायादो धर्मतत्त्व इति श्रुतिः ॥४॥
धर्मतन्त्रस्तु कीर्तिस्तु सज्ञेयस्तस्य चात्मजः ।
सज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पाथिवः ॥५॥
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेष्ठ्यः प्रतापवान् ।
वाराणस्यविपो राजा कथितः पूर्वं एव हि ॥६॥
भद्रश्रेष्ठ्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पाथिवः ।
दुर्मदस्य ततो धीमान् कनको नाम विश्रुतः ॥७॥
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ।
वृत्तं वीर्यं कार्तवीर्यं वृत्तवर्मा तथैव च ॥८॥

यो सूप बोले—अब मैं उत्तम तेज वाले-परम श्रेष्ठ यदु के वंश का न कहूँगा और उसे विस्तार से तथा अनुपूर्वों व साथ बताऊँगा । कहने हुए

न नून कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवा ।
 यज्ञेर्दानेस्तपाभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥२०॥
 द्वीपेषु समुधु स वै खड्गी वरशरासनी ।
 रथी राजाप्यनुचरोऽन्यागाच्चैवानुदृश्यते ॥२१॥
 अनष्टद्रव्यश्च वासीत शोको न च विभ्रम ।
 प्रभावेण महाराज्ञ प्रजा धर्मेण रक्षत ॥२२॥
 पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिप ।
 सप्त सप्त वारात् सम्राट् चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥२३॥
 स एव यशुपालोऽभूत् दोनपालस्तथैव च ।
 स एव वृष्ट्या पञ्चन्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत् ॥२४॥
 स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च ।
 भाति रक्षसहस्रेण क्षारदेनेव भास्कर ॥२५॥
 स हि नागसहस्रेण माहिष्मत्या नराधिप ।
 वज्रोटकसभाञ्जिरत्रा पुरी तत्र न्यवेशयत् ॥२६॥

उस राजा की बाधा की गंधर्व तथा तारद बाधा करते थे जिन्होंने उस राजा के चरित और महिमा को देखा था ॥१६॥ यज्ञ-तप-दान और विक्रमों के द्वारा तथा श्रुत के द्वारा मानव निम्न ही बात की गति को नहीं जा सकते ॥२०॥ मातो द्वीपों में ऐसा अनुसूच्यमान होता है कि वह खड्गधारी-श्रेष्ठ धनुर्धारी-रथी-राजा और अन्य अनुधर भी हुआ था ॥२१॥ हम पूर्वक प्रजा की रक्षा करने वाले उस महान् राजा के प्रभाव से सब द्रव्य नष्ट न होने वाले थे और कोई शोक तथा विभ्रम उसकी प्रजा में नहीं था ॥२२॥ वह नरों का स्वामी पितामी हजार वर्ष तक सात मात बार सम्राट और चक्रवर्त्ती हुआ था ॥२३॥ वह ही यशुपों का पालन करने वाला हुआ—वह ही सेनो का पालक हुआ और वृष्टि ने वह ही पञ्चन्य योगी होने के कारण हुआ था—वह ऐसा मञ्जुन था ॥२४॥ वह महत् बहूओं से और ज्या (श्रत्यज्ञा) के पात बठिनना से शरत्पाल के महत् निरखों से मूर्खों से समान शोभा देता है ॥२५॥ उस

दशयज्ञसहस्राणि तेषु द्वीनेषु मत्स्यु ।

निरगंला स्म निवृत्ता भूयन्ते तस्य धीमनः ॥१६॥

सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूगृतेजसः ।

सर्वे वाञ्छनवेदीनाः सर्वे गूर्पश्च वाञ्छनं ॥१७॥

सर्वे देवमंहाभागेविमानस्यैरलट्टता ।

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥१८॥

अतुल्य पुत्र इत उत्पन्न हुआ । इनमे कृत्त धीर्य से अतुल्य उत्पन्न हुआ जिसके एक सहस्र बाहु भी धीर्य यह मानो द्वीपों का स्थायी राजा हुआ था । १६। उस बार्नधीर्य ने दश हजार वर्ष तक अत्यन्त कठिन तपस्या करके अग्नि के पुत्र दत्त की आराधना की थी ॥१७॥ उसके लिए दत्त ने अधिक तेज से युक्त चार वर्षान दिये । उसने सबसे प्रथम सहस्र बाहु के होजाने का वर बोला था । ११। अर्धर्ष में दीयमान का सत्पुरुषों के द्वारा उसने निवारण करना । धर्म से समस्त पृथ्वी को जीतकर धर्म के द्वारा ही उसका अनुपालन करना ॥१२॥ बहुत से सप्राप्तों का जीतकर और सहस्रों शत्रुओं का हनन करके सप्राप्त में युद्ध करने हुए का रणभूमि में अधिक से बच होना ॥१३॥ उसके द्वारा यह पृथ्वी समस्त मात द्वीप और पत्तनों से युक्त सागरी समुद्रों से परिक्षिप्त क्षत्र विधि से प्राप्त की और इसका पालन किया था ॥१४॥ उस बुद्धिमान् के युद्ध करते हुए महस्र बाहु-योद्धावज और रथ माया से प्रादुर्भूत होते थे ॥१५॥ ऐसा मुना जाता है कि धीमान् उसके दश सहस्र यज्ञ उन सात द्वीपों में बिना ही अर्पिता वाले निवृत्त हुए थे ॥१६॥ महा१ बाहु वाले उसके जोकि एक विशेष तेज वाला था, नभस्त यज्ञ सुवर्ण की वेदी वाले और समस्त सुवर्ण के विरचिन भूमे से युक्त थे । १७। मन्त्र यज्ञ महान् भाग वाले देवों के द्वारा जोकि विमानों में स्थित होकर वहाँ आये थे प्रलट्टत हुए थे तथा गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा तो वे नित्य ही शोभित रहा करते थे ॥१८॥

राज्ञो जयौ माथा गन्धर्वो नारदस्तथा ।

तस्य राजर्षेर्महिमान् निरीक्ष्य च ॥१९॥

कारण दुःसह विद्ध केनो के समुदाय मे गिर गये थे ॥३१॥ राजा ने प्रपन्न सहस्र बाहुओ के समूह से सागर को क्षोभ पैदा करते हुए देव और असुरो के द्वारा परिक्षिप्त क्षीरोद सागर के समान उम भमुद को कर दिया था ॥३२॥ मन्दर पर्वत के क्षोभण से किय हुए और भृगुनोदक की शङ्का बाल भयानक उस नृपो में प्रेश को देखकर डरे हुए तुरन्त उत्प्रादित हुए थे ॥३३॥ महान् उरग नीचे की ओर झुके हुए निश्चल मस्तक बाल होगये थे जिन तरह सन्ध्या के समय में निर्वाण से स्तिमित बदली के पण्ड हो उसी तरह महान् बन गये थे ॥३४॥

स वै बद्ध्वा धनुर्मान उन्निक्तः पञ्चभिः शतं ।

लङ्काया मोहयित्वा तु सवल रावण वलात् ।

निजित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्या बबन्ध तम् ॥३५॥

ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुन च प्रसादयत् ।

मुमोक्ष राजा पौलस्त्य पुलस्त्येनानुपालितम् ॥३६॥

तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्त्रिन ।

युगाप्तोऽम्बुदधृक्षस्य स्फुटितस्याशनेरिव ॥३७॥

अहो मृधे महावीर्यं भागंनो यस्य सोऽञ्छिनत् ।

मृधे सहस्र बाहुना हेमतालवन यथा ॥३८॥

तृपितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना ।

सप्त द्वीपाश्चित्रभानो प्रादाद्विद्या विशाम्पतिः ॥३९॥

पुराणि घोपान् ग्रामाश्च पत्तनानि च सत्त्वंश ।

जज्वाल तस्य वाग्नेयु चित्रभानुर्दिधक्षया ॥४०॥

स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महापथा ।

ददाह कार्तवीर्यस्य शैलाश्चापि वनानि च ॥४१॥

स शून्यमाश्रम सर्व वरुणस्यात्मजस्य वै ।

ददाह सवनद्वीपाश्चित्रभानु महैहय ॥४२॥

वह पाँचसौ धनुर्मानो के द्वारा बाँधकर उत्तिन्न हुआ और सबल रावण को लङ्का मे मोह युक्त कराकर बलपूर्वक जीतकर तथा बाँधकर और माहिष्मती पुरी मे लाकर उसे बाँध दिया था ॥३५॥ इसके अनन्तर पुनस्त्य ऋषि वहाँ

नराधिप ने सहस्र नागों में पृक्त माहिष्मती में बर्जोटक—सभा को त्रीतकर वहाँ पुरी को निवेशित कर दिया था ॥२६॥

स व वेगे समुद्रम्य प्रावट्कालाम्बुजेक्षण ।
 श्रीडन्निव सुखोद्धिग्न प्रावट्कालञ्चकार ह ॥२७॥
 लुलिता श्रीडता तेन हेमश्रग्दाममालिनी ।
 ऊर्मि भ्रूवुटिसन्नादा शङ्किताभ्येति नर्मदा ॥२८॥
 पुरा स तामनुसरन्नवगाढो महाएवम् ।
 चकारोद्भूत्य वेमान्त स काल प्रावृणोद्धनम् ॥२९॥
 तस्य बाहु सहस्रेण क्षोभ्यमाणे महादधौ ।
 भवन्ति धीना निश्चेष्टा पातानस्था महासुरा ॥३०॥
 चूर्णीकृत महावीचिलीनभीनमहाविषा ।
 पतिता विद्वषेनोघमावर्त्तक्षितदुस्सहम् ॥३१॥
 चकार क्षोभयानाजा दो.सहस्रेण सागरम् ।
 देवानुरपरिक्षित क्षीरोदमिव सागरम् ॥३२॥
 मन्दरक्षोभणकृता ह्यमृतोदकशङ्किता ।
 सहस्रोत्पादिता भीता भीम दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥३३॥
 नतनिश्चलमूर्ध्नाना यभूदुश्च महोरगा ।
 सायाह्ने कदलीपण्डा निर्वातस्तिमिता इव ॥३४॥

वर्षाकाल के कमल के समान नेत्रों वाल उमने समुद्र के वेग में मुल में उद्धिग्न होते हुए स्वेन की भाँति प्रावट् काल कर दिया था ॥२७॥ श्रीश करते हुए उसने हेमश्रग्दाम मालिनी को लुलित कर दिया था । ऊर्मि रूपिणी भृङ्ग टियों के मग्राद वाली नर्मदा शङ्किन होनी हुई जाती है ॥२८॥ प्राचीन काल में उसने उमका अनुसरण करने हुए महाएव को अवपाठ दिया था । वेला के अग्त तक उद्धतिन कर उम बाल ने वन को प्रावृण कर दिया था ॥२९॥ उनके एक सहस्र बाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमाण होने पर पाताल में रहने वाले महाअसुर निश्चेष्ट होकर बौन होगये थे ॥३०॥ चूर्ण किये हुए बड़ी तरङ्गों में लीन है मद्यनियों का महाविष जिनका ऐसे वे आवर्त्तों (अमर) से क्षित होने के

जयध्वजश्च वै पुना अवन्तिषु विधापते ।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रनापवान् ॥५०॥

पहिने वरुण ने भास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आग्रह सेने वाला विख्यात मुना गया गया है ॥४३॥ वहाँ पर प्रापतियों आईं तो विष्णु ने क्रोध से भर्तुं न को सप्त किया था । हे हैहय ! यह तेरा वन जिस कारण से मेरे यहाँ बंजित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्पर कर्म है और इसको कृतमन्य हनन करेगा । भर्तुं न नाम वाला कीर्त्तय राजा नही होगा ॥४५॥ हे भर्तुं न ! प्रहार करने वालो मे परमार्थेष्ट महान् धीमं बाने परशुराम जो बली है मोक्ष ही तुझको छेदकर तेरी सहाय बाहुओं को प्रमथित करेंगे ॥४६॥ महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा बध करेगा । धीमान् उमर्के मृत्यु पाष से उम मयय राम थे ॥४७॥ उम राजा ने पहिने स्वय ही पर प्राप्त किया था । उसके सौ पुत्र थे जिनमें वही पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों के प्रश्रयान करने बाने—वमपुत्र—दूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा थे गव थे । दूर और दूमेन—वृष्टबाध और वृष तथा जयध्वज अश्विनियो मे उम विधापनि के पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रनापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रशत ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।

तेषा पञ्च गणा ख्याता हैहयाना महारमनाम् ॥५१॥

वीरहोत्र ह्यसङ्ख्याना भोजाश्चावर्तयस्तथा ।

तुण्डिवेराश्च विमान्तास्तानजङ्घास्तथैव च ॥५२॥

वीरहोत्रगुणश्चापि अनन्तो नाम पायिव ।

दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामिन्द्रां ॥५३॥

अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।

प्रभावेण महाराज. प्रजास्ता. पर्य्यपातयन् ॥५४॥

न तस्य वित्तनाशश्च नष्ट प्रतिलभेत स ।

पातंवीर्यस्य या जन्म कथयेदिह धीमन ॥५५॥

गये और उन्होंने अर्जुन को प्रमत्त किया था । तब राजा ने पुलस्त्य के द्वारा अनुपालित उम पीलस्त्य (रावण) को छोड़ दिया था ॥३६॥ उमरे बाहु सहस्र का ज्या तल का शब्द युग के अन्त में स्फुटित अम्बुद वृक्ष के वज्र की भांति था ॥३७॥ अहो (बड़े आश्चर्य की बात है) युद्ध में महान् वीर्य वाले जिसके बाहुधो के सहस्र को हेमताल वन के समान युद्ध में भागव में छेदन कर दिया था ॥३८॥ किसी समय प्यासे चित्रभानु ने उममें भिक्षा माँगी थी । विसाम्पनि ने चित्रभानु को सात द्वीपों की भिक्षा दे दी थी ॥३९॥ विनभानु ने विप्रशता से उसके बाणों में पुर-घोष-गाम और पत्तनों को नव ओर से जता दिया था ॥४०॥ उस पुरुषेन्द्र के प्रभाव से महान् वज्र वाले उसने कालंवीर्य के शीत और वनों को भी दग्ध कर दिया था ॥४१॥ हैहय के साथ उस चित्रभानु ने वरुण के आत्मज के समस्त शून्य आश्रम का ओर वनों के सहित द्वीपों को जला दिया था ॥४२॥

सलेमे वरुण पुनः पुरा भास्विनमुत्तमम् ।

वसिष्ठनामा स मुनि रयातश्चाप स्थित श्रुत ॥४३॥

तत्रापदस्तदा क्रोधादर्जुन क्षप्तवान्विभु ।

यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ॥४४॥

तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ।

अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति ॥४५॥

अर्जुन त्वा महावीर्यो राम प्रहरता वर ।

छिन्वा बाहुमहस्रं वै प्रमथ्य तरसा बली ॥४६॥

तपस्वी ब्राह्मणश्चैव बधिष्यति महाबलः ।

तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युशापेन धीमत ॥४७॥

राजा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृत्त पुरा ।

तस्य पुत्रशतं ह्यासीत् पञ्च तत्र महारथा ॥४८॥

कृताश्चा बलिन शूरा घर्मात्मानो यशस्विनः ।

शूरश्च शूरसेनश्च वृष्टगाय नृप एव च ॥४९॥

जयध्वजश्च ये पुत्रा अवन्तिषु विशांपते ।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥१०॥

पहिले वरुण ने मास्विन उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था । वह वसिष्ठ नाम वाला मुनि जनो का आश्रय लेने वाला विख्यात मुनि गया गया है ॥४३॥ वहाँ पर प्राप्तिप्राप्ति आई तो विभु ने क्रोध से भर्जुन को खस दिया था । हे हैहय ! यह तेरा बन् जिस कारण से मेरे यहाँ बजित नहीं है ॥४४॥ इसी कारण से तेरा यह दुष्कर बन् है और इसको कृतमन्य हनन करेगा । भर्जुन नाम वाला कौन्तय राजा नहीं होगा ॥४५॥ हे भर्जुन ! प्रहार करने वालों में परमश्रेष्ठ महान् वीर्य वाले परशुराम जो बली है शीघ्र ही तुमको घेदकर तेरी सहस्र बाहुओं को प्रमथित करेंगे ॥४६॥ महान् बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण तेरा बध करेगा । धीमान् उसके मृत्यु प्राप्त में उस समय राम थे ॥४७॥ उस राजा ने पहिले स्वयं ही वर प्राप्त किया था । उसके सौ पुत्र थे जिनमें वहाँ पाँच महारथ थे ॥४८॥ अस्त्रों ने प्रभ्यास करने वाले—बलधुरा—शूरवीर—यशस्वी और धर्मात्मा थे सब थे । शूर और ब्रूसेन—वृष्ट्याध और वृष तथा जयध्वज अवन्तियों में उन विद्याम्पति के पुत्र थे । जयध्वज का पुत्र तालजङ्घ प्रतापवाला था ॥४९-५०॥

तस्य पुत्रदातृ हो व तालजङ्घा इति श्रुतम् ।

तेषां पञ्च गणा ख्याता हैहयाना महात्मनाम् ॥५१॥

वीरहोत्र ह्यसङ्ख्याता भोजाश्चावर्तयस्तथा ।

सुण्डिकेराश्च विमान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥५२॥

वीरहोत्रमुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिव ।

दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामिन्द्रदानं ॥५३॥

अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ।

प्रभाषेण महाराजः प्रजास्ता. पर्यपालयत् ॥५४॥

न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिभवेत् स ।

पातंवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमत ॥५५॥

वित्तवान् भवत्यत्रैव धर्म्मश्चास्य विवर्द्धते ।

तपश्च भवेत् यथा दाता तथा स्वर्गो महीपते ॥५६॥

उमके सो पुत्र ही तातजङ्ग थे यह हमने सुना है । उन महात्मा हैहयो के पाँच गण परम विख्यात थे ॥५१॥ वीरहोत्र-सस्ययात भोज-भारत्तय-सुरिडकेर तथा त्रिक्रान्त तासजङ्ग थे ॥५२॥ वीरहोत्र का पुत्र भी राजा समन्त नाम वाला हुआ था । उसका पुत्र दुर्जय था जोकि अमित्र दर्शन हुआ था ॥५३॥ उस राजा के कभी नाश को न प्राप्त होने वाले घन का होना था । वह महाराज उन समस्त प्रजापति का प्रभाव से परिपाचन किया करता था ॥५४॥ उसका वित्त का कभी नाश नहीं होता है और जो कुछ कभी नष्ट भी होगया हो तो वह उसे प्राप्त कर लेता है । यहाँ बुद्धिमान् कार्तवीर्य के धर्म की कथा को जो कोई कहता है वह वित्त वाला यहाँ पर ही होजाता है और इसके धर्म की वृद्धि होती है । वह जिस प्रकार से तपश्च और दाता हो उसी तरह से स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥५५-५६॥

प्रकरण ५७—ज्यामघ धृतान्त कथन

विमर्षं भुवन दग्धमपवस्य महात्मनाम् ।

कार्तवीर्येण विव्रम्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥१॥

रक्षिता स तु राजर्षि प्रजानामिति न श्रुतम् ।

कथं स रक्षिता भूत्वानाशयत्तत्तपोवनम् ॥२॥

आदित्यो विग्रहपेण कार्तवीर्यमुपास्यत ।

तृत्विजाम् प्रयच्छान्नमादित्योऽहं न सशय ॥३॥

भगवन् केन ते तृष्टिर्भवेद् ब्रूहि दिवाकर ।

कीदृशं भोजनं दधि श्रुत्वा च विदधाम्यहम् ॥४॥

स्यावर देहि मे सर्वमाहारं ददता वर ।

तेन तृप्तो भवेयं वै न तुप्यज्येन पार्थिव ॥५॥

न शक्य स्यावर सर्व्व तेजसा मानुषेण तु ।
 निर्दग्धु तपता श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम् ॥६॥
 तुष्टस्तेऽहं शरान् दक्षि श्रक्षयान् सर्व्वत सुखान् ।
 प्रक्षिप्ताः प्रज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥७॥
 आदिष्टं तेजसा मेघसागर क्षोपयिष्यति ।
 शुष्क भस्म करिष्यामि तेन प्रीता नराधिप ॥८॥

शूरियो ने कहा—वात्सवीर्य ने विघ्नम करके महात्माओं के अपवस्य भुवन को किस निधे जलाया था—यह सब पूछने वालें हमको घाप बतलाइये ॥१॥ हमने सुना है कि वह राजपि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था फिर वह रसक होकर किस कारण से उसने तनोवन का नाश किया था ॥२॥ मूनजी ने कहा—सूर्य भगवान् बाह्यग के रूप से वात्सवीर्य के पास उपस्थित हुए थे—मैं तृप्ति की कामना वाला हूँ—मुझे अन्न दो—मैं आदिष्ट हूँ । इनमें कुछ भी मगय नहीं है ॥३॥ राजा ने कहा—हे दिवाकर ! यह बतलाइये घापकी सुनि किससे होगी । मैं आपकी विसा प्रकार का भोजन हूँ और यह मुनकर मैं बर्कंगा ॥४॥ सूर्य ने कहा—हे दान देने वालो म श्रेष्ठ ! मुझे समस्त बाहार स्यावर हा । उममे मेरी तृप्ति होगी हे पार्थिव ! अन्य किसीत भी मैं सन्तुष्ट नहीं होऊंगा ॥५॥ राजा ने कहा—हे तपने वाला मे श्रेष्ठ ! मानुष तेज से तमस्त स्यावर निर्दग्ध किया नहीं जा सकता है । मैं आपको ही प्रणाम करता हूँ ॥६॥ आदिष्ट न कहा—तुष्ट हुआ मैं तुम्हें सर्व्व ओर से मुग्य प्रद—अक्षय शरी को देता हूँ वे फेंके हुए मेरे तेज से समन्वित होने वाले प्रज्वलित हो जायेंगे ॥७॥ हे नराधिप ! तेज मे आदिष्ट मेघ—सागर को क्षोपित कर देगा । उससे प्रसन्न मैं शुष्क को भस्म कर दूंगा ॥८॥

तत शरानपादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छति ।
 तत मप्राप्य मुमहत्स्यावर सर्व्वमेव हि ॥९॥
 आश्रमानय ग्रामाश्च धोषाश्च भगराणि च ।
 तपोवनानि श्रम्याणि वनान्यपवनानि च ॥१०॥

एव प्राचीनमदहत्ततः सूर्यप्रदक्षिणम् ।

निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सूर्येण तेजसा ॥११

एतस्मिन्नेव काले तु यपो निलयमाश्रित ।

ददादपसहस्राणि जलवासा महानृपि ॥१२

पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः ।

सोऽपस्यदायम दग्धमर्जुनेन महानृपि ।

क्रोधाच्छसाप राजपि कीर्तित वो यथा मया ॥१३

इसके अनन्तर आदित्य अर्जुन क लिये गये जो दे देता है । फिर उह पाकर तुमहान् समयस्त रथावर को-आयमो को-बोपा को और नगरी को-तपो-वनो को-रम्यवन वनो को और उपवनो को सबको इस प्रकार स प्राचीन को सूर्य प्रदक्षिण का दाह कर दिया था । ममस्त यह भूमि बिना वृक्षो बाली-नृण रहित सूर्य के तेज से जली हुई होगई थी ॥११-१०-११॥ इसी समय मे महान् ऋषि जल के धर मे आश्रित होगया और दश सहस्र वष तक जल म ही वाम करने वाले हुए थे ॥१२॥ व्रत के पूर्ण होवाने पर महान् तेज वाले तपोवन उठकर खड़े हुए थे । उन महान् ऋषियों ने अर्जुन के द्वारा दग्ध आश्रम को देखा था । तब क्रोध से राजपि को साप दे दिया था जैसा कि मैंने तुमसे कहा था ॥१३॥

क्रोष्टो शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरुषम् ।

यस्यान्ववाये मभूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलादह ॥१४

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायता ।

वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहि स्वाहोवता वरम् ॥१५

स्वाहे पुत्रोऽभवद्राजा रक्षादुर्दता वरः ।

घृतम्प्रसूतमिच्छन्ति रक्षादोरग्धमात्मजम् ॥१६

महाकृतुभिरीजे स विविधैराभ्युदक्षिणं ।

चित्रं चित्ररथस्तस्य पुत्र कर्मभिरन्वित ॥१७

एव चित्ररथो वीरो यज्ञान् विपुलदक्षिणान् ।

शशविन्दु- पर वृत्तो राजर्षीणामनुष्ठित ॥१८

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः ।

तत्रानुवशश्लोकोऽयं यस्मिन् गीतं पुराविदे ॥१६॥

शशविन्दोस्तु पुनराणां शतानामभवच्छतम् ।

धौमतामनुरूपाणां भूरिद्रविण्णतेजसाम् ॥२०॥

सूतजी ने कहा—अब राजपि क्रोष्टु के उत्तम पूरण जाने वश का अर्थण करो जिसके अन्वाय मे वृष्टिपु कुर का उडह वृष्टिग उत्पन्न हुआ था ॥१४॥ क्रोष्टु के एक ही पुत्र था जोकि वृजिनी वाल्य और महान् यशवाता था जो वाजिनी वाल स्वाहि को स्वाहो वालो मे थोष्ट को चाहता था ॥१५॥ स्वाहि का पुत्र दान देने वालो मे उत्तम रमादु का सबसे पहिला पुत्र धृत प्रभूत हुआ था ॥१६॥ उसने बड़े बड़े महान् अनुष्टो के द्वारा यजन किया था जिनमे बहुत ही अधिक दक्षिणा प्राप्त की गई थी तथा अनेक प्रकार के थे । उसका पुत्र कर्मो मे अधिक चित्ररथ हुआ था ॥१७॥ इस प्रकार से चित्ररथ और ने विशेष अधिक दक्षिणा वाले यज्ञो को करके राजपियो द्वारा अनुष्ठित शशविन्दु नाम वाला पुत्र प्राप्त किया था ॥१८॥ वह शशविन्दु महान् सत्त्व वाला—चक्रवर्ती—महावीर्य और बहुत सी सन्तति वाला हुआ था । वहाँ पर उगवे वश का यह श्लोक पुरा विज्ञाओ के द्वारा गाया गया है ॥१९॥ शशविन्दु के परम पुत्रि-माद—बहुत धन एक तेजवाने तथा अनुरूप सो पुत्र हुए थे ॥२०॥

तेषां पट् च प्रधानास्तु पृथुपाट्का महाबलाः ।

पृथुश्रवा पृथुयक्षा पृथुधर्मा पृथुञ्जय ॥२१॥

पृथुकीर्ति पृथुन्दाता राजानः शशविन्दवा ।

शसन्ति च पुराणानि पार्थिवसमन्तरम् ।

अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽगवत् ॥२२॥

उशना सुतधर्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम् ।

आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधाम्मिक ॥२३॥

मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुक्षितः ।

वीरः कम्बलर्वाहस्तु मरुत्ततनयः स्मृतः ॥२४॥

पुत्रस्तु स्वमकवचो विद्वान् कम्बलवह्निपः ।
 निहत्य स्वमकवच पुरा कवचिनो रणे ॥२५॥
 धन्विनो निशितैर्वाणैरवाप श्रियमुत्तमम् ।
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधमहायशा ॥२६॥
 राजस्तु स्वमकवचादपरावृत्त्य वीरहा ।
 जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबला ॥२७॥
 स्वमेपु पृथुस्वमश्च ज्यामघ परिधो हरिः ।
 परिधश्च हरिश्चैव विदेहे स्थापयत्पिता ॥२८॥

उन सौ पुत्रों में महान् बल वाले पृथुपाटक छं पुत्र प्रधान थे जिनके नाम ये हैं—पृथुधवा—पृथुयशा—पृथुपर्मा—पृथुञ्जव—पृथुकीर्ति और पृथुन्दाता, ये सब धार्मिकविद्वद राजा थे । पुराण पृथुधवा के अन्तर नामक पुत्र को बतलाते हैं । अन्तर वह था जो पहिले यज्ञ का पुत्र हुआ था ॥२१-२२॥ सुतपर्मा का ब्राह्मण उपाता ने इस पृथ्वी को प्राप्त करके उत्तम धार्मिक उमने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ॥२३॥ राजर्षियों का अनुष्ठित महत्त नाम वाला उसका पुत्र हुआ था । भरत का पुत्र वीर कम्बलवह्नि कहा गया है ॥२४॥ कम्बलवह्नि का पुत्र परम विद्वान् स्वम कवच हुआ था । स्वम कवच ने पहिले अपने तीसे वालों के द्वारा रण में धन्वी तथा कवच धारियों को मारकर उत्तम थी को प्राप्त किया था और अश्वमेधों से महान् यश वाले उसने बहुत सा धन ब्राह्मणों को दान में दे दिया था ॥२५-२६॥ राजा स्वम कवच से महान् सत्त्व वाले तथा महान् बल वाले पाँच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥२७॥ जिनके नाम स्वमेपु—पृथुस्वम—ज्यामघ—परिध और हरि ये थे । परिध को और हरि को पिता ने विदेह में स्थापित किया था ॥२८॥

ब्रह्मपुरभवद्राजा पृथुरवमस्तदाश्रयः ।
 तेभ्य प्रव्रजितौ राज्या ज्य्यामघोऽभवदाश्रमे ॥२९॥
 प्रशान्तस्तु वने धीरे ब्राह्मणेनावबोधितः ।
 जगाम धनुरादाय देशमघ्य रथी ध्वजी ॥३०॥

नम्मंदात्तूप एकासी मेक नावृत्तिका अपि ।

मृदवन्त गिरि गत्वा धुक्तिमन्यामयाविशत् ॥३१॥

ज्यामघस्याभवद्भार्या शैव्या वनवती भृशम् ।

अनुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्या न विन्दति ॥३२॥

तस्यासीद्विजयो युद्धे तत् कन्यामदाप स ।

भार्यामुवाच राजा न स्नुषेति तु नरेन्दर । ३३

एवमुक्तात्रयोदेव काम्ये यन्ते स्नुषेति सा ।

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ॥३४॥

तस्य सा तपमोग्रेण शैव्या वैश प्रसूयत ।

पुत्र विदर्भं सुभगा शैव्या परिणता सती ॥३५॥

राजपुत्री तु विद्वासी स्नुषाया ऋषुकोशिकी ।

पुत्री विदर्भोऽजनयच्छूरी रणविभारदौ ॥३६॥

ब्रह्मेण राजा हुमा या उमक आश्रम म रहने वाला पृषुदम था । राज्य

से प्रशस्ति ज्यामघ आश्रम म हुमा था ॥३१॥ घोर वन में प्रशान्त घोर ब्राह्मण

क द्वारा प्रवर्धित वह रथ गया ध्वज वाजा धनुष लेकर देव के मध्य म गया

था ॥३०॥ नर्मदा के अनूप म एकासी मङ्गला वृत्तिकाला शृंगवान् पर्वत म

जाकर एक अन्य धुक्ति म प्रवेश कर गया था ॥३१॥ ज्यामघ की भार्या बहुत

ही बल वाली शैव्या थी वह राजा पुत्र हीन भी था किन्तु उमक दूधरी भार्या

को प्राप्त नहीं किया था ॥३२॥ उमकी युद्ध म विजय हुई थी । इसके पश्चात्

उमने एक कन्या प्राप्त की थी । वह नरेन्दर राजा अपनी भार्या से यह स्नुषा

है—ऐसा बोला था ॥३३॥ इस प्रकार से कही जल वाली उमने कहा यह

चाही हुई आपकी स्नुषा है तो जो आपका पुत्र उत्पन्न होगा यह उमकी भार्या

होगी ॥३४॥ उमने उस लगे शैव्या ने वैश को प्रसूत किया था । परिणत सती

शैव्या ने विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥३५॥ विदर्भ ने स्नुषा म विद्वान्

ऋषु घोर कोशिक को राजपुत्री को उत्पन्न किया था जोकि रण के विभारद

तथा बड़े ही शूरवीर थे ॥३६॥

लोमपाद तृतीयन्तु पञ्चाञ्जने सुधामिव ।

लोमपादात्मजोवन्तुगह्वनिस्तस्य चात्मज ॥३७॥

कोशिकस्य चिदि पुत्रस्तस्मान्चैवा नृपा. स्मृताः ।

अथोर्विदमंपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८॥

कुन्तैष्टु सुतो जज्ञे पुरोधुष्टः प्रतापवान् ।

धृष्टस्य पुत्रो धर्मर्त्मा निर्वृतिं परवीरहा ॥३९॥

तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः ।

दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥४०॥

जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथ सुतः ।

अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो रथवर किल ॥४१॥

दाता धर्म्मरतो नित्य शीलसत्यपरायणः ।

तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथ स्मृतः ॥४२॥

तस्य चैकादशरथ दकुनिस्तस्य चात्मजः ।

तस्मात् करम्मको धन्वी देवरातोऽभवत्तत् ॥४३॥

देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्म्महायशः ।

देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवन क्षत्रनन्दन ॥४४॥

तीसरा पुत्र सोमपाद नाम वाला पीछे उत्पन्न हुआ था जो बहुत ही धार्मिक वृत्ति वाला था । सोमपाद का पुत्र वस्तु हुआ और उसका प्रातमज आहूति हुआ था ॥३७॥ कौशिक का पुत्र चिदि था उससे चैद्य राजा बहने लगे हैं । क्रपु का पुत्र विदमं हुआ और उसका पुत्र कुन्ति नाम वाला हुआ था ॥३८॥ कुन्ति के धृष्टि सुत ने प्रताप वाला पुरोधुष्ट उत्पन्न किया था । धृष्ट का पुत्र धर्मर्त्मा परवीरहा निर्वृति हुआ था ॥३९॥ उसका दशार्ह हुआ था जो बल तथा पराक्रम में महात् था । दशार्ह का पुत्र व्योमा नामक था और फिर उसका पुत्र जीमूत नाम वाला कहा जाता है ॥४०॥ जीमूत का पुत्र विकृति नामक हुआ उस का पुत्र भीमरथ हुआ था । इसके अनन्तर भीमरथ का पुत्र रथवर आ ॥४१॥ यह बहुत ही दान देने वाला तथा धर्म में रति रखने वाला । नित्य ही शील एवं सत्य में परायण रहा करता था । उसका पुत्र नवरथ था और फिर उसका पुत्र दशरथ हुआ था ॥४२॥ उसके पुत्र का नाम दशरथ था तथा उसने आत्मज दकुनि नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया

था । उसमें धन्वी करम्भक हुआ और इसके पश्चात् उसके देवरान पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ देवरात्र राजा हुआ था और देवरानि महान् यश वाला था । देवरात्र ने मुन ने क्षत्रियो को प्रानद देने वाला देवन पुत्र को जन्म दिया था ॥४४॥

देवनात् सु मधुजंज्ञे यस्य मेघार्यसम्भवः ।

मघोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवशस्तथा ॥४५॥

मन्दश्च महातेजा महापुरुषशस्तथा ।

ग्रामीत् पुरुवशात् पुत्र. पुरुद्वान् पुरुपोद्यम. ॥४६॥

जज्ञे पुरुद्वत् पुत्रो भद्रवत्या पुरुद्वह. ।

ऐशावी स्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ।

सत्त्वात् सत्त्वगुणो पेत् सात्त्वत कीर्तिवर्द्धन ॥४७॥

इमां विमृष्टि विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मन. ।

प्रजावानेति सायुज्य राज्ञ सोमस्य धीमत ॥४८॥

देवन से मधु ने जन्म ग्रहण किया जिसका मेघार्य सम्भव है । मधु के भी महात् तेज वाला मनु तथा मनुवश हुआ ॥४५॥ और मन्दन तथा महान् तेज वाला महा पुरुषश हुआ था । पुरुवश से पुरुपोत्तम पुत्र विद्वान् पुत्र हुआ था ॥४६॥ पुरुद्वान् से भद्रवती से पुरुद्वह पुत्र ने जन्म लिया था । उसकी भार्या ऐशावी हुई थी उसमें सत्त्व पैदा हुआ था । सत्त्व से सत्त्वगुण से युक्त कीर्ति-वर्द्धन सात्त्वत हुआ था ॥४७॥ महात्मा ज्यामघ की इस विशेष मृष्टि का ज्ञान प्राप्त करने पुरुष प्रजा वास्ता होना है और धीमान् राजा सोम से सायुज्य को प्राप्त करता है ॥४८॥

प्रकरण—५८ त्रिपुणु वंश वर्णन

भारवती ऋमम्भसं वीरान्या मुपुवे गुणम् ।

भजिन भजमानं च दिव्य देवावृष नृपम् ॥१॥

अन्धवन्ध साधभोज तृप्तिगन्ध यदुनन्दनम् ।

तेषां हि सर्वाभ्युत्थार शृणुष्व विग्नरेणु वं ॥२॥

भजमानस्य शृङ्खल्या बाह्यश्चोपरि बाह्यक ।
 शृङ्खल्यस्य सुते द्वे तु बाह्यवस्ते उदावहत् ॥३॥
 तस्य भार्ये भगिन्यो ने प्रामूतेति मुतान् बहून् ।
 निमिश्च पणवश्चैव वृष्टिण परपुङ्खय ॥४॥
 ये बाह्यकाय्यं शृङ्खल्यया भजमाना द्विजज्ञिरे ।
 अयुनायुतसाहस्रशतजिदय वामक ॥५॥
 बाह्यकाय्याभगिन्या ये भजमाना द्विजज्ञिरे ।
 तेषा देवावृधो राजा चचार परम तप ॥६॥
 पुन सर्वंगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह ।
 सयोज्यात्मानमेव सर्वर्णा सा जलमस्पृशत् ॥७॥
 सा चोपस्पर्शनात्तस्य चचार श्रुपिमापना ।
 कल्याणञ्च नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥८॥

श्री सूत जी ने कहा—सात्वी कौमर्या ने रूप में सम्पन्न सुत का प्रसन्न किया था । भजिन-भजमान दिव्य देवावृध नृप को उत्पन्न किया था ॥१॥
 मन्धक-सहाभोज और वृष्टि यदुन-दन को उत्पन्न किया था । उनके चार सर्ग हुए थे उनको प्रब विस्तार से सुनो ॥२॥ भजमान के शृङ्खली में बाह्य घोर बाद में बाह्यक हुए । शृङ्खल्य के दो पुत्री थीं उन दोनों के साथ बाह्यक ने विवाह कर लिया था ॥३॥ उसकी दोनों बहिन भार्याओं ने बहुत से पुत्रों को जन्म दिया था । निमि-पणव-वृष्टि और परपुङ्खय थे ॥४॥ जो बाह्यक की आय शृङ्खली में भजमान से उत्पन्न हुए थे । अयुत-अयुत साहस्र-शतजिद-नामक थे ॥५॥ जो बाह्यक की आर्य भगिनी में भजमान से उत्पन्न हुए थे । उनका देवावृध नाम वाला राजा था जिसने परम तपस्या की थी ॥६॥ मेरे समस्त शद्गुणों से युक्त पुत्र उत्पन्न होंगे—इस प्रकार से अपने आपको सयोजित करके सर्वर्ण उसने जल का स्पर्श किया था ॥७॥ उस आपना ने उसके उप स्पर्शन से श्रुपि को किया था और उस निम्नगोत्तमा ने उस नरपति का कल्याण किया था ॥८॥

चिन्तयाभिपरीताङ्गा जगामाय विनिश्चयम् ।
 नाधियच्छामि ता नारी यस्यामेवविध. सुत ॥६
 भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देवावृधस्य हि ।
 तस्मादस्य स्वयं चाह भवाम्पद्य सहव्रता ।
 जज्ञे तस्या. स्वयं हस्तो भावस्तस्य यथेरितः ॥१०
 प्रय भूत्वा कुमारो तु सावित्री परम वच ।
 चिन्तयामास राजान तामियेष स पार्थिव ॥११
 तस्यामाधत्त गर्भे स तेजस्विनमुदारधी ।
 अथ सा नवमे मासि सुपुत्रे सरितावरा ॥१२
 पुत्र सर्वगुणोपेत यथा देवावृधेप्सित ।
 तत्र यगे पुराणज्ञा गाथा गायन्ति वं द्विजा ॥१३
 गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मन ।
 यथैव शृणुते दूरात् सपद्यति तथाऽतिबातु ॥१४
 बभूव श्रेष्ठो मनुष्याणां देवदेवावृध मम ।
 पुरया पञ्चपट्टिश्च सार्याणि च ममति ।
 येऽमृतायमनुग्राहा बभ्रुर्देवावृधादपि ॥१५
 यस्या दानपतिर्धौरो ब्रह्मण्यः सत्यवाग् बुध ।
 कीर्त्तिमाश्च महाभाग सात्त्वताना महारथ ॥१६

बिन्ता मे अधिपरीत छाहो वाली उसने विशेष रूप मे निश्चय किया था
 कि उग नारी का अधिपमन नहीं करना है जिसमे इस प्रकार का पुत्र हो ॥६॥
 राजा देवावृध का सम्मान गुणों से जने होवेगा गो भाव इसकी स्वयं ही मैं
 सरिता हो जाऊँ । इसने स्वयं हस्त ने जन्म लिया था उसका भाव जैसा ईरित
 हुआ था ॥१०॥ इसके धनन्तर सावित्री कुमारी होकर परम वचन का राजा
 का चिन्तन करने लगी थी । वह राजा स्वयं उगकी चाहना था ॥११॥ उदार
 पुत्रि नामे उसने उसमे तेजस्वी गर्भ धारण किया था । इसके धनन्तर नवम
 मास मे उग मल्लिकार्जुन ने प्रगट किया था ॥१२॥ जैसा देवावृध ने द्वारा ईप्सित
 था वैसा ही सपराग गुणों मे पुत्र पुत्र को उगने वच दिया था । वही वच मे

पुराण के ज्ञाता द्विजगण भाषा का गान किया करते हैं ॥१३॥ महान् आत्मा वाले देववृष के भी गुणों का वीक्षण करते हुए जैसा ही दूर से सुनते हैं वैसा ही गभीर म आकर देते हैं ॥१४॥ वज्र मनुष्यो म श्रेष्ठ देवों के समान देववृष था । पाँच हजार मत्सर वर्ष तक जो पुरुष अभूतस्व को प्राप्त हुये थे । वज्रदेव वृद्ध स भी अधिना यज्वा-दानपति-वीर-ब्रह्मण्य-मत्स्यवचन यान्ता-परिहृत-कीर्तिमान् और महान् भाग वाला मात्सर्यो म महारण का ॥१५ १६॥

तस्यान्ववाये सुमहामोजयेमातिकावला ।

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णेर्माम्ये बभूवतु ॥१७

गान्धारी जनयामास सुमित्र मित्रमन्दनम् ।

माद्री युधाजित पुत्र सा तु वै देवमीदृषम् ॥१८

अनमित्र भुतश्चैव तावुभौ पुत्सपोत्तमौ ।

अनमित्रमुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतु ॥१९

प्रसेनञ्ज महाभाग शक्रजिह्व सुतावुभौ ।

तस्य शक्रजित् पूर्वं मत्वा प्राणसमोऽभवत् ॥२०

स कदाचिन्निदापाये रथेन रथिनावर ।

तोयकूलादप स्प्रष्टुमुपस्थातु ययौ रविम् ॥२१

तस्योपतिष्ठन् सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः ।

अस्पष्टमूर्तिर्भगवा स्तेजोमण्डलवान् विभु ॥२२

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ।

यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामह ज्योतिषाम्पते ॥२३

तेजोमण्डलिनश्चैव तथैवाप्यग्रतः स्थितम् ।

को विदोषो विवस्वस्ते साक्षादुपगतेन वै ॥२४

उमके मन्त्रवाय म आर्ति करने वाली भवलाएँ भलीभाँति भोग के योग्य थी थी । गान्धारी और माद्री ये दो भार्या वृष्णि की हुई थी ॥१७॥ गान्धारी मित्रो को आनन्द देने वाला सुमित्र पुत्र को उत्पन्न किया था । माद्री ने धाजित पुत्र को जन्म दिया था और उसने तो देवमीदृष को उत्पन्न किया था १८॥ और अनमित्र पुत्रको जन्म दिया था । वे दोनों उत्तम पुरुष थे । अनमित्र

का पुत्र विष्णु दृष्ट्वा और विष्णु के दो पुत्र हुए थे ॥१६॥ प्रसेन और महाभाग
शक्रजित् दो पुत्र थे । उस शक्रजित् का पूर्व प्राण के समान सखा हुआ था ॥२०॥
बहु किसी समय निशा के समाप्त होजाने पर रघियो में श्रेष्ठ रथ के द्वारा जल
के तिनारे से जलका स्पर्श करने को और रवि का उपस्थान करने के लिये गया
था ॥२१॥ उपस्थान करने वाले उसके आगे विवस्वान् पूर्व स्पष्टता में रहित
मूर्तिवादे-विभु और तेज के मण्डल वाले भगवान् थे ॥२२॥ इसके अनन्तर
आगे स्थित रहने वाले विवस्वान् ने राजा बोला-जिस प्रकार से आवाग में मैं
आपको देयता हूँ हे ज्योतिषो के स्वामिन् ! सभी प्रकार से तेज के मण्डल वाले
आपको आगे स्थित होते हुए भी देख रहा हूँ । हे विवस्वन् आपके साक्षात् आने
पर भी क्या विशेषता हुई है ? ॥२३-२४॥

एतच्छ्रुत्वा स भगवान् मणिरत्न स्यमन्तकम् ।

स्वकण्ठादवमुच्याय ब्रह्मन् नृपते स्वदा ॥२५॥

ततो विग्रहवन्त त ददर्श नृपतिस्तदा ।

प्रतिमामथ ता दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवाग्मया ॥२६॥

तमतिप्रस्थित भूयो विवस्वन्त स शक्रजित् ।

प्रोवाचाग्निसवर्णं त्व येन सोमन् प्रयास्यति ।

तदेव मणिरत्न तन्मा भशान् दातुमर्हति ॥२७॥

स्यमन्तकं नाम मणिं दत्तवास्तस्य भास्वर ।

॥ तमावद्वच नगरं प्रविशेत् महोपतिः ॥२८॥

त जनाः पर्यधायन्त मूर्ध्नाश्च गच्छन्तीति ॥

सभा विस्माययित्वाथ पुरीमन्त पुर तथा ॥२९॥

त प्रमेनिजिते दिव्य मणिं गुरुरस्यमन्तवम् ।

ददौ आने नरपतिं प्रेम्णा शक्रजिदुत्तमम् ॥३०॥

स्यमन्तको नाम मणिर्यस्य राष्ट्रे स्थितो भवेत् ।

वात्सवर्गो च पञ्चन्यो न च व्याधिभयं तदा ॥३१॥

तिप्या च न प्रमेनात्तु मणिं गुरुरस्यमन्तवम् ।

गोविन्दो न च स सोमं दातोऽपि न ब्रह्म च ॥३२॥

यह सुनकर उन भगवान् सूर्यदेव ने स्यमन्तक नाम वाली श्रेष्ठ मणि को अपने कण्ठ से उतार कर राजा के कण्ठ में उस समय बाँध दी थी ॥२५॥ तब तो उस समय में राजा ने देहधारी उनका दर्शन किया था । इसके बाद उस प्रतिमा को देखकर मुहूर्त भर राजा ने बैसा ही किया ॥२६॥ फिर प्रति प्रस्थित उन सूर्यदेव से शक्रजित् ने कहा—अग्नि के सबल आप जिससे भोको को जायगे उस समय वह मणि रत्न आप मुझे देने के योग्य होते हैं ॥२७॥ भास्कर ने स्यमन्तक नाम वाली मणि उठाकर देवी थी और वह राजा उसे अपने कण्ठ में बाँध कर नगर में प्रविष्ट हुआ था ॥२८॥ मनुष्य उगके चारों ओर दौड़ लगाते थे कि यह सूर्य जा रहा है । राजा ने अपनी पूरी सभा को विस्मय में डालते हुए सभा पूरी पुगी को विस्मित करके फिर वह भन्तपुर में गया था ॥२९॥ उस परम दिव्य उत्तम मणिरत्न स्यमन्तक को राजा शक्रजित् ने प्रेम से अपने भाई प्रसेनजित को दे दी थी ॥३०॥ जिसके राज्य में स्यमन्तक नाम वाली मणि स्थित रहती है वहाँ पर पर्जन्य (मेघ) समय पर बपने वाले होते हैं और तब फिर कोई भी व्याधि का भय नहीं रहता है ॥३१॥ भगवान् गोविन्द ने प्रसेन से उस स्यमन्तक मणि के स्वयं प्राप्त करने की लिप्सा की थी किन्तु उसे नहीं प्राप्त किया था और सर्वतो भाव से धार्मिक सम्पन्न होते हुए भी उनका हरण नहीं किया था ॥३२॥

कदा चिन्मृगया यात प्रसेनस्तेन भूषित ।
 स्यमन्तककृते सिंहाद्वय प्राप्त मुदारुणम् ॥३३॥
 जाम्बवानृक्षराजस्तु त सिंह निजघान वै ।
 आदाय च मणि दिव्य स्व विल प्रविवेश ह ॥३४॥
 तत्कर्म कृष्णस्य ततो दुष्यन्धकमहत्तरा ।
 मणौगृध्नुन्तु मन्वानास्तमेव विशशङ्किरे ॥३५॥
 मिथ्याभिर्नास्ति तेम्यस्ना वलवानरिसूदन ।
 अमृध्यमाणो भगवान् यन स विचचार ह ॥३६॥
 स तु प्रसेनमृगयामचरत्तत्र चाप्यथ ।
 प्रसेनस्य पद गृह्य पुरुषे राक्षवारिभिः ॥३७॥

श्रुक्षवन्त गिरिवर विन्ध्यश्च नगमुत्तमम् ।
 अन्वेपणपरिथान्त स ददर्श महामना ॥३८॥
 साश्व हत प्रसेन त नाबिन्दत्तत्र वै मणिम् ।
 अथ सिंह प्रसेनस्य शरीरस्याबिदुरत ॥३९॥
 श्रुक्षेण निहतो दृष्ट पादं श्लक्ष्मस्य सूचिताम् ।
 पदेरन्वेपयामास गुहामृक्षस्य यादव- ॥४०॥

जिसी समय उस स्यमन्तक मणि को धारण कर भूविष हारते हुए गिरिवर
 करने के लिये गया था और स्यमन्तक के लिये ही मुदारण वध को सिंह से
 प्राप्त होगया था ॥३८॥ रीछो के राजा जाम्बवान् ने उस प्रमेन के वध करने
 वाले सिंह को मार डाला और उस दिव्य मणि को लेकर अपनी गुहा में प्रविष्ट
 होगया था ॥३९॥ इनके पक्षवान् उस कर्म को दृष्ट्वा का सभी वृष्टि-अन्धक
 महत्तर यादव लोग कहने लगे और मणि के लेने वाले दृष्ट्वा को मानते हुए
 उही पर चढ़ा करते थे ॥३९॥ उन सभी लोगो की इस तरह धनवाद पूर्ण
 भूली धर्षा को बलवान् अग्निसूदन भगवान् सहन न करते हुए वन में विचरण
 करने लगे ॥३९॥ और उनने प्रमेन की खोज करने का काम किया था । प्रसेन
 के चरण बिन्ही को दण्ड कर भासकारी पुरुषो व द्वारा बताये जाने पर गिरियो
 में धंष्ट श्रुक्षवान् तथा उत्तम पर्वत विन्ध्य को खोज से थके हुए उन महामन
 वाले ने देखा था ॥३८॥ अथ व सहित गये हुए उस प्रमेन को देखा किन्तु उस
 मणि को नहीं देखा था । इसके पश्चात् प्रमेन के मृग पगीर के निकट ही श्रुक्ष
 के द्वारा मार हुए सिंह को देखा । रीछ के चरण बिन्हा में सूचिन भगवान्
 धीदृष्ट्वा ने श्रुक्षराज की गुहा की खोज की थी ॥३९-४०॥

महत्पतिविले वाणी शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
 धात्र्या कुमारमादाय सुत जाम्बवतो द्विजा ।
 प्रीतिमत्याय मणिना भारोदीरित्युदीरिताम् ॥४१॥
 प्रसेनमवधीत् सिंह मिहो जाम्बवता हन ।
 मुकुमारक भारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक ॥४२॥

व्यक्तोक्तश्च शब्द त तूर्णं सोऽपि ययौ विलम्बम् ।

अपश्यच्च विलाभ्याशे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३

प्रविश्य चापि भगवास्तदृक्षबिलमञ्जसा ।

ददर्श ऋक्षगजान जाम्बवन्तमुदारधीः ॥ ४४

युयुधे वासुदेवरतु विले जाम्बवता सह ।

बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४५

प्रविष्टे च विल कृष्णे वासुदेव पुर सरा ।

पुनर्द्वारवतीमेत्य हत कृष्ण न्यवेदयन् ॥ ४६

वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्त महाबलम् ।

लेभे जाम्बवती कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥ ४७

भगवत्तेजसा प्रस्तौ जाम्बवान् प्रसभ मणिम् ।

सुता जाम्बवतीमासु विष्ववसेनाय दत्तवान् ॥ ४८

उस बहुत बड़ी गुफा में प्रभुता के द्वारा वही हुई बाणी श्री सुता था ।
 कोई धानी कुमार पुत्र को लेकर है द्विजगण । जाम्बवान् की प्राप्ति वाली मणि
 का द्वारा (अर्थात् उसे दिलाते हुए) यह कह रही थी कि बच्चे ! रोदन मत
 करो । इस प्रकार कही हुई बाणी श्री कृष्ण ने सुनी थी ॥ ४१॥ धानी ने कहा—
 सिंह ने प्रसेन को मार दिया और जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डार डाला
 है । हे गुरुकुमार ! अब तू रुदन मत कर—यह मणि स्वयन्तक लेरी ही है ॥ ४२॥
 उस शब्द की स्पष्ट समा सुनकर वीर ही वह श्रीकृष्ण विल में अन्तर चले गये
 थे और विल के समीप में अवधारित प्रसेन को देखा था ॥ ४३॥ भगवान् ने उस
 गुफा में प्रवेश करके आँक्रे ऋक्षराज के रहने की भी जग उदार बुद्धि वाले
 श्रीकृष्ण ने गीष्मों के राजा जाम्बवान् का वहाँ देखा था ॥ ४४॥ वासुदेव ने उस
 गुफा में द्वासीत दिन तक जाम्बवान् के साथ बाहुओं से युद्ध किया था ॥ ४५॥
 वासुदेव के पुरस्कार साथ में जाने वाले लोगो ने गुफा में श्रीकृष्ण के प्रवेश करने
 पर द्वारका में घोषित आकर कृष्ण मारे गये ऐसा सबको कह दिया था ॥ ४६॥
 वासुदेव ने उस महान् बानवान् जाम्बवान् की जीतकर ऋक्षराज के द्वारा सम्मन
 जाम्बवती कन्या की प्राप्ति की थी ॥ ४७॥ भगवान् के तेज से द्रष्ट हो जाने

यान जाम्बवान् ने बनात् स्यमन्तव मणि को धोर अपनी पुत्री जाम्बवती को विष्णुसेन के लिए दे दिया था ॥४८॥

मणि स्यमन्तव चैव जग्राहात्मविशुद्धये ।

अनुनीय श्रुतराज निर्ययो च तदा विसात् ॥४९॥

एव स मणिमादाय विशोद्धात्मानमात्मना ।

ददौ सत्राजिते त वै मणि सात्वतसनिधौ ॥५०॥

अन्या पुनर्जाम्बवतीमुवाच मधुसूदन ।

तस्मान्मिम्याभिज्ञापात् स व्यमुच्यत जनार्दन ॥५१॥

इमा मिम्यामिशस्ति य कृष्णस्येह व्यपोहिताम् ।

वेद मिम्याभिज्ञस्ते स नामिशस्यति क्वहिचिद् ॥५२॥

दश स्वमृग्यो भार्याभ्यः क्षत्रजित्त शत सुता ।

रुपातिमन्तस्त्रयस्तेषा भङ्गवारस्तु पूर्व्वज ।

वीरो व्रतपतिश्चैव ह्यपस्त्वान्तश्च सुप्रिय ॥५३॥

अथ द्वारवती नाम भङ्गवारस्य सुप्रजा ।

सुपुत्रे सा कुमारीस्तु तिस्रा रूपगुणान्विता ॥५४॥

सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां प्रतिनीव हृदयता ।

तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य ता ददौ ॥५५॥

यत्तन् मत्राजित कृष्णो मणिरत्न स्यमन्तवम् ।

प्रादात्तदाहरद्रत्न भोजेन शतघन्वना ॥५६॥

तदा हि प्राययामास सत्यभामामनिन्दताम् ।

अक्रूरो रत्नमन्विच्छन् मणिश्चैव स्यमन्तवम् ॥५७॥

भद्रवार ततो हत्वा शतघन्वा महाबल ।

रात्री ॥ मणिमादाय तत्राऽऽक्रूय दत्तवान् ॥५८॥

अानी आत्मा की विशुद्धि के लिए स्यमन्तव मणि का उनसे ग्रहण किया था और श्रुतराज से उसका लिये अनुनय किया था । इससे पश्चात् वह उस पुरा से बाहर निकल गये थे ॥४९॥ इस तरह उनसे मणि को लेकर अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्माप बाद का घोषण करके समस्त मात्मा की समिति

मे उग्र स्वयम्भवा मणि को सन्नाजित् को दे दिया था ॥१५०॥ किन् मधुसूदन ने
 जालकपत्नी नाम वाली बन्वा मे कहा कि उस मिथ्या अभिजात से जा दिन मर्यात्
 मैं भव विमुक्त होगया हूँ ॥१५१॥ इन कृष्ण ने उग्र व्यथित मिथ्याभिजात
 आ कोई जानता है मर्यात् इसे पढ़ना था मुनता है वह कभी भी मिथ्या दावा
 मे दूगिन नही होता है ॥१५२॥ दम बहिन भार्यायो ने सन्नाजित् के मो पुत्र बहुत
 हो प्रगति जाने हुए थे उनमे मङ्गहार मन्त्र बडा था । वह शीर-जन्मति-
 शयस्यान् और मुप्रिय था ॥१५३॥ इसके अनन्तर मङ्गहार की सुन्दर सन्तति
 द्वारकानी नाम वाली न तीन रूप और गुण से युक्त कुमारियो का प्रसव किया था
 ॥१५४॥ स्त्रियो मे यदि उत्तम जन वाली थी भाति हृद जनवाणी सत्यभामा थी
 जो परम तदम्बिनी थी उनमे उनके पिता ने श्रीकृष्ण को दे दिया था ॥१५५॥
 जो मणियो से सर्वेष्ट स्वयम्भवा मणि कृष्ण ने सन्नाजित् को दे दी थी उसे दात-
 यका ने शीघ्र से हरण कर लिया था ॥१५६॥ उस समय स्वयम्भवा मणि को चाहते
 हुए प्रकृ ने अभिदिन सत्यभामा से प्रार्थना की थी ॥१५७॥ तब शनभन्दा ने
 जोवि महाद् जनवान् था, भद्रदार को मारकर राशि मे उस मणि को लाकर
 प्रकृ को दे दी थी ॥१५८॥

प्रकूरस्तु तदा रत्न मादाय स नरर्षभ ।

समये कारण चक्रे वोढ्यो नन्वैस्त्वयेत्युत ॥१५९॥

वयमभ्युपपत्स्याम कृष्णेन त्वे प्रथपित ।

मम च द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसद्यम् ॥१६०॥

हते पितरि दुःखात्तां सत्यभामा यदास्थितौ ।

प्रपत्नी रथमारुह्य नगर वारणावतम् ॥१६१॥

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य दातव्यम् ।

ततस्त्वरितमागम्य द्वारका मधुसूदन ।

पूर्व्वेज हलिन श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥१६४॥

हृत प्रमेन मिहेन सत्राजिच्छतधन्वना ।

स्यमन्तकमह मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ॥६२॥

तदारोह रथ शीघ्रम् भोज हत्वा महाबलम् ।

स्यमन्तरो महाबाहो तदास्माक भविष्यति ॥६३॥

उप नरो मे श्रेष्ठ अक्रूर ने उस समय उप रथन को लेकर प्रतिज्ञा कराई
या शर्त करा ली थी कि इसके प्राप्त होनेका कारण तुझे अन्य किसी को भी नहीं
ज्ञात कराना चाहिए ॥६२॥ हम अश्वपुपपन्न करिगे । तुझको कृष्ण ने प्रार्थित
रिया है । यदि यह समस्त द्वारका निस्संशय मेरे यज्ञ में रहेगी ॥६०॥ अपने
पिता के मारे जाने पर यक्षस्त्रिणी शत्रुभावा दुःख से पीड़ित हुई रथ पर सवार
होकर बारणास्य नगर में गई थी ॥६१॥ मत्स्यभावा ने शतधन्वा भोज का बहु
गमन वृत्त भर्ता मे निवेदन किया और दुःख ने शर्त होकर पान में म्मिन
गने हुए अश्वपुपन्न किया था ॥६२॥ दम्भ हुए वाल्मिकी की उदक क्रिया को हरि
ः पूर्ण करके भाइयो के मुख्य अर्थ में मार्गदर्श को नियोजित किया था ॥६३॥
दश पद्मात् मधुसूदन गुरन्त ही द्वारका में आकर अपने बड़े भाई बलरामजी
में यह वचन बाल—॥६४॥ हे प्रभो ! मिह न प्रमेन की मार दिया था और
गनधन्वा ने मन्त्राश्रित को मार दिया है । उमने स्यमन्तक को मैं खोजता हूँ,
याग प्रहार करिय ॥६५॥ हा अब प्राण रथ पर आगे हल करिय और महादु
षण्डात् को भोज की शीघ्र मार कर हे महाबाहो । तब यह स्यमन्तक हमारी
हो जायगी ॥६६॥

तत प्रवृत्ते मुद्रेतु तुमुले भोजवृष्णयो ।

गनधन्वा न चाक्रूरमवक्षन्तु सवंतो दिशि ॥६७॥

अनष्ट शत्रोरोहन्तु कृत्वा भोजजनाईनी ।

सतोऽपि नाप्यादादं कयाप्राक्रूरोऽभ्युपपद्यत ॥६८॥

अपाने ततो युद्धि भूयश्चक्रे भयान्वितः ।

योजनाना शत मास यथा च प्रत्यपद्यत ॥६९॥

विज्ञानरहस्या नाम शनयोजनमामिनी ।

भोजस्य वदयादित्यो यथा कृष्णमयोऽयम् ॥७०॥

प्रवद्वेगा बडवा त्वध्वना शतयोजनम् ।
 दृष्टा रथगतिस्तस्य शतघन्वानमर्हयत् ॥७१॥
 ततस्तस्य हयास्ते तु यमात् खेदाच्च वै द्विजा ।
 समुत्पेतु रथप्राणा वृष्णी राममथाव्रवीत् ॥७२॥
 तिस्रस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हया ।
 पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि भणिरत्न स्यमन्तकम् ॥७३॥
 पद्भ्यामेव ततो यत्वा शतघन्वानमभ्युत ।
 मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित् ॥७४॥

इसके पश्चात् भोज और कृष्ण का तुमुल युद्ध प्रवृत्त हो जाने पर गत
 धवा ने समस्त दिशाओं में अक्रूर को नहीं देखा था ॥६७॥ भोज और जनादन
 नष्ट न होने वाले भ्रातृ का अवरोह करके शक्त होते हुए भी साध्य बाधन्य से
 अक्रूर सम्पुपन्न नहीं हुआ ॥६८॥ भय में युक्त होते हुए फिर उसने अपमान
 करने में बुद्धि की थी । सो योजन जाने जिससे प्रतिपन्न होगया ॥६९॥ विज्ञात
 हुइया—इस नाम वाली सो योजन तक गमन करने वाली भोज की बडवा थी
 जिसके द्वारा उसने श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया था ॥७०॥ बड़े हुए वेग वाली
 बडवा (घोड़ी) थी जिसने उसके रथ की गति माग के सो योजन में देली थी
 उसने शतरवा का शक्ति कर दिया था ॥७१॥ हे द्विजपण ! इसके पश्चात्
 रथ के प्राण स्वरूप उसके बाड़े भ्रम से और खेद के होने से आकाश में उड़ गये
 थे । श्रीकृष्ण राम से बोले ॥७२॥ हे महाबाहो ! यहाँ पर दृष्टो मैंने भ्रातृ के
 दोषों की देव किया है । मैं पैंरो से जाकर भणिरत्न स्यमन्तक का हरण करूँगा
 ॥७३॥ इसके पश्चात् पैंरो से ही जाकर अभ्युत ने मिथिला के अधिपति शत
 धवा को भ्रम विद्या के परम परिकृत श्रीकृष्ण ने मार दिया था ॥७४॥

स्यमन्तकं न चापश्यद्वत्सा भोज महाबलम् ।
 निवृत्त चाव्रवीत् कृष्ण रत्न देहीति लाङ्गली ॥७५॥
 तास्तीति कृष्णश्चोवाच तता रामा स्यान्वित ।
 धिक्छुब्धमसकृत् पूर्वं प्रत्युवाच जनाद नम् ॥७६॥

आतृत्वान्मर्पयाम्येव स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् ।

कृत्य न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥७७॥

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः ।

सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजितः ॥७८॥

एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतावरः ।

नानारूपान् क्रतून् सर्वानाजहार निरगंतान् ॥७९॥

दीक्षामय सकवच रक्षायं प्रविवेश ह ।

स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायशः ॥८०॥

अर्थान् रत्नानि चाग्रघाणि द्रव्याणि विविधानि च ।

पष्टिवपंगते काले यज्ञेषु विन्ययोजयत् ॥८१॥

अक्रूरयज्ञ इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।

बह्वन्नदक्षिणा सर्वैः सर्वकामप्रदायिनः ॥८२॥

श्रीर महान् बलवान् भोज को मार कर स्यमन्तक मणि को नहीं देला था । लीटे हुए कृष्ण से लाङ्गलधारी बलराम ने कहा रत्न को देदो ॥७५॥ श्रीकृष्ण ने कहा बहू मणि नहीं है । तब तो बलराम क्रोध से युक्त हो उठे । बार बार धिक्—इस दाब्द को पहिले कहते हुए जनार्दन से बोले ॥७६॥ मेरे भाई के होने के कारण से मैं यह सहन करता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो—मैं तो भव जाता हूँ । मुझे डाङ्का से कोई काम नहीं है न तुम्हारे और न वृष्णिषो से कुछ प्रयोजन है ॥७७॥ इसके पश्चात् बलराम ने जोकि क्षत्रियों के मर्दन करने वाले थे मिथिला में प्रवेश किया था और वहाँ समस्त कामना वाले उपहृतों के द्वारा मैथिल से ही पूजित हुए थे ॥७८॥ इसी बीच में बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक रूप वाले निरगंत सभी क्रतुओं को आहूत किया था ॥७९॥ महान् यश वाले राजा गाधि पुत्र ने स्यमन्तक के लिये दीक्षामय सरवच को रक्षा के लिये प्रविष्ट किया था ॥८०॥ साठ वर्ष के काल में यज्ञों में धनो को—रत्नों को और उत्तम विविध भाँति के द्रव्यों को विनियोजित किया था ॥८१॥ उस महान् आत्मा वाले थे सब 'अक्रूर यज्ञ' इस नाम से ख्यात हुए थे । अनेक बहुत मा भन्न और दक्षिणा वाले तथा समस्त कामनाओं को देने वाले थे यज्ञ थे ॥८२॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽयं मिथिला प्रभु ।
 गदाशिक्षां ततो दिव्या बलभद्रादवाप्तवान् ॥८३॥
 प्रसाद्य तु ततो विप्रा वृष्ण्यन्धकमहारथं ।
 आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥८४॥
 अक्रूरमन्धकं साद्धं मुपायात् पुरुषर्षभ ।
 युद्धं हत्वा तु शत्रुघ्नं सह बन्धुमता बली ॥८५॥
 अशक्तकतनवायान्तु नराया नरसत्तमौ ।
 भङ्गवारस्य तनयो विश्रुतो सुमहाबली ॥८६॥
 जज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्ना बन्धुमाश्रितौ ।
 वधार्थं भङ्गकारस्य वृष्णो न प्रीतिमान् भवेत् ॥८७॥
 शांतिभेदमयाङ्गीतं समुपेक्षितवास्तथा ।
 भपयाते तथाक्रूरे नावपत्पावशासन ॥८८॥
 अनावृष्ट्या हतं राष्ट्रमभवत्तद्वधोऽतम् ।
 ततः प्रसादयामासुरक्रूरं बुकुरान्धका ॥८९॥
 पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तदा दामपतीं तथा ।
 प्रवदपं सहस्राक्षं कुक्षीं जलनिधेस्ततः ॥९०॥

इसके पश्चात् प्रभु राजा दुर्योधन ने मिथिला में जाकर बलभद्र से शि-
 गदा की शिक्षा को प्राप्त किया था ॥८३॥ हे विप्र वृन्द ! इसके अनन्तर वृष्णि
 आश्रय और महारथों के द्वारा बलरामजी को प्रसन्न करने महारथा वृष्ण
 द्वारा उन्हें फिर द्वारकापुरी में ही धाविस ल आये वध थे ॥८४॥ उस पुरुषो
 श्रेष्ठ बली बलराम ने युद्ध में वशुमात् के साथ में शत्रुघ्न को मार कर अश्व
 के साथ अक्रूर के पास पहुँचे थे ॥८५॥ अशक्त की तनया में नरामे भङ्ग वर
 नरपति महान् बल बाल एवं प्रसिद्ध दा तनय हुए ॥८६॥ उस अधिका में सु-
 शत्रुघ्न और वशुमात् में ही पुत्र थे । भङ्गकार के वध में लिये वृष्ण प्रीति वा-
 नही हुए थे ॥८७॥ शांति के भेद के भय से डरे हुए उसकी उस प्रकार से उपा-
 करदी थी । अक्रूर के भपवात होजाने पर इन्द्र के वर्षा नहीं की थी ॥८८॥
 अनावृष्टि से हत हुए राष्ट्र ने उससे वध नररत्ने की तैयारी की थी । तब बुकुरा

को ने धनरूप को प्रमत्त किया था । ८६। तब उस समय फिर दानपति के द्वारवा
पुगे में प्राप्त हो जाने पर फिर जलनिधि की कुक्षि में द्रव्य देव ने मूर्ख वर्ण
की थी ॥६०॥

वन्याञ्च वामुदेवाय स्वसार शीलसम्मनाम् ।
अक्रूरः प्रददौ श्रोमान् प्रीत्यर्थं यदुपुद्भव ॥६१
अथ विज्ञाय योनेन वृष्णो बभ्रुगत मणिम् ।
सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूर जनार्दन ॥६२
यच्च रत्न मणिधर तव हस्तगत प्रभो ।
तत् प्रयच्छस्व मानाहं विमतिश्चात्र मा वृथा ॥६३
पट्टिवर्पगते काले यद्रोषोऽभून्मदा मम ।
सुसहृद सवृत् प्राप्तस्तरकालाश्रित्य स महान् ॥६४
तत कृष्णस्य वचनात् सत्त्वंसात्वतससदि ।
प्रददौ त मणि यभ्रुरवलेभेन महामति ॥६५
तत भार्जवसप्राप्तवभ्रुहस्तादिरिन्दम ।
ददौ प्रहृष्टमनसा त मणि यभ्रवे पुन ॥६६
त कृष्णहस्तात् सप्राप्य मणिस्त स्यमन्तकम् ।
आवृद्धप गान्दिनीपुत्रा विरराजागुमानिव ॥६७
हमा मिथ्याभिदास्ति यो विगृह्यामपि चोत्तमाम् ।
वेद मिथ्याभिदास्ति स न श्रेष्ठ नयश्चन ॥६८

यदुषो मे श्रेष्ठ धनरूप ने अपनी वन्या और शील से सम्मन करने को
वामुदेव के लिये उनकी प्रीति के लिये ददी थी ॥६१॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्ण
न योग के द्वारा वभ्रु के पास मणि होने को जानकर जनार्दन ने मभा के मध्य
में उस धनरूप से कहा ॥६२॥ हे प्रभो ! और रत्न श्रेष्ठ मणि तुम्हारे हाथ लग
गई है हे मानाहं ! उसे अब देदो और इस काम में यहाँ कोई भी विमति मन करो
॥६३॥ साठ वर्ष के समय में सब जो मुझे रोष हुआ है एक बार प्राप्त होजाने
वाला यह इस स्थाने का न बा महारा पाकर यह बहुत ज्यादा होने लगा भरी भीति
के बन्ध होगया है ॥६४॥ इसके पदवान् सम्मन ग्राहकों की ममद में श्रीकृष्ण के

इन वचनों से महा बुद्धि वाले बभ्रु ने बिना किसी क्लेश के उस मणि को दे दिया था ॥६१॥ इसके पश्चात् सरलता से बभ्रु के हाथ से प्राप्त हुई उस मणि को अरिन्दम ने बड़े ही प्रसन्न मन से पुनः उस मणि की बभ्रु को दे दी ॥६२॥ उस गान्दिनी पुत्र ने श्रीकृष्ण के हाथ से उस अशिरत्न स्वयमन्त्र को पाकर और कण्ठ में बाँधकर मधुमान् की तरह सुशोभित हुए ॥६३॥ इस मिथ्याभि-
धारित को जो कोई विशुद्ध को भी उत्तम को जानेगा वह कभी मिथ्याभिधारित को प्राप्त नहीं होगा ॥६४॥

अनिमिषाच्छिनिर्जङ्गे कनिष्ठाद्बृष्टिणनन्दनात् ॥६५॥

सत्यवाक् सत्यसम्पन्न सत्यवस्तरय चात्मज ।

सात्यकिर्बुधधानस्य तस्य भूति सुतोऽभवत् ॥१००॥

भूतेषु गन्धर पुत्र इति भोत्या प्रकीर्त्तिताः ।

जज्ञाते तनयी पृश्ने श्वफल्कश्चित्रकश्च य ॥१०१॥

श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते ।

नास्ति व्याधिभय तत्र न चाकृष्टिभय तथा ॥१०२॥

कदाचित् काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमा ।

श्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासन ॥१०३॥

स तत्र वासयामास श्वफल्क परमाचितम् ।

श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासन ॥१०४॥

श्वफल्क काशिराजस्य सुता भार्यामनिन्दिताम् ।

गान्दिनी नाम या सा हि ददौ विप्राय नित्यम् ॥१०५॥

सा भक्तुश्चरन्त्या वे बहुवर्षं क्षतान् किस ।

वसति स्म न वै जज्ञे गर्भस्यान्ता पिताम्रवीत् ॥१०६॥

राजा अनभिन्न से शिवि का जन्म हुआ जोकि कृष्ण का सबसे छोटा पुत्र था ॥६५॥ उसके पुत्र सत्यवाक्-सत्यसम्पन्न और सत्यव के । बुधधान का सात्यकि पुत्र हुआ था । और उसका पुत्र भूति नाम वाता उत्पन्न हुआ था ॥१००॥ भूति का पुत्र सुगन्धर नामक हुआ । ये सब संसार में भोत्या इस नाम प्रसिद्ध हुए थे । प्रक्षि के श्वफल्क और चित्रक के दो पुत्रों का जन्म हुआ था

॥१०१॥ वहाँ महाराज अफल्क तो घमसिमा हुए हैं । वहाँ पर किसी भी व्याधि का कभी कोई भय ही नहीं हुआ था तथा न कभी अनावृष्टि (वर्षा होने का प्रभाव) ही हुई थी ॥१०२॥ हे द्विजगण ! किसी समय में विभु काशिराज के समय में तीन वर्ष तक देव में इन्द्रदेव ने वर्षा ही नहीं की थी ॥१०३॥ उसने वहाँ पर अफल्क को भली भाँति समर्पित करके बसाया था । फिर अफल्क के परि निवास होने से पाकशामन ने वर्षा की थी ॥१०४॥ अफल्क में काशिराज की मुता को भालन्दित आर्या गान्दिनी नाम कासी की थी । वह एक गी रोज ही ब्राह्मण को दिया करती थी ॥१०५॥ वह माता के उदर में ही बहुत से सैकड़ों वर्ष तक स्थित रही थी और उसने जन्म ही ग्रहण नहीं किया था तब उदर में स्थित उससे उसके पिता ने कहा था ॥१०६॥

जामस्व दीध्रं भद्रन्ते किमर्थं चापि तिष्ठसि ।

प्रोवाच चैन गर्भस्था सा वन्या गौदिने दिने ॥१०७॥

यदि दत्ता तदा स्या हि यदि स्पामीहता पित ।

तथेत्युवाच ता तस्या पिता काममपूपुरत् ॥१०८॥

दाता यज्वा च दूरश्च श्रुतवानतिथिप्रिय ।

तस्या पुम स्मृतोऽङ्कूर इवफल्को भूरिदक्षिण ॥१०९॥

उपमगुस्तथा मगुमृदुरश्चारिमेजयः ।

गिरिरक्षस्ततो यक्ष शत्रुघ्नो वारिमर्दनः ॥११०॥

धर्मभृच्च शृष्टचयो वरमोचस्तथापर ।

भावाहप्रतिवाही च वसुदेवा वराङ्गना ॥१११॥

अङ्कूरादुग्रसेन्यान्तु मुतो द्वौ कुलनन्दिनौ ।

देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसमिती ॥११२॥

चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुविपृथुरेव च ।

भद्रवप्रीवोऽववाहश्च सुपाद्वर्नगवेपथौ ॥११३॥

परिष्टनेमिरद्वश्च सुवर्मा वरमंचमभृत् ।

अभूमिर्वहभूमिश्च अविष्ठाथवसो स्त्रियौ ॥११४॥

हे पुत्रो ! तुम जन्म ग्रहण करो, तुम्हारा जन्मगाण होगा । क्या कारण है किगमे तुम उदर से बाहरि नहीं निगम रही हो और वहाँ पर बँटी हो ? तब उम गर्भ मे स्थित जन्मा ने इम अपने पिता से कहा था कि यदि रोज-रोज गो का दान करने वाला हो तो मैं जन्म लूँगी । हे पिता ! मैं यही चाहती हूँ । तब उनके पिता ने 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उसी वाचना को पूर्ण किया था ॥१०७-१०८॥ उसका पुत्र अरूर अश्वत्थ बहूत दाता—दाता—दूर—दातृत्वा का जाता—बहूत दक्षिणा देने वाला और धनिदियों का प्रिय दूता था ॥१०९॥ उपमगु—मगु—मृदुर—आग्निमेजय—गिरिरथ और उनसे यश—यशुधन—वारि मर्दन—धर्मभृत्—भृष्टवत् तथा दूगरा नगमोच—जहाद और प्रनिवात तथा वराज्जना समुदेवा हुए थे ॥११०-१११॥ अरूर ने उग्रमेनी में कुल को धानन्वित करने वाले दो पुत्र पैदा हुए थे जिनका नाम देव और अनुपदेव था और वे दोनों देवी के समान थे ॥११२॥ विजय के पृथु—विपृथु—अश्वप्रीव—अश्ववाहु—गुपारवंश—गवेषण—प्रतिष्ठेभि—अश्व—सुवर्मा—वर्मचयंभृत्—अभूमि—बहुभूमि पुत्र उत्पन्न हुए थे । अविद्या और धवणा दो जियाँ थी ॥११३-११४॥

सत्यकात् वासिदुहिता लेभे सा वतुरः सूतान् ।

अकुद भजमानश्च शमीववलवर्हिपो ॥११५

अकुदस्य सुतो वृष्टिर्गृष्टेस्तु तनयोऽभवत् ।

अपोतरोमा तस्याथ रेवतोऽभवदात्मजः ॥११६

तस्यासीत्सुखुरसखा विद्वान् पुत्रोऽभवत्क्विस ।

स्यायते यस्य नाम्ना स चन्दनोदकदुन्दुभिः ॥११७

तस्माच्चाभिजित पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसु ।

अश्वमेधन्तु पुत्रार्थे आजहार नरोत्तम ॥११८

तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमघ्यात्समुत्थितम् ।

ततस्तु विद्वान् धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसु ॥११९

तस्यापि पुत्रमिथुन बाहुवाणाजित किल ।

आहुकश्चाहुकी चैव स्यातो मतिमतावरो ॥१२०

इमाश्चोदाहरन्त्यथ श्लोकान् प्रति तमाहुन्मृ ।

सोपासद्भानुनर्पाणा सध्वजाना वल्ग्विनाम् ॥१२१॥

रथाना भेषधोपाणा सहस्राणि दर्शयन्तु ।

नामन्त्यवादी त्वासीत्तु नायज्या नामहस्यदः ॥१२२॥

गाधुर्चिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न वृत्तोऽभवत् ।

आहुक्स्य घृतिः पुत्र इत्यमेवमनुश्रुत् ॥१२३॥

मस्यैव ने वाणि दुहिता ने चार पुत्रों को प्राप्त किया था किन्तु नाम
बहुद-भजमान और प्रमीक तथा वल्लभहिं थे ॥११५॥ बहुद का पुत्र घृति
नाम वाला हुआ और घृति का पुत्र कपोतराम हुआ था और उसका पुत्र रेवत
हुआ था ॥११६॥ उनके मुन्दुद मता परम विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके
नाम में चन्दनोदक दुन्दुभि प्रसिद्ध होता है ॥११७॥ और उसमें प्रसिद्धि पुत्र
हुआ और पुत्रवंश उत्पन्न हुआ था ? उस नरोत्तम ने पुत्र व नियम अश्वमेध यज्ञ
किया था ॥११८॥ उस अतिरात्र के मध्य में मधोमध्य में समुपित हुआ था ।
उसमें परम विद्वान्-दान देने वाला-यज्ञ का जाता और यज्ञा पुत्रवंश हुआ था
॥११९॥ उसके भी पुत्रा का जोडा बाहु बाणाकिन हुआ जोकि आहुक और
आहुकि-इन नामा से निर्माता से परमश्रेष्ठ स्थान हुए थे ॥१२०॥ यहाँ पर उस
आहुक के प्रति ये श्लोक उदाहृत होने हैं । उसके उपामद्यु मुत्तयण के सहित
तथा ध्वजानों के सहित वल्ग्विनों के और भेषधोप वाले रथों व दत्त मत्त के ।
वह धमन्त्यवादी नहीं था वह अश्वज्या तथा अश्वहस्यद नहीं था, न वह प्रधुवि
और न अधर्मात्मा ही था, वह अविद्वान् तथा अज्ञ भी नहीं हुआ था । आहुक
का पुत्र घृति हुआ था—यही हम सुनते हैं ॥१२१ १२२-१२३॥

श्वेतेन परिचारेण किशोरप्रतिमान् हयान् ।

अशीतियुक्तनियुनान्याहुकप्रतिमोज्ज्वलत् ॥१२४॥

पूर्वस्यादिभि नागाना भोजस्य प्रतिरेजिरे ।

रुप्यमान्वनक्षणा सहस्राण्येवविशति ॥१२५॥

तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यान्तथा दिशि ।

भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत् किङ्किणो विल ॥१२६॥

आहुकश्चाहुकान्वाय स्वसार त्वाहुकीन्ददौ ।
 आहुकान्धस्य दुहिता द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतु ॥१२७॥
 देवक श्रोत्रसेनश्च देवगर्भसमाधुमौ ।
 देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥१२८॥
 देवानामपि देवश्च सुदेवो देवरक्षिता ।
 तेषां स्वसार सप्तमिन् वसुदेवाय ससदौ ॥१२९॥
 वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता ।
 श्रीदेवा शान्तिदेवा च महादेवा तथापरा ॥१३०॥
 सप्तमी देवकी तासां मुनामा चारुदर्शना ।
 नवोत्पसेनस्य सुता वसस्तेषान्तु पूर्वज ॥१३१॥

श्वेत परिचार ने युक्त किणोर प्रतिमा वाले अस्सी की मर्या से युक्त
 नियुक्त श्वेतो को लेकर आहुक प्रतिमा जाया करना था ॥१२४॥ पूर्व दिशा में
 चाँदी और मुक्ता की बधा वाले भोज के नाथों की इक्कीस हजार मर्या प्रति-
 रक्षित हुई थी ॥१२५॥ उत्तर दिशा में भी उतनी ही मर्या थी । भूमि के
 पामर भोज की किङ्किणी उठनी थी ॥१२६॥ आहुक ने आहुकान्ध के लिये
 आहुकी बहिन को दे दिया था । आहुकान्ध की दुहिता और दो पुत्र हुए थे ।
 देवक और उत्पसेन ये दोनों देवगर्भ के समान थे । देवक के देवों के समान और
 पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥१२७-१२८॥ देवों के भी देव-गुरुदेव और देव
 रक्षित हुए थे । उनके गान बहिनें थीं जोकि वसुदेव के लिए देदी थीं ॥१२९॥
 उनके नाम वृकदेवा-उपदेवा-देवरक्षिता-श्रीदेवा-शान्तिदेवा तथा महादेवा एवं
 उनमें मानवी देवकी थी जो सुन्दर नाम वाली और देने में बहुत सुन्दर थी ।
 उत्पसेन के भी पुत्र थे उन सब में कम सबसे बड़ा था ॥१३०-१३१॥

न्यग्रोधश्च मुनामा च वटशतुश्च भूमयः ।
 गूतनू राष्ट्रानश्च युद्धतुष्ट गुपुष्टिमान् ॥१३२॥
 तेषां स्वगार पथ्यैः कर्मधर्मवती तथा ।
 गताष्ट्रं राष्ट्रपाला च वृत्ता चैव वराङ्गना ॥१३३॥

उग्रसेनो महापत्यो विरयात् कुकुरोद्भव ।
 कुकुराणामिम वक्ष धारयन्मितीजसाम् ।
 आत्मनो विपुल वक्ष प्रजावाञ्च भवेत्तर ॥१३४
 भजमानस्य पुत्रस्तु रधिमुख्यो विदूरथ ।
 राज्याधिदेव दूरश्च विदूरश्च सुतोऽभवत् ॥१३५
 तस्य दूरस्य तु सुता जज्ञिरे वक्षवत्तरा ।
 वात्सर्ज्यं च निवातश्च शोणित श्वेतवाहन ॥१३६
 शमो च गदवर्मा च निदात शक्रशक्रजित् ।
 शमिपुत्र प्रतिक्षिप्त प्रतिक्षिप्तस्य आत्मज ॥१३७
 स्वयम्भोज स्वयम्भोजाद्भुदिक सम्बभूव ह ।
 हृदिकस्य सुतास्त्वातन् दक्ष भीमपराक्रमा ॥१३८
 कृतवर्मा कृतस्तेषा शतधन्वा तु मध्यम ।
 देवाहश्च वनाहश्च भिषग द्वेतरथश्च य ॥१३९
 सुदान्तश्च धियान्तश्च नववान् कनकोद्भव ।
 देवार्हस्य सुतो विद्वान् जज्ञ कम्बलवर्हिष ॥१४०
 प्रममौजा सुतस्तस्य सुमहौजाश्च विश्रुत ।
 प्रजावपुत्राय तत प्रददावसमौजसे ।
 सुदृष्टश्च सुरूपश्च कृष्ण इत्यन्धका स्मृता ॥१४१
 अन्धकानामिम वक्ष कीलयानस्तु नित्यश ।
 आत्मानो विपुल वक्ष लभते नान सशय ॥१४२

उग्रसेन के नाम ये हैं—न्यग्रोध—सुवात—कट्वाकु—भृगय—सुतनु—राष्ट्रपात
 मुदुतुष्ट भीर सुपुत्रिमान् ये ॥१३२॥ उनकी पाँच कम धमवती—रातायु—राष्ट्र
 पाना—कुह्या भीर वराहना ये बहिनें थी ॥१३३॥ कुकुरोद्भव उग्रसेन बहुत
 धनिक मन्तति बाला विख्यात था । कुकुरो के इस महान् वक्ष को थोकि महान्
 भोज वालो का वक्ष है धारण एवं श्वरण करने वाला मनुष्य अपने बड़े वक्ष को
 धारण करने वाला तथा सन्तति सम्पन्न हुआ करता है ॥१३४॥ भजमान का
 पुत्र रधियो म मुख्य विदूरथ था जो राज्य का अधिदेव भीर दूर था । उसका

विदुर पुत्र हुआ था । उस दूर ने अधिक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनके नाम बात निवात-शोषित-श्वेतवाहन-शमी-गदवर्मा-निहात और शक्रशक्रजित् थे । शमी ने पुत्र प्रतिक्षित हुआ और प्रतिक्षित का आत्मज स्वयम्भोज हुआ तथा स्वयम्भोज से हृदिक पुत्र उत्पन्न हुआ था । हृदिक के भीम के ममान पराक्रम बाल दत्त पुत्र हुए थे ॥१३५ से १३८॥ उनके नाम ये हैं—कृतवर्मा-वृत्त जाकि उनम मध्यम था—देवाह-वनाह-निपक्-द्वैतरथ-सुदान्त-धियान्त-नक्वान्-कनोद्भव ये नाम हैं । देवाह का पुत्र बडा विद्वान् कम्बलवह्निप नाम वाला हुआ था ॥१३९ १४०॥ उसका पुत्र असमोज और सुमहोजा विधूत हुए अपुत्र असमोजम के लिये भ्रज दिये थे । मुदह्-मुरूप और कुष्ण ये सब भ्रमक कहे गये हैं ॥१४१॥ भ्रमको के इस वंश का तिर्य ही कीर्तन वाला पुष्प अपना बहुत वंश प्राप्त किया करता है—इसम कुछ समय नहीं है ॥१४२॥

अस्मकया जनयामास शूरो वै देवमानुषिम् ।

माध्यान्तु जनयामास शूरो वै देवभीटुपम् ॥१४३

माध्यान्तु जज्ञिरे शूराद्भोजाया पुण्या दद्य ।

वसुदेवो महाबाहु पूवमानकदुन्दुभि ॥१४४

जज्ञ तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभि प्राणदहिवि ।

आनवानाञ्च सहाद सुमहानभवद्वि ॥१४५

पपात पुष्पवगञ्च धूरस्य भवने महत् ।

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६

यस्मासीत् पुरुषाग्र्यस्य कीर्तिश्चन्द्रमसो यथा ।

देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवथवा पुन ॥१४७

अनादृष्टिर्दृष्ट्वैव नन्दनञ्चैव भृञ्जिन ।

श्याम शमीवो गण्धूय चतस्रस्तु वराङ्गना ॥१४८

पृथा च श्रुतवदा च श्रुतकीर्ति श्रुतथवा ।

राजाविदेवी च तथा पञ्चता वीरमातर ॥१४९

पृथा दुहितश्च चक्रे कुन्तिस्ता पाण्डुरावहत् ।

अनपत्याय नृदाय कुन्तिभोजाय ता ददौ ॥१५०

शूर ने अस्मकी मे देव मानुषी को जन्म दिया था । और मापी मे शूरने देवमीदुष को समुत्पन्न किया था ॥१४३॥ मापी मे भोजा मे शूर से दश पुरुषो ने जन्म ग्रहण किया था । महान् बाहु वाले वसुदेव पहिले आनक दुन्दुभि दृष्ट ॥१४४॥ उमके प्रसून होने के समय मे देवलोक मे दुन्दुभि बजाई गई थी और आनको का दडा भी गन्ध दिवि मे हुथा था ॥१४५॥ उम समय शूर के भवन मे पुष्पो की वर्षा हुई थी । समस्त मनुष्य साँज के रूप मे उसके समान बौई भी नही था ॥१४६॥ उस पुरुषों मे श्रेष्ठ की कीर्ति चन्द्रमा के समान थी । इसके पश्चात् देवभाग ने जन्म लिया और फिर देवधवा ने जन्म ब्रह्मन् किया था ॥१४७॥ अनाहति कद-नन्दन-भृञ्जिन-इषाग-समीक-गर्गहूष और चार वराङ्गना जोकि नाम से पृथा-श्रुतवेदा-श्रुतकीर्ति-श्रुतधवा और राधिदेवी ये पाँच वीर मातायें हुई हैं ॥१४८-१४९॥ दुहिता पृथा कुन्ति को पारशु ने ग्याहा था । अनपत्य अर्षान् बिना सन्तान वाले वृद्ध कुन्ति भोज के लिये उसको दे दिया था ॥१५०॥

तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तीभोजात्मजा पृथा ।

कुरुवीर' पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामिविन्दत ॥१५१॥

पृथा जज्ञे तत पुत्रान् त्रीनग्नि समतेजस ।

लोकेऽप्रतिरथान् वीरान् शक्तुल्यपराक्रमान् ॥१५२॥

अर्षाद्युधिष्ठिर पुत्र मारुताञ्च वृकोदरम् ।

इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥१५३॥

माद्रवत्पान्तु जनितावाश्विनाविति विश्रुतम् ।

नकुल सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ॥१५४॥

जज्ञे च श्रुतदेवाया तनयो वृद्धशर्मणः ।

वरुणाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रो महाबल ॥१५५॥

कंकेया श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्तदं पुन ।

चेकितानवृहत्क्षत्रो तथवान्यो महाबली ॥१५६॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरो भुमहावली ।

अतश्चवाया चंचस्तु शिशुपालो वभूव ह ॥१५७॥

दमघोषस्य राजपुत्रो विख्यातपौरव ।

य पुरासीद्दशग्रीव सबभूवारिमर्दन ॥१५८॥

इसी कारण से वह कुन्ती-इस नाम से विख्यात हुई थी क्योंकि वह कृतिभोज की मात्मजा पृथा थी । कृष्णों में वीर पाण्डुमुख्य ने इससे उसे भार्या के रूप में प्राप्त किया था ॥१५१॥ उससे पृथा ने अग्नि के समान प्रदीप्त तेज वाले तीन पुत्रों को जन्म दिया था जोकि ससार में अप्रतिरथ-वीर और इन्द्र के समान पराक्रम वाले हुए थे ॥१५२॥ पृथा ने धर्म से युधिष्ठिर पुत्र को भारत से धृक्नोदर को और इन्द्र से धनञ्जय को इस तरह से पृथा ने पुत्रों को जन्म दिया था ॥१५३॥ मातृवती में दो अश्विनो-इस नाम से विभूत रूप तथा गुण से अश्विन नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए थे ॥१५४॥ और श्रुतदेवा ने वृद्धशर्मा का पुत्र रूप का अधिपति-वीर एवं महान् बलवाला दन्तवक्त्र उत्पन्न हुआ था ॥१५५॥ कौशेय श्रुत कीर्ति में फिर मन्तर्दन उत्पन्न हुआ था । तथा अन्य महान् बल वाले वैजितान और बृहन्नर उत्पन्न हुए थे ॥१५६॥ विन्द और अनुविन्द अस्त में उत्पन्न होने वाले अर्षात् सबसे छोटे सुमहान् बल वाले दो भाई थे । श्रुतधवा में चैद्य शिशुपाल हुआ था ॥१५७॥ यह राजपुत्र दमघोष का विख्यात पौरव वाला पुत्र था जो पहिले शत्रुओं का मर्दन करने वाला दशग्रीव रावण हुआ था ॥१५८॥

यदुश्रवानुजस्तस्य रुक्मन्योऽनुजस्तथा ।

पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गना ॥१५९॥

पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा ।

तथैव भद्रा वंशाखी देवकी सप्तमी तथा ॥१६०॥

सुगन्धर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके ।

रोहिणी पौरवी चैव वात्मीकस्यात्मजाभवत् ॥१६१॥

ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयितानकदुन्दुभे ।

ज्येष्ठ लेभे सुत राम सारण निषव तथा ॥१६२॥

दुर्द्धम दमन शुभ्र पिण्डारवकुशीतकी ।

चित्रा नाम कुमारीच रोहिण्यष्टौ व्यजामत ॥१६३॥

पौत्री रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निश्चितोत्सृक् ।

पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशु सत्यघृतिस्तथा ॥१६४

मन्दवाह्योऽथ रामाणगिरिकी गिर एव च ।

शुक्लगुल्मेति भुत्मश्च दरिद्रान्तक एव च ॥१६५

कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निबोधत ।

अचिध्मती मुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ॥१६६

तथा शतवला चैव सारणस्य मुतास्त्विमा ।

भद्रश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविघ्नस्तथैव च ॥१६७

भद्राबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च ।

सुपार्श्वक कीर्त्तिमाश्च रोहिताश्वश्च भद्रज ॥१६८

दुर्मन्दश्चाभिभूतश्च रोहिण्या कुलजा स्मृता ।

नन्दोपनन्दी मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथाचल ॥१६९

विजोपचित्रे काये च स्थित पुष्टिरथापर ।

मदिराया मुता ह्येते सुदेवोऽथ विजजिरे ॥१७०

उमका अनुज यदुधवा या तथा अनुज रुद्रकन्या हृषा था । वसुदेव की
घर अङ्ग वाली तरह परिचर्या थी ॥११६॥ उन पत्नियों के नाम इस प्रकार हैं—
पौरवी—रोहिणी और अन्य अमरा तथा मदिरा थी । उसी प्रकार स भद्रा—
वैशाखी—सातवी देवकी थी ॥१६०॥ मुगम्पी—वनराजो और सा अन्य परिचारि
काये थी । राहिणी और पौरवी वाल्मीकि की आत्मजा थी ॥१६१॥ आनक
बुन्दुभि की ज्येष्ठ परनी महभाग वाली दयिता थी । उसने ज्येष्ठ पुत्र राम को
तथा सारण और निष्य को प्राप्त किया था ॥१६२॥ दुर्मन्द—दमन—धुम्र—पिण्डा-
रक और कुलीनक और कुमारीचित्रा का इस तरह रोहिणी ने आठ को उत्पन्न
किया था ॥१६३॥ राम के दो पौत्र प्रसिद्ध निश्चित और उत्सुक नाम देने
उत्पन्न हुए थे । पार्श्वी—पार्श्वनन्दी—शिशु सत्यघृति—मन्दवाह्य—रामाण—गिरिक
और गिर—शुक्लगुल्मा—और भुत्म दरिद्रान्तक ये पुत्र तथा पञ्चाद्य कुमारियाँ भी
उत्पन्न हुई थी जिनको नाम से समझ लो । अचिध्मती—मुनन्दा—सुरसा—सुवचा
तथा शतवला ये सारण की पुत्रियाँ थी । भद्राश्च—भद्रगुप्ति—तथा भद्रविघ्न—भद्र-

धातु-भद्ररथ-मद्रवल्ग-सुपाश्व-नीतिमान् धीर रोहिताश्व धीर भद्रज-दुन्द-
 और अभिभूत य सब रोहिणी के कुमज बहे गये हैं । नन्द-उपनन्द-मित्र-कुमि-
 मित्र-तथा यवस-वित्रा और उपवित्रा दो कन्यायें-स्थित और दूमरा पुष्टि य
 पुत्र मरिरा के उत्पन्न हुए थे इतने अनन्तर सुदृढ हुआ था ॥१६४ १६५-१६६-
 ॥१६७-१६८-१६९-१७०॥

उपविम्बोऽय विम्बश्च सत्त्वदन्तमहौजसी ।

चत्वार एते विस्थाता भद्रा पुत्रा महाबलाः ॥१७१

वंदाप्या समदाच्छीरि पुत्र वौशिकमुत्तमम् ।

देवक्या जज्ञिरे धीरि सुपेण कीर्तिमानपि ॥१७२

तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम ।

पष्ठो भद्रविदेवश्च षष्ठ सर्वाङ्गधान तान् ॥१७३

अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सबभूव ह ।

लोक नाथः पुनर्विष्णु पूर्वकृष्ण प्रजापतिः ॥१७४

अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी ।

कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्यास्थाता वृष्णिनन्दिनी ॥१७५

सुभद्राया रथी पार्थादभिभन्युरजापत ।

बभूव देवस्य भार्यामु महाभागानु सप्तसु ।

ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तानिबोधत ॥१७६

अताञ्छ सह देवाया धूरो जज्ञम्भयासह ।

शाङ्गदेवाजन्तम्यु शीरी जज्ञ कुलोद्बहम् ॥१७७

उपसङ्ग वसुञ्चापि तनयौ देवरक्षितौ ।

एव दश सुतास्तस्य कसस्तानप्यघातयत् ॥१७८

उपविम्ब-विम्ब-सत्त्वदन्त-महोजा ये चार पुत्र जो भद्रान् बल वाले थे

के मुन कहे गये थे ॥१७१॥ वंदाप्यो भ समद से धीरनि ने उत्तम वौशिक

को उत्पन्न किया था । देवकी म धीरि-सुपेण-नीतिमान्-तदय-भद्रसेन-

३- पौववा तथा छटा भद्रविदेव था । कस न उन सभी पुत्रों को मार दिया

था ॥१७२ १७३॥ इतक अनन्तर उस अवस्था म आयुष्मान् हुआ था । लोक-

नाय-फिर विष्णु-पूर्व कृष्ण और प्रजापति हुए ॥१७४॥ पीछे उत्पन्न होने वाली कृष्णा-सुभद्रा-भद्रभाषिणी-कृष्णा-सुभद्रा वे फिर व्याख्यात कृष्णि नन्दिनी थी ॥१७५॥ सुभद्रा मे पार्य (अर्जुन) से रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था । वसुदेवकी महान् भाग वाली सात भार्याओं मे जो पुत्र उत्पन्न हुए वे उन्हें अब नाम से सम्बोधित लो ॥१७६॥ इसलिये इसके सहदेवा मे शूर प्रभयाक्षल उत्पन्न हुआ था । शोरी ने कुल का उद्बह करने छाङ्गदेवाजनन्तम्बु को जन्म दिया था ॥१७७॥ उपसङ्ग और वसु भी दो तनय (पुत्र) थे जो देवों के द्वारा रक्षित हुए थे । इन प्रकार से उसक दश पुत्र थे । कम व उनकी भी भार गिराया ॥१७८॥

विजय रोचनश्चैव षट्मान तथैव च ।

एतान् सर्वान् महाभागानुपदेवा व्यजायत ॥१७९॥

स्वगाह्व महात्माग वृर देवी रजाजायत ।

आगाही च स्वसा चैव सुरुगा शिशिरायिणी ॥१८०॥

सप्तम देवकीपुत्र सुनासा सुपुत्रे भुवम् ।

शवेपरा महाभाग सङ्ग्राम चित्र योधितम् ॥१८१॥

श्राद्धदेव पुरा येन वने विरचिता द्विजा ।

शैव्यायामददच्छीरिः पुत्र कौशिकमम्ययम् ॥१८२॥

मुगन्धी वनराजो च शीरेरास्ता परिग्रह ।

पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजो हि तो ।

तयो राजाऽभवत् पुण्ड्रः कपिलम्बु वन ययो ॥१८३॥

तस्या ममभवद्गीरः वसुदेवात्मजो वनी ।

रात्रा नाम निवातोऽगो प्रथम स धनुर्द्धरः ॥१८४॥

विद्यातो देवरातस्य महाभाग सुनाऽभवत् ।

पण्डिताना मत प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम् ॥१८५॥

अस्मक्या लब्धे पुत्रमनार्हति यमस्त्विनम् ।

निवर्त शक्रशुघ्न श्राद्धदेव महाबलम् ॥१८६॥

उपदेवा ने विजय-रोचन-षट्मान् इन सातों महान् भाग वाली

वाहु-भद्ररथ-भद्रवल्ग-सुपाश्व-कीर्तिमान् और रोहिताश्व और भद्रज-दुर्म-
 और अभिभूत ये सब रोहिणी ने कुनज बड़े गये हैं । मन्द-उपमन्द-मित्र-कुमि-
 मित्र-तथा यचल-वित्रा और उपवित्रा दो कन्यायें-स्थित और दूमरा पुष्टि ये
 पुत्र मदिरा ने उत्पन्न हुए थे इसके अनन्तर सुदव हुआ था ॥१६४-१६५-१६६-
 ॥१६७-१६८-१६९-१७०॥

उपविम्बोऽथ विम्बश्च सत्त्वदन्तमहोजसौ ।

चत्वार एते विस्याता भद्रापुत्रा महावलाः ॥१७१

वंशाख्या समदाच्छीरि पुत्र कौशिकमुत्तमम् ।

देवक्या जज्ञिरे शौरि सुपेण कीर्तिमानपि ॥१७२

तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चम ।

पद्मो भद्रविदेकश्च कसः सर्वाञ्जघान तान् ॥१७३

अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् सबभूव ह ।

लोक नाथः पुनर्विष्णु पूर्वकृष्ण प्रजापतिः ॥१७४

अनुजाताऽभवत् कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी ।

कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्टिर्नन्दिनी ॥१७५

सुभद्राया रथी पार्यादभिमन्थुरजायत ।

वसुदेवस्य भार्यामु महाभागासु सप्तमु ।

ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तास्त्रिवोधत ॥१७६

अताऽस्य सह देवाया दूरो जज्ञेभ्यासख ।

शाङ्गदेवाजनत्तम्बु शीरी जज्ञे कुलोद्दहम् ॥१७७

उपसङ्ग वसुश्चापि तनयो देवरक्षितौ ।

एव दश सुतास्तस्य कसस्तानप्यघातयत् ॥१७८

उपविम्ब-विम्ब-सत्त्वदन्त-महोजा य चार पुत्र जो महान् बल वाले थे
 के सुत कहे गये थे ॥१७१॥ वंशाखी ने समद से शौरि ने उत्तम कौशिक
 को उत्पन्न किया था । देवकी ग शौरि-सुपेण-कीर्तिमान्-तदय-भद्रसेन-
 पाँचवाँ तथा छठा भद्रविदेक था । कस ने उन सभी पुत्रों को मार दिया
 ॥१७२ १७३॥ इसके अनन्तर उस अवस्था में आयुष्मान् हुआ था । लोक-

देवयया वसुदेवेन तपसा पुण्डरेक्षणम् ।

चतुर्बाहुं स विज्ञायो दिव्यरूपं त्रियान्वित ॥१६३॥

प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागतः ।

अव्यक्तोऽव्यक्तनिर्झरश्च स एव भगवान् प्रभुः ॥ १६४ ॥

क्योंकि ऐसा श्रुत है कि व्याद्धदेव निषध के पहिले हुमा था । महान् धीप वाला एकमव्य निषाणे के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१६३॥ विना सन्तति वाले गरुडूप ने लिये सत्तुष्ट कृष्ण ७ दोनों पुत्र दे दिये थे । ये दोनों चार देणु और माध्व थे जो कृतात्स एव धम्म लक्षण वाले थे ॥१६४॥ सन्तिज और तनिमात वस्तावनि कनक व अपने दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र होने के लिए दे दिया था और सौमि ने वीर गीरि और कौगिक पुत्र का दे दिया था ॥१६६॥ तथा—कोपनु विरजा—याम और मृज्जिम हुए लमन इयाम सन्तति हीन था सो यह इयामक धम म चला गया था । भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ उनसे राजपि होने का पद प्राप्त कर लिया था ॥१६७॥ जो इस कृष्ण के जन्म का नियत प्रत जाना होते हुए पन्ता है और किसी बाह्यण को हमे श्रवण कराता है वह महान् सुख को प्राप्त किया करता है ॥१६९॥ महान् तेज वाले देवों के भी देव प्रजावति कृष्ण पहिले विहार करने के लिय प्रभु नारायण ने मनुष्या म जन्म ग्रहण किया था ॥१६२॥ वसुदेव स देवकी ने तप के द्वारा पुण्डर के समान मुग्ध नेत्रों वाला—धी से अर्चित—चार भुजावा स पुक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञम है ॥१६३॥ प्रकाश योगी भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप म प्राप्त होगये थे । वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त हैं और अव्यक्त चिह्नों म स्थित है मानुष रूप म प्राप्त थे ॥१६४॥

नारायणा यतश्चक्रं प्रभवत्प्राणयो हि स ।

देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्पद्मनाभः ॥१६५॥

यामृज्जिवादिपुरुष पुरा चक्रं प्रजापतिम् ।

अदितेरपि पुत्रत्वमत्ययादवनन्दनम् ।

देवा विष्णुरिति ख्यातः सत्रादवरजाभवत् ॥१६६॥

उत्पन्न किया था ॥१७६॥ वृकदेवी ने महान् भ्राता वाले स्वर्गाह्व को उत्पन्न किया था । भ्राताही एक स्वसा भी थी जो सुन्दर रूप वाली शिशिरावली थी ॥१८०॥ मुनासा ने सानवें देवकी के पुत्र को भुव को प्रसूत किया था । गवेपरा महाभाग और सशाम मे चित्रयोधी और आद्धदेव को उत्पन्न किया था जिसने कि पहिले वन मे छिज बनाये थे । शँख्या मे शौरि ने वय्यय कौशिक पुत्र को दिया था ॥१८१-१८२॥ सुगन्धि और वनराजी मे शौरि का परिग्रह था । पुण्ड्र और कपिल ये दो वसुदेव के पुत्र थे । उन दोनों मे पुण्ड्र तो राजा हुआ था और कपिल वन मे चला गया था ॥१८३॥ उसमे थीर वसुदेव का पुत्र हुआ था जो बहुत बल बाला था । यह निषाद नाम वाला राजा था जो प्रथम धनु धर हुमा था ॥१८४॥ देवरात का महाभाग विक्ष्यात पुत्र हुआ था । देवध्व म समुद्रव वाला परिहृतो का मन कहते हैं ॥१८५॥ विवत ने अस्मकी म मना दृष्टि-वर्णस्विनी-शक्र शत्रुघो के नायक एव महा बलवान् आद्धदेव पुत्र को प्राप्त किया था ॥१८६॥

अजायत आद्धदेवो निषादादिर्यत धृत ।

एकलव्यो महावीर्यो निषादं परिर्वाद्धत ॥१८७

गण्डूपायानपत्याय वृष्णस्तुष्टोऽददत् सुतौ ।

चाददेष्णश्च साम्बश्च कृताम्बो रास्तलक्ष्णौ ॥१८८

तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपुत्रो वनवस्य तु ।

वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेव प्रतापवान् ।

सौतिदंढी सुत वीर शौरि कौशिकमेव च ॥१८९

तपाश्च कोघनु श्वैव विरजा श्यामसृञ्जिमी ।

भनपत्योऽभवच्छ्याम श्यामवस्तु वन ययौ ।

जुगुप्समानो भोजत्व राजपित्वमवाप्नुयान् ॥१९०

य इद जन्म कृष्णस्य पठते नियतव्रत ।

श्रावयेद्भ्रातृणश्चापि मुमहत्मुलमाप्नुयान् ॥१९१

देवदेवो महातेजा पूर्व्यं कृष्णं प्रजानतिः ।

विहारार्यं मनुजेषु जज्ञे नारायणं प्रभु ॥१९२

देवक्या वसुदेवेन तपसा पुण्यरेक्षण ।

चतुर्बाहुः स विज्ञेयो दिव्यरूपः श्रियान्वितः ॥१६३॥

प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागतः ।

अव्यक्तोऽव्यक्तलिङ्गस्वः स एव भगवान् प्रभु ॥ १६४ ॥

क्योंकि ऐसा श्रुत है कि धातृदेव निषध के पहिले हुआ था । महान् वीर्य वाला एकलव्य निषादों के द्वारा परिवर्द्धित किया गया था ॥१६३॥ विना मन्त्रनिदाने गह्ररूप के लिये सन्नुष्ट कृष्ण न दोनों पुत्र दे दिये थे । ये दोनों चार देष्ण और माम्ब थे जो कुनास्र एवं मन्त्र मक्षण वाले थे ॥१६४॥ तन्तिज और तन्निमाल वस्तावनि बनव के अपने दो पुत्रों को प्रतापवान् वसुदेव ने पुत्र हीन के लिए दे दिया था और सीति ने बीर औरि और कौणिक पुत्र को दे दिया था ॥१६५॥ तपा-कोननु बिरजा-दयाम और मृज्जिम हुए उनमें दयाम मन्त्रनि हीन था जो वह दयामन बन म बनना गया था । भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ उसने राजपि होन का पद प्राप्त कर लिया था ॥१६६॥ जो इस कृष्ण के जन्म को निवृत्त कर वाला होने हुए पड़ना है और किसी ब्राह्मण को इसे स्वरूप करता है वह महान् मुन को प्राप्त किया करता है ॥१६७॥ महान् त्रेत्र वाले देवों के भी देव प्रजापति कृष्ण पट्टि विहार करने के लिये प्रभु नारायण ने मनुष्यों में जन्म ग्रहण किया था ॥१६८॥ वसुदेव से देवकी में तप के द्वारा पुण्यर के समान सुन्दर नन्नों वाला—धी म अन्विन—चार भुजाओं में युक्त तथा दिव्य रूपधारी वह विज्ञेय है ॥१६९॥ प्रकाश, योगी, भगवान् कृष्ण मनुष्य के स्वरूप में प्राप्त होगये थे । वह प्रभु भगवान् ही जो अव्यक्त है और अव्यक्त वित्तों में दिव्य है, मानुष हर में प्राप्त थे ॥१७०॥

नारायणो यन्मन्त्रक प्रभव चाव्ययो हि स ।

देवो नारायणा भूत्वा हरिरासीत्ननानन ॥१७१॥

योऽमृतवादिपुरुष पुग चक्रे प्रजापतिम् ।

अदिनेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ।

देवो विष्णुरिति ग्यातः शत्रादवरजोऽभवत् ॥१७२॥

प्रसादज यस्य विभोरदित्या पुत्रकारणम् ।
 यथार्थं सुरशत्रूणा दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१६७
 ययातिवशजस्याय वसुदेवस्य घीमत ।
 कुल पुण्य यत कर्म भेजे नारायण प्रभु ॥१६८
 सागरा समवस्यन्त चेलुश्च घरणीघरा ।
 जग्बलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने ॥१६९
 शिवाश्च प्रवबुर्वाता प्रशान्तिमभवद्रज ।
 ज्योतीष्यम्यधिक रेजुर्जायमाने जनार्दने ॥ २००
 अभिजिह्वा नक्षत्र जयन्ती नाम शर्वरी ।
 मुहूर्त्तो विजयो नाम यत्र जानो जनार्दन ॥२०१
 अभ्यक्त क्षाश्वत कृष्णो हरिर्नारायण प्रभु ।
 जायते स्मैव भगवान् नयनैर्मोहयन् प्रजा ॥२०२

क्योंकि अथवा नारायण ने प्रभव किया अर्थात् जन्म ग्रहण किया था
 देवनारायण होकर सनातन हरि हुए थे ॥१६५॥ जिसने पहिले अग्नि पुण्य
 प्रजापति का मृजन किया था वह यादव नन्दन अदिति के भी पुत्र के स्वरूप को
 प्राप्त कर देव विष्णु नाम से प्रसिद्ध हुए थे और इंद्र के छोटे भाई बन गये थे
 ॥१६६॥ जिस विष्णु के अदिति के पुत्र होने का कारण केवल प्रसाद ही है ।
 जोकि देवों के शत्रु दैत्य-दानव और राक्षसों के वध करने के लिये ही हुआ था
 ॥१६७॥ राजा ययाति के वध में जन्म लेने वाले धीमान् वसुदेव का कुल बहुत
 पुण्य शाली है और शक्ति है जिसमें कि प्रभु नारायण ने जन्म ग्रहण कर जन्म
 किया था ॥१६८॥ भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होने के समय में समस्त सागर
 क्षयमान हागये थे और सब पवन बलायमान हागये थे और चारों ओर अग्नि-
 ज्वलित हाग्य थे ॥१६९॥ कल्याण कर वायु घटन करन लगी रज ने
 १ । प्राप्त करली थी भगवान् जनार्दन के जायमान होने पर ज्योतिर्वा अत्य-
 रूप से प्रकाश वाली होकर शोभित हो रही थी ॥२००॥ उन समय में
 अभिजिन् नाम वाला नक्षत्र था—जयन्ती नाम की शर्वरी थी और विजय नाम
 वाला मुहूर्त्त था जिस समय में भगवान् जनार्दन ने अपना जन्म ग्रहण किया

था ॥२०१॥ अश्वत्थ-शाश्वत्-प्रभु नारायण हरि श्रीकृष्ण भगवान् नेत्रो वे
द्वारा प्रवा को मुख करते हुए उत्पन्न हुए थे ॥२०२॥

आकाशात् पुष्पवृक्षीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वर ।

गोभिर्मङ्गलयुक्तामि स्तुवन्नो मधुमूदनम् ।

महर्षय सगन्धर्वा उपतस्थु सहस्रश ॥२०३॥

वमुदेवस्तु त रात्रौ जात पुत्रमघातजम् ।

श्रीवत्सलक्षण दृष्ट्वा दिवि दिव्यं सुलक्षणं ।

उवाच वमुदेव स्व रूप सहार वं प्रभो ॥२०४॥

भीताऽह वसतस्तात एतदेव श्रवाम्यहम् ।

मम पुना हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदशना ॥२०५॥

वमुदेववच श्रुत्वा रूप स हतवान् प्रभु ।

अनुज्ञात पिता स्वन नन्दगापगृह गत ।

उग्रसेनमते तिष्ठन् यशोदाय तदा ददौ ॥२०६॥

तुल्यकालन्तु गर्भिण्या यशोदा देवकी तथा ।

यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपते ॥२०७॥

त्रिदशेश्वरो ने आकाश म पुष्पो की वर्षा की थी श्री भगवान् मधु-
मूदन की मङ्गलमयी वाणियो क द्वारा स्तुति की थी । उस समय सहस्रा ही
महर्षिगण-गन्धर्व साज वही पर स्तवन गान करन के लिये उपस्थित होगये थे
॥२०३॥ वमुदेव ने तो रात्रि के समय म भगवान् अघोराज को पुत्र के रूप म
वत्पन्न हुए देवराज ओकि श्रीवत्स के चिह्न म युक्त और समस्त अन्य दिव्य
लक्षणों में भवित थे वमुदेवजी न कहा—ह प्रभो । इन समय आप हम अपने
स्वरूप का सहस्रश वर्णित ॥२०४॥ हे तात । मैं राजा कम से भयभीत हो रहा हूँ
यही कारण है कि मैं इस समय आपम यज्ञ निवेदन कर रहा हूँ । इस काम म
अद्भुत दर्शन वादे मेरे आपम ज्येष्ठ पुत्रो को मार जाता है ॥२०५॥ वमुदेव के
इम विनिवदित वचन गो मुनिकर भगवान् ने अपने लम स्वरूप का सवराण कर
लिया था । उनसे द्वारा पिता वमुदेव अनुज्ञात होकर इनको लेकर नन्दगोप के
गृह पर चला गये थे । उपरान्त क मत में रहत हुए उस समय उन्हें यशोदा के

लिये दे दिया था ॥२०६॥ यगोन् और देवकी दोनों ही एक ही समय में गर्भिणी हुई थी । वह यगोदा गापति नन्द की पत्नी थी ॥२०७॥

यामेव रजनी कृष्णो जज्ञ वृष्णि कुलप्रभु ।

तामेव रजनी कन्या यशोदापि व्यजायत ॥२०८॥

त जात रक्षमाणस्तु वसुदेवा महायशा ।

प्रादात् पुत्र यशादाय कन्या तु जगृहे स्वयम् ॥२०९॥

दत्त्वेन नन्दगापस्य रक्ष मामिति चावधीत् ।

सुतस्तं सव्वक्त्याणो यादवाना भविष्यति ।

अथ स गर्भो देवक्या अस्मत्त्वत्तेशान् हनिष्यति ॥२१०॥

उग्रसनात्मजायाञ्च कन्यामानकदुन्दुभे ।

निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा ॥२११॥

स्वसाया तनय कसो जात नवावधारयत् ।

अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्समज मुदाविवत् ॥२१२॥

हता वै या यदा यया जपत्येव वृथामिति ।

कया सा ववृधे तन वृष्णिसयनि पूजिता ॥२१३॥

पुत्रवत्परिपाल्यन्ता देवा देवान् यथा तदा ।

तामेव विधिनोत्पन्नमाहु कया प्रजापतिम् ॥२१४॥

एकादशा तु जज्ञ व रक्षार्थं केशवस्य ह ।

ता वै सर्वे सुमनस पूजयिष्यन्ति यादवा ।

देवदेवो दिव्यवपु कृष्ण सरक्षिनोऽग्नया ॥२१५॥

वृष्णि कुल के स्वामी जिस रात्रि में उत्पन्न हुए थे उसी रात में यगोन् ने भी एक कन्या को जन्म दिया था ॥२०८॥ उन समुत्पन्न श्रीकृष्ण बालक की रक्षा करते हुए वसुदेवजी ने जिनका महान् यग था वह बाल वृष्ण पुत्र तो श्री यगोन् को द दिया था और उस यगोन् के गर्भ में प्रसूत कन्या को स्वयं ग्रहण कर लिया था । २०९॥ इस क्षणकृष्ण बालक को नन्दगोप को देकर वसुदेवजी ने कहा—मरी रणा करिये । तुम्हारा यह पुत्र ममम्न वक्त्याणो क करने वाला है जोरि मान्य। का मङ्गल करनक्षत्रा हाया यह देवकी का यह पुत्र है जो

ममस्तु हमारे बलेशो का हनन कर देया ॥२१०॥ और उग्रसेन की आत्मजा देवकी की आनक दुन्दुभि ने वह बन्धा लाकर दे दी थी और उस समय में वह बन्धा शुभ लक्षण वाली उत्पन्न हुई है—ऐसा आत करवाया गया था ॥२११॥ कस ने अपनी बहिन के पुत्र हुआ है—यह निश्चय नहीं किया था । हमके अनन्तर उस दुष्टात्मा ने मुदान्वित होते हुए उसको भी उन्मृष्ट कर दिया था । जिस समय में जो बन्धा हन हुई यह कृपा बुद्धि वाला मन में विचार करता है कि कृष्ण के घर में पूजित यह कन्या बड़ी हुई है ॥२१२-२१३॥ उस समय देवो की भक्ति देव पुत्र के समान परिपालन करते हुए विधि के द्वारा उत्पन्न कन्या को प्रजापति में धोले ॥२१४॥ यह ग्यारहवीं केशव की रक्षा के लिये उत्पन्न हुई है । उसको फिर सभी सुमन्त यादव पूजेंगे कि देवो के देव कृष्ण हमके द्वारा रक्षित हुए हैं ॥२१५॥

किमर्धं वसुदेवस्य भोजं कमो नराधिप ।

जघान पुत्रान् बालान् वै तस्मा व्यस्यतुमर्हमि ॥२१६॥

शृणुष्व वै यथा कस पुत्रानानकदुन्दुभे ।

जाताञ्जाताञ्छिन्नान् सर्वान् निष्पिपेय कृत्यामति ॥२१७॥

भयाद्यथा महाबाहुर्जात कृष्णा विवासित ।

तथा च गोपु गोविन्द सवृद्ध पुरुषोत्तम ॥२१८॥

उक्त हि विल देवक्या वसुदेवस्य धीमत ।

सारथ्य कृतवान् कसो युवराजस्तदाऽभवत् ॥२१९॥

ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्विद्या भूतस्य कम्पचित् ।

कसो यथा सदा भीत पुष्पला लोकसाक्षिणी ॥२२०॥

यामेता वहसे कस रथेन परकारणात् ।

अस्या य सप्तमो गर्भं स ते मृत्युर्भविष्यति ॥२२१॥

ता श्रत्वा व्यथितो वाणी तदा कसो कृत्यामति ।

निष्कम्प्य सङ्ग ता कन्या हन्तुवामोऽभवत्तदा ॥२२२॥

तमुवाच महाबाहुर्वसुदेव प्रतापवान् ।

उग्रमेनात्मजं कम सौहृदात्प्रण येन च ॥२२३॥

ऋषियो ने कहा—नरो के स्वामी भोजन करने के लिये यमुदेव के बामर पक्षी को मार डाला था—यह बात पूरी तरह से व्याख्या करके हम गममाने के योग्य होते हैं ॥२१६॥ श्री मूनजी बोले—मुनी, जिस तरह मे वृषा युद्ध वाले जन ने आज दुःख के पैदा होने वाले सभी गिण्डो को निष्पृष्ट कर दिया था ॥२१७॥ जिस तरह भय से महाबाहु कृष्ण उत्पन्न होने हुए ही विवाहित कर दिये गये थे अर्थात् अन्य स्थान गोपुत्र म मंत्र दिये गये थे । और उगी प्रकार से गोविन्द पुरुषोत्तम वहाँ गोघो में सज्जित हुए थे ॥२१८॥ देखी और धीमात्र यमुदेव के यह जन सारथि का काम करता था उन समय म यह युवराज ही था—ऐसा कहा गया है ॥२१९॥ उन समय म किसी प्राणी की आराग म दिग्ग बाणी हुई थी जिसने मदा भयभीत रहा करता था क्योंकि वह समस्त लोक की माधी पुष्पल बाणी हुई थी ॥२२०॥ आकाश म होन वाली बाणी यह थी हे कम ! पर कारण मे जिसको सूर्य के द्वारा बहन कर रहा है अर्थात् रथ मे बिठा कर ले जा रहा है इसका ओ सातवाँ गर्भ होगा वह तरा मृदु होगा अर्थात् नही तुम्हें मारने वाला होगा ॥२२१॥ उन आकाश मे होने वाली दिग्ग बाणी को सुनकर वह कम बहुत ही व्यथित हुआ था क्योंकि वह वृषा युद्ध वाला उन समय मे था । उसने अपना स्वर्ण निशाल कर उन समय मे उनके मार देने की इच्छा की थी ॥२२२॥ उन समय म महाबाहु प्रतापी यमुदेव ने उसने कहा और उन उग्रसेन के पुत्र कम से बड़े ही सींहाई तथा प्रणय का प्रदर्शन करते हुए निवेदन किया था ॥२२३॥

न स्त्रिय क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हन्ति कश्चन ।

उपाय परिदृष्टोऽथ मया यादवनन्दन ॥२२४॥

योग्या भविष्यति गर्भं सप्तमं पृथिवी पते ।

तमहन्ते प्रयच्छामि तत्र कुर्या यथाक्रमम् ॥२२५॥

त्व त्विदानी यथेष्टत्व वर्तेया भूरिदक्षिण ।

सर्वान्म्यास्तु वै गर्भान् सत्यं नेष्यामि ते वनम् ॥२२६॥

एव नरश्रेष्ठ बाणी नरामिध्या भविष्यति ।

एवमुक्ताऽनुनीतः स जग्राह तनयास्तदा ॥२२७॥

वसुदेवश्च ता भार्यामवाप्य मुदितोऽभवत् ।

कसश्चास्यावधीत् पुनान् पापकर्मणा वृथामतिः ॥२२८॥

क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी ।

नन्दगोपस्तु कस्त्वेव यशोदा च महायज्ञा ।

यो विष्णु जनयामास या चैन चाम्यवर्द्धयत् ॥२२९॥

हे यादव नन्दन ! कोई भी क्षत्रिय कभी भी किसी स्त्री को मार देने के योग्य नहीं होता है । इस भय के जोकि तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होगया है मैंने उसका निवारण का उपाय भली भाँति देख लिया है ॥२२४॥ हे पृथिवी के पति ! इसका जो सातवां गर्भ होगा उसको मैं आपको देदूँगा । उसमें आप यथाक्रम कर ॥२२५॥ हे भूरि दक्षिण ! इस समय आप जैसा चाहिए वैसा ही व्यवहार करे । इसके सभी गर्भों को आपके वश में प्राप्त कर दूँगा ॥२२६॥ हे नर श्रेष्ठ ! इस प्रकार से यह वाली मिथ्या नहीं होगी । इस तरह अनुनय किये हुए उसने सब पुत्रों को ग्रहण कर लिया था ॥२२७॥ और वसुदेव तो उस अपनी भार्या को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए । और कम ने जाकि पाप कर्म करने वाला तथा वृथा बुद्धि में युक्त था, इनके पुत्रों का मार डाला था ॥२२८॥ ऋषिदा ने कहा—यह वसुदेव कौन था और यशस्विनी देवकी कौन थी, नन्दगोप कौन था तथा महान् यशोदा कौन थी ? जिनने विष्णु को उत्पन्न किया था और जिसने इनका पूरा रूप में अभिवर्द्धन किया था ॥२२९॥

पुरुषाः कश्यपस्यामनादित्यास्तु स्निषाम्स्तथा ।

अथ कामान् महाबाहुर्देवकया समवर्द्धयत् ॥२३०॥

अथर्वत् स मही देव प्रविष्टो मानुरो तनुम् ।

मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥२३१॥

नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृत्तिबुधे स्वयम् ।

वर्तु धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥२३२॥

आरुता रुक्मिणी वन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।

सात्राजिनी मत्स्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥२३३॥

क्षत्रियो ने कहा—नरो के स्वाधी भोजन ने तिम्र निये यमुदेव के पासक पुत्रों की मार डाला था—यह धाप पूरी तरह से दगाव्या करके हमें समझाने के योग्य होने हैं ॥२१६॥ थी मूनजी बोले—मुनो, त्रिम तरह से कृपा बुद्धि वालें का ने आनक दुन्दुभि के पैदा होने वाले सभी शिनुओं की निष्पिष्ट कर दिया था ॥२१७॥ त्रिम तरह भय में महाबाहु कृष्ण उत्पन्न होने हुए ही विवाहित कर दिये गये थे धर्मान् अन्य स्थान गोकुल में मंत्र दिये गये थे । और उसी प्रपार में गोविन्द पुरुषोत्तम वहाँ मौयो में मंडित हुए थे ॥२१८॥ देखो और धीमान् यमुदेव के यह कम मारवि का काम करना था उस समय में यह युवराज ही था—ऐसा कहा गया है ॥२१९॥ उस समय में किसी प्राणी की आराधन में दिव्य वाली हुई थी त्रिमने मन्त्र भवभीन रहा करता था क्योंकि वह समस्त लोक की साथी पुष्पल वाली हुई थी ॥२२०॥ आराधन में होने वाली वाली यह थी हे कम । पर पारण में त्रिमको तू रथ के द्वारा बहन कर रहा है धर्मान् रथ में त्रिडा कर ले जा रहा है इसका जो मानवी गर्भ होगा वह तेरा मृगु होगा अर्थात् वही तुझे मारने वाला होगा ॥२२१॥ उस आराधन में होने वाली दिव्य वाली की मुनकर वह कम बहन ही स्पष्टित हुआ था क्योंकि वह कृपा बुद्धि वाला उस समय में था । उसने अपना खड्ग निवाल कर उस समय में उसके मार देने की इच्छा की थी ॥२२२॥ उस समय में महाबाहु प्रभापी यमुदेव ने उसमें कहा और उस उपसेन के पुर कम में बड़े ही मौहार्द तथा प्रणय का प्रदर्शन करते हुए निवेदन किया था ॥२२३॥

न स्त्रिय क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हन्ति बभ्रव ।

उपाय परिदृष्टोऽथ मया यादवनन्दन ॥२२४॥

योऽप्या भविष्यति गर्भं सप्तमः पृथिवी पते ।

तमहन्ते प्रयच्छामि तत्र कुर्या यथाक्रमम् ॥२२५॥

त्व त्रिदानी यथेष्टत्वं वर्तेया भूरिदक्षिण ।

सर्वानस्यास्तु वै गर्भान् सत्यं नेष्यामि ते वशम् ॥२२६॥

एव नरश्चेष्ट वाणी नैगमिष्या भविष्यति ।

एवमुक्ताऽनुनीतः स जग्राह तनयास्तदा ॥२२७॥

वसुदेवश्च ता भार्यामप्राप्य मुदितोऽभवत् ।
 वसश्चास्यावधीत् पुत्रान् पापकर्मा वृथामतिः ॥२२८
 क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी ।
 नन्दगोपस्तु वस्त्वेष यशोदा च महायज्ञाः ।
 यो विष्णुः जनयामास या चैनं चाम्यपदं यत् ॥२२९

हे यादव नन्दन ! कोई भी दक्षिण वभी भी किमी स्त्री को मार देने के योग्य नहीं होता है । इस भय के जोकि तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होगया है मैंने उसके निवारण का उपाय भली-भाँति देख लिया है ॥२२४॥ हे पृथिवी के पनि ! इसका जो मातवां गर्भ होगा उसको मैं चापकी देदूँगा । उसमें आप पषाक्रम कर' ॥२२५॥ हे भूरि दक्षिण ! इस समय आप बैठा चाहिए बैसा ही व्यवहार करे । इसके सभी गर्भों को आपके वक्ष में प्राप्त कर दूँगा ॥२२६॥ हे नर श्रेष्ठ ! इस प्रकार मे यह बाणी मिथ्या नहीं होगी । इस तरह अनुनय किये हुए उसने सब पुत्रों को ग्रहण कर लिया था ॥२२७॥ और वसुदेव तो उस धरणी भार्या को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए । और कय ने जोकि पाप कर्म करने वाला तथा वृथा बुद्धि में युक्त था, इसके पुत्रों का मार डाला था ॥२२८॥ श्रुतियों ने कहा—यह वसुदेव कौन था और यशस्विनी देखती कौन थी, नन्दगोप कौन था तथा महान् यजनवाली यह यशोदा कौन थी ? जिनने विष्णु को उत्पन्न किया था और जिनने इनका पूरा रूप से अभिवर्द्धन किया था ॥२२९॥

पुरुषाः वदयपम्यामन्नादित्यास्तु स्त्रियास्तथा ।
 अथ कामान् महाबाहुर्देवक्या ममवर्द्धयत् ॥२३०
 अनन्तं स महो देव प्रविष्टो मानुषो तनुम् ।
 मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमाधवा ॥२३१
 नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृणिकुले स्वयम् ।
 कर्तुं धर्मव्यवस्थानममुराणां प्रणाशनम् ॥२३२
 आहता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।
 सान्नाजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥२३३

शंघ्या गुदेयी माद्री च मुनीना नाम चापरा ।

यानिन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवामिनी ॥२३४॥

एवमादीनि देवाना महत्याणि च षोडश ।

चतुर्दश तु ये प्रोक्ता गणाभ्याम्भरणा दिवि

विचिन्त्य देवैः शक्राण विनिष्ठास्त्रिदश प्रेषिताः ॥२३५॥

सूत्रज्ञो ने कहा—बदधन के पुरष थे श्रीर घनिनि की स्त्रियों थीं । हमने अनन्तर महाबाहु ने देवकी के बामो का तन्वधन किया था ॥२३०॥ योगात्मा उसने अपनी योगमाया से समस्त प्राणियों को मोहित करके हुए मानुष शरीर में प्रवेश करके उन देव ने भूमि में विचरण किया था ॥२३१॥ धर्म के तट हो जाने पर भगवान् विष्णु ने स्वयं वृद्धि कुल में उन समय जन्म लिया । वह जन्म प्रह्लाद धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा अमुरा का विनाश करने के लिये ही हुआ था ॥२३२॥ शिमगो कन्या का दाहरण किया गया था उस समय में नाना जिनकी गन्या तन्वाज्ञी की मरुभामा, जाम्बवती श्रीर रोहिणी साई गई थी ॥२३३॥ शंघ्या—गुदेयी—माद्री—मुनीना—जालिन्दी—मित्रविन्दा—लक्ष्मणा—जालवामिनी—एवमादि देवों की मोलह हजार थी । चौदह ठी दिवलीय में अनन्तरात्रों के गण कहे जाते थे, देवों के द्वारा श्रीर इन्द्र के द्वारा विशेष रूप से चिन्तन करने को विनिष्ठा थी वे यहाँ प्रेषित करदी गई थी ॥२३४-२३५॥

पत्न्यर्थं वामुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु ।

एता पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विथुता ॥२३६॥

प्रद्युम्नश्चारुदेवश्च सुदेवश्च शरभ स्तथा ।

चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचागस्तथाऽप्यर ॥२३७॥

चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्या कन्या चारुमती तथा ।

मानुर्भानुस्तथाक्षश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा ॥२३८॥

जराधकस्तथाश्रवणा भीमरिश्च जरन्धरा ।

चतस्रो जज्ञिरे तेषा स्वसारो गृहध्वजात् ॥२३९॥

मानुर्भीमरिका चैव ताथपर्णी जरन्धरा ।

सत्यभामाभुतानताञ्जाम्बवत्या प्रजा शृणु ॥२४०॥

भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैव च ।
 सप्तबाहुश्च विख्यात कन्या भद्रावती तथा ।
 सम्बोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुता ॥२४१॥
 सप्रामजिच्च घतजित् तथैव च सहस्रजित् ।
 एते पुत्रा मुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्तिता ॥२४२॥
 वृको वृकाद्वो वृकजिद्वृजिनो च तुराङ्गना ।
 मिश्रबाहु सुनीथश्च नाग्नजित्या प्रजास्तिवह ॥२४३॥

ये सब यहाँ राजाओं के भक्तों व वामुदेव की पत्नी बनने के लिये उत्पन्न हुई थी । ये महाद् भाग वाली पत्नियाँ विष्णुभक्त की प्रसिद्ध हुई थीं ॥२३६॥
 प्रद्युम्न—धारदेणु—मुदेणु—शरभ—चाद—चारुमद्र और चारविण्ड्य इतिमंगी मे पुत्र उत्पन्न हुए तथा एक चारुमती नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई थी । मानुर्मानु—अन्न—रोहित—मन्त्राय—जरान्धक—ताम्रवक्षा—भीमरि और जरन्धम ये सत्यभामा के पुत्र हुए थे और इनकी चार बहिनें गरुड्वज से उत्पन्न हुई थी जिनके नाम मानु—भीमरिका—ताम्रवर्णी और जरन्धमा थे—सत्यभामा के सुत तो बतला दिय गये हैं अब जाम्बवती के पुत्रों की व्यवस्था करो ॥२३७-२३८-२३९-२४०॥
 भद्र—भद्रगुप्त—भद्रविन्द्र—सप्तबाहु ये सब जाम्बवती के विख्यात पुत्र थे । भद्रावती कन्या थी जाकि सम्बोधनी—इन नाम से विख्यात जाम्बवती के जानने योग्य थे ॥२४१॥ सप्राम जित्—घतजित्—सहस्रजित् ये मुदेवी के पुत्र थे जोकि विष्वक्सेन के कहे गये हैं ॥२४२॥ वृक—वृकाद्व—वृकजित् और वृजिनी तुराङ्गना—मिश्रबाहु—सुनीथ ये नाग्नजिती की सम्पत्ति यहाँ पर हुई थी ॥२४३॥

एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत ।
 प्रयुतन्तु सभाख्यात वामुदेवस्य ये सुता ॥२४४॥
 असुतानि तथाष्टौ च शूरा रम्गविशारदा ।
 जनार्दनस्य वशो व कीर्तितोऽय यथातथम् ॥२४५॥
 बृहती नर्तकोन्नेयी मुनये सङ्गता तथा ।
 कन्या सा बृहदुच्छस्य शौनेयस्य महात्मनः ॥२४६॥

घनिष्ठश्च पञ्चते वशवीरा प्रवीतिता ।
 सप्तपंथ कुबेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा ॥२॥
 शालवी वदरश्चैव विद्वान् धन्वन्तरिस्तथा ।
 नन्दिनश्च महादेव शालङ्कायन उच्यते ।
 धादिदेवस्तदा जिष्णुरभिश्च सह दैवतं ॥३॥
 विष्णु विमर्षे सम्भूत स्मृता सम्भूतय कति ।
 भदिप्या कति यान्य तु प्रादुर्भावा महात्मन ॥४॥
 ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु विमर्षमिह जायते ।
 पुन पुनम्मनुष्येषु तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥५॥
 विस्तरेणैव सर्वाणि वर्णाणि रिपुधातिन ।
 श्रोतुमिच्छामहे सम्यग् देहै कृष्णस्य धीमत ॥
 वर्मणामानुष्यैश्च प्रादुर्भावाश्च ये प्रभो ।
 या चास्य प्रवृत्ति सूत ताश्चास्मान् वक्तुमहसि ॥७॥
 यथा स भगवान् विष्णु भुरेष्टवरिनिपूदन ।
 वसुदेवकुले धीमान् वामुदेवत्व मागत ॥८॥

मनुष्य की प्रवृत्ति वाले देवों को अब बतलाया जाता है उन की सर्वमानों को भली भाँति समझ लो । मङ्कपण्य—वामुदेव—प्रभुम्न—शाल्व और घनिष्ठ ये पाँच वशवीर कहे गये हैं । सप्तपि कुबेर—यक्ष—मणिवर—शालवी—वदर—विद्वान् धन्वन्तरि—नन्दिन—महादेव और शालङ्कायन कहे जाते हैं । उस समय इन देवों के साथ जिष्णु धादि देव थे ॥१ २ ३॥ ऋषिया के कहा—भगवान् विष्णु न किन प्रयोजन की सिद्धि के लिये जब बहण किया था और उनका कितन जमा बतार है तथा महान् आत्मा बाने विष्णु के अर्थ कितने प्रादुर्भाव भविष्य में होने वाले हैं ? ॥४॥ युगान्तो य ब्रह्मक्षेत्र म यहाँ किस कारण से अब लेत है

मनुष्या म बार बार जन्म मानवा से लिया करते है इसका क्या कारण
 यह पूछने वाले हमना सब बतलाइये ॥५॥ शत्रुओं के धात करने वाले
 , कृष्ण य शरीरों के द्वारा जो कम होते हैं उन सबको विस्तार के साथ
 लोग सुनना चाहते हैं ॥६॥ हे प्रभो ! उनके वर्मों की आनुपूर्वी—प्रादुर्भाव

और जो इनकी प्रवृत्ति है वह सब हे मूतजी ! हमको आप बताने की योग्य होने हैं ॥७॥ वह भगवान् गुरो म शत्रुओ के नाश करने वाले धीमान् विष्णु वसुदेव के कुन म वामुदेवत्व को कैसे प्राप्त हुए थे ? ॥८॥

अमरं मृत किं पुण्य पुण्यकृद्भिरलकृतम् ।

देवलोक समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतं ॥९॥

देवमानुषयोनेता भूभुव प्रसवो हरिः ।

किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेक्षयत् ॥१०॥

यश्चक्र वतंपत्येको मनुष्याणां मनोमयम् ।

मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृता वर ॥११॥

गोपायन यः कुरुते जगतां सार्वलौकिकम् ।

स कथं गा गतो विष्णुर्गोपमन्वकरोत्प्रभु ॥१२॥

महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह ।

योगमं स कथं गर्भे स्त्रियां भूचरया घृतं ॥१३॥

येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रीस्त्रिदशेप्सया ।

स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिदशप्रवरास्त्रय ॥१४॥

योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ।

लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥१५॥

यः पुराणे पुराणात्मा वाराहः कपुरास्थितः ।

वदो जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तम ॥१६॥

हे मूतजी ! पुराण करने वाले देवों से अलङ्कृत पुण्यश्रम दशनाद का त्याग करके यहाँ मनुष्य लाभ में आये थे अर्थात् विष्णु ने मनुष्यों में अवतार लिया था ॥९॥ भूभुव प्रसव हरि जो देव और मनुष्यों के मत्ता हैं उनसे किस निये अपने दिव्य आत्मा को मनुष्य रूप में सन्निविष्ट किया था ॥१०॥ जो एक मनुष्यों ने मनोमय चक्र को चलाता है उस चक्रभृता में परम श्रेष्ठ ने मनुष्य बुद्धि कैसे की थी ॥११॥ जो प्रभु जगत् को सार्व लौकिक गोपायन अर्थात् संरक्षण किया करता है वह प्रभु विष्णु किस निमित्त से भूमि में जाकर अर्थात् मानुषावतार लेकर गोप का अनुकरण करता था ? ॥१२॥ जो भूतो की आत्मा

महामुनी को बनाता है और धारण किया करता है श्रीगर्भ वह भूचरो के द्वारा गर्भ में बँसे धारण किया गया था ? ॥१३॥ देवों की इच्छा से त्रिसप्त तीन प्रदमो से अर्थात् तीन पैद में तीन लोको को जीतकर जगत् के त्रिवर्ग प्रभर तीन भाग स्थापित किया थे ॥१४॥ जो अन्न समय में तोयपूर्व शरीर बनाकर इस समस्त जगत् का पान कर लोक को दृश्य और अदृश्य मार्ग से एक मनुष्य के स्वरूप में कर देता था ॥१५॥ जो पुराण ने पुराण प्रारम्भ वाला है और वासुदेव के शरीर में स्थित हुआ था तथा सूरों में अष्ट ने वसुमती को जीत कर त्रिमने सूरों को देरी दी ॥१६॥

येन संह वपु कृत्वा द्विधा कृत्वा च यत्पुन ।
पूर्वदेवयो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हन्त ॥१७॥
य पुराह्मणलो भूत्वा भौर्व सवत्तको विभु ।
पातालस्थोऽर्णवगत पपो तोयमय हवि ॥१८॥
सहस्रचरण देव सहस्राक्ष सहस्रश ।
सहस्रशिरस देव यमाहुर्व युगे युगे ॥१९॥
नाम्नारण्या समुद्भूत यस्य पैतागह गृहम् ।
एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम् ॥२०॥
येन ते निहता दैत्या सग्राम तारकामये ।
सर्वदेवमय कृत्वा सर्वायुषधर वपु ॥२१॥
गण्डस्थेन चोत्सिक्त कालनेमिनिपातित ।
उत्तराक्षे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधे ।

य शेते आश्वत योगमास्थाय तिमिर महत् ॥२२॥
पुरारम्भी गर्भमघस्त दिव्य तप प्रकर्षदिदिति पुरा यम् ।
शक्रश्च यो दैत्यगणावरुद्ध गर्भाविमानेन भृश चकार ॥२३॥

त्रिमने अम्भ को फाटकर अम्भना निह और मर का दो प्रकार का स्वरूप बनाया था और पहिले दैत्य महान् पराक्रमी हिरण्य कशिपु को मार डाला था ॥१७॥ जो पहिले सवत्तक विभु और अर्थात् पृथ्वी का अन्नल होकर पाताल में स्थित तथा अर्णव गत होता हुआ तोयमय हवि का पान कर गया था ॥१८॥

युग-युग म जिमकी मह्य चरण वाला देव-सहस्र अशु मे युक्त-महस्र धार वाला
 कहत है ॥१६॥ जिमकी नाभि की भरली से अर्थात् कमल नाल से पितामह
 का पर उत्पन्न हुआ था और वह बिना ही पद्म के उत्पन्न होने वाला पङ्कज
 एराणव सोन मे था ॥२०॥ जिमने तारकामय सग्राम मे सर्वदेव पूर्ण और
 समस्त प्रायुषा के धारण करने वाले ७ पु को बनाकर देवों का हनन किया था
 ॥२१॥ गदह पर स्थित जिमने घमून का उदधि क्षीर सागर समुद्र के उत्तराग
 मे उन्मिक्त काननभि को निषानित कर दिया था जो मद्गन्ध तिमिर (घन्धकार)
 म पाग मे धास्थित होकर साखन भयन किया करता है ॥२२॥ पहिले भरली
 ने जिमको दिय गर्भ के रूप में धारण किया था और तपस्या के प्रकर्ष से
 जिमको मदिनि व गर्भ धारण किया था । जिमने गर्भ के अवमान मे इन्द्र को
 हत्य के द्वारा प्रवण्ड किया था ॥२३॥

यदानिषो लात्रपदानि त्वात्वा चकारदंत्यान् मलिलेशयास्तान् ।
 कृत्वादिदेवस्त्रिदिवस्य देवाश्चक्र सुरेण पुष्कृतमेव ॥२४॥
 गाह्वरयन विधिना अन्वाहाय्येण कर्मणा ।
 अग्निमाहवनीयश्च वेदिर्चव कुनस्रवम् ॥२५॥
 प्रोक्षणोय न्युवर्चव अवभृथ तथैव च ।
 अथ त्रीनिह यश्चके हृद्यभाग प्रदान्ममे ॥२६॥
 हारादाश्च मुराश्चक्र वव्यादाश्च रितूनपि ।
 भागार्थ यज्ञविधिना यो यज्ञा यज्ञकर्मणि ॥२७॥
 यूपान् समित्स्त्रुव सोम पवित्र परिधीनपि ।
 यज्ञिपानि च द्रव्याणि यज्ञायाश्च तथानरान् ॥२८॥
 मद्रम्यान् यजमानाश्च अश्वमेधान् अनूतमान् ।
 विवभाज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥२९॥
 युगानुरूप ॥ कृत्वा त्रीन्लोहान् हि ययात्रमम् ।
 शणा निमेषा वाशाश्च कलास्त्रकालमेव च ॥३०॥
 मुहुर्त्तांस्तथयो माता दिनसवत्सराम्भया ।
 अन्व कालयोगाश्च प्रमाण त्रिविधन्तया ॥३१॥

आयु क्षेत्राण्युपचय लक्षण रूपसौष्ठवम् ।

मेधा वित्त च शौर्यं च शास्त्रस्यैव च पारणम् ॥३२॥

जब प्रविल ने लोक पदों का हरण करके उन दैत्यों को सन्तुष्ट कर दिया था तब आदि देव ने त्रिदिव के देवों को करके पुरूरुत को ही गुणों का ईश कर दिया था ॥२४॥ ग्राह्यस्य विधि से घोर श्रद्धाह्वय मम स मग्नि को ग्राह्यनीय को घोर वेदि को, कुशवज को—प्रोक्षणीय स्त्रुव को तथा अव-भृथ को जिसने वहाँ तीन को मस्र म हव्य भाग को देने वाला किया था ॥२५-२६॥ घोर हव्य के लेने वाले देवों को बनाकर कव्य के लेने वाले पितृगो का किया था । यज्ञ के कर्म में यज्ञ की विधि से भोग के लिये जो यज्ञ स्वरूप है ॥२७॥ घूप-तपित्-स्त्रुव-पवित्र सोम और परिधियों को यज्ञिय द्रव्यों को घोर यज्ञीय घनजों को—सदस्यों का घोर गजमानों को—धेष्ट क्रतु प्रथमेष्ट पारमेष्ठ्य कर्म से जो पहिले विघ्नाशित करता था ॥२८॥ जो गुणों के अनुसूच्य क्रम तीन लोकों को बनाकर क्षण-निमेष-काण्ड-कस्त और तीन वालों से जिसने बनाया था ॥३०॥ पुरूरुत-तिथियाँ-माम-दिन-सम्बत्सर-ऋतुएं-वास-योग घोर तीन प्रकार के प्रमाण जिसने सृजित किये थे ॥३१॥ आयु-क्षेत्र उपचय-लक्षण-रूप का सौष्ठव-मेधा-वित्त-शूरता और शास्त्र का पारण जिसने रचा था ॥३२॥

त्रयो वर्णाश्रयो लोकास्त्रिंविदा पादवास्त्रत ।

त्रैवालय त्रीणि कर्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणा ॥३३॥

सृष्टा लोका सुराश्च येनात्म-तेन कर्मणा ।

सर्वभूतगणा मृष्टा सर्वभूतमणात्मना ॥३४॥

मृणामिन्द्रियपूर्व्वण योमेन रमते च य ।

गतागताना यो नेता सर्व्वत्र विविधेश्वर ॥३५॥

यो गतिर्धमयुक्तानामगति पापकर्मणाम् ।

चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥३६॥

चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चतुरायमसथय ।

दिगन्तर नभो भूमिरापो वायुविभावसु ॥३७॥

चन्द्रमूर्ध्नाद्वय ज्योतिर्युगेश क्षणदाचरः ।

य पर श्रूयते देवो य पर श्रूयते तप ॥३८

यः परन्तपसः प्राहुर्य परम्परमात्मवान् ।

आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभु ॥३९

युगान्तेऽवन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तक ।

सेतुर्षो लोकसेतूना मेध्यो यो मेध्यवर्म्मणाम् ॥४०

वेद्यो यो वेदविदुषा प्रभुर्य प्रभवात्मनाम् ।

सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चनाम् ॥४१

मनुष्याणा मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ।

विनयो नयतृप्राना तेजस्तेजस्विनामपि ॥४२

तीन वर्ण—तीन लोक—तीन विद्या—तीन पावक—तीन काल—तीन कर्म—
तीन माया और तीन गुण जिसने निर्मित किये थे ॥३३॥ जिसने अरपन्न कर्म
मे लोहो और सुगो का मृजन किया था । सर्वभूषण गणारमा ने समस्त भूतगणों
को बनाया था ॥३४॥ नरो के इन्द्रिय पूर्ण योग से जो रमण करता है गत और
आगतो का जो विविधेश्वर सर्वत्र नेता है ॥३५॥ जो धर्म मे युक्तों का गति है
और पाप कम वालो का अगति है । चातुर्वर्ण्य का जो प्रभव है और चारो
वर्णों का जो रक्षा करने वाला है ॥३६॥ जो चार विद्याओं का जानने वाला
और चारो अश्रमों का मश्रय है जो दिशाओं का अन्तर—नभ—भूमि—जल—वायु—
विभावम् है ॥३७॥ जो चन्द्र और सूर्य दोनों की ज्योति—युगो का स्वामी—
क्षणदाचर है और जो परदेव सुना जाता है और जो पर तप सुना जाता है
॥३८॥ जो परन्तपस और जो परम्परमात्मवान् कहा जाता है । जो देव आदि-
त्यादि है जो विभु दैत्यान्तक है ॥३९॥ युगो के अन्त मे अन्त करने वाला है
और जो लोकों के अन्तक का भी अन्त करने वाला है । लोकसेतुओं का जो
सेतु है और जो मेध्य वर्मों का मेध्य है ॥४०॥ वेद के विद्वानो का जो जानने के
योग्य है और जो प्रभवात्माओं का प्रभु है । भूतो का जो सोमभूत है और अग्नि-
वर्चसो का जो अग्नि भूत है ॥४१॥ जो मनुष्यों का मनोभूत और तपस्विनो

का तपोभूत है । जब से मृत पुरुषों का विनय और तेजस्विनों का भी जो तेज है ॥४२॥

विग्रहो विग्रहाणा यो गतिर्गतिमतामपि ।
 आकाश प्रभवो वायुर्वायुप्राणा हुताशनः ॥४३॥
 दिवा हुताशनः प्राणा प्राणोऽग्नेर्मधुसूदन ।
 रसोऽभवच्छोणित वै शोणितान्मासमुच्यते ॥४४॥
 मामात्तु भेदसो जन्म भेदसोऽस्य निरूप्यते ।
 अरघ्या मज्जा समभवन्मज्जात शुक्रसम्भवः ॥४५॥
 शुक्रादयं भ्रं समभवद्रसमूलेन कर्मणा ।
 तथापि प्रथमश्चापस्ता मौम्यराशिरुच्यते ॥४६॥
 गर्भोऽसम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते ।
 शुक्रं घोमात्मकं विद्यादात्तं च पावकारमकम् ॥४७॥
 भावो रसानुगावेतो वोय्यं च अग्निपावकौ ।
 कफवर्गोऽभवच्छुक्रं पित्तवर्गं च शोणितम् ॥४८॥
 कफस्य रूढय स्थानं नाभ्या पित्तं प्रतिष्ठितम् ।
 देहस्य मध्ये रूढय स्थानन्तु मनस स्मृतम् ॥४९॥
 नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः ।
 मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते ॥५०॥

जो विग्रहों का विग्रह है और गतिमानों का भी गति है । आकाश में उत्पन्न होने वाला वायु है और वायु प्राण वाता हुताशन (अग्नि) है ॥४३॥ हुताशन का प्राण दिवा है और अग्नि का प्राण मधुसूदन है । रस में शोणित (रक्त) हुआ और शोणित भाग की कटा जाता है ॥४४॥ मांस में भेद की उत्पत्ति होती है और भेद में अग्नि निरूपित की जाती है । अस्थि से मज्जा हुई और मज्जा में शुक्र का जन्म हुआ करना है ॥४५॥ शुक्र से गर्भ रस मूल वर्ग से हुआ था । वहाँ पर भी प्रथम आग (जन्म) है वह मौम्य राशि कहा जाता है ॥४६॥ भीष्म की उत्पत्ति से सम्भव वाला द्वितीय राशि है । शुक्र की घोमात्मक जानी और घातक की पावकारक जानना चाहिए ॥४७॥ रसानुग ये दोनों भाव

होने हैं और बीच में जगि नया पाक है । कफ वर्ग में शुक्र होता है और पित्त वर्ग में दागित होता है ॥४८॥ कफ का स्थान हृदय है और पित्त नाभी में प्रतिष्ठित रहा करता है । देह के मध्य में हृदय होता है जो मन का स्थान कहा गया है ॥४९॥ नाभिकोष का अन्तर जो होता है वहाँ देव हुताशन रहता है । मन को प्रज्ञापन जानना चाहिए और कफ सोम विभाजित किया जाता है ॥५०॥

पित्तमग्नि स्मृतावेतावग्निसोमात्मक जगत् ।

एव प्रवर्तितो गर्भो वत्ततेऽम्बुदसन्निभ ॥५१॥

वायु प्रवेदान चक्रे सङ्गत परमात्मना ।

स पञ्चधा शरीरस्यो विद्यते बद्धं येत् पुनः ॥५२॥

प्राणापानी समानश्च उदानो व्यान एव च ।

प्राणोऽस्य परमात्मान बद्धं यन् परिवर्तते ॥५३॥

अपान पश्चिम वायमुदानोऽङ्ग शरीरगः ।

व्यानो व्यानस्यते येन समान सत्त्वनन्दिषु ॥५४॥

भूतावामिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा ।

पृथिवी वायुरावाशमापा ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥५५॥

सर्वेन्द्रिया निविष्टान्त स्व स्व याग प्रवर्तिरे ।

पार्थिव देहमाहुस्त प्राणात्मान च माह्वतम् ॥५६॥

द्विद्राण्याभाशयोनीनि जलान्मा प्रवर्तने ।

नेत्रश्रु त्विता ज्योत्या तेषा यन्नामत स्मृतम् ।

मह् प्राणा विषयाश्च यस्य वीर्यातिप्रवर्तिता ॥५७॥

इत्येतान् पुरुष मन्वानि मृजोलोकान् सनानन ।

नेधनेऽग्निम् कथ नोके नरत्वं विष्णुगगन ॥५८॥

पित्त अग्नि है । ये दोनो अग्नि और नाभ के स्थान वाता जगत् कहा

गया है । इस प्रकार ये प्रवर्तित गर्भ अम्बुद (भय) के समान होता है ॥५१॥

परमात्मा ने सङ्गत वायु ने प्रवेदान किया था । वह वायु शरीर में स्थित पाँच

प्रकार का होता है और फिर बद्धा है ॥५२॥ प्राण-अपान-ममान-उदान

और व्यान ये पाँच वायु है । इनका साथ परमात्मा को बद्धित करता हुआ परि-

वर्तित होता है ॥१३॥ अथान पीछे को शरीर के और उदान प्राग् शरीर में गमन करने वाला होता है । अथान वह है जिससे यह व्यानस्वमान किया जाता है और शरीर की समस्त सन्धियों में रहा करता है ॥१४॥ इसके पश्चात् उसकी भूतावाप्ति इन्द्रिय मोचर होती है । पृथिवी-वायु-आकाश-जल और पाँचवाँ ज्योति ये भूत होते हैं ॥१५॥ समस्त इन्द्रिया उसमें निविष्ट होती हुई अपने अपने योग को किया करती हैं । उसको पार्थिव देह कहते हैं और मारुत को प्राण स्वरूप कहने हैं ॥१६॥ छिद्र आकाश बोन होते हैं जिनमें जलास्त्राव प्रवृत्त होता है । तेज चक्षुषो में होता है जो माय में उनकी ज्योत्स्ना कही गई है । सग्राम और विषय ही में जिसके वीर्य से प्रवर्तित होते हैं ॥१७॥ सनातन प्रभु इन सब लोकों को सृष्ट करता हुआ इन नैधन (मृत्युशील) लोक में विष्णु कैसे आगये थे ? ॥१८॥

एष न सशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान् ।
 कथं गतिरंतिमतामापन्नो मानुषी तनुम् ॥१९॥
 श्रोतुमिच्छामहे विष्णो कर्माणि यथाक्रमम् ।
 आश्चर्याणि पर विष्णोर्वेदे 'अ' कथ्यते ॥२०॥
 विष्णोर्त्पन्निमाश्चर्यं कथयस्व महामते ।
 एतवाश्चर्यमाख्यानं कथ्यता वै मुखावहम् ॥२१॥
 प्रख्यातबलवीर्यस्य प्रादुर्भावा महात्मनः ।
 कर्मणाश्चर्यभूतस्य विष्णो सत्त्वमि होष्यताम् ॥२२॥
 भह्वं कीर्त्तयिष्यामि प्रादुर्भावं महात्मन
 यथा स भगवाञ्जातो मानुषेषु महातपा ॥२३॥
 सप्तमस्तप प्रोक्ता भृगुशापेन मानुषे ।
 जायते च युगान्तेषु देवकार्यार्थसिद्धये ॥२४॥
 तस्य दिव्यतनु विष्णोर्गन्तो मे निबोधत ।
 युगधर्मो परावृत्ते काले च शिथिले प्रभु ॥२५॥
 कर्तुं धर्मं व्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह ।
 भृगो शापनिमित्तं न देवासुरकृतेन च ॥२६॥

कथ देवासुरकृते अध्याहारमवाप्नुयात् ।

एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं देवासुर वचम् ॥६७॥

देवासुर यथावृत्तं ब्रुवतस्तन्निबोधत ।

हिरण्यकशिपुर्देत्यस्त्रं लोक्य प्राक् प्रशासति ॥६८॥

हे श्रीमान् ! यह ही हमारा एक बहुत भारी मंजब है और एक बहुत अधिक विस्मय भी होता है । गतिमानों की मानुषी तनु की गति को कैसे प्राप्त हुआ था ? ॥६९॥ हम सब भगवान् विष्णु के कर्मों को यथाक्रम सुनना चाहते हैं । विष्णु ही इस परम आश्रय को जानते हैं और वेदों के द्वारा बहे जाने हैं ॥६०॥ हे महामते ! विष्णु की उत्पत्ति एक बड़ा आश्चर्य है उसे आप बताइये यह आश्रय आश्चर्य पूर्ण है सो सुख देने वाले इसे आप कहें । ॥६१॥ प्रख्यात बल और वीर्य वाले महान् आत्मा से युक्त भगवान् विष्णु के जोकि कर्म से आश्चर्य भूत हैं, प्रादुर्भाव को और उनके सत्त्व को यहाँ बनाइये । श्री सूनजी ने कहा—मैं उन महान् आत्मा वाले के प्रादुर्भाव को कहूँगा जिस तरह महानप वाले वह भगवान् मनुष्यों से उत्पन्न हुए थे ॥६३॥ मत्त मत्त तप बहे गय भृगु के शाप ने मानुष लोक में युद्धों के अन्त समयों में देवों के कार्यों की मिट्टि के लिये जन्म ग्रहण करते हैं ॥६४॥ बतलाते हुए मुझसे तुम नोच उन विष्णु के दिव्य तनु की भली-भाँति समझ लो । प्रभु युग धर्म व परावृत्त हा जाने पर और काल के निर्दिष्ट होन पर धर्म की व्यवस्था करने के लिये यहाँ मनुष्यों में जन्म दिया करते हैं वह जन्म ग्रहण भी देवासुरों के हाथ इन और भृगु के शाप के निमित्त से होता है ॥६६॥ ऋषियों ने कहा—देवासुर कृत युद्ध में कैसे हुआ था ? ॥६७॥ सूनजी बोले—देवासुर युद्ध जिस तरह से हुआ था यह बताने वाले मुझसे सब तुम जान लो । पहिल हिरण्यकशिपु राजा तीनों लोकों पर प्रशामन करता था ॥६८॥

बलिनाधिष्ठित राष्ट्र पुनर्लोकत्रये क्रमात् ।

सम्प्रमासीत्पर तेषां देवानामसुरैः सह ॥६९॥

युग वै दशसङ्कीर्णमासीदव्याहत जगत् ।
 निदेशस्थायिनश्च वै तयोर्देवामुराभवन् ॥७०॥
 वनवान् वै दिवादोऽय सप्रवृत्त मुदारुणः ।
 देवामुराणां च तदा घोरक्षयकरो महान् ॥७१॥
 तेषां दायनिमित्तं वै सग्रामा बहवोऽभवन् ।
 वाराहेऽस्मिन् दश द्वौ च पण्डामार्कोत्तरा स्मृता ७२
 नामतस्तु समासेन शृणुष्व तान् विवक्षत ।
 प्रथमो नार्तिहस्तु द्वितीयश्चापि वामन ॥७३॥
 तृतीय स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थन ।
 सग्राम पञ्चमश्चैव भुषोरस्तारकामयः ॥७४॥
 पष्ठो ह्याडीबकम्लेपा सप्तमस्त्रैपुर स्मृतः ।
 अन्धकारोऽष्टमम्लेपा ध्वजश्च नवम स्मृत ॥७५॥
 वार्तश्च दशमो ज्ञेयस्ततो हानाहत स्मृतः ।
 स्मृतो द्वादशमम्लेपा घोरकोलाहलोऽपर ॥७६॥

फिर राजा बलि ने स्वयं से तीनो लोकों में राष्ट्र को घूमने अभिष्टित कर
 लिया था । उस समय उन देशों का अंगुगों के साथ प्रत्यक्ष मह्य भाव था
 ॥६९॥ युग दश सङ्कीर्ण और जगत् अव्याहत था । उन दोनों के निदेश स्थायी
 देव और असुर हुए थे ॥७०॥ यह एक २३ अर्द्धशत एव मुदारुण विवाह सत्र
 कृत होगया था और उस समय यह देवी तथा अंगुगों का घोर एव महान् क्षय
 करने वाला होगया था ॥७१॥ उनके क्षय के निमित्त स बहुत से सग्राम हुए
 थे । इस वाराह में बारह पण्डा मार्कोत्तर बने गये हैं ॥७२॥ नाम से सत्तेय में
 कहते हुए प्रथम उनका ध्वजण कर लो । प्रथम नार्तिह है और द्वितीय वामन
 है ॥७३॥ तृतीय वह वाराह है और चौथा अमृत का मन्थन करने वाला होता
 है । पञ्चम भुषोर तारकामय सग्राम है ॥७४॥ छठा आडीबक और सप्तम श्रैपुर
 कहा गया है । अन्धकार आठवाँ है और उनमें नवम ध्वज बंटा गया है ॥७५॥
 वार्त दशम जानना चाहिए इसके पश्चात् कृपाहन ग्यारहवाँ कहा गया है ।
 बारहवाँ उनमें घोर कोलाहल होता है ॥७६॥

हिरण्यवशिपुर्देत्यो नरमिहेन मूर्धित ।
 वामनेन बलिवदस्यै लोकयाक्रमणे कृते ॥७७॥
 हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु देवतं ।
 महाबलो महासत्त्व सग्रामेष्वनराजित ॥७८॥
 दद्यामानु वराहेण समुद्राद्भूर्यदा कृता ।
 प्राह्लादा निर्जितो युद्धे इन्द्रैः सामृतमग्नये ॥७९॥
 विराचनस्तु प्राह्लादिनित्यमिन्द्रवधोद्यत ।
 इन्द्र एव स विक्रम्य निहतस्नारकामये ॥८०॥
 भवादवध्यताप्राप्य विघ्नेपास्त्रादिभिस्तु य ।
 सञ्जभो निहत पञ्चे शक्राविष्टेन विष्णुना ॥८१॥
 अश्वत्थवता देवेषु पुर गोप्नु त्रिदैवतम् ।
 निहता दानवा सर्वे त्रिपुरस्यम्बकेण तु ॥८२॥

हिरण्यवशिपु नाम बाला दैत्य नरमिह क द्वारा मारा गया था ।
 वामन के द्वारा राजा बलि बंधा गया था जबकि इस त्रैलोक्य का आक्रमण
 किया गया था ॥७७॥ महान् वन बाला और महान् सत्त्व से युक्त सग्राम में
 अपराजित हिरण्याक्ष प्रतिवाद में देवताओं के द्वारा दृढ़ में मारा गया था
 ॥७८॥ जिस समय में यह भूमण्डल समुद्र में वराह क द्वारा दृष्टा में किया गया
 था प्रह्लाद अमृत के मग्न में इन्द्र क द्वारा युद्ध में निर्जित हुआ था ॥७९॥
 प्रह्लादि विरोधन ता नित्य ही इन्द्र के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत रहा करता
 था । इन्द्र क द्वारा ही यह तारकाश्व में विक्रम करके मारा गया था ॥८०॥
 जो विनाश भस्त्र आदि में भव (शिव) में अनध्यता का प्राप्त कर छत्रों में इन्द्र
 में अविष्ट हुए विष्णु के द्वारा सञ्जभ मारा गया था ॥८१॥ त्रिदैवत पुर की
 रक्षा करने में देवों में अममय हो जाने वाले समस्त दानव मारे गए थे और
 त्रिपु अम्बक के द्वारा मारा गया था ॥८२॥

अष्टमे त्वगुराश्चैव राक्षसाश्चान्धवारका ।
 जितदेवमनुष्येभ्यः पितृभिश्चैव मर्द्दनान् ॥८३॥

संवृतान् दानवाश्च व सङ्गतान् कृत्स्नशश्च तान् ।

तथा विष्णुमहायेन महेन्द्रेण निर्वहिता ॥८४

हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाच्छत्रश्च योधयन् ।

ध्वजे लक्ष्य समाविश्य विप्रवर्त्तिमंहाभुज ॥८५

दैत्याश्च दानवाश्चैव सहतान् कृत्स्नशश्च तान् ।

रजिः कोलाहले सर्वान् देवैः परिवृतोऽजयत् ।

यज्ञामृतेन विजितो पण्डामाको तु दैवतं ॥८६

एते दैवासुरा वृत्ताः सग्रामा द्वादशैव तु ।

देवासुरक्षयकरा प्रजानामशिवाय च ॥८७

हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुद यभौ ।

तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः ।

अशीति च महस्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥८८

पर्याये तस्य राजाऽनु बलिर्वर्पावर्बुद पुनः ।

पट्टि चैव सहस्राणि त्रिंशत् निवृत्तानि च ॥८९

बले राज्याधिकारस्तु यावत्काल बभूव ह ।

प्रह्लादेन गृहीतोऽभूत्तावत्काल तदासुरैः ॥९०

अहम मे असुर-नाशन और अन्धकारक जीत हुए मनुष्य और देवी तथा विष्णुओं ने मङ्गल तथा सर्वत्र दानवी को और पूर्ण रूप से सङ्गत उन सबकी विष्णु की महायत्ता प्राप्त करने वाले इन्द्र ने निर्वहित किया था ॥८१-८४॥ माया ने आधु-अध्वज युद्ध करते हुए महेन्द्र ने मारा था । ध्वज में लक्ष्य को समावेश करके महाभुज विप्रवर्त्ति हुआ था ॥८५॥ दैत्य और पूर्ण रूप में सहस्र ममस्त दानवी को देवी के द्वारा परिवृत रजि व कोलाहल में जीता था यज्ञामृत में देवी ने पण्डामाको को जीता था ॥८६॥ ये इनने प्रजापति के करन के लिये देव और असुरों के शय करने वाले बारह महाम हुए थे जोकि देवासुर इस नाम से कहे गये हैं ॥८७॥ हिरण्यकशिपु राजा एव अर्बुद वर्ष तक मुदोभित रहा था और इसी प्रकार से गौ महम्-बहत्तर अधिक और अस्ती महम् तक त्रैलोक्य १। स्वाधी रहा था ॥८८॥ पर्याय में उसके पदवान्

राजा बलि फिर एक शत्रु द वर्ष तक तथा साठ हजार तीन सौ निर्युत पर्यन्त रहा था ॥६६॥ बलि का राज्याभिषार जितने समय तक रहा था तब तक उस समय अमुरो से वह प्रह्लाद के द्वारा गृहीत रहा था ॥६७॥

इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणा महोजस ।

देत्यसस्यमिदं सर्वमासीदशयुगं किन् ॥६१

असपत्न तत सर्वं राष्ट्रं दशयुग पुरा ।

त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पात्यते ॥६२

प्रह्लादस्य तनश्चादस्त्रै लोच्य कालपर्ययात् ।

पर्यायेण च सप्रामे त्रैलोक्ये पाकशासनः ॥६३

ततोऽमुरान् परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् ।

यज्ञे देवानय गते काव्य ते ह्यसुराश्च वन् ॥६४

कृत नो मिपता राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञ पुनर्गता ।

स्यातु न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥६५

एवमुक्तोऽब्रवीदेतान् विपण्ण सान्त्वयन् गिरा ।

मामैष्ठ धारयिष्यामि तेजमा स्वेन चासुरा ६६

वृष्टिरोपधयश्च व रसा वसु च यद्द्वयम् ।

कृत्स्ना मयि च विष्ठन्ति पादस्तेषा मुरेषु वै ।

युष्मदर्षं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥६७

ततो देवासुरान् दृष्ट्वा धृतान् काव्येन धीमता ।

अमन्त्रयस्तदा ते वै सविम्ना विजिगीषया ॥६८

वे महान् शोच वाते अमुरो के तीन इन्द्र विख्यात हुए थे । यह समस्त

दश युग तक दैत्यो के कब्जे में रहा था ॥६१॥ पहिले यह समस्त राष्ट्र शत्रुओं

में रहित रहा था । यह अव्यय त्रैलोक्य महेन्द्र के द्वारा ही पातित होता था

॥६२॥ इसके पश्चात् प्रह्लाद के कालपर्यन्त से इस त्रैलोक्य पर पर्याय से पाक-

शासन (इन्द्र) ने शासन प्राप्त कर लिया था ॥६३॥ इसके अनन्तर अमुरो का

त्याग कर देवगण यज्ञ में उपागत हुए थे । देवो के यज्ञ में जाने पर काव्य

(शुक्र) से अमुरो ने कहा ॥६४॥ राष्ट्र को त्याग कर भूत करने वाले हमारे

क्रिय हुए यज्ञ को पुनः चले गये । आज हम टहर नहीं सकते हैं रसातल में प्रवेश करे ॥६५॥ इस प्रकार स कहे गये विपाद मुक्त युक्त ने इनसे वाणी द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा—ठहरो मत, वह सब है अयुरो ! मेरे द्वारा अपने तेज से धारण किया जा रहा है ॥६६॥ वृषि-रस-शोषधियाँ और जो दोना प्रवार का घन है ये सब पूर्ण मुझमें ही रहा करते हैं उनका चतुर्थ भाग देवगण में रहता है । तुम्हारे लिये मैं दूंगा । वह अब मेरे द्वारा धारण लिये जाते हैं ॥६७॥ इसका घन-तर भीमान् काव्य के द्वारा घृत देवामुरो को देलकर तब उन्होंने विशेष रूप में जीतन की इच्छा से मविान होने हुए मन्त्रणा की थी ॥६८॥

एष काव्य इदं सर्वं व्यावर्त्तयति नो बलात् ।
 साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणाभ्राप्याययस्व तान् ।
 प्रसह्य हत्वा शिष्टान् वं पातात प्रापयामहे ॥६९॥
 ततो देवा सुमरब्धा दानवानभिमृत्य वं ।
 जघ्नुस्तं वैध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवुः ॥१००॥
 ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् ।
 समरेऽऽर्जस्ततास्तितान् देवेभ्यस्तान् दिते सुतान् १०१
 काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र देवोऽभ्यचिन्तयत् ।
 तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१०२॥
 त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनं त्रिभिः क्रमं ।
 बलिर्वदो हतो जम्भो निहतश्च विरोचन ॥१०३॥
 महार्हेषु द्वादशसु मग्राभेषु सुहंता ।
 तंस्तैरुपायैर्मयिष्टा निहता य प्रधानतः ॥१०४॥
 विश्विच्छिद्यन्तानु वं यूय युद्धं प्वन्त्येषु वं स्वयम् ।
 नीतिं वो हि विवास्यामि बाल कश्चित्प्रनीक्ष्यताम् ॥१०५॥

यह काव्य इस सबको बलसे हमको बचा देये । अच्छी जान है शीघ्र और उन क्षीणों को भी तृप्त करे शतपूर्वक शिष्टों का हरण करके पाताल में प्रवेश करा देवे ॥६९॥ इनके देवों ने सुसंरन्ध्र होने हुए दानकों पर अभि-

गम्भुस्तव वीर्येन]

करण करके मार दिया था और उन देवों के द्वारा बध्द्यमान वे बाध्द्य वे ही पाम होते थे ॥१००॥ इसके पश्चात् देवों के द्वारा मगाये गये उनको शुक ने शीघ्र देखकर जोकि समर अस्त्रों के दाता से दुस्तिन थे और वे दिति के पुत्र देवों के द्वारा अभिद्रुत विधे हुए थे ॥१०१॥ वहाँ पर स्थित हुए देवों को बाध्द्य ने देखकर सोचा और फिर ध्यान करके पूर्व वृत्त का अनुस्मरण करते हुए उनसे बोले ॥१०२॥ वामन ने इस समस्त औलोक्य को तीन कदमों से ही जीत लिया है । वनि को बांध दिया गया है और जम्भ तथा विरोचन को मार दिया गया है ॥१०३॥ महाहं बारह सप्राप्तों में देवों के द्वारा ये सब मारे गये हैं । जो प्रयान थे वे उन-उन उपायों के द्वारा बहुत से मारे गये हैं । तुम लोग कुछ धोड़े से शेष रह गये हो । अब अन्तिम युद्ध में आपकी नीति को मैं स्वयं ही धारण करूँगा कुछ समय प्रतीक्षा करो ॥१०४-१०५॥

यास्याम्यहं महादेव मन्त्रार्थं विजयाय व ।

अग्नि माप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पति ॥१०६॥

ततो यास्याम्यहं देव मन्त्रार्थं नीललोहिताम् ।

युष्माननुग्रहीध्यामि पुनः पश्चाद्विहागत ॥१०७॥

यूय तपश्चरध्वं वै सजृता वल्कलंबने ।

न वै देवा बधिष्यन्ति यावदागमनं मम ॥१०८॥

अप्रतीपास्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात् ।

योत्स्यामहे पुनर्देवास्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ॥१०९॥

ततस्ते कृतसंवादा देवान् बुभुक्षुस्ततोऽमुरा ।

न्यस्तवादा वयं सर्वे लोवान् यूयं क्रमन्तु वै ॥११०॥

वयं तपश्चरिष्यामः, सजृता वल्कलंबने ।

प्रह्लादस्य वचं श्रुत्वा सत्यव्याहरणं तु तत् ॥१११॥

ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह ।

न्यस्तनस्त्रेषु दैत्येषु स्वान् वै जग्मुर्धभागतान् ॥११२॥

ततस्तान् वीर्याभ्यां वञ्चित्वा लमुणास्यताम् ।

निग्लुर्गन्तुं स्तण्डिलमुक्तं वानं वार्यायमापकं ।

पिबुममाश्रमस्या वै सर्वे देवाः सवामवा ॥११३॥

म सन्दिग्धामुरान् वाय्यो महादेव प्रपद्य च ।

प्रणम्यन्मुवाचाय जगत्प्रभवमीश्वरम् ॥११८॥

मैं वायु लोगो की विजय के लिए मन्त्रार्थ में महादेव के पास जाऊँगा ।
होना वृहस्पति मन्त्रो से ही अग्नि को आच्छादित करते हैं ॥१०६॥ इससे मैं
मन्त्रार्थ के लिए नील सोहिन (महादेव) के मभीष में जाऊँगा । वायु लोगो के
ऊपर अनुग्रह करने का धीर फिर पीछे यहाँ आऊँगा ॥१०७॥ तुम लोग वन में
वसना मे मकृन् होने हुए अर्थात् वृद्धों की छास के वस्त्र पहिनते हुए तपस्या
करो फिर देवता लोग अथ नहीं करेंगे अब तक कि मेरा भागमन यहाँ होगा
है ॥१०८॥ महेश्वर देव मे अग्रतीर्थ मन्त्रो को प्राप्त करके अर्थात् शत्रु नाशक
मन्त्रो की जानकर के फिर देवों के साथ युद्ध करेंगे धीर फिर अवश्य ही विजय
प्राप्त करेंगे ॥१०९॥ हमारे अनन्तर सम्वाद करने वाले अमुर देवगण स बाने—
हम लोग सब भगवा छोड़ने वाले हो गये हैं अब तुम साथ समस्त लोकों की
प्राप्त कर भोग करो ॥११०॥ हम लोग सब तपस्या करते हैं धीर अक्षत
वगनो से सवृत्त होत हैं । प्रह्लाद के वचन को सुनकर जो कि वित्कुल सय ही
कपन था ॥१११॥ हमसे परवान् दुःख रहित एवं परम प्रसन्न देवता लोग
निवृत्त होगय थे । दैत्यो के शास्त्र त्याग देने वाले हो जाने पर देवगण अपने
स्थानों की जैसे वे पाये थे चले गये थे ॥ ११२ ॥ इसके अनन्तर पुत्रार्थ न
उन से (दैत्यो से) कहा कि तुम लोग कुछ समय तक निरुन्मुक्त-तप से युक्त
धीर कार्याय के साधक होते हुए उपामना करो । इन्द्र के सहित समस्त देव
गण इन समय में मेरे पिता के आश्रम में स्थित हैं ॥११३॥ यह वाक्य (पुत्रा
चार्य-दैत्य गुरु) अमुरो की सन्देश देकर महादेव के पास गय और वहाँ पहुँच
कर हमकी प्रणाम करके समस्त जगत् प्रभव ईश्वर महादेव से कहा—॥११४॥

मन्त्रानिच्छाम्यह देव मे न सन्ति वृहस्पती ।

पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान् ॥११५॥

एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मन्त्रानिच्छसि च द्विज ।

व्रत चर मयोद्दिष्ट ब्रह्मचारी समाहितः ॥११६॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक्षिराः ।
 यद्युपास्यसि भद्रन्ते मत्तो भन्धमवाप्त्यसि ॥११७॥
 तथाक्तो देव देवेन स शुक्रस्तु महातपा ।
 पादो सस्पृश्य देवस्य वाढमित्यम्यभापत् ॥११८॥
 अत चराम्यह शेष यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो ।
 ततो नियुक्तो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ॥११९॥
 असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्छुक्ते गते तदा ।
 मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरः ॥१२०॥
 तद् बुध्वा नातिपूर्वंस्तु राज्यं न्यस्त तदामुरैः ।
 तस्मिञ्छिद्रे तदामर्षा देवास्तान् समभिद्रवन् ।
 निशितात्तायुधा सर्वे बृहस्पतिपुरोगमा ॥१२१॥
 दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः ।
 उत्पेतु सहसा सर्वे सन्त्रस्तास्ते ततोऽभवन् ॥१२२॥

हे देव ! मैं मन्त्रों को चाहता हूँ बृहस्पति के रहते हुए मेरे पास मन्त्र नहीं हैं मैं ऐसे मन्त्रों को चाहता हूँ जो असुरों को अभय देने वाले हों और देवों का पराभव करने वाले हों ॥११७॥ जब इस तरह से महादेवजी से कहा गया तो महादेव बोले—हे द्विज ? यदि इस प्रकार के मन्त्रों को चाहते हो तो मेरे पास ही हुए ब्रज का ब्रह्मचारी और पूर्ण समाहित होते हुए आचरण करो ॥११८॥ पूरे एक सहस्र वर्ष तक धवाक्षु धिरा होते हुए कुण्ड धूप की यदि उपामना करोगे तो कुम्हारों बल्पाणु होगी और मुझ से मन्त्रों को प्राप्त कर लोगे ॥११७॥ उस प्रकार से देवों ने देव महादेव के द्वारा बहे जाने पर महान् सपत्नी गुप्ताचार्य ने महादेव से चरणों या सपत्नी करके “बहुत अच्छा”—यह कहा था ॥११८॥ मैं दोर अत वा चरण करूँगा हे प्रभो ! जैसा भी आपके द्वारा आदि किया गया है । इससे पश्चान् महादेव ने इसको धूम इत कुण्ड पार नियुक्त किया था ॥११९॥ असुरों के हिन के लिये तब उस मुकाचार्य के पने जाने पर मन्त्र ने लिए महेश्वर वहाँ ब्रह्मचर्य में निवास करने हैं ॥१२०॥ यह जानकर कि अग्नि पूर्व से तब असुरों ने द्वारा राज्य नहीं न्यस्त किया गया

था । उस द्विद मे उनके अर्घ्य वाले देवो ने बृहस्पति को अग्रगामी बनाकर
और तीक्ष्ण आयुषा को ग्रहण करके उन असुरो को सदेह दिया था ॥ १२१ ॥
तब असुरो ने देवो को पुन आयुष ग्रहण करने वाले देखकर सहसा सब उत्पन्न
करने लग और वे एकदम खरखर हो गये वे अर्घ्य बहुत ही डर गये थे
॥१२२॥

व्यस्ताशस्त्रे जये दरा आचार्यव्रतमास्थिते ।
सन्त्यज्य समय देवास्ते सपत्नजिघाषव ॥१२३॥
अनाचार्यास्तु भद्र वो विश्वस्तास्तपसि स्थिता ।
चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा ॥१२४॥
रणो विजेतु देवान् वै न शक्याम कथञ्चन ।
अशुद्धेन प्रपद्याम शरण काव्यमातरम् ॥१२५॥
शापयामस्ततमिद यावदागमन गुरो ।
विनिवृत्ते तत काव्ये योत्स्यामी युधि तान् सुरान् ॥१२६॥
एवमुक्त्वा सुरान् योग्य शरण काव्यमातरम् ।
प्रापद्यन्त ततो भीतास्तवा चैव तदाऽभयम् ॥१२७॥
दत्तन्तेपान्तु भीताना दैत्या नामभयाधिनाम् ।
न भेतव्य नभेतव्य भयन्त्यजत दानवा ॥१२८॥
मत्सन्निधौ वसन्ता वो न भीमं धितुमहति ।
भयाच्चाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवासुरास्तदा ॥१२९॥
अभिजग्मु प्रमर्हन्तान्विचार्य बलाबलम् ।
तास्त्रस्तान् वध्यमानाश्च देवं दृष्ट्वासुरास्तदा ॥१३०॥
दैवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननिद्रत्व करोम्यहम् ।
सस्तम्य शीघ्र सरम्मादिन्द्र साऽभ्यचरत्तत ॥१३१॥

असुरो द्वारा शस्त्रो के त्याग देने पर जय के दे देने पर और आचार्य
व्रत मे आस्थित होने पर उन देवताओ ने शस्त्र का त्याग करके शत्रुओ के
'म' की इच्छा करली थी ॥१२३॥ आचार्यत्व मे हीन-आपका ब्रह्मण ही हम

तरह से पूर्ण विश्वस्त तपश्चर्या में स्थित-चौर और बल्कली के धारण करने वाले, क्रिया से रहित और बिना परिग्रह वाले हम किसी प्रकार से भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सकेंगे इसलिये अब भृशुद्ध के द्वारा काव्य की माता के शरण में चलें ॥१२५॥ जब तक गुरु का आगमन हो इस मत को ज्ञापित करें । शुकाचार्य के वापिस लौट आने पर हम उनसे देवों से रख भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य शरण (रक्षक) शुकाचार्य की माता की शरणागति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे । अभय के चाहने वाले भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया । हे धानवो ! मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, आपको कोई भी भय नहीं हो सकता है । भय से अभिपन्न उन देवामुरी को उस समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलावल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था । उस समय में डरे हुए और देवों के द्वारा वृध्यमान होते हुए उन यमुरी को देखकर क्रुद्ध होते हुए देवी इनसे बोली मैं अनि-द्रव्य अर्थात् इन्द्र का सर्वथा अभाव कर दूँगी । उसने शीघ्र ही इन्द्र को सरम्भ से (क्रोध से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

तत मस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु यूपवत् ।

व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३२॥

गतेषु सुरसधेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत ।

मां त्व प्रविश भद्रन्तं नेध्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥

एवमुक्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।

विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽबद्धत् ॥१३४॥

एषा त्वा विष्णुना साद्धं दहामि मघवानिव ।

मिपता सर्वभूताना दृश्यता मे तपोबलम् ॥१३५॥

तयामिभूतो तो देवाविन्द्रविष्णू जजल्पतु ।

इय मुच्येव सहितो विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥

था । उस छिद्र में उसने अमर वाले देवों ने बृहस्पति को अमरगामी बनाकर
 और तीक्ष्ण आमुषों को ग्रहण करके उन असुरों को छेद दे दिया था ॥ १२१ ॥
 तब असुरों ने देवों को पुनः अमरग्रहण करने वाले देखकर सहसा सब उत्पन्न
 करने लगे और वे एकदम शत्रुत्व हाँ गये थे अपान् बहुत ही डर गये थे
 ॥१२२॥

न्यस्तशस्त्रे जये दत्ते आचार्यव्रतमास्थिते ।
 सन्त्यज्य समय देवास्ते सपत्नजिघाषय ॥१२३॥
 अनाचार्यास्तु भद्र वो विश्वस्तास्तपसि स्थिताः ।
 चीरवस्त्राजिनधरा निष्क्रिया निष्प्रतिग्रहा ॥१२४॥
 रणे विजेतुं देवान् वै न शक्याम कथञ्चन ।
 अशुद्धेन प्रपद्याम शरणं काव्यमातरम् ॥१२५॥
 शापयामस्ततमिदं यावदागमनं गुरोः ।
 विनिवृत्ते ततः काव्ये योत्स्यामो युधि तान् सुरान् ॥१२६॥
 एवमुक्त्वा सुरान् ओम् शरणां काव्यमातरम् ।
 प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चैव तदाऽभयम् ॥१२७॥
 दत्तन्तेपान्तु भीतानां दैत्या नामभयार्थिनाम् ।
 न भेतव्यं न भेतव्यं भयन्त्वजत दानवा ॥१२८॥
 मत्सन्निधौ वतता वो न भीमं बितुमर्हन्ति ।
 भयाच्चाप्यभिपन्नास्तान् दृष्ट्वा देवापुरास्तदा ॥१२९॥
 अभिजग्मुः प्रतह्यं तानविचार्यं वलावलसम् ।
 तास्त्रस्तान् वध्यमानांश्च दवंहं दृष्ट्वा सुरास्तदा ॥१३०॥
 देवीं मृदाव्रवीदेनाननिद्रत्वं करोम्यहम् ।
 मस्तम्य दीप्य शरणादिन्द्र साऽप्यमरस्ततः ॥१३१॥

असुरों द्वारा राक्षसों के त्याग देने पर जब वे दे देने पर और आचार्य
 व व्रत में आस्थित होने पर उन देवराक्षसों ने दारुण का त्याग करके अमुषों के
 मार्ग की इच्छा करनी ली ॥१२३॥ आचार्यगुरु ने हीन आपणा करवाए हुए रण

तरह से पूर्ण विद्वस्त तपस्वर्या में स्थित-धीर और बलवती के भाग्य करने वाले, क्रिया से रहित धीर बिना परिग्रह जाने हम किसी प्रकार में भी देवों को युद्ध में जीत नहीं सर्वेने इगलिये अब असुद्ध के द्वारा वाय्व की माता के कारण में चले ॥१२५॥ जब तब गुरु का आगमन हो इस मत को स्थापित करें । शुक्राचार्य के वाचिम सोट जाने पर हम उनसे देवों से राग भूमि में युद्ध करेंगे ॥१२६॥ इस प्रकार से देवों से कहकर योग्य कारण (रक्षक) शुक्राचार्य की माता की शरणागति में प्राप्त हुए थे उस समय वे एकदम डरे हुए थे । अभय के चाहन वासे भीत उन दैत्यों को उस समय में ही अभय दिया गया । हे शानवी । मत डरो-मत डरो, भय का त्याग कर दो ॥१२७-१२८॥ आप लोग मेरे पास रहो, प्राणको कोई भी भय नहीं हो सकता है । भय से अभिपन्न उन देवामुरों को उस समय में देखकर देवी ने ऐसा कहा था ॥१२९॥ बलाबल का विचार न करके इनके ऊपर बल करके अभिगमन किया था । उस समय में डरे **॥** धीर देवों के द्वारा वृष्यमान होत हुए उन असुरों को देखकर झुड़ होते हुए देवी इनमें बोली मैं अनिन्दस्व सर्वाङ्ग इन्द्र का सर्वथा अभाव करदूँगी । उसने धीम्र ही इन्द्र को सारम्भ से (काय से) स्तम्भित करके अभिचरण किया था ॥१३१॥

तत सस्तम्भित दृष्ट्वा शक्र देवास्तु यूपवत् ।

व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्र वशीकृतम् ॥१३१॥

गतेषु सुरसधेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत ।

माँ त्व प्रविश भद्रन्ते न भ्यामि त्वा सुरेश्वर ॥१३३॥

एवमुत्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर ।

विष्णुना रक्षित दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽबदत् ॥१३४॥

एषा त्वा विष्णुना साद्धं दहामि मधवानिव ।

मिपता सर्वमूताना दृश्यता मे तपोबलम् ॥१३५॥

तयाभिभूती तौ देवाविन्द्रविष्णु जजल्पतु ।

वय मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१३६॥

इन्द्रोऽवीज्जहि ह्येना गवत्री न दहेद्विभो ।
 विसर्पेणाभिभूतोऽहमतस्त्वच्च हि मा चिरम् ॥१३७॥
 तत समीक्ष्य ता विष्णु स्त्रीवध वक्तु मास्थित ।
 अभिध्याय ततश्चक्रमापन सत्वर प्रभु ॥१३८॥
 तस्या सत्वरमत्स्याया शीघ्रकारी मुरारिहा ।
 स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्या क्रूर बुद्धा चिवीर्षितम् ।
 मुद्धस्तदस्त्रमाविद्ध च शिरश्चिच्छेद माधव ॥१३९॥

इमक धनन्तर देवी न यूप की भाति इन्द्र की सत्तन्मिन्त देखकर डरे हुए होकर शक्र की वशीकृत देखकर वे यहाँ से भाग दिये थे ॥१३७॥ देव सगूँ के चले जाने पर विष्णु इन्द्र से बोले—हे सुरेश्वर ! तुम मुझ में प्रवेश कर जाभा—तरा बना होगा—मैं तुमको न चाऊँगा ॥१३८॥ इस प्रकार मैं विष्णु के द्वारा बहुत पर इन्द्र ने विष्णु में प्रवेश किया था । विष्णु के द्वारा रक्षित इन्द्र की देखकर देवी ने क्रुद्ध होकर यह वचन कहा ॥१३९॥ यह मैं आज समस्त भूनी के देखते हुए मधवान् की तरह तुमको विष्णु के साथ जसाती हूँ यह मेरा सपोषल देवी ॥१३९॥ उस देवी के द्वारा अभिभूत के दोनो देव इन्द्र और विष्णु बोले । सहित दानो कैसे छोड़ें यह विष्णु ने इन्द्र से कहा था ॥१३९॥ इन्द्र ने कहा वधियो ! इसे त्याग दो जब तक हम दोनो दण्ड न हों । मैं विशेष रूप से अभिभूत हूँ और तुम अधिक मत होओ ॥१३९॥ इसक पदवात् उस देवी की देखकर भगवान् विष्णु स्त्री का वध करने के लिए अस्थित हो गये थे । यह कहकर इमक उपगत प्रभु विष्णु ने शीघ्र शक्र की उठाया था ॥ १३८ ॥ सत्वरमाण उससे भी शीघ्रकारी मुर शक्र को नाशक विष्णु ने देवी स्त्री के क्रूर चिवीर्षित को जानकर बोध किया और उस अस्त्र को चलाकर माधव ने शिर काट डाला था ॥१३९॥

त दृष्ट्वा स्त्रीवध घोर चुक्रोप भृगुरीश्वर ।
 ततोऽभिगच्छा भृगुणा विष्णुर्मयावधे तदा ॥१४०॥
 यस्मात्तो जानता धर्मानवध्या स्त्री निपूदिता ।
 तस्मात्त्व सप्तदृत्वा वै मानुष्यु प्रपत्स्यमि ॥१४१॥

ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मो पुन पुनः ।
लोके सर्वंहितार्थाय जायते मानुषेस्त्वह ॥१४२॥
अनुव्याहृत्य विष्णु स तदादाय शिर स्वयम् ।
समानीय तत काये अपो गृह्येदमब्रवीत् ॥१४३॥
एष त्वा विष्णुना सत्ये हता सजीवयाम्यहम् ।
यदि कृत्स्नो भया धर्मश्ररितो जायतेऽपि वा ।
तेन सत्येन जीवस्व तद्धि सत्य ब्रवीम्यहम् ॥१४४॥
रात्याभिव्याहृता तस्य देवी सजीविता तदा ।
तदा ता प्रोक्ष्य जीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत् ॥१४५॥
ततस्ता सर्षभूतानि दृष्ट्वा सुमोक्षितामिव ।
साधु साध्वित्यदृश्याना वाचस्ता सस्वेतुर्विशः ॥१४६॥
दृष्ट्वा सञ्जीवितामेव देवी ता भृगुणा तदा ।
मिपता सर्वभूताना नदद्भूतमिवाभवत् ॥१४७॥
असञ्ज्ञानेन भृगुणा पत्नी सञ्जीविता तत ।
दृष्ट्वा क्षत्रो न लेभेऽयं धर्म काव्यभयात्तत ॥१४८॥
प्रजागरे तनश्चेन्द्रो जयन्तीमात्मन सुताम् ।
प्रोवाच भतिमान् वाक्य स्वा वन्या पाकशासन ॥१४९॥
एष वाक्यो हानिद्राय चरते दारुण तप ।
तेनाह ध्याकुल पुत्रि कृतो धृतिमता दृढम् ॥१५०॥

उस घोर स्त्री के वध को देखकर ईश्वर भृगु बड़े ही क्रोधित हुए थे फिर उन समय में भार्या के वध हो जाने पर भृगु के द्वारा विष्णु को अभिशाप दिया गया था ॥१४०॥ क्योंकि धर्मों को जानने वाले, तुमने न वध करने के योग्य स्त्री का वध किया है इसलिये मैं यह शाप देता हूँ कि तुम सात बार मानुषों में उत्पन्न होकर रहोगे ॥१४१॥ इनके अनन्तर उस अभिशाप से तोरु में बार-बार धर्म के नष्ट हो जाने पर सब के हित सम्पादन के लिए यहाँ मनुष्यों में भगवान् जन्म लिया करते हैं ॥१४२॥ उसने इस तरह विष्णु से अनुव्याह-रण कर के उस समय स्वयं भार्या के उस शिर का लेकर उसे शरीर पर समा-

नीत करके जल लेकर यह बोले ॥१४३॥ यह विष्णु के द्वारा सत्य में हन तुझे मैं सजीवित करता हूँ । यदि मैंने पूर्ण धर्म का आचरण किया है और धर्म को जान रखता हूँ तो उस सत्य से जीवित हो जा—यदि मैं यह सत्य बोद्धा हूँ ॥१४४॥ सत्य से अभिव्याहृत उसकी देवी उस समय संजीवित होगई थी । फिर इसके पश्चात् उस समय उसका शीतल जल से प्रोक्षण करके 'जीवित रहो'—यह शुक्राचार्य ने कहा था ॥१४५॥ इसके अनन्तर समस्त प्राणीदुग्ध सोकर उठी हुई की भाँति उन देवी को देखकर—“साधु साधु” भर्षात् बहुत अच्छा-अच्छा ऐसी बातियाँ जो अदृश्य थे उनकी भुज दिशाओं से सुनाई दी थी ॥१४६॥ इस प्रकार से भृगु ने उस समय में उस देवी को सजीवित देख कर समस्त प्राणियों के देखते हुए वह कार्य एक अद्भुत की तरह हुआ था ॥१४७॥ असम्मान्त भृगु के द्वारा उनकी पत्नी को सजीवित देखकर काम्य के भय से फिर शान्ति प्राप्त नहीं की थी ॥१४८॥ प्रजापति ने इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा । जयन्ती उस मणिमान् पाक शासन की बन्धी थी । अपने कहा यह शुक्र इन्द्र के अभाव के लिये दारण तप कर रहे हैं । हे पुत्रि ! इस कारण मैं बहुत ही अधिक व्याकुल हूँ । उस धूमिमान् ने यह वरना इरादा कर लिया है ॥१४९॥

गच्छ सम्भावयस्वेनं धर्मापनयनैः शुभैः ।
 तैस्तैर्मनोनुक्तामैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥१५१॥
 देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी ।
 युक्तध्यानश्च शाम्येत्त दुर्बलं घृतिमास्थितम् ॥१५२॥
 पित्रा मयोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा ।
 गोभिर्दत्तैवानुक्ताभिः स्तुवती बल्युमापिणी ॥१५३॥
 गात्रसवाहर्न कावे सेवमाना मुक्तावहै ।
 युध्यन्त्यनुक्ता च उवाच बहुलाः समा ॥१५४॥
 पूर्णं धूमव्रते चापि घोरे वर्यसहस्रिके ।
 वरेण च्छन्दयामास वाक्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥१५५॥

एव ब्रुवंस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् ।
 तस्मात्त्व तपसा मुद्धया श्रुतेन च बलेन च ॥१५६॥
 तेजसा चापि विबुधान् सर्वानभिभविष्यसि ।
 यच्च किञ्चिन्मम ब्रह्मान् विद्यते भृगुनन्दन ॥१५७॥
 साङ्गञ्च सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदान्तथा ।
 प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चाद्यन्त न कस्यचित् ॥१५८॥

सो तुम वहाँ जाओ और हमको पुनः श्रवण के ध्यानयोगों के द्वारा सम्भावित करो । उन-उन उनके मन के अनुकूल उपचारों से उन्हें प्रसन्न करो किन्तु हम कार्य में अतन्द्रित अर्थात् आलस्य रहित होकर लग जाना ॥ १५१ ॥ वह देवी इन्द्र की दुहिता जयन्ती शुभ चारिणी थी । युक्त ध्यान आत्मा साम्य-दुर्वल-धृति में आस्थित उस काव्य का जैसा पिता के द्वारा कहा गया था उसने काव्य के विषय में उस समय किया । अनुकूल वाणियों के द्वारा बलुमापिणी उसने उसकी स्तुति की थी ॥१५२-१५३॥ मुख प्रदान करने वाले शिव महाहर्षों के द्वारा समय पर सेवा करती हुई और धुधूपा करती हुई तथा अनुकूल रहती हुई बहुत वर्षों तक उसने वहाँ निवास किया ॥ १५४ ॥ एक सहस्र वर्ष वाले परम घोर भूभयत के पूर्ण हो जाने पर तब महादेव ने प्रसन्न होकर काव्य के वरदान से समन्वित किया था ॥१५५॥ वरदान देने के समय में ऐसा कहते हुए कि यह सब तुम्हें एक ने किया है अग्य किसी ने पूर्ण नहीं किया है । इस लिए तू तप, बुद्धि, श्रुत, बल और तेज से भी सम्पन्न देवी को अभिभूत कर देगा और जो भी कुछ है भृगुनन्दन । है ब्रह्मात् । मेरे पास है साङ्ग और रहस्य के सहित यह सब तथा यज्ञोपनिषद् तुम्हें प्रतिभासित हो जायेंगे और वह ध्या से अन्ततक किसी को भी नहीं होते हैं ॥१५६॥१५७॥१५८॥

सर्वाभिभावो तेन त्व द्विजश्रेष्ठो भविष्यति ।
 एव दत्त्वा वरास्तस्मै आर्गवाय पुन पुनः ॥१५९॥
 अजेयत्वं घनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ ।
 एतान् सक्त्वा वरान् काव्य सम्प्रहृष्टतनूद् ॥१६०॥

हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम् ।
 तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१६१॥
 नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरापाय सुवर्चसे ।
 रिरिहाणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते ॥१६२॥
 कपर्दिने ह्यूर्ध्वरोम्णे हयाय करणाय च ।
 सस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रहसे ॥१६३॥
 उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुपे ।
 वसुरेताय रुद्राय तपसे चौरवाससे ॥१६४॥
 ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च ॥१६५॥
 कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च ।
 गिरिशायार्कनेत्राय यतिने जाम्बवाय च ।
 सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च ॥१६६॥

हमने तू सत्रको अभिमन करने वाला द्विबधेष्ट हो जायगा । इस प्रकार
 से भार्गव के लिये बार-बार बरो को देकर अजेयत्व-घनेशत्व और अवध्यत्व का
 भी वरदान दे दिया था । इन समस्त बरो को प्राप्त कर काव्य सम्ग्रह तब्रहो
 वाला अर्थात् अत्यन्त प्रसन्नता से प्रफुल्लित होगये ॥१५९-१६०॥ हर्ष के प्रतिरेक
 होने से उसके हृदय में महेश्वर हेमस्तोत्र का प्रादुर्भाव हुआ । तब तिरछा स्थित
 होकर इस प्रकार से नीललोहित की स्तुति की थी ॥१६१॥ सुरापान करने वाले
 सुन्दर वर्चस वाले तथा शितिकण्ठ से युक्त के लिये नमस्कार है । रिरिहाण-
 लोप-वत्सर और जगत् के पति के लिये नमस्कार है ॥१६२॥ कपर्दी-उर्ध्वरोम
 वाले-हय-और करण के लिये नमस्कार है । सस्कृत-मुनीर्ध्व-रह और देवों के
 भी देव के लिये नमस्कार है ॥१६३॥ उष्णीषी सुवक्त्र वाले-सहस्र नेत्रों वाले-
 मीढुप-वसुरेता-तप-चौरों के वस्त्र धारण करने वाले रुद्र के लिये नमस्कार है
 ॥१६४॥ ह्रस्व-मुक्त केशों वाले-सेनानी-रोहित के लिये नमस्कार है ॥१६५॥
 कवि-राजवृद्ध-तक्षक के खिलौने वाले-गिरिश-अर्कनेत्र-यति-जाम्बव के लिये
 नमस्कार है ॥१६६॥

सहस्रबाह्वे चैव सहस्रामलचक्षुषे ।

सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ॥१६७॥

सहस्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे ।

भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरपाय च ॥१६८॥

निपङ्गुणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च ।

ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१६९॥

बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारणाय च ।

महादेवाय शङ्खाय विश्वरूपशिवाय च ॥१७०॥

हिरण्माय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च ।

पिनाकिने त्र्यम्बके चित्राय रोहिताय च ॥१७१॥

बुन्दुभ्यायैवपादाय अर्हाय बुद्धये तथा ।

मृगव्याधाय सर्पाय स्थाणवे भीषणाय च ॥१७२॥

बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च ।

कपिलायैकवीराय मृत्यवे अम्बकाय च ॥१७३॥

वास्तोष्पते विनायाय शङ्कराय शिवाय च ।

आरण्याय गृहस्थाय यतिने ब्रह्मचारिणे ॥१७४॥

सहस्र बाहुओं वाले—सहस्र निमल नेत्रों वाले—सहस्र कुक्षि और सहस्र चरणों वाले के लिये नमस्कार है ॥१६७॥ सहस्र शिर वाले—बहुत से रूप वाले वेध—भव—विश्वरूप—श्वेत और पुरुष के लिये नमस्कार है ॥१६८॥ निपङ्गी—कवची—सूक्ष्म—क्षपण—ताम्र—भीम—उग्र और शिव के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ बभ्रु—विशङ्ग—पिङ्गल—अरण—महादेव—शर्व और विश्वरूप शिव के लिये नमस्कार है ॥१७०॥ हिरण्य—शिष्ट—श्रेष्ठ—मध्यम—पिनाकी—इषुमा—चित्र और रोहित के लिये नमस्कार है ॥१७१॥ बुन्दुभ्य—एवपाद—अहंबुद्धि—मृगव्याध—सर्प—स्थाणु और भीषण के लिये नमस्कार है ॥१७२॥ बहुरूप—उग्र—त्रिनेत्र—ईश्वर—कपिल—एकवीर—मृत्यु और अम्बक के लिये नमस्कार है ॥१७३॥ वास्तोष्पति—विनाक—शङ्कर—शिव—आरुह्य—गृह में स्थित रहने वाले—यति और ब्रह्मचारी के लिये नमस्कार है ॥१७४॥

साह्यत्राय चैव योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च ।
 अन्तर्हिताय शर्व्वाय मान्याय मालिने तथा ॥१७५॥
 बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्तये केवलाय च ।
 रोधमे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ॥१७६॥
 चतुष्पादाय मेध्याय घर्मिणे शीघ्रमाय च ।
 शिखण्डिने कपालाय दष्टिणे विश्वमेधसे ॥१७७॥
 अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे ।
 क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च ॥१७८॥
 सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय शुभाय च ।
 अथध्याय मृताङ्गाय नित्याय शाश्वताय च ॥१७९॥
 साद्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे ।
 सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च ॥१८०॥
 शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे ।
 पिशिताशाय खर्वाय मेधाय वंशुताय च ॥१८१॥
 व्याश्रिताय श्वविष्टाय भारतायान्तरिक्षये ।
 क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च ॥१८२॥
 त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च ।
 तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये ॥१८३॥

राक्षस-योग-ध्यानी-दीक्षित-अन्तर्हित-शर्व्व-मान्य तथा माली के लिये
 नमस्कार है ॥१७५॥ बुद्ध-शुद्ध-मुक्ति-केवल-रोध-चेकितान-ब्रह्मिष्ठ और
 महर्षि के लिये नमस्कार है ॥१७६॥ चतुष्पाद-मेध्य-घर्मि-शीघ्र गमन करने
 वाले-शिखण्डी-कपाल-दष्टी और विश्वमेधा के लिये नमस्कार है ॥१७७॥
 अप्रतीघात-दीप्त-भास्कर-सुमेधा-क्रूरविकृत-बीभत्स और शिवके लिये नमस्कार
 है ॥१७८॥ सौम्य पुण्य धार्मिक-शुभ-अथध्याय-मृताङ्ग-नित्य और शाश्वत के
 लिये नमस्कार है ॥१७९॥ साद्य-शरभ-शूली-सीन नेत्रो वाले-सोमपान करने
 वाले-धृतपान करने वाले-धूमय-ऊष्मय के लिये नमस्कार है ॥१८०॥ शुचि-
 रेरिहाणा-सद्योजात-मृत्यु-मास या अशन करने वाले-खर्व-मेध और वंशुत के

लिये नमस्कार है ॥१८१॥ व्याघ्रिन्-अविष्ट-भारत-अन्तरिक्षि-सम-सहमान-
सत्य और तपन के लिये नमस्कार है ॥१८२॥ त्रिपुर के नाश करने वाले-दीप्त-
वक्र-रोमश-तिग्मायुध वाले-मेघ्य-विद्ध और पुलस्ति के लिये नमस्कार
है ॥ १८३ ॥

रोचमानाय खण्डाय स्फीताय अयमाय च ।

भोगिने पुञ्जमानाय शान्तार्यवोद्धं रेतसे ॥१८४

अघघ्नाय मलघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च ।

कुशानवे प्रचेताय बह्मये विमलाय च ॥१८५

सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्याय च चक्षुषे ।

क्षिप्रगवे सुघन्वाय प्रमेध्याय पिवाय च ॥१८६

रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च ।

विभ्रान्ताय महन्ताय अन्तये दुर्गमाय च ॥१८७

दक्षाय च जघन्याय लोकानाभीश्वराय च ।

अनामयाय चोर्द्धाय संहत्याधिष्ठिताय च ॥१८८

हिरण्यवाहवे चैव सत्याय क्षमनाय च ।

अमिकल्याय माषाय रीरिण्यायैकचक्षुषे ॥१८९

श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते ।

महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हृसाय च ॥१९०

वृत्तधन्वने कवचिने रथिने च वरूणिने ।

भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ॥१९१

अघाय अघशसाय विप्रियाय प्रियाय च ।

दिवांस कृत्तिवासाय भगध्नाय नमोऽस्तु ते ॥१९२

रोचमान-क्षरद-स्फीत-ऋषभ-भोगी-पुञ्जमान-शान्त-उद्धं रेता-
अघो के नाशक-मल के नाश करने वाले-मृत्यु-यज्ञिय-कुशानु-प्रचेत-वह्नि और
त्रिपाल के लिये नमस्कार है ॥१८४ १८५॥ मित्र-प्रसन्न-वरेण्य चक्षु-
क्षिप्रगु-सुघन्वा-प्रमेध्य-पिब-रक्षोघ्न-पशुघो के हनन करने वाले-विघ्न-शयन
विभ्रान्त-महन्त-अन्ति और दुर्गम के लिये नमस्कार है ॥१८६-१८७॥ दक्ष-

जघन्य-लोको के ईश्वर-अनामय-ऊर्ध्व ग्रीर महार का अधिष्ठित होने वाले के लिये नमस्कार है ॥१८८॥ द्विरण्यबाहु-सत्य-शमन-अमिकल्प-माघ-रीरिण्य-एकचक्षु-धेष्ट-वामदव-ईशान-धीमान्-महाकल्प-नील-गोदन भीर इसके लिये नमस्कार है ॥१८९-१९०॥ वृतघन्वा-वच घारण करने वाले-रथी-वर्च्य-भृगुनाथ-शुक-वह्निगृह-ओम् धीमान् के लिये नमस्कार है ॥१९१॥ घम-घष सशाय-विप्रम-प्रिय-दिम्बासा-हृत्तिवासा-भगघ्न के लिये नमस्कार है ॥१९२॥

पशूनां पतये चैव भूताना पतये नमः ।

प्रणवे ऋग्यजु साम्ने स्वधार्यं च सुधाय च ॥१९३

वपटकारतमार्यं व तुम्यमन्तात्मने नम ।

स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हन्त्रे च क्षपणाय च ॥१९४

भूतभव्यभवार्यं व तुम्य कासात्मने नम ।

वमवे चैव साध्याय रुद्रादित्यादिवनाय च ॥१९५

विश्वाय मरुते चैव तुम्यन्देवात्मने नम ।

अग्निसोमत्विगिज्याय पशुमन्त्रोपधाय च ॥१९६

दक्षिणावभृथार्यं व तुम्य यज्ञात्मने नम ।

तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च ॥१९७

अहिंसायाप्यलोभाय सुखेसायातिशाय च ।

सर्वभूतात्मभूताय तुम्य योगात्मने नम ॥१९७

पृथिव्यौ चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च ।

जनस्तपाय सत्याय तुम्य लोकात्मने नम ॥१९९

अध्यक्ताय मरुते भूतार्यवेन्द्रियाय च ।

तन्मात्राय महान्ताय तुम्य तत्त्वात्मने नम ॥२००

नित्याय चार्थलिङ्गाय मूढमाय चेतनाय च ।

गुह्याय विभवे चैव तुम्य नित्यात्मने नम ॥२०१

नमस्ते त्रिषु तोत्रेषु स्वरान्तेषु भवादिषु ।

सत्यान्तेषु महान्तेषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ॥२०२

नम स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसन्धात्तु विभो ।

मद्भक्त इति ब्रह्मण्य सर्वन्तत् क्षन्तुमर्हसि ॥२०३॥

पशुघो के पतिके लिये और भूतो के पति के लिये नमस्कार है । प्रणव-
शब्द-यजु और सामवेद के लिये-स्वधा और सुख के लिये नमस्कार है ॥१६॥
वषट्कार तम के वास्ते और अन्धात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । सत्रा-घाता-
होना-हर्ता और क्षण के लिये नमस्कार है ॥१६४॥ भूत-भव्य-भव तुम्हारे
वालात्मा के लिये नमस्कार है । वसु-साध्य-रुद्रादित्यादिवन के लिये नमस्कार
है ॥१६५॥ विद्व-मरुत-देवात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । अग्निमोम-
श्रुतिवक्-इन्द्र-पशुमन्त्र और ओषध के लिये नमस्कार है ॥१६६॥ दक्षिणा
वभृष-यज्ञात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है । तप-मरु-स्याम-क्षम के लिये
नमस्कार है ॥१६७॥ अहिंस-अनोम-मुवेद-प्रतिष्ठ-सर्व प्राणियों के आत्मभूत-
योगस्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥१६८॥ पृथिवी-अन्तरिक्ष-दिव-मह-
जनस्तप-मरु और लोकात्मा के लिये नमस्कार है ॥१६९॥ अश्वत्त-महान्-
भूत-इन्द्रिय-तन्मात्र-महान्त तत्वात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥२००॥ निष्प-
मर्षलिङ्ग-मुद्यम-चेतन-द्युद-त्रिभु और निष्पात्मा तुम्हारे लिये नमस्कार है
॥२०१॥ तीनो लोको मे-स्वरान्तो मे-अवादिम-सत्यान्तो मे और चारो महान्तों
मे तुम्हारे लिये नमस्कार है । हे विभो ! मैंने इस स्तोत्र में जो भी मद् और
अमन् कहा है ऐसे तुम्हारे लिये नमस्कार है । मेरा भक्त है—ऐसा जानकर हे
ब्रह्मण्य ! वह सब क्षमा करने के साथ योग्य होत है ॥२०२-२०३॥

प्रकरण ६०—विष्णु माहात्म्य कीर्तन

एवमाराध्य देवेक्षमीशान नीललोहितम् ।

ब्रह्मेति प्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

वाक्यस्य गात्र सस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भव ।

निनामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत् ॥२॥

ततः सोऽन्तर्हिने तस्मिन् देवेशानुचरे तदा ।
 तिष्ठन्ती प्राञ्जलिभूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥३॥
 यस्य त्व सुभगे का वा दुःखिते भवि दुःखिता ।
 महता तपसा युक्त किमर्थं मान्जुगोपसि ॥४॥
 अनया सतत भक्त्या प्रथयेण दमेन च ।
 स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥५॥
 किमिच्छसि वरारोहे वस्ते काम. समृध्यताम् ।
 त ते संपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥६॥
 एवमुक्ताऽऽब्रवीदेनं तपसा शानुमहंसि ।
 शिर्वीपित मे ब्रह्मिष्ठ त्व हि वेत्थ यथातथम् ॥७॥

श्री मूतनी ने कहा—इस प्रकार से देवों के ईश नीललोहित ईशान की आराधना करके उसके लिये ब्रह्म इष्ट भावसे अत्यंत दुष्सा या और हाथ जोड़कर बोला ॥१॥ महादेव ने परम प्रीति युक्त होकर अपने हाथ से धुक्काचार्य के शरीर का स्पर्श किया था और पूर्ण रूप से दर्शन देकर फिर वह वहाँ पर ही घन्टझाँन होगये थे ॥२॥ इसके पश्चात् देवेशानुचर उसके घन्टहिस होजाने पर वह सामने खड़ी हुई जयन्ती से प्राञ्जलि होकर यह बोला—॥३॥ हे मुभगे ! तू किती की है और कीन है अथवा दुःखित होरही है ? महान् तपसे युक्त मुझको तू किम प्रमोदन के लिये रक्षा करती है ? ॥४॥ इस तेरी निरन्तर होने वाली भक्ति से—प्रथम—दमन और स्नेह से हे मुश्रोणि ! हे वरवर्णिनि ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ॥५॥ हे वरारोहे ! तू क्या चाहती है और तेरी क्या कामना बड़ी हुई है ? मैं तेरे उस मनोरथ को पूर्ण करूँगा याहे भले ही वह कंसा भी दुर्लभ क्यों न हो ॥६॥ जब इस प्रकार से वह जयन्ती बड़ी गई तो उसने लुफ से कहा प्राप मेरे मनोरथ को तपोवत् से जानने के योग्य होने हैं । हे ब्रह्मिष्ठ ! प्राप मेरे शिर्वीपित को ठीक-ठीक जानते हैं ॥७॥

एवमुक्ताऽब्रवीदेना दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।
 माहेन्द्री त्व वरारोहे मदितार्थमिहागतं ॥८॥

मया सह त्व सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ।

अदृश्य सर्वभूतस्तु सप्रयोगमिहेच्छसि ॥६

देवेन्द्रानलवर्णाभि वरारोहे सुलोचने ।

इम वृणीष्व काम ते मत्तो वै बल्लुभापिणि ॥१०

एव भवतु गच्छामो गृहान् वै मत्तकाशिनि ।

ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभु ॥११

स तया सब सद्देव्या दश वर्षाणि भागशः ।

अदृश्य सर्वभूताना मायया सवृत्तस्तदा ॥१२

कृतार्थमागत दृष्ट्वा काव्य सर्वे दितेः सुता ।

अभिजग्मुर्गृह तस्य मुदितास्ते दिदृक्षुव ॥१३

गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या सवृत्त गुरुम् ।

दाक्षिण्य तस्य तद्बुध्वा प्रतिजग्मुर्मयागतम् ॥१४

जब जयन्ती ने इस तरह शुक से कहा तो उसने दिव्य चक्षु से देख कर इससे कहा—हे वरारोहे ! तू महेन्द्र की पुत्री है और मेरे हितके लिये ही यहाँ पर आई है ॥६॥ हे भामिनी ! हे सुश्रोणि ! तू मेरे साथ जोकि ममस्त प्राणियों से अदृश्य रहना, दश वर्ष तक सम्प्र योग की इच्छा करती है ॥६॥ हे देवेन्द्र ! मनल प्रभो ! हे वरारोहे ! हे मुन्दर नेत्री वाली ! हे बल्लुभापण करने वाली ! तब ही तू मुझसे इस कामना को प्राप्त कर ॥१०॥ हे मत्तकाशिनी ! ऐसा होवे भवगुहो को चले ! इसके अनन्तर अपने घर में आकर प्रभु शुक जयन्ती के साथ रहे ॥११॥ फिर वह उस देवी के साथ भागश दश वर्ष तक निवास कर रहे थे और उस समय वह समस्त प्राणियों के अदृश्य तथा माया में सवृत्त रहते थे ॥१२॥ समस्त दिनि के पुत्र दैत्य सपन्न होकर आये हुए काव्य को देखकर उसके घर में देखने की इच्छा रखते हुए परम प्रसन्न होकर गये थे ॥१३॥ वे सब वहाँ गये सो जयन्ती के द्वारा सवृत्त गुरु को उन्होंने जब नहीं देखा था तो उसके उस दाक्षिण्य को जान कर जैसे ही आये थे वापिस चले गये ॥१४॥

बृहस्पतिस्तु सख्यं ज्ञात्वा काव्यं चकार ह ।

पितृर्थं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥१५

बुद्ध्वा तदन्तर सोऽय दैत्यानामिव चोदित ।
 काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽमुरान्समभाषत ॥१६॥
 तत समागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान् ।
 स्वागत मम याज्याना सप्राप्तोऽस्मि हिताय च ॥१७॥
 अहं बोध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा ।
 ततस्ते रदृष्टमनसो विचार्यभुपपेदिरे ॥१८॥
 पूर्णकामस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके ।
 ययौ च समकाल स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥१९॥
 समयान्ते देवयानी सद्यो जाता मुता तदा ।
 बुद्धिं चक्रे ततश्चापि याज्याना प्रत्यवेक्षणो ॥२०॥

बृहस्पति ने तो यह जान लिया था कि हित की कामना व ली जयन्ती के द्वारा पिता के लिए काम्य को सफल किया गया है ॥१६॥ इसके अनन्तर वह जानकर दैत्यों की भाँति प्रेरित होकर काव्य के स्वरूप को धारण कर अमुरों से बोला ॥१६॥ फिर आये हुए उनमें बृहस्पति ने कहा—मेरे याज्य अर्पण यज्ञमालो का स्वागत है । मैं तुम्हारे सबके हित सम्पादन करने के लिये यहाँ आगया हूँ ॥१७॥ मैंने जो वही विद्या प्राप्त की है उसे आप लोगो को सबको बताऊँगा । हमके प्रसन्न वित्त वाले वे सब अमुर विद्या ग्रहण करने के लिये उपस्थित हुए थे ॥१८॥ उस समय में दश वर्षित्व समय में पूर्ण काम सद्योत्पन्न मति वाला समकाल ही मैं वहाँ गया था ॥१९॥ समय के अन्त में तब देवयानी मुता मद्य उत्पन्न हुई और इसके पश्चात् याज्यों के प्रत्यवेक्षण करने के काम में अपनी बुद्धि की थी ॥२०॥

देवि गच्छामहे द्रष्टुं तव याज्यान् सुचिस्मिते ।
 विभ्रान्तप्रेक्षिते साध्व त्रिवर्णयितलोचने ॥२१॥
 एवमुक्त्वाऽब्रवीद्देवी भज भक्तान् महाप्रत ।
 एष ब्रह्मन् सता धर्मो न धर्मं लोपयामि ते ॥२२॥
 ततो गत्वामुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता ।
 वञ्चितान् काव्यरूपेण वेधसाऽमुग्धमब्रवीत् ॥२३॥

काव्य मा तात जानीध्व एष ह्याङ्गिरसो भुवि ।
 वञ्चिता वत यूयं वै मयि शक्ते तु दानवा ॥२४॥
 श्रुत्वा तथा ब्रूवाणन्त सम्भ्रान्ता दितिजास्तत ।
 प्रेक्षन्ते स्म ह्य भो तत्र सितासितशुचिस्मिती ॥२५॥
 सम्प्रमूढा स्थिता. सर्वे प्रापद्यन्त न विश्विन ।
 तनस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्ताम् पुनरब्रवीत् ॥२६॥
 प्राचाव्यो वो ह्यह काव्यो देवाचाव्योऽयमङ्गिरा. ।
 अनुगच्छन्त मा सर्वे त्यजन्त वृहस्पतिम् ॥२७॥

श्री गुरु ने कहा—हे देवि । हे शुचिस्मिता बानी ! तेरे माग्यो को
 देवने के लिये अब जाने हैं हे विभ्रान्त प्रेक्षित वाली । हे मावि । हे त्रिवर्णि-
 यन लोचने हम चन्ते हैं ॥२१॥ जब इस प्रकार देवी ने कहा गया तो वह
 बानी हे महाजन । अपने भक्तो को देखो । हे ब्रह्मन् । यह मरुदुषो का धर्म
 होता है और मैं आपके धर्म का सोप नहीं करूंगी ॥२२॥ मूनजी ने कहा—
 इसके पश्चात् घुक्ताचार्य ने जाकर भमुंगे को देवा जोकि परम धीमान् देवो के
 प्राचार्य वृहस्पति के द्वारा वञ्चिन किये गये थे और काव्य के स्वरूप को धारण
 करके यह प्रवञ्चना की थी । तब वेधा भमुंगे से बोले ॥२३॥ हे तात ! मुझे
 ही मयार्थ में काव्य समझी यह तो भूमि में अगिरा का पुत्र वृहस्पति है । हे
 दानवो ! आप लोग समर्थ मेरे रहते हुए वञ्चिन किये गये हो ॥२४॥ उस तरह
 से बीनते हुए उनका वचन सुनकर उग समय में दिनि के पुत्र सब बहुत ही
 भ्रान्ति में पूर्ण होगये थे । तब वे वही उन समय में उन दोनों को जो मित्र
 एवं अग्नि शुचिस्मिता बाने थे उनको देख देग रहे थे ॥२५॥ वे सब सम्प्रमूढ
 होन हुए स्थित होयस और किसी निगुंय पर नहीं प्राप्त हुए । इसके अनन्तर
 उनके प्रष्ट रूप से मूढ़ हो जाने पर काव्य ने उनसे पुन कहा ॥२६॥ आपका
 प्राचार्य मैं हूँ और यह अङ्गिरा देवाचार्य है । आप सब मेरा अनुपमन करो
 और इस वृहस्पति का त्याग कर दो ॥२७॥

एवमुक्तामुरा. सर्वे तावुभौ समवेदत ।

तदाऽमुरा विनोपन्तु न व्यजानन्त्योर्द्वयो ॥२८॥

बृहस्पतिरुग्रचेतानसम्भ्रान्तोऽयमङ्गिरा ।
 माध्वोऽहं यो गुरुरेत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पति ॥२६॥
 रा मोहयति रूपेण मामवेनेयं योऽमुरा ।
 श्रुत्वा तस्य ततस्ते वं समन्धार्यवचोऽब्रुवन् ॥२७॥
 अथप्रो दश वर्षाणि सततं शास्ति वं प्रभुः ।
 एष वं गुरुरस्मात्प्रमन्तरेऽमुरय द्विज ॥२८॥
 ततस्ते दानवा सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
 वचनं जगृह्मस्तस्य चिराम्यासेन माहिता ॥२९॥
 ऊबुस्तममुराः सर्वे क्रुद्धाः सरसन्नोचनाः ।
 अथह गुरुरहितेऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरु ॥३०॥
 भार्गवोऽङ्गिरसो वाय भवत्वेवंप नो गुरुः ।
 स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम् ॥३१॥
 एवमुक्त्वामुरा सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् ।
 यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तस्महद्विषम् ॥३२॥

इस तरह से बड़े गये सब अमुर उन दोनों को देखने लगे । तब अमुरों ने उन दोनों में विशेषता कुछ भी नहीं जानी थी ॥२६॥ बृहस्पति ने इन अमुरों से कहा—यह अंगिरा है और मेरा स्वरूप हमने पारण कर लिया है ऐसा इसे बृहस्पति समझो । हे दैत्यो ! जो तुम्हारा गुरु है वह मैं ही वाच्य हूँ ॥२६॥ हे अमुरो ! यह वह है जो मेरे रूप से आपको मोहित कर रहा है । इनके पश्चात् उन्होंने श्रवण कर और उसके अर्थ वचन को भली भाँति विचार कर के बोले ॥३०॥ इसने दश वर्ष तक निरन्तर प्रभु ने हमको शिक्षा दी है । इसी हेतु से यही हमारा गुरु है और यह द्विज धन्तरेऽम्बु है ॥३१॥ इसके अनन्तर वे समस्त दानव प्रणिपात एवं अभिवादन करने चिरकाल से मोहित होते हुए उसके अर्थात् बृहस्पति के वचन को श्रवण करने लगे थे ॥३२॥ समस्त अमुर सात नेत्रों वाले परपन्त क्रुद्ध होते हुए उससे बोले—यह हमारे हित में गुरु है तुम चले जाओ, तुम हमारे गुरु नहीं हो ॥३३॥ चाहे भार्गव हो अथवा आङ्गिरस हो हमारा यह ही गुरु है । हम इनके ही निदेश में ही स्थित हैं, तुम जाओ अब

भलाई इसी में है कि अपने चले जाने में विलम्ब मत करो ॥३४॥ इस प्रकार
शुरू से समस्त अमुरों ने बहुरार के बृहस्पति को ही प्राप्त हुए थे । वे प्रतिपन्न
नहीं होते हैं जब उमने उनका महान् हित कहा था ॥३५॥

चुषोप भागंवस्तेषामवलेपेन वै तदा ।

बोधिता हि मया यस्मान्न मा भजत दानवा ॥३६॥

तस्मात् प्रनष्ट सजा वै पराभवङ्गमिव्यय ।

इति व्यावृत्त्य तान् काव्यो जगामाय यथागतम् ॥३७॥

शास्त्राऽभिघस्तान्मुरान् काव्येन तु बृहस्पतिः ।

कृतार्थः स तदा दृष्टः स्व रूप प्रत्यपद्यत ।

बुद्ध्वाभ्युरास्तदा भयान् कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥३८॥

ततः प्रनष्टे तस्मिन्ने विभ्रान्ता दानवास्तदा ।

अहो धिग्विचिता स्मेह परस्परमथाश्रुवन् ॥३९॥

पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् ।

दग्धाश्चैववोपयोगाच्च स्वेस्वे चार्थेषु मायया ॥४०॥

ततोऽमुरा परिभ्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः ।

प्रहनादमघ्नन् कृत्वा काव्यस्यानुगम पुनः ॥४१॥

तब तो भागवत गर्व से उन अमुरों पर अत्यन्त क्रोधित हुए । मैं उन्हें
मूख समझाया तो भी दानव मुझको नहीं भजते हैं ॥३६॥ इस कारण से सजा
नष्ट करने वाले निगन्देह के पराभव को प्राप्त होगे । काव्य ने इस तरह ये वचन
उन अमुरों में कहे और जैसे ही वह प्राये थे चले गये ॥३७॥ काव्य के द्वारा
अभिघस्त अमुरों को बृहस्पति ने जानकर अपने आपको परम सत्य समझते
हुए आपन्न भयान्न होकर अपने ही स्वप्न को प्राप्त हुए । तब अमुरों को भ्रष्ट
जानकर कृतार्थ हुए अन्तर्धान होगये थे ॥३८॥ इसके बाद उनके प्रनष्ट होने पर
उन समय दानव विभ्रान्त होगये और वे आपस में कहने लगे कि हम लोगों को
पिताकार है पात्र बनित होगये हैं ॥३९॥ पीछे में हम विमुक्त होगये और वेधा
के द्वारा हम ताड़ित हुए हैं । और अपने-अपने उपयोग से हम अर्थों में माया से

दग्ध होगये हैं ॥४०॥ इसके अनन्तर देवों से परिपुस्त अमुर प्रह्लाद को प्राण करके दीधना बाने होकर काव्य के अनुक्रम को पुन गये ॥४१॥

ततः काव्य समासाद्य अभितस्थु र्वाङ्मुखाः ।

ठानागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥४२॥

मयापि बोधिता काले यतो मानाभिनन्दय ।

ततस्तेनावलेपेन गता यूय पराभवम् ॥४३॥

प्रह्लादस्तमपोवाच गान् त्व त्यज भार्गव ।

स्वान् याज्यान् भजमानाश्च भक्ताश्चैव विशेषत ॥४४॥

त्वया पृष्टा वय तेन देवाचार्येण मोहिता ।

भक्तानहसि नस्त्रातु ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा ॥४५॥

यदि नस्त्व न बुरूपे प्रसाद भृगुनन्दन ।

अपघ्नानास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम् ॥४६॥

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्व कार्ष्णेनानुक्म्पया ।

एवमुक्तोऽजुनीतः स स्मृत बोधन्ययच्छत ॥४७॥

उवाचेदस्य भेनव्यं न गन्तव्य रसातलम् ।

अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽयं प्राप्नो वो मयि जम्भति ॥४८॥

इसने अनन्तर काव्य के समीप न जाकर नीचे की ओर मुल बाने होने हुए बैठ गये । उन याज्यों को फिर आये हुए देखकर काव्य उनसे बोले ॥४२॥ मेरे द्वारा भनी भाँति समझाये हुए भी तुम लोगो ने समय पर जिस कारण से अभिनन्दन नहीं किया था उमी हेतु के फल से तुम अभिमान के वश होकर पराभव की प्राप्ति हुए हो ॥४३॥ इसके उपरान्त प्रह्लाद ने उनसे कहा—हे भार्गव । आप सब गान को परित्याग कर दीजिएगा और अपने याज्यों को जो यजमान हैं और विशेष रूप से भक्त हैं अङ्गीकार कीजिएगा ॥४४॥ आपन जब पूछा था उस समय हम उस देवाचार्य बृहस्पति के द्वारा मोहित होगये थे । अब दूर की सम्झी दृष्टि से सभी बात जानकर हम भक्तों की रक्षा करने के भाव योग्य होते हैं ॥४५॥ हे भृगु नन्दन ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं होते हैं तो हम सब आपके द्वारा अपघ्नान् हावे हुए आज ही रसातल में प्रवेश कर जायेंगे ॥४६॥

मृतजी ने कहा—काय ने यथा तत्त्व को सब कुछ जानकर करुणा और कृपा से इस तरह कहे जाने पर बहुत अनुनय किया हुआ होकर तथा स्तुत होने हुए उसने जो यमुरो पर बड़ा भारी क्रोध हो रहा था उसको त्याग दिया ॥४७॥ और वह यह बोला—इरा मत और रमातल को भी नहीं जाना चाहिए । मेरे जाग्रत रहते हुए भी यह कुछ अवश्यभावी अर्थ ही था जोकि आप लोगों को प्राप्त होगया है ॥४८॥

न शनयमभ्यया कर्तुं दिष्ट हि धनवत्तरम् ।

सज्ञा प्रनष्टा या बोध्य काम ता प्रनिलम्प्यथ ॥४९॥

प्राप्त पर्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत ।

मरप्रसादाच्च पुष्पाभिभुङ्क्त नैलोक्यमूर्ज्जितम् ॥५०॥

पुगाक्ष्यो दश संपूर्णो देवानाकम्प्य मूर्धनि ।

तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥५१॥

सार्वाणिके पुनस्तुभ्य राज्यं किल भविष्यति ।

लोकानामोद्भवो भवो पीत्रस्तव पुनर्बलि ॥५२॥

एव किलमहं प्रोक्तं पीत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् ।

तथाऽष्टतेषु लोकेषु तपोऽस्य न किलाभवत् ॥५३॥

यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसन्धिता ।

तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सार्वणिकेऽन्तरे ॥५४॥

देवराज्यं वलेर्भाष्यमिति मामोद्भवोऽब्रवीत् ।

तस्माददृश्यो भूतानां कालावाङ्क्षी स तिष्ठति ॥५५॥

प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा ।

सम्मात्रिस्तृक्स्त्वं वै पर्यायं महं माकुम ५६

अब अन्यथा नहीं किया जा सकता है क्योंकि भाग्य सबसे अधिक देन-
वान् होता है । आज जो आप लोगों की मज्ञा प्रनष्ट हुई उसको फिर कामना
पूर्वक प्राप्त करलोगे ॥४९॥ भाग्यका पर्याय काल प्राप्त होगया है—यह ब्रह्मा ने
कहा—और मेरे प्रवाद में इन उज्जित नैलोक्य का भाग्य लोगों ने भोग किया
है ॥५०॥ देवों की आज्ञान्त करके उनके मूर्धों पर संपूर्ण दश पुगाक्ष्य होगया

है । उतने ही काल तक ब्रह्मा ने राज्य बोना था ॥५१॥ सावर्णिक मनु के समय में फिर तेरे लिये राज्य होगा । तुम्हारा पौत्र बलि फिर साक्षी का ईश्वर होने वाला होगा । ५२॥ ब्रह्मा के द्वारा स्वयं तेरा पौत्र इस तरह से मुझे बहा गया है । तथा आहरण किये गये लोको में इसका तप निश्चय ही नहीं हुआ था ॥५३॥ जिस कारण से इसकी प्रवृत्तियाँ कामो को अभिमन्वित नहीं थी इससे प्रसन्न होने वाले घत्र ने सावर्णिक धन्तर में दिया है ॥५४॥ ईश्वर ने मुझमें कहा है कि बलि का देवराज्य होगा । इससे भूनों को अदृश्य वह काल की आकाङ्क्षा रखने वाला स्थित है ॥५५॥ स्वयम्भू ने परम प्रसन्न होकर तेरे लिये भगवत्त्व को प्रदान किया है इसलिये निस्तुक् तू पर्याप्त को सहन कर और वैचैन मत हो ॥५६॥

न च शक्य मया तुम्य पुरस्ताद् विसर्पितुम् ।
 ग्रहणा प्रतिपिद्धोऽस्मि भविष्य जगता प्रभो ॥५७॥
 इमो च शिष्यो द्वौ मह्य तुल्यावेती बृहस्पते ।
 दैवतं सह सरब्धान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥५८॥
 एवमुक्तास्तु दंतेया काव्येनाविलष्टकर्मणा ।
 ततस्ताम्या ययु साढं प्रह्लादप्रमुखास्तदा ॥५९॥
 अवश्यम्भावमर्थरथं श्रुत्वा शुक्राक्ष दानवाः ।
 सकृदाशसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम् ॥६०॥
 दक्षिता सायुधा सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ।
 अथ देवासुरान् दृष्ट्वा सग्रामे समुपस्थितान् ॥६१॥
 ततः सवृत्तसन्नाहा देवास्तान् समयोधयन् ।
 देवासुरे ततस्तस्मिन् वर्तमाने शत समा ।
 अजयन्नमुरा देवान् भग्ना देवा अगन्त्रयन् ॥६२॥
 पण्डामार्कप्रभाव न जानीयस्त्व मुरंवेयम् ।
 तस्माद्यज्ञ समुद्दिष्य कार्यं चात्महितञ्च यत् ॥६३॥
 तज्ज्ञानाद्वृतावेतो कृत्वा जेष्यामहेऽमुरान् ।
 अथोपामन्त्रयन् देवा पण्डामार्की तु तावुभौ ॥६४॥

मुझमें मेरे लिये पहिले विमर्षण नहीं किया जा सकता है ब्रह्मा के द्वारा मैं प्रतिपिद्ध किया हुआ हूँ हे प्रभो । क्योंकि ब्रह्माजी समस्त भविष्य में होने वाली बातों को जानते हैं ॥१७॥ वे दो सिष्य मेरे लिये बृहस्पति के तुल्य हैं देवों के साथ मरग्य आप सबको धारण करेंगे ॥१८॥ अकलिष्ट वर्मा वाव्य के द्वारा हम तरह-कहे गये दिति के पुत्र उस समय थे सब जिनमें प्रह्लाद प्रमुख थे उन दोनों के साथ उस समय चले गये थे ॥१९॥ दानवों ने सुक्राचार्य गुरु से अवश्यभाव धर्मत्व को मुनिकर वाव्य के द्वारा आपित जय को एकवार कहते हुए जा रहे थे ॥२०॥ दक्षिण और आयुधों से मुमजित उन्होंने देवों का समाह्वान किया । हमके पश्चात् सखाम भूमि में उपस्थित असुरों को देखकर मधृत सन्नाह देवगण ने उनसे वहाँ आकर युद्ध किया था । उस देवानुर सखाम में जो लगा-तार मौ वर्ष तक चरता रहा था असुरों ने देवों को जीत लिया था और भग्न हुए देवों ने विचार किया था ॥२१-२२॥ देवों ने कहा—हम असुरों के द्वारा पण्डामक का जो प्रभाव है उसे नहीं जानते हैं हमसे यज्ञ का उद्देश्य करके और जो धर्ममहित हो उसे ही करना चाहिए ॥२३॥ सो इन दोनों को जाना-हुए करके असुरों को जीत लेंगे । हमने उपरात दयमण ने उन दोनों पण्डामाओं को उपामन्त्रित किया था ॥२४॥

यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्वजतममुरान् द्विजौ ।
 ग्रहं त वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ॥२५॥
 एव तत्पजतुस्ती तु पण्डामावौ तदासुरान् ।
 तनो देवा जय प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ॥२६॥
 देवानुरान् पराभाव्य पण्डामावौ विपागमन् ।
 वाव्यगापाभिभूताश्च ह्यनाधाराश्च ते पुन ॥२७॥
 वध्यमानाम्नदा देवैर्विविशुस्ते रसातलम् ।
 एव निरुद्धमास्ते वै कृतं शक्रेण दानवा ।
 ततः प्रभृति शापेन भृगुनेमित्तिवेन च ॥२८॥
 जज्ञे पुन पुनर्विष्णुर्जज्ञे च मिथिले प्रभु ।
 कर्तुं धर्मव्यवस्थानमथर्म्मस्य च नागनम् ॥२९॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽमुरा न व्यवस्थिताः ।

मनुष्यवध्यास्तान् सर्वान् ब्रह्मा व्याहारयत् प्रभुः ॥७०॥

धर्माभारायणस्तस्मात् सम्भूतश्चाक्षुपेऽन्तरे ।

यज प्रवतंयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥७१॥

हे द्विजो ! हम आप दोनों को यज्ञ में बुलायेंगे मरुत अमुरो को छोड़ दो । अथवा हम प्रहृ को दानवों को जीत कर ग्रहण कर लेंगे ॥६५॥ इस तरह से उस समय में उन दोनों पराक्रमी ब्राह्मणों ने अमुरो को त्याग दिया था । इसके पश्चात् देवना जप को प्राप्त होगये और दानव सब पराभूत होगये थे ॥६६॥ देवामुरो को पराभूत कराके पराक्रामाक आगये थे किन्तु वे काव्य के शाप से अभिभूत और फिर वे निराधार होगये थे ॥६७॥ तब उस समय में देवगणों के द्वारा वध्यमान होते हुए वे अमुर रसातल में प्रवेश करने लगे थे । इस तरह से उद्यमहीन उन अमुरो के समूह इन्द्र के द्वारा बेकार कर दिये गये थे । तब से लेकर वे भृशु निमित्तक आप से पूर्ण प्रभावित होगये थे ॥६८॥ भगवान् विष्णु ने बार बार यज्ञों के शिथिल हो जाने पर धर्म की व्यवस्था करने के लिए तथा अधर्म का समूलोन्मूलन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ॥६९॥ जो अमुर प्रह्लाद के निदेश में स्थित नहीं रहे थे उन सबको प्रभु ब्रह्मा ने मनुष्यों के द्वारा वध्य करने के मोक्ष बताया था ॥७०॥ चाक्षुप अन्तर में धर्म से नारायण सम्भूत हुए थे और वैवस्वत अन्तर में चैत्य में उन्होंने यज्ञ को प्रवृत्त कराया था ॥७१॥

प्रादुर्भावि तदान्यस्य यहाँ वासीत् पुरोहित ।

अतुष्यन्तु युगास्यायामापन्नेष्वमुरेष्वथ ॥७२॥

सम्भूत स समुद्रान्तर्हिरण्यवशिपोर्वधे ।

द्वितीयो नरसिहोऽभूद्भूद्र मुरपुरम्सर ॥७३॥

बलिसस्येषु लोवेषु त्रेताया सप्तमे युगे ।

देत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥७४॥

सक्षिप्यात्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुररसरम् ।

यजमानन्तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुननन्दन ।
 द्विजो भूत्वा शुभे काले बलि वैरोचनम्पुरा ॥७५
 अत्र लोचयस्य भवान् राजा त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम् ।
 दातुमर्हसि मे राजन् विक्रमास्त्रीनिति प्रभु ॥७६
 दशमीत्येव त राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् ।
 वामनन्त च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥७७
 स वामनो दिव स्र च पृथिवी च द्विजोत्तमा ।
 त्रिभिः ऋषेर्विश्वमिदं जगदाकामत प्रभु ॥७८
 अत्यरिष्यत भूतारमा मास्वर स्वेन तेजसा ।
 प्रकाशयन् दिशः सर्व्वां प्रदत्तञ्च महायया ॥७९

इसके उपरान्त चतुर्थी युगाब्दा में अमुगो के आगम हुआ पर उस समय
 मध्य के प्रादुर्भाव होने पर ब्रह्मा ही पुनर्हित हुए थे ॥७२॥ शिरस्यक्षत्रिपु के
 षष्ठ में वह समुद्र के मध्य में सम्भूत हुए थे । द्वितीय मुर पुरुष्मर दश नरसिंह
 दृष्टा था ॥७३॥ मत्स्य युग में भेगा में लोकी के बलियुग्य होने पर दैत्यो के
 द्वारा तीन लोको को आक्रान्त कर लेने पर तृतीय वामन के रूप में अवतीर्ण
 हुए थे ॥७४॥ बृहस्पति के पुरस्सर अथवा म आने आगम मधुसूत करके अदिति
 के कुल लन्दन न दैत्यो के स्वामी बलि को यज्ञदान दवाया था । स्वयं तब द्विज
 होकर शुभ समय पहिल वैशेवन क्षत्रि के पास पहुँचे थे । ७५॥ और राजा बलि
 ने वामन देव ने सब आश्रम के स्वरूप में जाकर कहा—आप तीनो साक्षा के
 राजा हैं । आपमें सभी कुछ प्रतिष्ठित है अर्थात् आपकी पाम सभी कुछ है । ह
 राजन् ! प्रभु आप मुझे तीन पैद भूमि को दान देन में योग्य होने हैं ॥७६॥
 उस समय में वैरोचन राजा बलि ने उनसे यह वचन कहा—हाँ मैं आपकी
 तीन पैद भूमि का दान देना हूँ । और उस आश्रम का वामन (श्रीराम) जानकर
 स्वयं अनुमुदिन दृष्टा था ॥७७॥ हे द्विजगणो ! उस वामन देव ने दिव-प्रापाम
 और पृथिवी को तीन ही पैदो में प्रभु न हम विश्व ममत्त जगत् को आश्रम
 कर दिया था ॥७८॥ उस भूमि के आश्रम ने अवन नत्र में आश्रम को भी

और दिशामित्र को पुरस्कार करने वाला छटा भवनार था ॥६०॥ चौबीसवे मेवाद्युग मे पुरोहित बमिष्ठ के द्वारा श्रीराम हुए थे । यह दत्तत्रय महाराज के पुत्र श्री राधक रावण के लिये अर्घ्य ददाश्रीव के वध करने के लिये सातवी अवतार हुआ था ॥६१॥ अष्टाईशवे युग मे द्वापर मे पराक्षर से विष्णु का आठवी अवतार हुआ था । इसके पश्चात् बालकृत्य पुरस्कार श्री वेद व्यास ने जन्म ग्रहाण किया था ॥६२॥ उसी प्रकार से नवम कल्प ऋषि का पुत्र अग्नि से विष्णु का अवतार हुआ था ॥६३॥

अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो दशौ ।

श्रीडते भगवान् लोके बान् श्रीडनकैरिव ॥६४

न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदन ।

पर परममेतस्माद्विश्वरूपाय विद्यते ॥६५

अष्टाविंशतिमे तद्दद्वापरस्याशसङ्क्षये ।

मष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुवृष्टिकुले प्रभुः ॥६६

कतुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।

मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥६७

प्रविष्टो मानुषी योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम् ।

विहारार्यं मनुष्येषु सान्दीपनिपुर सरम् ॥६८

यत्र कसञ्च दातवञ्च द्विविदञ्च महामुरम् ।

अरिष्टं वृषभञ्चैव पूतना केचिन्न ह्यम् ॥६९

नाग कुलयापीड मल्नराजगृहायिवम् ।

दैत्यान् सानुपदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥१००

चमुदेव से देवता मे द्रष्टा और मार्ग को पुरस्कार करने वाला अवतार हुआ था जो अप्रमेय सर्वात् बुद्धि मे ग जाने के योग्य और नियोज्य था । त्रिम अवतार मे कामचर वशी भगवान् बाल स्वल्प मे स्थित होते हुए सोन म श्रीडन को अर्घ्य लिनानो के कीडा किया करने हैं ॥६४॥ यह महाबाहु मधुसूदन भगवान् प्रमा का विषय नहीं हो सकता है । इस निश्चय के परम पर कोई भी नहीं है ॥६५॥ अष्टाईशवे उन द्वापर युग के घात के मलय के समय मे धर्म के

नष्ट हो जाने पर तब समय में प्रभु विष्णु ने वृष्णिगो के कुल में अपने जन्म को ग्रहण किया था ॥६६॥ भगवान् विष्णु ने विनष्ट धर्म को स्थापित करने की व्यवस्था करने के लिये श्रीर महान् दुष्ट असुरों का नाश करने के हेतु योगात्मा ने अपनी योग माया से ममस्त प्राणियों को मोहित करते हुए इस मानुषी योगि में प्रवेश किया था और वह अन्ध होते हुए ही भ्रमण्डल में विचरण करते हैं । मन्दोपनि के पुरस्सर मनुष्यों में बिहार करने के लिये ही उनमें जन्म लिया था ॥६७६॥ जहाँ पर कस-शास्त्र-द्विदिद महासुर-परिह-वृषभ-पूतना-हयकेशी-कुबलयापीड हाथी-मत्तराजबृहाधिव इन सब मानुष देह में स्थित दैत्या की धीरेधीरे न निहत् किया था ॥६८-१००॥

धिष्ण वाहुसहस्रञ्च बाणस्माद्भुतकर्मण ।

नरकञ्च हत सङ्ख्ये यवनञ्च महाबल ॥१०१॥

रहतानि च महीपाना सर्वरत्नानि तेजसा ।

दुराचाराञ्च निहता पार्थिवा ये रमातले ॥१०२॥

एते लोकहितायै प्रादुर्भावा महात्मन ।

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्यादिलेष्टे भविष्यति ॥१०३॥

कल्किर्विष्णुयज्ञा नाम पाराशर्यं प्रनापवान् ।

दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुर सर ॥१०४॥

अनुवपन् सर्वसेना हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्नृत्त दत्तसहस्रशः ॥१०५॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विष क्वचित् ।

उदीच्यान्मध्यदेशाञ्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥१०६॥

तथैव दाक्षिणात्याञ्च द्रविडान् सिंहलै सह ।

गान्धारान् गारवाञ्चैव गहलवान् यवनाञ्छरान् ॥१०७॥

तुषारान् वर्वराञ्चैव पुलिन्दान् दरदान् खसान् ।

सम्पाकानन्धकान् रुद्रान् विराताञ्चैव स प्रभुः ॥१०८॥

प्रवृत्तचक्रो बलवान् स्लेच्छानामन्तवृद्धवली ।

अदृश्य सर्वभूताना पृथिवी विचरिष्यति ॥१०९॥

अत्यन्त अद्भुत कर्म करने वाले बाण के सहस्र बाहुआ का छेदन किया था और युद्ध भूमि में नरकासुर का वध कर दिया था तथा महान् बलवान् यवन का हनन किया था ॥१०१॥ अपने तेज से महीपालो के समस्त रत्नों का हरण कर लिया था । जो रसातल में दुष्ट आचार वाले राजा थे वे सब मार डाले थे ॥१०२॥ महान् आत्मा बान विष्णु भगवान् के समस्त प्रादुर्भाव स्रोतों के हित-सम्पादन के हुए थे । विष्णु का यह अवतार इस ही युग में सन्ध्या से सिलह्र तक क्षीण हो जाने पर होगा ॥१०३॥ विष्णुयश नाम वाला प्रतापवाला पाराशर्य कल्कि वधम साधनत्वय पुरस्सर भक्तभूत है जोकि भविष्य में होने वाला है ॥१०३॥ आयुध ग्रहण करने वाले सहस्रों की सख्या में प्राह्मणों में युक्त धर्मान् धिरे हुए कल्कि न हाथी-अश्व और रथों से सज्जित समस्त सेना को अनु कर्षित कर दिया था ॥१०५॥ जो राजा अत्यन्त धार्मिक नहीं थे और जो नहीं धर्म में द्वेष करने वाले लोग थे । उत्तर दिशा में होने वाले—मध्य देश के रहने वाले तथा जो किन्ध्यापरांतिक थे और उसी प्रकार से दाक्षिणात्य एवं मिहर्वों के साथ द्रविड थे गान्धार-पारद-पल्लव-यवन-शङ्ख-तुषार-बर्बर-मुलिद-दरद-क्षम-कम्पङ्क-अन्धक-कद्र और किरात इन सबको उस प्रभु ने ध्वस्त करने के लिये जो चक्र को चलाने वाले—महाबल वाले—बली और म्लेच्छों को भक्त करने वाले थे, समस्त प्राणिनों के द्वारा न देखने के योग्य होने हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१०६ में १०६॥

मानव स तु सज्जे देवम्याशेन धामत ।

पूर्वजन्मनि विष्णुर्य प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥११०

माश्रेण वै चन्द्रमम पूर्णं कलिमुगेऽभवत् ।

इत्येतास्तस्य देवस्य दश सम्भूतय स्मृता ॥१११

त त बालश्च कार्यश्च तत्तदुद्दिश्य वारणम् ।

भूतेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनी प्रपत्स्यते ॥११२

पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समा ।

विनिघ्नन् सर्वमृताति मानुषानेव सर्वत्र ॥११३

कृत्वा योजावशेषान्नु मही क्रूरेण वस्मंशा ।
 मसातीयत्वा वृषमान् प्रायजन्मानघाम्मिवान् ॥११४
 ततः स चे तदा वञ्चिञ्चरितार्यं समैनिव ।
 समंशा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुन स्वयम् ११५
 द्रवस्मान् कुपितान्योन्य भविष्यन्ति च मोहिताः ।
 क्षारयित्वा तु तान् सर्वान् भायितार्येण चोदितान् ॥११६
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्टा प्राप्स्यति मानुसः ।
 ततो ध्यनीते वन्धो मु गामान्यं सह मैनिवः १११७
 नृपैर्यय विनष्टेषु मदा यप्रग्रहा प्रजा ।
 रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्या चान्योन्यमाहवे ॥११८

परस्पररहताश्वासा निराक्रन्दा. मुदु.गिता. ।

पुराणि हित्वा ग्रामाश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहा ॥११६॥

प्रनेष्टुं तिवर्माश्च नष्टधर्माश्चमास्तथा ।

हत्वा अल्पायुषश्च वनीवत् इमे स्मृताः ॥१२०॥

सरित्पवंतसेविन्यः पत्रमूलफलाक्षनाः ।

वीर पद्माजिनधरा. सङ्कुर घोरमास्थिता ॥१२१॥

अल्पायुषो नष्टवात्ता बहुबाधाः सुदुःखिताः ।

एव वष्टमनुप्राप्ताः कणितन्यश्चके तदा ॥१२२॥

प्रजा. क्षय प्रयास्यन्ति साद्वं कलियुगेन तु ।

क्षीणो कलियुगे तस्मिन् प्रवृत्ते च कृतं पुनः ॥१२३॥

प्रपत्स्यन्ते यथान्याय स्वभावादेव नान्यथा ।

इत्येतत् कीर्तितं सर्वं देवासुरविषेष्टितम् ॥१२४॥

यदुक्ताप्रसङ्गेन महदो वेधएव यत् ।

तुवमोस्तु प्रवक्ष्यामि पुरोद्-होरनोस्तथा ॥१२५॥

परस्पर में रहताश्वास-निगक्रन्द मर्षात् निरन्तर खदन करने वाले और परम दुःखित लोग नगरे को और ग्रामों को त्याग करके सब समान निष्परिग्रह हो जायेंगे ॥११६॥ सब लोग ऐसे हो जायेंगे जिनका श्रुतिधर्म नष्ट होगया है और आधम धर्म नष्ट होजाने वाले हैं—जद में बहुत ही छोटे-छोटे प्रायु वाले एकतरह जगसी जीवों की भाँति वे रहे गये हैं ॥ ११७ ॥ मही और वर्षाती पर रहने वाले—पत्ते—मूल और पत्ती को बखल करने वाले—वीर पत्र तथा चर्म की धारण करने वाले और पदम घोर सङ्कुर पर्वतों में आस्थित हो जायेंगे ॥११८॥ बहुत ही छोटी उम्र वाले नष्ट वास्ता वाले—बहुत बाधाओं से युक्त—अत्यन्त दुःखित होते हुए उस समय में कलियुग की सन्धि के प्रसंग में सब लोग कष्ट को प्राप्त होने वाले होंगे ॥१२२॥ इस घोर कलियुग के साथ ही समस्त प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायगी । उस कलियुग के क्षीण होजाने पर और पुनः कृत युग की प्रवृत्ति होगी है ॥१२३॥ जब वृत्त युग प्रवृत्त होगा तो फिर न्याय के अनुसार स्वभाव से ही सब ठीक होजायेंगे और कोई भी मन्दरा नहीं

हेगा । यह समस्त देवाभुर विचेष्टित का वर्णन कर दिया है ॥१२४॥ अब मैं
मनुवन के प्रमङ्ग से आन सोमो से महान् बँध्याव यद्य तुर्वन्तु-पूरु-द्रुह्यु घोर
अनु का यद्य वर्णन करूँगा ॥१२५॥

प्रकरण ६१—अनुपङ्गपाद समाप्ति

तुर्वन्तोस्तु सुतो बह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः ।
गोभानोस्तु सुतो घोरस्त्रिसानुरपरजित ॥१॥
करन्धमस्त्रिसानोस्तु भरुत्तस्तस्य चात्मजः ।
अन्यस्त्वधीक्षितो राजा भरुत्त कथितः पुरा ॥२॥
अनपत्यो भरुत्तस्तु स राजासीदिति श्रुतम् ।
दुष्टुत पौरव चापि सर्वे पुत्रमवरूपयन् ॥३॥
एव ययातिनापेन जराया मक्रमेण तु ।
तुर्वन्तो पौरव वश प्रविशेद पुरा किल ॥४॥
दुष्टुतस्तु दायादः शरुयो नाम पार्थिव ।
शरुपारु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजा ॥५॥
पाण्ड्यश्च केरलश्च चालु कुत्यस्तथैव च ।
तेषां जनपदा कुत्या पाण्ड्याश्चोला सकेरला ॥६॥
द्रुह्योस्तु तनयो वीरौ बभ्रुः सेतुश्च विधुती ।
मरुद मेनुपुत्रस्तु याभवो रिपुरुच्यते ॥७॥
यौवनाश्वेन समिति वृच्छेण निहतो यली ।
युद्धं गुमहदासोत्तु मामान् परि चतुर्दश ॥८॥

श्री गूतजी ने कहा—तुर्वन्तु का पुत्र बह्नि या घोर बह्नि का आत्मज
गोभानु हुआ था । फिर गोभानु का पुत्र अपराजित तथा घोर त्रिसानु नाम वाला
उपरम हुआ था ॥१॥ त्रिसानु का पुत्र करन्धम हुआ और उसका पुत्र भरुत्त
नामक उत्पन्न हुआ । पहिले भरुत्त राजा अन्यस्त्वधीक्षित कहा गया था ॥२॥

वह मरुत राजा सन्तान हीन था—ऐसा सुना गया है । दुष्कृत भीर पौरव ने भी सबने पुत्र को वल्पित किया था ॥३॥ इस प्रकार से ययाति के शाप से जरा के सक्रमण से तुवंसु से पौरव वंश में पहिले प्रवेश किया था ॥४॥ दुष्कृत का दायाद धर्षात् पुत्र राक्षस नाम वाला राजा हुमा और राक्षस से जनार्णव हुमा । उसके चार पुत्र हुए थे ॥५॥ पाण्ड्य—केरल—बाल और कुल्य ये उन चारों के नाम थे । उनके जनपद भी कुल्य—पाण्ड्या—बोल और सकेरल इसी नामों से हुए थे ॥६॥ इन्द्र के दो वीर पुत्र हुए थे जो बभ्रु और सेतु इन नामों से प्रसिद्ध थे । सेतु का पुन भरद्व या भीरु बभ्रु का रिपु इम नाम से कहा जाता है ॥७॥ यौवनाश्व के द्वारा समिति बठिनाई से बली सिंहत हुमा था और चौदह मास तक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था ॥८॥

अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः ।
 ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ॥९॥
 गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिना वरा ।
 गान्धारपुत्रो घर्मस्तु घृतस्तस्य सुताऽभवत् ॥१०॥
 घृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ।
 प्रचेतस पुत्रशत राजानः सर्वे एव ते ॥११॥
 म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीची दिशमाश्रिता ।
 अनो पुत्रा महात्मानस्तथः परमधार्मिकाः ॥१२॥
 सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च ।
 सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृप ॥१३॥
 कालानलस्य घर्मात्मा मृञ्जयो नाम धार्मिकः ।
 सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जय ॥१४॥
 जनमेजयो महा सत्त्व पुरञ्जयसुताऽभवत् ।
 जनमेजयस्य राजपुत्रमहाशालोऽभवन्नृपः ॥१५॥
 आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयज्ञा दिवि ।
 महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ॥१६॥

प्रसन्न वा दायाद गान्धार नाम वाला नृप हुआ था । जिसके नाम में
एक बहुत बड़ा देव प्रसिद्ध है । ६॥ गान्धार देव में उत्पन्न होने वाले पौंडो में
परम श्रेष्ठ गुरग होते हैं । गान्धार का पुत्र धर्म या भीर उसका मृत घृन नामक
हुआ था ॥१०॥ घृन के दुर्दम ने जन्म लिया भीर दुर्दम ने जन्म लिया भीर
दुर्दम का पुत्र प्रचेता हुआ । प्रचेता के एक ही पुत्र हुए थे भीर के सभी राजा
हुए थे ॥११॥ ये सब स्तेच्छ राजों के स्वामी हुए थे और उनसे उत्तर दिशा का
आश्रय लिया था । धनु के परम धार्मिक महान् आत्मा बाने तीन पुत्र हुए थे
॥१२॥ उन तीनों के नाम समानर-गङ्गा भीर पर पक्ष थे । समानर के यही
उत्तरा पुत्र परम विद्वान् बानानन नृप हुआ था ॥१३॥ बानानन का धर्मात्मा
गृञ्जय नाम वाला धार्मिक पुत्र हुआ था । गृञ्जय का पुत्र भीर पुरञ्जय ?
राजा हुआ था ॥१४॥ महान् मलय वाला जनमेजय पुरञ्जय का पुत्र उत्पन्न
हुआ था । गङ्गावि जनमेजय का पुत्र महानाव नाम वाला नृप हुआ था ॥१५॥
यह राजा दिवलोच प्रसिद्धि पक्ष बाना इन्द्र के समान हुआ था । उस महा-
घाता मरामना नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ था ॥१६॥

मत्तदीपेद्वगो राजा चक्रवर्ती महायशा ।
महामनाम्तु पुत्री ढी जनयामाम विधुनी ॥१७॥
उनीनरस्य धमज तितिशुश्रूष धार्मिकम् ।
उनीनरस्य परमस्तु पक्ष राजपियशजा ॥१८॥
मृगा कृमी नवा दर्वा पश्चमी च ह्यपङ्गनी ।
उनीनरस्य पुत्रास्तु पक्ष तामु कुनोदहा ।
तपगा से मुमहता जातमृद्धाध धार्मिका ॥१९॥
मृगायाम्तु मृग पुत्रा नवाया नय एव तु ।
कृम्या नृमिस्तु दर्वाया मुपतो नाम धार्मिक ॥२०॥
ह्यपङ्गनीमृगत्रापि निविगोनीनरो द्विजा ।
निषे निषपुर म्यात योषेयस्तु मृगस्य नृ ॥२१॥
नरस्य नरराष्ट्रान् कृमेस्तु कृमिना पुगे ।
मुपराष्ट्र तप्या कृष्टा निविपुत्रातिशोषन ॥२२॥

शिवेस्तु शिवय पुत्राश्चत्वारो लोकसम्भता ।

वृषदभं सुवीरस्तु केकयो भद्रवस्तथा ॥२३॥

तेषाञ्जनपदा स्फीता. केकया माद्रकास्तथा ।

वृषदभं सूचिदर्भास्तिथिस्तो शृगुत प्रजा ॥२४॥

यह महामना सातो छोपो का स्वामी महान् यश वाला भक्तवर्ती राजा हुआ था । उस महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को जन्म दिया था अर्थात् उत्पन्न किया था ॥१७॥ एक का नाम धर्म का ज्ञाता उशीनर था और दूसरा परम धार्मिक तिलक्षु हुआ था । उशीनर की राजपत्नियों के यश में उत्पन्न होने वाली पाँच पत्नियाँ थी ॥१८॥ उनके नाम मृगा-हृमी-नवा-दर्वा और पाँचवीं दशहती था । उशीनर के उन पत्नियों में कुलके उद्वहन करने वाले पाँच पुत्र हुए थे । वे महान् तपसे जातवृद्ध और धार्मिक हुए थे ॥१९॥ मृगा के मृग पुत्र था और नवा के नव-इस नाम वाला ही पुत्र हुआ था । हृमी के हृमि और दर्वा के धार्मिक सुवत पुत्र हुआ ॥२०॥ हे द्विजगणो ! दृषदभी का पुत्र भी भीशीनर शिवि हुआ था । शिवि का शिवपुर और मृग का मोदेय पुर हुए ॥२१॥ नव का नवराष्ट्र था और हृमी की हृमिला नाम वाली पुत्री थी । सुवत की वृष्टा पुरी थी । भव शिवि के पुत्रों को बतलाया जाता है उन्हें समझ सों ॥२२॥ राजा शिवि के शिवय नाम के चार पुत्र लोक सम्भत हुए थे जिनके नाम— वृषदभं—सुवीर—केकय और भद्रक य थे ॥२३॥ उनके बड़े ही विस्तृत (फँले हुए) जनपद केकय—माद्रक—वृषदभं और सूचिदर्भ इन नामों वाले हुए थे । भव आगे तिथिषु के सन्तान के विषय में थक्का करो ॥२४॥

तंतिथुरभवद्राजा पूर्वस्यान्दिशि विद्युत् ।

उसद्रभो महाबाहुस्तस्य हेम मुनोऽभवत् ॥२५॥

हेमस्य मुतपा जज्ञे मुत मुतयशा बली ।

जातो मनुष्यमोन्या वं क्षीण वशे प्रजेष्मया ॥२६॥

महायोगी स तु बलिर्वदो य स महामना ।

पुत्रानुत्पादयामास चानुर्बन्धनरान् भुवि ॥२७॥

अङ्ग स जनयामास वङ्गं सुहृत् तथैव च ।
पुण्ड्र कलिङ्गश्च तथा बालेय क्षत्रमुत्थते ॥२८॥
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा प्रभो ।
यलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वरा प्रीतेन धीमते ॥२९॥

महायोगित्वमायुश्च कल्पायु परिमाणकम् ।
सप्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मं चैव प्रभावना ॥३०॥
त्रैलोक्यदर्शनञ्चैव प्राधान्य प्रमत्ते तथा ।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वाद्यं दर्शनम् ॥३१॥
चतुरो नियतान् वरान् त्वा वी स्यापयितेति च ।
इत्युक्तो विभुना राजा बलि शान्तिम्परा ययौ ॥३२॥

तिथिषु पूर्वं दिना मे परम श्रमिद्ध राजा हुमा था । उपास्य महाबाहु
उसका हेम पुत्र हुमा था ॥२५॥ हेम का सुतपा बली मुखयया उत्पन्न हुमा था ।
जो बल के क्षीण होजाने पर प्रजा की इच्छा से मनुष्य की योनि में उत्पन्न हुमा
था ॥२६॥ ब्रह्मर्षि जो था वह महामना और महायोगी था । उसने भूमि में
चारों वरों के करने वाले पुत्रा को उत्पन्न किया था ॥२७॥ उसने अङ्ग-वङ्ग-
मुह-पुण्ड्र-कलिङ्ग तथा बालेय को जन्म दिया था जो क्षत्र रहे जाते हैं ।
बालेय और ब्राह्मण उम प्रभु के वंश करने वाले थे । बुद्धिमान् बलि के लिये
प्रसन्न होने वाले ब्रह्मा ने वह वान दिये थे ॥२८॥ वे वरदान थे थे—महान्
योगि व वा होना और कल्पायु परिमाण वाली आयु-सप्राम म अजेय रहना
और धर्म में प्रकट भावना का रहना ॥३०॥ त्रैलोक्य का दर्शन और प्रसव में
प्राधान्य-बल में अनुपम होना तथा धर्म के तत्त्वाद्य का दर्शन—ये वरदान देने
हुए ब्रह्माजी ने कहा था तुम नियत चार वरों का स्थापित करने वाले हो-
इम तरह मे विभु क द्वारा अब कहा गया तो राजा बलि को परम शान्ति प्राप्त
हुई थी ॥३१-३२॥

बालेन महता विद्वान् म्ब वै स्थानमुपायन ।
तेषा जनपदा स्फीना वङ्गाङ्गमुह्मवास्तथा ॥३३॥

पुण्ड्रा कलिङ्गाश्च तथा तेषा वशं निदोधत ।
 तस्य ते तनया सर्वे क्षेत्रजा मुनिमम्भवा ।
 सम्भूता दीर्घतमस मुदेष्णाया महोजसः ॥३४
 बृहद्भानो सुतो जज्ञे नाम्ना राजा बृहन्मना ।
 तस्य पत्नीद्वय चासीच्चैद्यस्योभे च ते सुते ॥३५
 यशोदेवी च सत्या च ताम्या वशस्तु भिद्यते ।
 जयद्वयस्तु राजेन्द्रो यशोदेव्या व्यजायत ॥३६
 ब्रह्मक्षत्रातर सत्याविजयो नाम विद्युत ।
 विजयस्य धृति पुनस्तस्य पुनो धृतव्रत ॥३७
 धृतव्रतस्य पुनस्तु सत्यकर्मा महायगा ।
 सत्यकर्ममुतश्चापि सूतस्त्वधिरयस्तु वं ॥३८
 स कर्णं परिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतज ।
 एतद्व कथित सर्वं कर्णं यद्व प्रचोदितम् ॥३९
 एतेऽङ्गनशजा, सर्वे राजान कर्त्तिता मया ।
 विस्तरेणानुपूर्व्या च पूरोस्तु शृणुत प्रजा ॥४०

बहुत काम के पश्चात् वह विद्वान् अपने स्थान में आगया था । उनके
 अनपद बहुत ही विम्बुन एक विशाल थे जिनके नाम घङ्ग-वङ्ग-मुहुर-पुण्ड्र-
 कलिङ्ग थे । अब उनके वध की जाननी । उनके वे सब पुत्र मुनियाँ में जन्म-
 ग्रहण करने वाले क्षेत्रज हुए थे और महान् भोज वाले दीर्घतम मुदेष्णा म
 उत्पन्न हुए थे ॥३३-३४॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम
 बाबा राजा हुआ था । उनकी दो पत्नियाँ थी और वे दोनों बेटों की पुत्रियाँ
 थी ॥३५॥ एव का नाम यशोदेवी था और दूसरी का नाम सत्या था । इन
 दोनों से वध भिद्यमान होता है । राजेन्द्र जयद्वय यशोदेवी की पुत्रि से समुत्पन्न
 हुआ था । सत्या से ब्रह्म क्षत्रान्तर विजय नाम बान्ना विद्युत हुआ था । विजय
 के पुत्र धृति हुआ और उसका पुत्र धृतव्रत हुआ था ॥३६-३७॥ धृतव्रत का
 मामा ब्रह्म यग बान्ना सत्यकर्मा नाम बान्ना उत्पन्न हुआ था । सत्यकर्मा का
 पुत्र अधिरथ मून उत्पन्न हुआ था ॥३८॥ उसने कर्ण का परिग्रहण किया था

घनुमद्गुणद ममाहि]

इमीलिये वरुं मूनज हुमा था । यह मव कणुं के विषय मे प्रेरित किया गया
यह मैने बरुंन कर दिया है ॥३६॥ ये अङ्ग के वश मे उत्पन्न होने वाले सभी
राजा मैने बतना दिये हैं । अब विस्तार के साथ और आनुपूर्वी के अनुमार पूर
की मन्त्रि का मुम सब मुभसे श्रवण करो ॥४०॥

पूरो पुत्रो महाबाहू राजासीजनमेजय ।
अविद्वस्तु सुतस्तस्य य प्राचीमजयदिशम् ॥४१॥
अविद्वत् प्रवीररतु मनस्सुरभवत्सुत ।
राजाथो जयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥४२॥
दायादस्तस्य चाप्यामोद धुर्नाम महीपति ।
धुन्धोर्वहुगवी पुत्र सञ्जातिस्तस्य चात्मज ॥४३॥
सञ्जानेयथ रौद्रादवस्तस्य पुत्राश्रितवत् ।
रौद्रादवस्तस्य घृणाच्या वै दशाप्सरसि मूनव ॥४४॥
रजेयुश्च वृत्तेयुश्च वधेयु स्थण्डिनेयु च ।
घृत्तेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्चैव सप्तम ॥४५॥
धर्मेयु मघ्नतेयुश्च वनेयुर्दशमस्तु म ।
रद्रा मूद्रा च मद्रा च शुभा जामलजा तथा ॥४६॥
तला मला च सप्तता या च गापजना स्मृता ।
तथा नाग्नरमा चैव रत्नवूटी च तादृशी ॥४७॥
आश्रयो वशनस्तासा भर्ता नाम्ना प्रभाकर ।
अनादृष्टस्तु राजर्षी रिवयुर्म्यस्य चात्मज ॥४८॥

श्री मूनजी ने कहा—पूर का पुत्र महान् बाहूवा बाता राजा जनमेजय
था । उगता आत्मज अविद्व नाम धारी हुआ था त्रिगने पूर दिशा का विजय
किया था ॥४१॥ अविद्व म प्रहृष्ट वीर मनस्यु नाम वाला मुन हुआ था और
मनस्यु पुत्र जयद नाम धारी राजा हुआ था ॥४२॥ उम जयद का दायाद
भर्ता उत्तराधिरारी पुत्र धुधु नामक महीपति हुआ था । धुधु राजा का पुत्र
बहुगवी नाम बाता हुआ और उम बहुगवी का पुत्र सञ्जाति नाम वाला समुत्पन्न
हुआ था ॥४३॥ सञ्जाति का पुत्र रौद्रादव नाम वाला समुत्पन्न हुआ था अब

उस रौद्रास्व के पुत्रों का भी ज्ञान प्राप्त करनी । रौद्रास्व के शुक में घृताची नाम वाली अप्सरा में दश पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥४४॥ उन दश पुत्रों के नाम—रजेयु—कृतेयु—वसेयु—स्थण्डिलेयु—घृतेयु—जलयु भीर सातवाँ स्थलेयु था ॥४५॥ धर्मदु—मन्त्रतेयु तथा दशवाँ वनेयु था । रुद्रा—शूद्रा—मद्रा—शुभा—वाम—मजा—तला—खला ये सात भीर गोपजला बही गई थी तथा तामरसा भीर बैसी ही रत्नकूटी थी ॥४६-४७॥ वक्ष से धार्येय प्रमाकर नाम वाला उनका स्वामी था । अनरह राजर्षि रिवेयु उनका पुत्र था ॥४८॥

रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्या यं तक्षकात्मजा ।

यस्या देव्या स राजर्षी रन्ति नाम त्वजीजनत् ॥४९॥

रन्तिर्नारि सरस्वस्या पुत्रानजनयच्छुभान् ।

अमु तथा प्रतिरथ ध्रुवश्च वातिधार्मिकम् ॥५०॥

गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा ।

धुर्यं प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत् सुत ॥५१॥

मेधातिथि सुतस्तस्य यस्मात् काण्ठायना द्विजा ।

इतिनानुयमस्यासीत् कन्या साजनयत्सुतान् ॥५२॥

अमु सुदयित पुत्र मलिन ब्रह्मवादिनम् ।

उपदात् ततो लेभे चतुरस्तिवति सात्मजान् ॥५३॥

सुष्मन्तमय दुष्यन्त प्रवीरमनघन्तथा ।

चक्रवर्ती ततो जज्ञे दीप्यन्तिर्नृपसत्तम ॥५४॥

शकुन्तलाया भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् ।

दुष्यन्त प्रति राजान वागुवाचाशरीरिणी ॥५५॥

माता भक्षा पितु पुत्रो येन जात स एव स ।

भरस्व पुत्र दुष्यन्त सत्यमाह शकुन्तला ॥५६॥

रेतोधा पुत्र नयति नरदेव यमक्षयात् ।

स्ववास्य धाता गर्भम्य भावमस्था शकुन्तलाम् ॥५७॥

रिवेयु की ज्वलना — दम नाम वाली तक्षक पुत्री भार्या हुई थी । उस राजर्षि रिवेयु ने जिस ज्वलना देवी से रन्ति नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था

॥४६॥ नार रन्ति ने सरस्वी में शुभ पुत्रो को समुत्पन्न किया था । उन पुत्रो के नाम हैं—वसु—प्रतिरथ और अनिर्घामिक ध्रुव ॥४७॥ और गौरी विष्णुत कन्या थी जोकि मान्याता को शुभ माता हुई थी । प्रतिरथ का पुत्र ध्रुवं हुआ और उसका पुत्र कण्ठ नाम धारी हुआ ॥४८॥ उसका पुत्र मेघातिथि हुआ जिससे काण्डान द्वित्र हुए । इतिनानु प्रथ की कन्या थी उसने पुत्रों को जन्म दिया था ॥४९॥ वसु ने सुदयित पुत्र को जो मणिन, ब्रह्माद्री और उपशत था, प्राप्त किया । इसके पश्चात् उसने चार पुत्रों की प्राप्ति की ॥५०॥ सुधन्त इसके उपरान्त दुध्यन्त—प्रवीर और घनघ ये उनके नाम थे । इसके अनन्तर सुधन्त चक्रवर्ती दीप्यन्ति उत्पन्न हुआ था ॥५१॥ शकुन्तला में भरत ने जन्म ग्रहण किया था जिसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ है । राजा दुध्यन्त से मूर्तिमती बाणो ने कहा था ॥५२॥ मातर भस्त्रा पिता का पुत्र है, जिससे उत्पन्न हुआ है वह वही है, पुत्र का भरण करो, शकुन्तला दुध्यन्त से उत्पन्न कहनी है ॥५३॥ हे नरदेव । यम क्षय से रेतोषा पुत्र को प्राप्त करता है और तुम इसके गर्भ के धाता हो, शकुन्तला का अपमान मत करो ॥५४॥

भरतस्त्रिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् ।

नाभ्यनन्दच्च तान् राजा नानुरूपान्ममेत्युत् ॥५५॥

ततस्ता मातरः कुट्टा पुत्राग्निन्युर्यमक्षयम् ।

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वित्तं पुत्रजन्म तत् ॥५६॥

ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पते ।

सङ्का मितो भरद्वाजो मरुद्भिः ऋतुभिर्विभु ॥५७॥

तत्रैवोदाहरन्तीद भरद्वाजस्य धीमत ।

जन्मसङ्क्रमणार्थं च मरुद्भिर्भरताय वै ॥५८॥

भरतस्तु भरद्वाज पुत्र प्राप्य तदाब्रवीत् ।

प्रजाया सत्कृताया वै कृतार्थोऽहं त्वया विभो ॥५९॥

पूर्वन्तु वितथ तस्य कृतं वै पुत्रजन्म हि ।

तत्र स वितथो नाम भरद्वाजस्तथाऽभवत् ॥६०॥

तस्माद्विध्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात् क्षत्रियोऽभवत् ।

द्विमुख्यायननामा स स्मृतो द्विपितृवस्तु वै ॥६४॥

ततोऽथ वितथे जाते भरत स दिव ययौ ।

वितथस्य तु दायादो भुवमन्युर्वभूव ह ॥६५॥

महाभूतोपमाश्वासश्चत्वारो भुवमन्युजा ।

बृहत्क्षनो महावीर्यो नरो गाग्रश्च वीर्यवान् ॥६६॥

नरस्य साकृति पुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ ।

गुरुवीर्यस्त्रिदेवश्च साकृत्स्यायवरो स्मृतौ ॥६७॥

दायादाश्चापि गाग्रस्य शिनिवद्धात् वभूव ह ।

स्मृताश्च ते ततो गाग्र्या क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥६८॥

भरत ने तीन स्त्रियों में भी पुत्रों को उत्पन्न किया था किन्तु राजा ने उनका अभिनन्दन नहीं किया था ये मेरे अनुरूप नहीं हैं ॥६८॥ हमने अनन्तर माताएँ बहुत क्रुद्ध हुई थीर उन्होंने पुत्रों को यम क्षय को प्राप्त कर दिया था । हमके उपरान्त उस राज्य का वह पुत्र जन्म विनय हो गया था ॥६९॥ हमके पदवान् मरुतो ने बृहत्क्षति में वह पुत्र तारर क्रतु मरुतो ने विष्णु भरद्वाज को सक्रामित किया ॥६०॥ वहाँ पर ही धीमान् भरद्वाज का यह मरुतों के द्वारा भरत के लिये जन्म का सक्रामण उदाहृत करने हैं ॥६१॥ भरत ने तो भरद्वाज को पुत्र प्राप्त करके उस समय कहा—हे विभी ! मेरी प्रजा के सहन हो जाने पर आपन मुझे कृतार्थ किया है ॥६२॥ उसका पहिले तो पुत्र जन्म विनय कर दिया था । हमके पदवान् वह भरद्वाज विनय नाम वाला हो गया था ॥६३॥ हमने दिव्य भरद्वाज ब्राह्मण्य से क्षत्रिय हो गया था तब वह द्विमुख्यायन नाम वाला भीरु द्विपितृक कहा गया है ॥६४॥ फिर उस विनय के उत्पन्न होने पर वह भरत दिवलोच को चला गया था । विनय का दायाद (पुत्र) भुवमन्यु हुआ था ॥६५॥ महाभूत के समान भुवमन्यु में जन्म ग्रहण करने वाले पुत्र चार हुए थे । उन चारों के नाम बृहत्क्षत्र-महावीर्य-नर और वीर्यवान् गाग्रस्य ये थे ॥६६॥ नर में पुत्र साकृति नामधारी हुआ था । उस साकृति के महान् घोष वाले दो पुत्र हुए थे जिनके नाम गुरुवीर्य और त्रिदेव ये थे जो गाग्रसारर रहे

गये हैं ॥६७॥ गच्छस्य जिनिरुद्ध मे बी दायाद हूँ और ये सात धर्म मे युक्त
दिशानि गाय्य बहे गये हैं ॥६८॥

महावीर्यमुनश्चापि भीमस्तस्मादुभय ॥
तस्य भार्या विद्याना तु सुपुत्रे वै मुतास्त्रय ॥६९॥
त्रयारणि वृत्तरिण तृतीय मुपुत्रे कपिम् ।
पुत्रे क्षत्रधरा ह्येते तयो प्रोक्ता महर्षय ॥७०॥
राधा साधनयो वीर्या दानोपेक्षा द्विजानय ।
मथिताद्विरम पक्ष घृहस्थस्य वदयति ॥७१॥
घृहस्थस्य दायाद मुहोषो नाम धामिक् ।
मुहोषस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ।
तेनेदं निमित्त पूर्वं नाम्ना वै हस्तिन पुत्रम् ॥७२॥
हस्तिनश्चापि दायादास्त्रय परमधामिक् ।
प्रजमीदो द्विमीदञ्च पुत्रमीदम्ययं च ॥७३॥
प्रजमीदम्य पुत्रान्तु शुभा शुभकुलोद्भवा ।
तपमोज्ज्वलं सुमहानो राज्ञो बुद्धस्य धामिक् ॥७४॥
भरद्वाजप्रसादेन भृगुश्च तस्य विस्तरम् ।
अजमीदस्य वैमिन्या वञ्छ समभवत्किम् ॥७५॥
मैथिलिधि मृतमृत्य तस्मात् वञ्छायना द्विजा ।
अजमीदस्य धूमिन्या जने घृह्णन्मुनेषु ॥७६॥

महावीर्य का पुत्र भी भीम नामक हुआ और उसने फिर उपशय हुआ
उसकी भार्या विद्याना नाम वाली से तीन पुत्रों का प्रभव किया था ॥६९॥ एक
का नाम त्रयारणि था, दूसरा वृत्तरिण और तृतीय कायं हुआ था । यदि वे
ये क्षत्र भर हूँ और उन दोनों के सहित कहें गये हैं ॥७०॥ राधा-साधनय,
वीर्य साधन मे युक्त दिशानि ये । धाद्विरम के पक्ष का घातक नेकर घृ-
हस्थ का वनवासि ॥७१॥ घृहस्थ का दायाद मुहोष नाम धारि परम धामिक्
था । मुहोष का भी दायाद हस्ती नाम वाला हुआ था । उसने ही यह हस्तिन
पुत्र को नाम मे पहिरे बनाया था ॥७२॥ हस्ती के भी तीन पुत्र समुत्पन्न हुए

ये जोकि परम धर्म के मानने वाले थे । उन तीनों के नाम भ्रजमीड-द्विमीड तथा पुष्टमीड ये थे ॥७३॥ भ्रजमीड के जो पुत्र हुए थे वे बहुत ही शुभ और कुल के उद्बृंहण करने वाले थे । सुमहान् तप के अन्त में वृद्ध राजा के धार्मिक हुए थे ॥७४॥ वे भृश्राज के प्रसाद से ही हुए थे अब उनका विस्तार का थवण करो । भ्रजमीड नाम वाले के वेशिनी में बरुठनाम धारी उत्पन्न हुआ था ॥७५॥ मेघातिथि नाम वाला उसका पुत्र था । उससे फिर बरुठायन द्विज उत्पन्न हुए थे ॥७६॥

वृहद्वसोवृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः ।

वृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य वृहद्वयः ॥७७॥

विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः ।

अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥७८॥

रुचिराश्वश्च वाव्यश्च रामो हृदधनुस्तथा ।

वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सराः ॥७९॥

रुचिराश्वस्य दायदः पृथुपेणो महायशः ।

पृथुपेणस्य पारस्तु पारानीपोऽय जशिवान् ८०

यस्य चैकशयश्चासीत् पुत्राणामिति न श्रुतम् ।

नीपा इति समाख्याता राजान सर्व एव ते ॥८१॥

तेषा वशकरः श्रीमान् राजासीत्कीर्तिवर्धनः ।

काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत् ॥८२॥

समरस्य परः पार सत्त्वदश्व इति त्रयः ।

पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृषुर्वभौ ॥८३॥

वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनह कमणा ।

जज्ञे सर्वगुणोपेतो विश्राजस्तस्य चात्मजः ॥८४॥

भ्रजमीड के धूमिनी में वृहद्वसु राजा ने जन्म ग्रहण किया था ॥७७॥

वृहद्वसु ने वृहद्विष्णु पुत्र हुआ था जो महान् बलवान् था उसका पुत्र वृहत्कर्मा हुआ और फिर उसका पुत्र वृहद्वय नाम वाला हुआ था । उसका धर्मार्थ वृहद्वय का तनय विश्वजित् हुआ और उसका सेनजित् चात्मज हुआ था । इसके उप-

रान्त किर सेनजित् के लोभ में परम प्रसिद्ध चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था ॥७५॥ उन चारों पुत्रों के नाम रविराज्य—काव्य—राम और हृदयगु ये थे । वरुण धावन्तक राजा था जिसके ये परिवत्सर हुए हैं ॥७६॥ रविराज्य का दायाद महान् यश वाला पृथुमेन था । पृथुमेन का पार हुआ और पार से नीप ने जन्म लिया था ॥७७॥ जिसके एक शत पुत्र हुए थे—वह हमसे मृता गया है । वे समस्त राजा भोग नीपा—नाम से समाख्यात हुए थे ॥७८॥ उनके दश बेटे करने भर्षात् चलाने वाला थीमान् बौत्तिवर्द्धन राजा हुआ था कान्धित्य में समर नाम वाला वह सबेह उमर हुआ था ॥७९॥ समर के दर पार और सत्वद ये तीन भारज हुए थे । ये समस्त पुत्र सर्वगुण गण से सम्पन्न थे । पार का पुत्र वृषु मुचोभिन् हुआ था ॥८०॥ वृषु का मुहनि नामक पुत्र यहाँ मुहनि वर्ष के द्वारा समस्त गुणों से युक्त हुआ था और उसका पुत्र विभ्राज नाम वाला हुआ था ॥८१॥

विभ्राजस्य तु दायादस्वगृहो नाम पार्थिव ।
 बभूव शुक्जामाता श्रुचीभर्ता महायशः ॥८२॥
 भगुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपा ।
 योगमूनु सुतस्तस्य विष्वक्सेनोऽभवन्पुत्रः ॥८३॥
 विभ्राजपुत्रा राजान् सुकृतेनेह वम्भणा ।
 विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ॥८४॥
 भल्ताटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हत ।
 भल्ताटस्य तु दायादो राजासीञ्जनमेजय ।
 उप्रापुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपा प्रणञ्जिता ॥८५॥
 परीक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजय ।
 श्रुतसेनस्य दायादो भीमसेनोऽपि नामतः ॥८६॥
 जहनुस्त्वजनयत्पुत्र मुरथ नाम भूमिपम् ।
 मुरथस्य तु दायादो वीर्ये राजा विदूरथ ॥८७॥
 विदूरथगुणश्चापि भावंभोम इति श्रुतिः ।
 सावंभोमाश्रयणेन भाराधिपस्य चान्मज ॥८८॥

आराधितो महासत्त्व अयुतायुस्तत स्मृत ।

अकाधनायुतायोऽन्तु तस्माद् देवतिथि स्मृत ॥६२॥

देवतिथेस्तु दायान् श्रेष्ठ एव बभूव ह ।

भीमसेनस्तथा श्रेष्ठाद्विभीषस्तस्य चात्मज ॥६३॥

द्विभीषमन्तु प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रय स्मृता ।

देवापि शान्तनुश्चैव बाह्वीवश्चैव ते त्रय ॥६४॥

विभ्राज का दायान् अगुह नामधारी राजा हुआ था । दुर्गा माता श्री श्री महादेव का भतीजा ॥६५॥ अगुह का दायान् (पुत्र) महादेव सपत्नी ब्रह्मरूप हुआ था और उसका तनय योग मूनु और उसका पुत्र विष्णु सेन नृप हुआ था ॥६६॥ विभ्राज के पुत्र सत्र यहाँ मृत्यु के बाद क द्वारा राजा हुआ थे । विष्णुसेन का पुत्र उदयसेन हुआ था ॥६७॥ उसका दायान् भिलाट का जिनने पहिले राजा का हनन किया था भिलाट का दायान् राजा जनमजय था । उसके लिए उग्रयुध ने समस्त नीपा प्रणष्ट कर दिया था ॥६८॥ श्री मूनुजी ने कहा—परीक्षित का दायान् जनमजय नाम वाला हुआ था । श्रुतसेन का पुत्र नाम स भीमसेन हुआ था ॥६९॥ जहनु ने मुरथ नाम वाला राजा पुत्र स रूप स उत्पन्न किया था । मुरथ का दायान् परम कीर राजा विक्रम हुआ था ॥७०॥ विक्रम का पुत्र स भीम था—ऐसी श्रुति है । सावभीम स जयलन उत्पन्न हुआ और उस जयलन का पुत्र आराध नाम वाला हुआ था ॥७१॥ आराध से अयुतायु हुआ था जो महादेव सत्त्व वाला कहा गया है । फिर उस अयुतायु का अक्रोधन पुत्र हुआ और उस अक्रोधन से देवतिथि पुत्र हुआ था ॥७२॥ देवतिथि का दायान् श्रेष्ठ नाम वाला हुआ था । श्रेष्ठ से भीमसेन की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र द्विभीष नामधारी हुआ था ॥७३॥ द्विभीष का पुत्र प्रतिप हुआ और उस प्रतिप के तीन पुत्र बह गये हैं । जिनके नाम देवतिथि-शान्तनु और बाह्वीव स तीन थे ॥७४॥

बाह्वीवस्य तु विज्ञेय सप्तबाह्वीद्वरो नृप ।

बाह्वीवस्य गुणश्चैव सोमदत्ता महायशा ॥७५॥

जज्ञिरे सोमदत्तात् भूरिभूरिथवा शतः ।
 देवापिस्तु प्रवव्राज वन धर्मपरीप्सया ॥६६॥
 उपाध्यायरतु देवाना देवापिरभवन्मुनि ।
 च्यवनोऽस्य हि पुनस्तु दृष्टवश्च महात्मन ॥६७॥
 गान्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् वं स महाभिप ।
 इमं चोदाहरन्त्यत्र इलोकं प्रति महाभिपम् ॥६८॥
 य य राजा स्पृशति वै जीर्णं समयतो नरम् ।
 पुनर्युवा स भवति तस्मात्ते शन्तनु विदुः ॥६९॥
 ततोऽस्य शन्तनुत्वं वै प्रजास्विह परिश्रुतम् ।
 स उपयेभे धर्मात्मा शन्तनुर्जाह्नवी नृप ॥१००॥
 तस्या देवव्रत भीष्म पुत्र सोऽजनयत्प्रभु ।
 तच्च भीष्म इति ख्यात पाण्डवानां पितामह ॥१०१॥
 काले विचित्रवीर्यन्तु शन्तनु जंनयत्प्रभुम् ।
 शन्तनोर्दयित पुत्र प्रजाहितकरम्प्रभुम् ।
 कृष्णार्द्धपायनश्च य क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥१०२॥
 धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुरश्चाप्यजीजनत् ।
 धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां मुपुवे शतम् १०३
 तेषां दुर्योधनां ज्येष्ठ सर्व्वक्षत्रस्य स प्रभुः ।
 माद्री राज्ञी पृथा चैव पाण्डाभार्य्यं बभूवतु ॥१०४॥

वाहलीक का पुत्र वाहलीश्वर नृप हुआ था । और वाहलीक का पुत्र
 महान् यश वाला सोमदत्त था ॥६५॥ सोमदत्त से भूरि-भूरिथवा और शत
 नाम वाल तीन पुत्र रत्न समुत्पन्न हुए थे । देवापि तो धर्म की इच्छा से वन में
 चला गया था ॥६६॥ देवापि मुनि वहीं वन में जाकर हाजमस्तु का उपाध्याय
 हुआ था । इसका पुत्र च्यवन और महान् आत्मा वाके का दृष्टक हुआ था
 ॥६७॥ गान्तनु तो राजा हुआ था वह महान् विद्वान् और महाभिप था । महा-
 भिप के प्रति महर्षि पर इल इलोक का उदाहरण किया करते हैं ॥६८॥ समय
 से जीर्ण जिस-जिस भी मनुष्य को राजा राजा किया करना है वह फिर धर्मे

उस वाद्वैव्य का त्याग कर युवा हो जाता है इसी में उसे शन्तनु बहा करते थे ॥६६॥ इनके पदवात् इसका शन्तनुत्व प्रजापति में यहाँ परिभूत है । उस शन्तनु राजा ने जोकि अत्यन्त घमस्मि या जाह्नवी के साथ विवाह किया था, अहनु राजा की पुत्री गङ्गा को जाह्नवी बहा जाता था ॥१००॥ उस प्रभु शन्तनु ने उस जाह्नवी में देवघत नाम वाले भीष्म पुत्र को उत्पन्न किया था । वह पाण्डवों का पितामह 'भीष्म'—इस नाम से ही प्रख्यात था ॥१०१॥ समय जाने पर शन्तनु ने विचित्र वीर्य पुत्र को उत्पन्न किया था । यह शन्तनु को परम प्रिय और प्रजा का हित करने वाले प्रभु पुत्र था । इस विचित्र वीर्य के क्षेत्र में कृष्ण द्वैपावन ने धृतराष्ट्र—पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था । धृतराष्ट्र से उनकी पत्नी गान्धारी में भी पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥१०२-१०३॥ उन एक ही पुत्रों में सबसे बड़ा सर्वेक्षक का प्रभु वह दुर्षोधन था । रानी माद्री और पृथा ये दो पत्नियाँ पाण्डु की हुई थीं ॥१०४॥

देवदत्ता मुतास्ताम्या पाण्डोरथं विजजिरे ।
 धर्म्मद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः १०५
 इन्द्राद्धनञ्जयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः ।
 अश्विन्या सह देवश्च नकुलश्चापि माद्रिजी ॥१०६॥
 पश्वं पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्या जजिरे सुता ।
 'द्रौपद्यजनमञ्जयेष्ठ शुतिविद्ध मुचिष्ठिरात् ॥१०७॥
 हिडम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम् ।
 काश्या पुनर्भीमसेनाञ्जज्ञे सर्व्ववृक सुतम् ॥१०८॥
 सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत ।
 करैमत्यान्तु वंश्या निरमित्रस्तु ताङ्गलिः ॥१०९॥
 सुभद्राया रथो पार्थादिभिमन्युरजायत ।
 उत्तरायान्तु वंश्या परीक्षितभिमन्युज ॥११०॥
 परीक्षितस्तु दायदो राजासीञ्जनमेजय ।
 ब्राह्मणान् स्थापयामास वै बाजसनेयिवान् ॥१११॥

असपत्न तदामर्षाद्विशम्पायन एव तु ।
 न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचन भुवि ॥११२॥
 यावत्स्थास्याम्यह लोके तावन्नेतत्प्रशस्यते ।
 अभित सस्थितश्चापि ततः स जनमेजय ॥११३॥
 पौण्ड्रमास्येन हविषा देवमिष्टा प्रजापतिम् ।
 विशाय सस्थितोऽपश्यत्तद्वधीष्ठा विभोर्मखे ॥११४॥

उन दोनों धनियो से देवों के द्वारा दिये हुए पाण्डु के धर्म में पुत्र समुत्पन्न हुए थे । धर्म से युधिष्ठिर—वायु से वृकोदर—इन्द्र से धनञ्जय जो इन्द्र के समान पराक्रमी था—अश्विनी कुमारों से सहदेव और माद्री ॥ जन्म लेने वाले न कुल ये दो पुत्र हुए थे ॥१०५-१०६॥ इन पाँचों पाण्डवों से पाँच ही द्रौपदी में पुत्र उत्पन्न हुए थे । द्रौपदी ने सबसे बड़ा पुत्र युधिष्ठिर से श्रुति विद्व नाम वाला समुत्पन्न किया था ॥१०७॥ दिगम्बा ने भीमसेन से घटोत्कच नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया था । काशी से भीमसेन का सर्वश्रेष्ठ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥१०८॥ सहदेव से विजया माद्री ने सुहोत्र नाम वाला पुत्र जन्माया था । करेमती वैद्या ने निरमित्र जाङ्गलि उत्पन्न हुआ ॥१०९॥ सुभद्रा ने रथी अभिमन्यु पार्यं धनुर्जय से समुत्पन्न हुआ था । वैराटी उत्तरा ने अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित उत्पन्न हुआ ॥११०॥ परीक्षित का दायाद राजा जनमेजय हुआ था । उसने बाजसनेयी ब्राह्मणों की स्थापना की थी ॥१११॥ तब अमर्ष से वैशम्पायन ने कहा—हे दुर्बुद्धे ! भूमि में यहाँ तेरा यह असपत्न वचन नहीं रहेगा ॥११२॥ मैं जब तक लोक में रहूँगा तब तक यह प्रशस्त नहीं होगा । चाहे सब प्रकार से वह जनमेजय सस्थित भी था ॥११३॥ पौण्ड्रमास्य हवि से प्रजापति देव का यजन करके और जानकर विभु के मुख में सस्थित होते हुए उनकी तरह अवीष्ट को देखा था ॥११४॥

परीक्षितनयश्चापि पौरवो जनमेजय ।
 द्विरश्वमेधमाहृत्य ततो बाजसनेयकम् ।
 प्रवर्त्तयित्वा तद्वह्निं त्रिस्तुर्वी जनमेजय ॥११५॥

सध्वंमश्वकमुन्याना खध्वंमङ्गनिवासिनाम् ।
 सध्वंश्च मध्यदेशाना त्रिखर्वी जनमेजय ।
 विपादाद् ब्राह्मणं साद्धर्ममिश्रस्त क्षय ययो ॥११६॥
 तस्य पुत्र शतानीको बलवान् सत्यविक्रम ।
 तत् सुत शतानीक विप्रास्तमभ्यपेचयत् ॥११७॥
 पुत्रोऽश्वमेघ दत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्यवान् ।
 पुत्रोऽश्वमेघदत्ताह्वै जात परपुरजय ॥११८॥
 अधिसामकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोऽय महायशः ।
 यस्मिन् प्रशासति मही युष्माभिरिदमावृतम् ॥११९॥
 दुराप दीयसन् वं त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् ।
 वर्षद्वय कुरुक्षेत्रे ह्यपहृत्या द्विजोत्तमा ॥१२०॥

परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेघ यज्ञों का ब्राह्मण करके
 इसके पश्चात् बाजननेव को प्रवृत्त कराकर सब जनमेजय प्रसन्ननिखर्वी होगया
 था ॥११५॥ मुख्य अश्वों की एक सब सख्या—अङ्गनिवासियों का एक सब और
 मध्य देशों का एक सब इस तरह से जनमेजय त्रिखर्वी हुआ था । विपाद से
 ब्राह्मणों के साथ अभिशस्त होता हुआ सब को प्राप्त हुआ था ॥११६॥ उसका
 पुत्र शतानीक था जो बहुत बलवान् और सत्य विक्रम वाला था । इसके पश्चात्
 ब्राह्मणों ने उस पुत्र शतानीक को राज्य पर अभिवेक कर दिया था ॥११७॥
 शतानीक का पुत्र अश्वमेघ दत्त बड़ा वीरवान् हुआ था । अश्वमेघ दत्त से
 परपुरजय पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥११८॥ यह महान् यन्त्रवाला साम्प्रत बहुत
 धर्मात्मा अधिसाम कृष्ण है जिसके भूमिपर प्रशासन करते पर तुम लोगों ने यह
 आहुत किया है । जोकि तीन वर्ष पणत बड़ा दुश्चर एवं दुराप यह दीय सन्
 है । हे द्विजोत्तमो ! दो वर्ष तक कुरुक्षेत्र में ह्यपहृती में हुआ था ॥११९ १२०॥

श्रोतु भविष्यमिच्छाम प्रजाना वं महामते ।

सूत साद्धर्मं नृपं भविष्य व्यतीत कीर्तित त्वया ॥१२१॥

यत्तु सस्थास्यते कृत्यमुत्पत्स्यन्ति च ये नृपा ।

वर्षाग्रतोऽग्निं प्रब्रूहि नामतश्चैव तान्मृपान् ॥१२२॥

काल युगप्रमाणञ्च गुणदोषान् भविष्यत ।
 सुखदुःखे प्रजानाञ्च घमंत कामतोऽर्थत ॥१२३॥
 एतत्सर्वं प्रसह्य धाय पृच्छता ब्रूहि तत्त्वत ।
 स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमता वर ।
 आचक्षते यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥१२४॥
 यथा मे कीर्तितं सर्वं व्यासेनाद्भुतकम्मणा ।
 भाष्य कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि तु ॥१२५॥
 अनागतानि सर्वाणि ब्रूवतो मे निबोधत ।
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु ये ॥१२६॥
 ऐलाश्र्वं च तथेदवाकून् सोद्युम्नाश्र्वं च पाथिवान् ।
 येषु सस्थाप्यते क्षेत्रगंदवाकवमिदं शुभम् ॥१२७॥
 तां सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान् नृपान् ।
 तेभ्य परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षित ॥१२८॥
 क्षत्रा पारशवा शूद्रास्तथा ये च द्विजातय ।
 अन्धा क्षका पुलिन्दाश्च तूलिका यवने सह ॥१२९॥
 कंदर्त्ताभीरश्वरा ये चान्य म्लेच्छजातय ।
 वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥१३०॥

श्रुण्विषो ने कहा—हे महात्मा मति वाले । अब हम लोग प्रजापति का पागे माने वाला भविष्यकाल सुना की उत्कट इच्छा करते हैं । हे सूत । आपने अब तक तो जो होमया और होरहा है वह हो बखन किबा है ॥१२१॥ जो कृत्त्व सन्धित होगा और जो राजा लोग उत्पन्न होंगे । उन समस्त राजाओं को वर्षाग्र से और नाम से बतनाइये ॥१२२॥ काल और युग का प्रमाण तथा होने वाले गुण एवं दोषों को बताइये । घम से और काम से प्रजापति ने सुख तथा दुःखों को भी बतनाइये ॥१२३॥ यह सब प्रसन्नान करके पूछने वाले हमको आप कृपा करके तार्किक रूप से बताइय । बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ इस तरह से मुनियों के द्वारा पूछे गये थी सूतजी ने जैसा भी हुषा जैसा देखा और जिस प्रकार से सुना था वह कहना आरम्भ कर दिया था ॥१२४॥ श्री सूतजी ने

कहा—शुद्ध कर्म करने वाले थी व्यासजी ने जिन तरह से मुझसे यह सब कहा था । भाव्य-कलियुग और मन्वन्तर उन सब भ्रमागतों को भुम्हसे जान लो । इनके आगे जो नृप होंगे उनको बताऊँगा ॥१२२-१२६॥ ऐसी को—इन्द्रकुम्भो को और सीतुम्भ राजाओं को जिनमें यह शुभ ऐश्वर्यजन क्षेत्र स्थापति किया जाता है उन सब भविष्य में घटित राजाओं का वर्णन करूँगा । और उनके आगे जो अन्य राजा लोग उत्पन्न होंगे ॥१२७-१२८॥ पारश्व क्षत्रियों का सन्तुष्ट तथा शूद्र और जो द्विजातिगण वे, अश्व-शफ-पुत्तिन्द-यवनो के साथ मूलिक-कैवल-प्रभीर-शबर और जो अन्य म्लेच्छ जाति वाले लोग इन समयस्त नृपों को वर्णन तथा नाम से बताऊँगा ॥१२९-१३०॥

अधिसामकृष्ण सोऽयं साम्प्रत पौरवानृपः ।

तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान् ॥१३१

अधिसामकृष्णपुत्रो निर्वन्त्रे भविता किल ।

गङ्गापारहते तस्मिन्नगरे नागसङ्घे ।

एकत्वा च तं सुवासञ्च कीशाम्ब्या स निवस्यति ॥१३२

भविष्यदुग्रस्तपुत्र उष्णाक्षित्रय स्मृतः ।

शुचिद्रवश्चित्ररपाद्भृतिमाञ्च शुचिद्रवात् ॥१३३

सुपेणो वै महावीर्यो भविष्यति महायशः ।

तस्मात्सुपेणाद्भविता सुतीर्थो नाम पार्थिव ॥१३४

एव सुतीर्थाद्भविता त्रिषक्षो भविता ततः ।

त्रिषक्षस्य तु दाम्यादो भविता वै सुखीवलः ॥१३५

सुखीवलसुतश्चापि भाव्या राजा पारप्लुतः ।

परिप्लुतसुतश्चापि भविता मुनयो नृपः ॥१३६

मेधावी मुनयस्याज भविष्यति नराधिपः ।

मेधाविनः सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ॥१३७

दण्डपाणेनिरामिनो निरामिनाश्च क्षेमकः ।

पञ्चविशानृपा ह्येते भविष्या पूर्ववशजा ॥१३८

अधिसाम कृष्ण वह यह साम्प्रत पीरवो का राजा है । उसके धन्व
 में भविष्य में उतने राजाओं का वर्णन करूँगा ॥१३१॥ अधिसाम कृष्ण का
 पुत्र निर्वक्र में होगा । नायस नामक उस नगर के यज्ञा के द्वारा अपहृत होजाने
 पर वह उसका निवास त्याग करके वीशाम्बी में निवास करेगा ॥१३२॥ उसका
 पुत्र उष्ण होगा और उष्ण से चित्ररथ होगा । चित्ररथ का पुत्र शुचिद्रय होगा
 और शुचिद्रय से वृत्तिमान् होगा ॥१३३॥ सुपेख निश्चय ही महान् यशवाला
 होगा । उस सुपेख का आत्मज सुतीर्थ नामधारी राजा होगा ॥१३४॥ सुतीर्थ
 से हव का जन्म होगा और फिर उससे त्रिचक्षु होगा । त्रिचक्षु का दायद सुखी-
 बन नाम वाला होगा ॥१३५॥ सुखीबल का पुत्र परिप्लुत नामक राजा होगा ।
 फिर परिप्लुत का पुत्र सुनय नाम वाला राजा होगा ॥१३६॥ सुनय का पुत्र
 मेघावी नामक राजा होगा और मेघावी का पुत्र दण्डपाणि नाम वाला जन्म
 ग्रहण करेगा ॥१३७॥ दण्डपाणि से निरामित्र होगा और निरामित्र से क्षेमक
 नाम वाला जन्म प्राप्त करेगा । ये पक्षीस राजा पूर्व वंशज होंगे ॥१३८॥

आत्रनुवशरलीकोऽय गीतो विप्रै पुराविदे ।

ब्रह्मज्ञस्य यो योनिर्गोशो देवपितृकृत ॥१३९॥

क्षेमक प्राप्य राजान सस्या प्राप्स्यति वै कलौ ।

इत्येव पीरवो वशो यथावदनुकीर्तितः ॥१४०॥

धीमत पाण्डुपुत्रस्य हार्जुनस्य महात्मन ।

भत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ॥१४१॥

वृहद्रथस्य दायदो वीरो राजा बृहत्क्षय ।

तन दाम सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्तन शयान् ॥१४२॥

वत्सव्यूहात्प्रतिप्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकर ।

यत्र माप्रतमध्यास्त प्रयोध्या नगरी नृप ॥१४३॥

दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशः ।

महदेवस्य दायदो बृहदशो भविष्यति ॥१४४॥

तस्य भानुरथो माध्य प्रनीताद्वयं तत्पुन ।

प्रनीताद्वयमुपभाषि मुप्रनीतो भविष्यति ॥१४५॥

एते ऐश्वराकवा प्रोक्ता भवितार कली युगे ।

बृहद्बलान्वये जाता भवितार कली युगे ।

धूराश्र कृतविद्याश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रिया ॥१५२॥

गुरुधन का पुत्र विन्दर नामधारी परन्तप होगा । और फिर गिन्दर का पुत्र बृहत् ही महान् अन्तरिक्ष होगा ॥१५३॥ अन्तरिक्ष से गुपल नामक पुत्र जन्म लेगा और गुपल का पुत्र अमित्रजित् नामधारी होगा । उसका पुत्र भरद्वाज और उसमें यही पर धर्मी नामक पुत्र होगा । फिर धर्मी का कृतञ्जय नाम वाला पुत्र समुत्थान होगा । कृतञ्जय का पुत्र वात नामक होगा और इसका पुत्र रागञ्जय नाम वाला जन्म ग्रहण करेगा ॥१५४॥ रागञ्जय से गञ्जय नाम का और राजा होगा । सञ्जय का पुत्र पाक्य होगा और पाक्य से शुद्धोदन नाम वाला हुआ था ॥१५५॥ शुद्धोदन पाक्यार्थ में राहुल नाम से बहे जाने वाला पुत्र होगा । उसमें फिर प्रमेनजित् होगा और उस प्रमेनजित् से शुद्धक होगा ॥१५६॥ शुद्धक का पुत्र शुक्तिव होगा और शुक्तिव से गुरप नाम से कहा जाने वाला पुत्र जन्म धारण करेगा । गुरप से गुमित्र नामक अन्त में होने वाला राजा होगा ॥१५७॥ ये होने इत्यादि के अन्त में होने वाले बताये गये हैं जोकि धामे कतिपय में काम धारण कर धारण करेंगे । ये सब बृहत्पन के अन्त में जन्म ग्रहण करेंगे और कतिपय में ही होंगे ये सभी राजा धूराश्र के-कृतविद्य धर्मान् विद्या पढ़े हुए-ये सब गरव सन्धा प्रतिष्ठा वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले थे ॥१५८॥

मन्त्रानुवर्तनोकोऽयं भविष्यतेऽतहत ।

इदमात्रगामय वनं गुमित्रानो भविष्यति ।

गुमित्र प्राप्य राजानं गम्यां प्राप्यति यं कवी ।

इत्येतन्मानव दीपमन्त्रं समुदाहृतम् ॥१५९॥

धाम ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्कृतद्वयान् ।

अरामन्धस्य ये यतो महदेवान्वये नृणा ॥१६०॥

धनीना गतमानाश्च भविष्यान् तथा पुनः ।

प्राधान्यं प्रवक्ष्यामि गदगो मे निबोधत ॥१६१॥

सप्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातितः ।
 सोमाभिस्तस्य सनयो राजर्षिः स गिरिव्रजे ॥११६६॥
 पञ्चाशत् तथाष्टौ च समा राज्यमकारयत् ।
 श्रुतश्च वा चतुःषष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवत् ।
 अयुतायुस्तु पद्भिवशः राज्यं वर्षाण्यकारयत् ।
 समाः सप्त निरामित्रो मही भुक्त्वा दिवङ्गतः ॥११६७॥
 पञ्चाशत् समा पट् च सुकृतः प्राप्तवान्महीम् ।
 त्रयोविंश बृहत्कर्मा राज्यं वर्षाण्यकारयत् ॥११६८॥
 सेनाजित्साम्प्रतः चापि एता वं भुज्यते समाः ।
 श्रुतञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥११६९॥
 महाबाहुर्महाबुद्धिर्महाभीमपराक्रमः ।
 पञ्चविंशत् वर्षाणि मही पालयिता नृप ॥११७०॥

यहाँ पर भविष्य के ज्ञाताओं के द्वारा यह अनुवश स्वोक्त उदाहृत किया गया है कि इक्ष्वाकुओं का यह वंश सुमित्र के अन्त तक ही होगा । सुमित्र राजा को प्राप्त करके कनिषुग में सत्पाद को प्राप्त करेगा । यह इतना ऐन का मानव उदाहृत किया गया है ॥११६९॥ इनके आगे मागधय बृहदपो का वर्णन करेगा जो सहदेव के धन्य में जरासय के वध में राजा थे ॥११७०॥ जो भ्यतीत होगये और जो इस समय में वर्तमान हैं तथा जो भविष्य में राजा होंगे मैं इन सबको प्राधान्य रूप में बताऊँगा । बताने वाले मुझमें इन सबका ज्ञान प्राप्त करी ॥११७१॥ उस भारत मद्यम में सहदेव निपातित होगया था । उसका पुत्र राजर्षि सीमाधि हुआ उसने गिरि व्रज में जट्ठावन वर्ष पर्वत राज्य किया था फिर भीमवर्ष तक उसका पुत्र श्रुतञ्जय नाम वाला हुआ । अयुतायु ने छ'वीं वर्ष राज्य किया था । निरामित्र तीस वर्ष तक राज्य करके दिवङ्गत हुआ था ॥११७२-११७३॥ पञ्चम और छ' छप्पन वर्ष तक नृपराज ने दण्ड भूमि को प्राप्त किया था । तेईस वर्ष बृहत्कर्मा ने राज्य शासन किया था ॥११७४॥ इस समय सेनत्रिंशद् एव भुमरुद्धन को भोग रहा है । श्रुतञ्जय चाभीम वष तक भविष्य में

राज्य शासन करेगा ॥१५६॥ महान् बुद्धि वाला और महान् भीम पराक्रम
वाला महाबाहु नृप पैंतीस वर्ष तक भूमि का पालक होगा ॥१६०॥

अष्टपञ्चाशत् चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचि ।
अष्टाविंशत्समा पूर्णा क्षेमो राजा भविष्यति ॥१६१॥
भुवतस्तु चतु पष्टीराज्य प्राप्स्यति वीर्यवान् ।
पञ्चवर्षाणि पूर्णानि घमंनेत्रो भविष्यति ॥१६२॥
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशत् समाः ।
अष्टाविंशत्समा राज्य सुप्रतस्य भविष्यति ॥१६३॥
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति ।
त्रयस्त्रिंशत् वर्षाणि सुमति प्राप्स्यते तत ॥१६४॥
द्वाविंशतिसमा राज्य सुचलो भोक्ष्यते तत ।
चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते तत ॥१६५॥
सत्यजित्पृथिवीराज्य त्र्यशीति भोक्ष्यते समा ।
प्राप्येमा वीरजिह्वापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ॥१६६॥
परिह्रियस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् ।
द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहदया ॥१६७॥

शुनि नाम वाला राजा अष्टावन् वर्ष तक राज्य में स्थित रहेगा और
क्षेम नामधारी राजा अष्टाविंश वर्ष तक होगा ॥१६१॥ वीर्यवान् भुवत बीसठ
वर्ष तक राज्य को प्राप्त करेगा । पुरे तीस वर्ष तक घमंनेत्र राजा रहेगा
॥१६२॥ अष्टावन् वर्ष तक नृपति इन भूमि का उपभोग करेगा । अष्टवींश वर्ष
तक सुप्रत का राज्य होगा ॥१६३॥ बालीम दस और आठ वर्ष तक दृढसेन राजा
होगा । तेनीम वर्ष पान्थ फिर सुमति नाम वाला भूमि को प्राप्त करेगा ॥१६४॥
इनके उपरान्त द्वाविंश वर्ष तक सुचल नाम वाला भूमि के वासन का उपभोग
करेगा । बालीम वर्ष तक सुनेत्र भूमिवादन का भोग करेगा ॥१६५॥ सत्यजित्
राजा निरामी वर्ष पान्थ भूमि का भोग करेगा । फिर इन भूमि को प्राप्त करने
पैंतीस वर्ष तक वीरजित् राजा होगा । १६६॥ परिह्रिय राजा पचास वर्ष तक

इमं भूमिदलं परं शासनं करेण । ये वत्सीस राजा बृहद्रथ नाम वागे इह भूमि
परं ह्योगे ॥१६७॥

पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ।

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीरहोत्रेषु वर्तिषु ॥१६८

मुनिव स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिपेक्ष्यति ।

मिषता क्षत्रियाणां हि प्रचातो मुनिको बलात् ॥१६९

स वै प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्जितः ।

अयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥१७०

चतुर्विंशत्समा राजा पातको भविता ततः ।

त्रिंशत्समो भविता नृप पञ्चाशती समा ॥१७१

एकविंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति ।

भविष्यति समा विंशत्तस्मिन् वर्तिवद्भनः ॥१७२

अष्टात्रिंशच्छतं भाव्या प्राच्योता पञ्च ते सुताः ।

हत्वा तेषां यशं कृत्स्नं क्षिप्रनाको भविष्यति ॥१७३

वाराणस्यां सुतस्तस्य संप्राप्स्यति गिरिव्रजम् ।

क्षिप्रनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥१७४

शतवर्षं सुतस्तस्य पटत्रिंशच्च भविष्यति ।

ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ॥१७५

अजातशत्रुभविता पञ्चविंशत्समा नृपः ।

चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजा प्राप्स्यते ततः ॥१७६

पूरे ती वष पयन्त उनका राज्य हीगा । बृहद्रथो वै व्यतीत हो जाने पर
और वीर होने को समाप्त होने पर मुनिव स्वामी को भारवर पुत्र का अभि
पेक्ष करेगा । क्षत्रियों को हटकर मुनिव बलपूर्वक राज्य को छीन लेगा ॥१६८
१६९॥ वह नयवर्जित प्रणत समस्त अविध्य अनरोत्तम वेईस वष तक राजा
होगा ॥१७०॥ फिर इनके उपरान्त पातक नाम वाला इम भूमि का राजा
होगा । विंशत्सम नाम वाला पचास वष तक राजा होगा ॥१७१॥ इसनीम
वष तक यही पर अजक का राज्य होगा । फिर उसके पुत्र वर्तिवद्भन का राज्य

बीस वर्ष तक रहेगा ॥१७२॥ वे पाँच प्राचीन पुत्र अटनीस सी वर्ष तक होंगे
फिर उनके समस्त यश को समाप्त कर शिशु नाक बान्ना राजा होगा ॥१७३॥
उसका पुत्र वाराणसी के गिरिधर को प्राप्त करेगा । शिशु नाक का राज्य बीस
वर्ष तक होगा ॥१७४॥ उसका पुत्र एक वर्ष छत्तीस वर्ष पर्यन्त राज्य करेगा ।
फिर इसके उपरान्त क्षेम वर्मा बीस वर्ष तक राज्य शासन करेगा ॥१७५॥
पचवीस वर्ष तक इसके पश्चात् मजात जनु नामधारी राजा रहेगा । फिर चासीस
वर्ष पर्यन्त शशीका इस राज्य को प्राप्त करेगा ॥१७६॥

अष्टाविंशत्समा राजा विविशारो भविष्यति ।
पञ्चविंशत्समा राजा दर्शवस्तु भविष्यति ॥१७७॥
उदायी भविता तस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृप ।
स वै पुरवर राजा पृथिव्या कुसुमाह्वयम् ।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽन्द्रे करिष्यति १७८
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्द्धन ।
चत्वारिंशत्त्रयञ्चैव महानन्दी भविष्यति ॥१७९॥
इत्येते भवितारो वै शत्रुनाका नृपा दश ।
गताणि श्रीणि वर्षाणि द्विपष्टयम्यधिकानि तु ॥१८०॥
शत्रुनाका भविष्यन्ति तावत्काल नृपा परे ।
एतैः सार्द्धं भविष्यन्ति राजान क्षत्रवान्धवा ॥१८१॥
ऐन्दवाकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चाला पञ्चविंशति ।
कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु द्वैहया ॥१८२॥
द्वात्रिंशदं कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शका ।
मुरवश्चापि पण्डितश्चदष्टाविंशति मैथिला ॥१८३॥
सूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः ।
सुत्पत्काल भविष्यन्ति सर्वे एव महोदितः ॥१८४॥
महानन्दिमुत्तश्चापि सूद्राया कालममृतः ।
उत्तराख्यते महापद्म सर्वं क्षत्रान्तरे नृप ॥१८५॥

तत प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोऽनय ।

एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति ॥१८८॥

अष्टाविंशतिवर्षाणि पृथिवी पालयिष्यति ।

सर्वक्षत्रहृतोद्भूत्य भाविनोऽर्थस्य वै वलात् ॥१८९॥

अष्टाईस वर्ष तक विनिगार यहाँ का राजा होगा । इसके पश्चात् पञ्चवीस वर्ष तक दर्शव राजा होगा ॥१७७॥ वह राजा इस भूमि पर कुसुम नाम वाला एक श्रेष्ठ नगर यज्ञा के दक्षिण तट पर चौथे वर्ष में बनावेगा ॥१६८॥ नदि बह्मन राजा ब्यासीस वर्ष तक रहेगा । फिर तैत्तालीस वर्ष तक रहेगा । फिर तैत्तालीस वर्ष तक महानदी राज्य करेगा ॥१७९॥ ये इतने शैशुनाक नाम वाले दस राजा होंगे । शैशुनाक राजा सोय तीस सौ बासठ वर्ष तक रहेगे तावकाल तक दूसरे राजा होंगे और वे इनके माथ क्षत्रवन्धु राजा होंगे ॥१८०-१८१॥ ऐश्वराकु राजा चौबीस और पाञ्चास पञ्चीस तथा कालक चौबीस एव हैहय चौबीस होंगे ॥१८२॥ कलिङ्ग नामधारी राजा सत्या में बसीस होंगे तथा एक जाति वाले पञ्चीस होंगे । कुक्ष भी छत्तीस होंगे और मैथिल राजा अट्ठाईस होंगे ॥१८३॥ धूरखेन नाम वाले तेईस होंगे और वीति होत्र नामक राजा सत्या में भीम ध्यासन करेंगे । ये सभी महोप गुन्य काल ही में होंगे ॥१८४॥ महानन्दि का पुत्र काल मवृत शूद्रजाति की सती में उत्पन्न होगा । महापद्म नृप सर्वक्षत्रान्तर में होगा ॥१८५॥ इससे आदि लेकर शूद्र योनि वाले राजा होंगे महापद्म एकराट् औरच्छत्र राजा होगा ॥१८६॥ यह अट्ठाईस वर्ष तक पृथिवी का पालन करेगा और समस्त क्षत्रियो से हून का उद्धार करके भावी अर्थ का बल से उपभोग करेगा ॥१८७॥

सहस्रास्तत्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः ।

महापद्मस्य पथयि भविष्यन्ति नृपा क्रमात् ॥१८८॥

उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कीटित्यो वै द्विरष्टभिः ।

भुक्त्वा मही वर्षशत नन्देन्दु स भविष्यति ॥१८९॥

चन्द्रगुप्तं नृप राज्ये कीटित्य रथाऽयिष्यति ।

चतुर्विंशत्समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति ॥१९०॥

भविता भद्रमारस्तु पञ्चविंशत्समा नृप ।

पट्विंशत्तु समा राजा ह्यशोको भविता नृपु ॥१६१॥

तस्य पुत्र कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति ।

कुनालमूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः ॥१६२॥

बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालित ।

भविता सप्तवर्षाणि देववर्मा नराधिपः ॥१६३॥

राजा शतधरश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति ।

बृहद्रथश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः ॥१६४॥

हरयेते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुन्धराम् ।

सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यस्तु गौर्भविष्यति ॥१६५॥

उम राजा के एक मह्य पुत्र होगे वे आठ वर्ष तक बाराह राज्य महा-
पथ के पर्याप्त में कम में सामन करेंगे ॥१६८॥ दो श्रीर आठ के द्वारा उन
नवरा कीटिष उद्धार करेगा । वह भी वर्ष तक इन भूमि के मुख का उपभोग
कर नन्देनु ही जायगा ॥१६९॥ कीटिष वर्षात् बाणक्य राज्य दासन में
बद्रगुल श्रीरीर वर्ष पर्यन्त सामन रहेगा ॥१७०॥ भद्रमार तो सधीम वर्ष
तक राजा होगा । फिर छत्तीस वर्ष तक मानवों पर राजा असौव का दासन
रहेगा ॥१७१॥ उम सम्राट् असौव का पुत्र कुनाल तो केवल आठ ही वर्ष तक
राज्योपभोग करेगा । फिर इन कुनाल का पुत्र बन्धुपालिन नाम वाला आठ वर्ष
तक भूमि का भोग रहेगा ॥१७२॥ बन्धुपालिन का दायाद इन्द्रपालित दस वर्ष
तक रहेगा । फिर इनके पदवात् देव वर्म नराधिप तान वर्ष तक सामन करेगा
॥१७३॥ उमका पुत्र राजा शतधर आठ वर्ष पर्यन्त होगा । बृहद्रथ गान वर्ष
तक राजा रहेगा ॥१७४॥ इनके ये भी राजा इन वसुन्धरा का भोग करेंगे ।
दो एक भी श्रीरीर वर्ष तक यह पृथ्वी उनके उपभोग के लिये रहेगी ॥१७५॥

पुण्यमित्रस्तु मेनानीन्द्रधृत्य वै बृहद्रथम् ।

कार्दिकायान वै राज्य ममा पट्विंशत्तु ॥१७६॥

पुण्यमित्रमुनाश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपा ।

भविता चापि तज्ज्येष्ठ सप्तवर्षाणि वै तन ॥१७७॥

वसुमित्र मुनो भाव्यो दशवर्षाणि पाथिव ।
 ततो ध्रुव समा द्वे तु भविष्यति सुतश्च वै ॥१६८॥
 भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुत्रिन्दवा ।
 राजा धोयसुतश्चापि वर्षाणि भविता प्रथ ॥१६९॥
 ततो वै विप्रमित्रस्तु समा राजा तत पुन ।
 द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृप ॥१७०॥
 भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभूमि समा दश ।
 दशैते तुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमा वसुधराम् ॥१७१॥
 दश पूर्णं दश द्वे च तेभ्य वि वा गमिष्यति ।
 अपाथिवसुदेव नु बाल्याद्यसनिन नृपम् ॥१७२॥
 देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्गेषु भविता नृप ।
 भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु स ॥१७३॥
 भूतिमित्र सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति ।
 भविता द्वादश समास्तस्मात्तारायणो नृप ॥१७४॥

तेनाभी पुत्र मित्र वृद्धप्र का उद्धार करके साठ वर्ष तक सदैव राज्य
 शासन करायेगा ॥१६६॥ पुत्रमित्र के पुत्र आठ वर्ष तक राजा होंगे । उनमें
 जो सबसे बड़ा है वह सात वर्ष तक राज्य का शासन करेगा ॥१६७॥ वसुमित्र
 पुत्र दश वर्ष तक इस भूमि का राजा होगा । इसके पश्चात् सुत ध्रुव दो वर्ष
 तक शासन होगा ॥१६८॥ इसके तीन पुत्रिन्दक राजा होंगे । राजा धोय सुत
 तीन वर्ष तक रहेगा ॥१६९॥ इसके अनन्तर तिस्रभिः राजा होगा फिर भाग
 वत राजा बत्तीस वर्ष तक उपभोग करेगा ॥१७०॥ भागवत राजा का पुत्र
 क्षेम भूमि नाम वाला दश वर्ष पर्वत इस भूमण्डल का भोग करेगा । ये दश
 तुङ्ग नामधारी राजा इस वसुधरा का सुक्षोपभोग करेंगे ॥१७१॥ प्रथम एक
 सौ बारह वर्ष तक यह वचन से व्यासजी अपाथिव सुदेव नृप की यह रहेगी
 ॥१७२॥ इसके पश्चात् एक अथ देवभूमि नृप शृङ्गो वे होगा । वह कण्ठायन
 राजा सौ वर्ष तक रहेगा ॥१७३॥ उसका पुत्र भूतिमित्र होगा और वह चौबीस

वर्ष तक भूमि का शासन करेगा । उससे फिर नारायण नाम वाला राजा
बारह वर्ष तक भूमि का भोग करेगा ॥२०४॥

सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश ।

चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजाः ॥२०५॥

भाव्या प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।

तेषां पर्यायकाले तु तरन्धा तु भविष्यति ॥२०६॥

कण्ठायनमघोदधृत्य सुशर्माणे प्रसह्य तम् ।

शृङ्गाणां चापि यन्त्रिष्ट क्षययित्वा बल तदा ।

सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीयः प्राप्स्यतीमा वसुन्धराम् ॥२०७॥

प्रयोविशतसमा राजा सिन्धुको भविता त्वय ।

षष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥२०८॥

श्रीसातर्षणिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् ।

पञ्चाशत समा पट् च सातर्षणिर्भविष्यति ॥२०९॥

आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति ।

चतुर्विंशत् वर्षाणि पट् समा वै भविष्यति ॥२१०॥

भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् ।

ततः सवत्सर पूर्णं हालो राजा भविष्यति १११

उमका पुत्र मुगर्मा नामधारी दश वर्ष तक राजा होगा । हे द्विजवृन्द ।

ये बार कण्ठायन मुद्गदृश्य राजा होंगे ॥२०६॥ गैजलीय प्रणत सामन्त होंगे ।

उनके पर्याय काल ॥ तरन्धा होगा ॥२०६॥ कण्ठायन मुगर्मा को वनपूर्वक

उदयुक्त करके घोर शृङ्गों का जो भी कुछ टोप या उम बल को क्षीण करके

आग्न जाति वाला सिन्धु नामक राजा इन वसुन्धरा को प्राप्त करेगा ॥२०७॥

इनके घनार वहु गिन्धु के दश वर्ष तक राज्य का शासन रूप होगा । फिर

मान अठारह वर्ष तक रहेगा ॥२०८॥ उमका महान् पुत्र श्री सातर्षणि क्षपण

वर्ष पर्यन्त राज्य-शासन करने वाला होगा ॥२०९॥ दश आषाढ बद्ध उमका

पुत्र होगा । वह तीस वर्ष तक यही भूमि का राजा होगा ॥२१०॥ फिर नेमि

कृष्ण नाम वाला पञ्चीय वर्ष तक राजा रहेगा । फिर पुरे एक वर्ष तक

'दान'—दान नाम वाला राजा होगा ॥२११॥

पञ्च सप्तक राजानो भविष्यन्ति महाबला ।
 भाव्य पुत्रिकपेणस्तु समा सोऽप्येकविंशतिम् ॥२१२॥
 सातर्कणिवर्षमेव भविष्यति नराधिपः ।
 अष्टाविंशत् वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥२१३॥
 राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत्समा नृपु ।
 एकोनविंशति राजा यज्ञश्री सातकण्यथ ॥२१४॥
 पण्डेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृप ।
 दण्डश्री सातकर्णी च तस्य पुनः समास्त्रय ॥२१५॥
 पुलोवापि समा सप्त अन्येषाञ्च भविष्यति ।
 इत्येते वं नृपास्त्रिंशदग्न्धा भोक्ष्यन्ति ये महीम् ॥२१६॥
 समा शतानि चत्वारि पञ्च षड् च त्रयैव च ।
 अग्न्धाणां सस्यिता पञ्च सैपा वशा समा पुन ॥२१७॥
 सप्तैव तु भविष्यन्ति दशामीरास्ततो नृपा ।
 सप्त गर्दगिनश्चापि ततोऽथ दश वै शका ॥२१८॥
 यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश ।
 त्रयोदश गरुडाश्च मौना ह्यष्टादशैव तु २१९॥
 अग्न्धा भोक्ष्यन्ति वसुधा क्षते द्वे च शत च वै ।
 शतानि त्राण्यशीतिश्च भोक्ष्यान्त वसुधा शका ॥२२०॥

पञ्च सप्तक महान् बलवान् राजा होंगे । एक पुत्रिकपेण होगा वह भी
 एक और बीस वर्ष तक राजा रहेगा ॥२१२॥ सातकणि एक ही वर्ष तक
 नराधिप होगा । अष्टाविंश वर्ष तक शिव स्वामी राजा होगा ॥२१३॥ गौतमी
 पुत्र नाम वाला राजा अनुष्यो पर इक्कीस वर्ष पयन्त शासन करेगा । उन्नीस
 वर्ष तक राजा यज्ञ श्री और इसके अनन्तर सातकणि होगा ॥२१४॥ उनसे
 फिर छह ही राजा होंगे । विजय-दण्ड श्री और सातकणि उसके दो तीन पुत्र
 होंगे ॥२१५॥ सात वर्ष तक पुलोवापि होगा और दूमरे का भी होगा । ये
 तीस अग्न्ध राजा इन मही का भोग करेंगे ॥२१६॥ चार सौ ग्यारह उन
 अग्न्धो के समान पाँच वश मस्थिन होंगे ॥२१७॥ सात ही दशामीरद नृप होंगे ।

सात बरें भी होंगे फिर इनके पदचातु दश शक होये ॥२१८॥ आठ यवन राजा
होंगे फिर चौदह तुपाद जाय जाने राजा होये । तेरह गरुड घोर इनके पदचातु
अठारह मोर होये ॥२१९॥ तीन सौ वर्ष तक अन्ध जानि वाले लोग इस
समुद्र का भोग करेंगे घोर फिर तीनसौ अस्सी वर्ष तक अन्ध जानि वाले इस
समुद्र का भोग करेंगे ॥२२०॥

अशीतिश्च व वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम् ।
पञ्चवर्षसप्तानीह तुपासणा मही स्मृता ॥२२१॥
सप्तान्यद्वचतुर्षानि भवितारस्त्रयोदश ।
गरुडा श्रेयसं साढं भाव्यान्वाम्लेच्छजातय ॥२२२॥
सप्तानि श्रीणि मोक्षयन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु ।
सच्छन्नेन च कालेन तत कोलिविला वृषाः ॥२२३॥
ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति ।
समा पश्चात्वात आरवा पृथिवी च समेष्यति ॥२२४॥
पृथग् पृथग् दिक्षुकाश्चापि भविष्याश्च निवोषत ।
सप्तस्य नागराज्यस्य पुत्र स्वरपुरञ्जय ॥२२५॥
भोगी भविष्यते राजा नृपो नागबुलोद्बह ।
सदाचन्द्रस्तु चन्द्राक्षो द्वितीयो नखवास्तया ॥२२६॥
धनधरा ततश्चापि चतुर्थो विशज स्मृत ।
भूतिनन्दस्ततश्चापि यदेने तु भविष्यति ॥२२७॥
सप्तानां नन्दनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति ।
तस्य भ्राता यवीयास्तु नाम्ना नन्दियशः किम् ॥२२८॥
तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै ।
सौहित्र निधुको नामपुरिताया नृपोऽभवत् ॥२२९॥
विन्ध्यशक्तिमुत्तश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।
भाष्यन्ति च समा पार्ष्टि पुरी काञ्चनकाश्च वै ॥२३०॥
यस्यन्ति वाजनेयैश्च सप्तान्नवरदधिगुं ।
तस्य पुत्रास्तु चरवारो भविष्यन्ति नराधिपा २३१

विन्ध्यवाना कुलेऽस्तीते नृपा वै बाल्लिकास्त्रय ।

सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिशतिम् ॥२३२॥

अस्सी वर्ष तक यवन लोग इस मही को भागेंगे । यहाँ पाँच सौ वर्ष तक तुमारों की यह भूमि बही जायगी ॥२२१॥ अर्द्ध चतुर्थ सौ वर्ष तक तेरह महर्षि वृषला के साथ होंगे जो अग्न्य स्लेच्छ जानि वाले होंगे ॥२२२॥ ग्यारह स्लेच्छ तीन सौ वर्ष तक इस भूमि का भोग करेंगे । और उनके अन्तकाल में कोलिकिल वृष होंगे ॥२२३॥ फिर उन कोलिकिलों से विन्ध्य शक्ति होगा । छयावधे वर्ष तक पृथिवी को ज्ञान प्राप्त करके धायेगा ॥२२४॥ अब वृषों को भीर दिशकी को जोकि आगे होने वाले हैं भली भाँति समझ लो । नागराज शेष का पुत्र स्वरपुरञ्जय नाम कुलका उद्ग्रहण करने वाला भोग करने वाला राजा होगा । चन्द्राक्ष सदाचन्द्र और दूमरा नखवान् है ॥२२५॥ इसके बाद घनधर्मा और चौथा विशज कहा गया है । इसके पश्चात् मूतिनन्द जोकि बंदेश में होगा ॥२२७॥ धर्मो के नन्दन के अन्त में मधुनगिद राजा होगा । उसका छोटा भाई नन्दिमश नाम वाला है ॥२२८॥ उसके अन्वय में (वश में) तीन राजा होंगे । शिशुक नाम वाला दोहित्र तुरिका में राजा होगा ॥२२९॥ विन्ध्य शक्ति का पुत्र वीर्य वाला प्रवीर नामधारी होगा और साठ वर्ष तक काश्वतका पुरी का भोग करेंगे ॥२३०॥ वे श्रेष्ठ दक्षिणा देकर समाप्त करने वाले बाजपेयो के द्वारा यजन करेंगे । उनके चार पुत्र नराधिप होंगे ॥२३१॥ विन्ध्यको के कुल के अनीत होजान पर तीन बाह्नीक राजा होंगे । सुप्रतीक नभीर तो तीस वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेगा ॥२३२॥

शक्यमा नाम वै राजा माहिषीना महीपतिः ।

पुष्पमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ॥२३३॥

मेवलाया नृपा सप्त भविष्यन्ति च सप्तमा ।

वोमनायन्तु राजानो भविष्यन्ति महाबला ॥२३४॥

मेधा इति ममान्याता बुद्धिमन्नो नवैव तु ।

नैपधा पाथिवा सर्वे भविष्यन्त्यामनुशयात् ॥२३५॥

नलवशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबला ।
 मागधाना महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति ॥२३६॥
 उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान्सोज्ज्यान् वर्णान् करिष्याति ।
 कैवर्त्तान् पञ्चकाश्र्वं पुलिन्दान् ब्राह्मणास्तथा ॥२३७॥
 स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा ।
 विश्वस्फानिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥२३८॥
 विश्वस्फानिर्नरपति बलीवाकृतिरिवोच्यते ।
 उत्सादयित्वा क्षत्रन्तु क्षत्रमन्यत् करिष्यति ॥२३९॥
 देवान् पितृंश्च विप्राश्चा तपयित्वा सकृत्पुनः ।
 जाह्नवीतीरमासाद्य शरीर यस्यते बली ॥२४०॥
 सन्यस्य स्वशरीरन्तु क्षत्रलोकं गमिष्यति ।
 नवनाकास्तु मोक्षयन्ति पुरी चम्पावती नृपाः ॥२४१॥

मक्षमा नाम बाला राजा माहिषिघो का महीपति होया । पुष्पमित्र होये
 और तेरह पट्टमित्र होये ॥२३३॥ मेकला में सात श्रेष्ठतम राजा होये । कोमला
 में तो महान् बल वाले राजा होये ॥२३४॥ जेव इस नाम से ममाख्यात होने
 वाले नौ बुद्धिमान् राजा होये । मनुष्य पर्यन्त सब नपथ पार्थिव होये ॥२३५॥
 वे सब नल के ब्रह्म में उत्पन्न वाने महान् बलवान् और वीर्य वाले राजा होये ।
 मागधो में विश्व स्फानि नाम बाला महान् वीर्य बाला राजा होमा ॥२३६॥ वह
 समस्त पार्थिवो को उत्सादित करके अग्न्य वणों को करेगा । कैवर्त्तों को-पञ्चको
 को-पुलिन्दको तथा ब्राह्मणों को अनेक देशों में तेज से राजाओं को स्थापित
 करेगा । विश्वस्फानि महान् मत्त्व बाला और युद्ध में विष्णु के समान बली था
 ॥२३७-२३८॥ विश्वस्फानि जो राजा होना वह बलीव के समान वाकृति बाला
 कहा जाता है । क्षत्र को उत्सादित करके अग्न्य क्षत्र को करेगा ॥२३९॥ यह
 बली देवों को-पितरों को और ब्राह्मणों फिर एक बार मृत करने छल में गङ्गा
 के तट पर पहुँच कर शरीर को त्याग करेगा ॥२४०॥ अपने शरीर का त्याग
 करके फिर इन्द्र के लोक को चला जायगा । जब नाक राधा चम्पावती पुरी
 का भोग करेंगे ॥२४१॥

मथुराञ्च पुरी रम्यां नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै ।
 अनुगङ्गा प्रयागञ्च साकेत मगधास्तथा ।
 एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवशजा ॥२४२॥
 निधान् यदुवाञ्चैव शंशीतान् कालतोपकान् ।
 एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजा ॥२४३॥
 कोशलाञ्चगन्धपोण्ड्राश्च ताम्रलिप्तान् ससागरान् ।
 चम्पा चैव पुरी रम्या भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥२४४॥
 कलिङ्गा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये ।
 एताञ्जनपदान् सर्वान् पालयिष्यति वै गुह ॥२४५॥
 स्त्रीराष्ट्र भक्ष्यकाश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वय ।
 तुल्यकाल भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षित ॥२४६॥
 अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यवामिका ।
 भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्षतः ॥२४७॥
 नैव मूर्धाभिपिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपा ।
 युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥२४८॥
 स्त्रीणां बलवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् ।
 भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधा पार्थिवास्तथा ॥२४९॥

परम रम्य मथुरा नगरी को साग नाग उपभोग करेंगे । गङ्गा के साथ-
 साथ प्रयाग—साकेत तथा मगध देशों को—इन जनपदों को सबको गुप्त वंश में
 उत्पन्न होने वाले नृप भोग करेंगे ॥२४२॥ मणिधान्यज लोग निपट देशों को—
 यदुको को—शंशीतो को—काल तोपको को—इन समस्त जनपदों को भोग करेंगे
 कलिङ्ग—महिष और ओ महेन्द्र निलय हैं वे कोशल देशों को—गन्धपोण्ड्रो को—
 ताम्रलिप्तों को सागरों ने सहित तथा सुरम्य चम्पा नगरी जोकि देवों के द्वारा
 सुरक्षित है, भोग करेंगे इन समस्त जनपदों को गुह पालन करेगा ॥२४४-२४५॥
 कनक नाम वाला स्त्री राष्ट्र और यदवको का भोग करेगा । ये समस्त राजा
 तुल्य काल में ही होंगे ॥२४६॥ यहाँ पर धर्म में और काम से अल्प प्रसाद वाले—
 भूटे—महान् क्रोध करने वाले और अघामिक यवन होंगे ॥२४७॥ ये राजा मूर्धा-

अनुपङ्गपाद समाप्ति]

भिषिक्त नहीं होंगे । वे समस्त नृप युग के दोषों से दुराचार वाले होंगे ॥२४८॥
ये समस्त राजा स्त्रियों का बलपूर्वक बध वे द्वारा आपन में हनन करके कलियुग
के दोष में वसुधा का भोग करेंगे ॥२४९॥

उदितोदितवशास्ते उदितास्तमितास्तथा ।

भविष्यन्तीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षित ॥२५०॥

विहीनास्तु भविष्यन्ति घर्म्मन्त कामतोऽर्थन्त ।

तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वश ॥२५१॥

विपर्ययेन वर्त्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजा ।

लुब्धानृतरतार्श्चैव भवितारस्तदा नृपा ॥२५२॥

तेषा व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा ।

लवातिलव भ्रश्यमाना मायूरूपबलश्रुतं ॥२५३॥

तथा गतास्तु वै काष्ठा प्रजासु जगतीभरा ।

राजान सम्प्रणश्यन्ति कालेनोपहृतास्तदा ॥२५४॥

कल्किनोपहृता सर्वे म्लेच्छा मास्यन्ति सर्वश ।

अधार्मिकाश्च तेऽर्थयं पापण्डार्श्चैव सर्वश ॥२५५॥

प्रतप्ते नृपक्षब्दे च सन्ध्याक्षिप्टे कलौ युगे ।

किञ्चिच्छिष्टा प्रजास्ता वै घर्म्मे नष्टेऽपरिग्रहा ॥२५६॥

समय के प्रभाव से राजा लोग उदितोदित बध वाले तथा उदितास्त-
मित यहाँ पर्याय में होंगे ॥२५०॥ ये समस्त काम से और धर्म में विहीन होंगे ।
उनके द्वारा विशेष रूप से मिश्रित म्लेच्छों के समान आचार करने वाले सभी
प्रकार से दूषित जनपद हो जायेंगे ॥२५१॥ ये सभी विपरीत व्यवहार करते हैं
तथा हर प्रकार से प्रजापों का नाश करेंगे । उस समय में राजा लोग लोभी
और मिथ्या में रति करने वाले हो जायेंगे ॥२५२॥ उनके पर्याय के व्यतीत हो
जाने पर और उस समय में बहुत स्त्रियों वाले युग में क्षण में क्षण में प्रायु-
रूप-बल और धन सभी भ्रश्यमान हो जायेंगे ॥२५३॥ इस प्रकार से प्रजापों
के विषय में परम सीमा की प्राप्ति हुए राजा लोग उस समय बालवश सब उप-
हृत होते हुए नष्ट हो जायेंगे ॥२५४॥ समस्त म्लेच्छगण कल्कि के द्वारा सब

घोर में उपहन होये । वे सभी परम अधार्मिक और सब तरह से पापएव मुक्त होंगे ॥२५५॥ कनिष्ठ के सम्प्राप्ति होने पर 'नृप'—यह शब्द ही प्रणुष्ट हो जायगा ओ कुछ थोड़ी गी प्रजा सोप रहेगी वह भी धर्म क नष्ट हो जान पर रित्ना परिग्रह वाली हो जायगी ॥२५६॥

असाधना हताश्वत्था व्याधिदोकेन पीडिता ।

अनाश्वृष्टिहताश्वं परस्परवधेन च ॥२५७॥

अनाथा हि परिवस्ता वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।

त्यक्त्वा पुराणि ग्रामाश्च भविष्यन्ति वनोवस ॥२५८॥

एष नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा मुहाणि तु ।

नष्टे स्नेहे दुरापन्ना अहस्नेहा मृत्तृज्जना ॥२५९॥

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सद्गुरं पौरमास्थिता ।

सरित्पयंतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ॥२६०॥

सरितः सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानि च ।

अङ्गान् कलिङ्गान् वङ्गाश्च काश्मीरान् काशिकीशालान् ॥२६१॥

ऋषिवान्तगिरिद्रोणी सश्रयिष्यन्ति मानवा ।

वृत्तस्न हिमवतः पृष्ठं कूलं हि लवणाम्भस ॥२६२॥

अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति ह्याभ्यां म्लेच्छजनैः सह ।

मृगैर्मर्निर्विहङ्गैश्च द्वापदस्तथुभिस्तथा ।

मधुशाकपलैर्भूतैर्वंसंयिष्यन्ति मानवा ॥२६३॥

समस्त प्रजा साधनों से दूर—हताश्वत्था और व्याधि तथा शोक से परम पीडित—वर्षा के विस्तृत ही अभाव होने के कारण हत तथा आपस में ही एक-दूसरों के वध करने में अनाथ—भयभीत—रोगी का त्याग करके अत्यन्त ही दुःखित प्रजाजन नगरो का तथा ग्रामो का त्याग करके वन में निवास करने वाले जंगली जैसे हो जायेंगे ॥२५७ २५८॥ इस प्रकार से समस्त नृपों के नष्ट हो जाने पर प्रजा अपने अपने घरों को त्याग करके स्नेह के नष्ट हो जाने पर दुरापन्न—अष्ट स्नेह और मुहृजनों से रहित हो जायगी ॥२५९॥ वर्णों तथा आश्रमों से परिभ्रष्ट होते हुए घोर सद्गुर अवस्था में आस्थित, नदी तथा पर्वतों

के सेवन करने वाली उस समय समस्त प्रजा हो जायगी । २६०॥ मनुष्य नदियों को-पागरी को-झरूको को और पर्वतों को सेवन करते हैं । अङ्ग-वङ्ग-वलिङ्ग काश्मीर-काशि कोशलो को सेवन करते हैं ॥२६१॥ तथा मानव श्रुतिकान्त गिरि द्रोणी का मथय ग्रहण करेंगे । पूरा हिमवान् पर्वत का पृष्ठ भाग तथा क्षार समुद्र का तट और सरस्वती को घायें लोग म्लेच्छों के साथ चने जायेंगे । और मानव मृग-मोन-बिहङ्ग तथा श्यापव तथा तक्षको से एवं मनु-शाक-फल-मूलो से अपना उदरपूर्ति का निर्वाह करेंगे ॥२६२ २६३॥

धीर-पर्यंश्च विविध यन्फलान्यजिनानि च ।

स्वय कृत्वा विवत्स्यन्ति यथा मुनिजनां स्तथा ॥२६४

बीजाधानि तथा निम्नेष्वोहन्त कापुशङ्कुभि ।

अजैडक खरोष्ट्रश्च पालयिष्यन्ति यत्नत ॥२६५

नदीर्क्षत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रित्य मानवा ।

पार्थिवान् व्यवहारेण विवाधन्त परस्परम् ॥२६६

बहुमन्मा प्रजाहीना नीचाचारविवर्जिता ।

एव भविष्यन्ति नरास्तदाधर्म्म व्यवस्थिता ॥२६७

हीनाढीनास्तथा धर्म्मान् प्रजा समनुवर्त्तते ।

आयुस्तदा त्रयोविंश न कश्चिदतिवर्त्तते ॥२६८

दुर्बला विषयम्लाना जरया सपरिप्लुता ।

पद्ममूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बरा ॥२६९

धीर-पर्यं (पर्यं) विविध प्रकार की पेड़ों की छाँव और बगइचों को स्वयं काट कर मुनिजनों की भाँति धारण करेंगे ॥२६४॥ बीजाण्डों को निम्न भागों काष्ठ तथा शकुलों से दृज्य करते हुए अर्धान्ति निकाल कर प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए बकरी-भेड़-गाँवाँ उँटों को बड़े यत्न में पालेंगे ॥२६५॥ मानव जन के प्राप्त करने के लिए नदियों के किनारों के निकट आश्रय ग्रहण कर वान किया करेंगे । व्यवहार ऐसा होगा कि उनके द्वारा परस्पर में राजाओं को विशेष वाधा पट्टवायेंगे ॥२६६॥ अपने आपको बहुत कुछ मानने वाले-मन्नानि में हीन और नीच (शुद्धि) और आचार से रहित धर्म में पूर्ण रूप से व्यव-

स्थित रहने वाले ऐसे ही उस समय में अनुप्य हो जायेंगे । ॥२६७॥ उस समय में प्रजा हीन से भी हीन धर्मों का समनुवर्तन करेंगे । उस समय में तेईस वर्ष की आयु को कोई भी पार नहीं करेंगे अर्थात् परमायु इतनी कम हो जायगी ॥२६८॥ अनुप्य उस समय में अत्यन्त कमजोर हो जायेंगे और वह ऐसा भीषण समय आयेगा कि सभी विषयों में जिस और जरा से (वाढ्ढं कप से) सपरिप्लुत होंगे । पत्र-फल और मूलों के आहार वाले होंगे तथा धीर-कतीर और कृष्णाजिन के वस्त्र वाले हो जायेंगे ॥२६९॥

वृक्ष्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ।
 एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजा कलियुगान्तके ॥२७०॥
 क्षीणो कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षमहस्रके ।
 नि शेपास्तु भविष्यन्ति साढ्ढं कलियुगेन तु ।
 ससन्ध्यासे तु नि शेपे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ॥२७१॥
 यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यवृहस्पती ।
 एकरात्रे भरिष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत् ॥२७२॥
 एष वर्षक्रम कृत्स्न कीर्तितो वो यथाक्रमम् ।
 अतीता वर्तमानाश्च तर्पयानागताश्च ये ॥२७३॥
 महादेवाभिपेकात् जन्म यावत्परिक्षित ।
 एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चादशदुत्तरम् ॥२७४॥
 प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् ।
 मन्दर तच्छ्रुतान्यष्टौ पट्त्रिंशच्च समा स्मृता ॥२७५॥
 एतत्त्वालान्तरं भाव्या भन्धान्ता ये प्रकीर्तिताः ।
 भविष्यन्त्यत्र सहस्रांशं पुराणज्ञं श्रुतपिभि ॥२७६॥
 सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राशिं वै शतम् ।
 सप्तविंशं शतैर्भाष्या भन्ध्राणां ते त्वया पुन ॥२७७॥
 गणविशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ।
 सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।
 सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्विषया सहस्रभया स्मृतम् ॥२७८॥

अपनी वृत्ति (रोजी) के लिये अत्यन्त लसायित होते हुए पृथ्वी पर विचरना चिया करेये । कलियुग के अन्त में समस्त प्रजा ऐसा समय प्राप्त करने वाले होंगे ॥२७०॥ दिव्य एक सहस्र वर्ष वाले कलियुग के धीमा होजाने पर कलियुग के साथ ही सब निशेष हो जायये । मन्व्यारा के अन्तिम निशेष होजाने पर फिर कृतयुग की प्राप्ति होगी ॥२७१॥ जिस समय में अन्ध मोर सूर्य तथा तिष्य मोर कृत्स्न एक ही दिन में भर जायये तब कृतयुग का प्रारम्भ होगा ॥२७२॥ मैंने यह वध का क्रम आप लोगों के नामने यथाक्रम वर्णित कर दिया है । जो व्यतीत हो चुके हैं और वर्तमान है तथा जो भूनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं सबका पूरा वर्णन कर दिया है ॥२७३॥ अन्तर्गत महादेव के अभिषेक से जितना भी समय है वह एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिये ॥२७४॥ इसका प्रमाण महापद्मान्तर में कहा गया है वह अन्तर घाटसी छत्तीस वर्ष कहा गया है ॥२७५॥ वह कामान्तर में जो अध्रान्त कहे गये हैं वे होंगे । वही पर होन वाले भूतपि पुण्यो के आवागो के द्वारा सत्पात हुए हैं ॥२७६॥ उस समय में महर्षियो ने वे प्रनीप राजा सी कहे हैं और आपने अग्नी के सत्पात सी होने वाले बताये हैं ॥२७७॥ महर्षिगति पर्यन्त पूरे नक्षत्र मण्डल में पर्याप्त वे सी सी सत्पातगण रहा करते हैं । वह युग दिव्य सन्ध्या के द्वारा महर्षियो का कहा गया है ॥२७८॥

सा सा दिव्या रमृता पद्दिदिव्याह्लाश्चैव महर्षि ।

तेभ्य प्रवर्तते कालो दिव्य सप्तर्षिभिस्तु तै ॥२७९॥

सप्तर्षिणान्तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिभि ।

सतो मध्येन च क्षेत्र दृश्यते यत्तम दिवि ॥२८०॥

तेन सप्तपयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि दत्त सम ।

नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्वैतन्निदर्शनम् ॥२८१॥

सप्तपयो मयायुक्ताः काले पारिधिते दत्तम् ।

अग्नाक्षे स चतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम ॥२८२॥

इमास्तदा तु प्रवृत्तिर्व्यापित्स्यन्ति प्रजा भृशम् ।

अनृतोपहताः सर्वो धर्मतः कामतोऽयंत ॥२८३॥

श्रीतस्मार्त्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा ।

सङ्कुर दुर्वेलात्मान प्रतिपत्स्यन्ति मोहिता ॥२८४॥

ससत्ताश्च भविष्यन्ति शूद्रा साद्ध द्विजातिभिः ।

ब्राह्मणा दूद्रयष्टार शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥२८५॥

यह-वह दिव्य पट्टि कही गई है और सातो के द्वारा दिव्याह्नू कहे गये हैं । उन सप्तपियो के द्वारा दिव्यकाल प्रवृत्त होना है ॥२७६॥ सप्तपिया के पहिले उत्तर दिशा में जो दिखलाई देते हैं और उसके मध्य से जो दिव्य क्षेत्र दिखलाई देता है ॥२८०॥ उससे आकाश में सौ वर्ष युक्त सप्तपिगण जानने चाहिये । और ऋषियों का तथा नक्षत्रों का जो योग है उसका यही निर्दर्शन होता है ॥२८१॥ पारिलिप्त काल में मया से युक्त सौ सप्तपिगण हैं । वह मेरे मत में चौबीसवें अन्धघात में होंगे ॥२८२॥ उस समय ये प्रकृति बहुत अधिक प्रजा को प्राप्त करेगी । धर्म में और काम में तथा धर्म से सभी प्रजा अनुत (मिथ्या) से उपहत होगी ॥२८३॥ उस समय में शीत (वैदिक) तथा स्मार्त्त वर्यो और आश्रमों के धर्मों के विशेष रूप से निविल होजाने पर कुल आत्मा वाले एक मोहका प्राप्त होजाने वाले मनुष्य सङ्कुरावस्था को प्राप्त हो जायेंगे ॥२८४॥ शूद्र लोग द्विजातियों के साथ मशक्त हो जायेंगे । ब्राह्मण लोग तो दूद्रयष्टा हो जायेंगे और शूद्र लोग मन्त्रयोनि वाले हो जायेंगे ॥२८५॥

उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदा वै वृत्तिलिप्मव ।

लव लव भ्रस्यमाना प्रजा सर्वा क्रमेण तु ॥२८६॥

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।

यस्मिन् कृष्णो दिव यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने ॥२८७॥

प्रतिपन्न कलियुगस्तस्य सहस्रधा निबोधत ।

सहस्राणि शतानीह क्षीणि मानुषसङ्ख्याया ।

पटि चैव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते बलि ॥२८८॥

दिव्ये वषसहस्रन्तु तत्सन्ध्याश्च प्रकीर्तितम् ।

नि शेषे च तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते ॥२८९॥

ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदः प्रकीर्णितो ।
 इक्ष्वाकोस्तु स्मृतः क्षत्र सुमित्रान्तं विवस्वतः ॥२६०॥
 ऐल क्षत्रं क्षेमकान्त सोमवशविदो विदुः ।
 एते विवस्वतः पुत्राः कीर्त्तिता कीर्त्तिवर्द्धनाः ॥२६१॥
 अतीता वत्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैवान्वये स्मृताः ॥२६२॥
 यूगे यूगे महात्मान समतीता सहस्रशः ।
 बहुव्याघ्रामधेयाना परिसस्या कुले कुले ॥२६३॥

विप्रगण अपनी वृत्ति के सातव में रहने वाले होने हुए उस समय में उन गुरुओं के समीप में जाकर स्थित होंगे । दाण-दाण में अपने कर्त्तव्य में भ्रष्ट होने हुए समस्त प्रजा जन क्रम में क्षय को प्राप्त होंगे जो भी उस युग के क्षय में क्षीण होने से दोष रह जायगे । त्रिग दिन में श्रीकृष्ण अन्नहीन होकर दिव-मोच को गये उसी दिन और उसी समय में कनियुग प्रविरल होगया अब उसकी मर्या को घाय लोग जान लो । मानुष मर्या में कनियुग तीन सौ हजार वर्षों में तीन लाख साठ हजार वर्ष की बही जानी है ॥२६६-२६७-२६८॥ दिव्य में एत मह्य वर्ष उसका मन्वन्तर कहा गया है । फिर उस समय उसमें त्रिग में कनियुग प्राप्त हो जायगा ॥२६६॥ तेन वन और इक्ष्वाकु का वन भेदों के अन्तः प्रकीर्त्तिन किये गये हैं । विवस्वान् इक्ष्वाकु का क्षत्र सुमित्र के अन्तः कह गया है ॥२६०॥ तेन क्षत्रिय वंश को सोमवश के अन्तः मोद के अन्तः

तत्र यन्वतर का क्षय होता है युगाख्या का अनुगमन करते हैं ॥३०७॥ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के द्वारा क्षत्रियो को निरवशेषित करने पर सभी वसुधा के स्वामी क्षत्रियो के द्वारा बभ्रुकुल और दो वशकरण ने उनको में धव वतलाऊंगा बनवा ज्ञान प्राप्त करलो ॥३०८॥ इन्द्राकु के पुत्र ऐल की प्रकृति परिवर्तित होती है । अग्निवद्ध राजा सौम तथा ध य क्षत्रिय नृप ॥३०९॥ जो कि ऐल वग के स्यात थे उसी प्रकार से इन्द्राकु ने वश के नृप थे । अभिदेक प्राप्त करने वाले कुलो की पूरा सख्या एवदान थी ॥३१०॥

तावदेव तु भोजाना विस्तारो द्विगुण स्मृत ।

भजते त्रिंशक क्षत्र चतुर्धा सद्ययादिशम् ॥३११॥

सेव्यतीता समाना ये ब्रुवतस्तानिबोधत ।

शत वै प्रतिविंध्याना शत नामा शत हया ॥३१२॥

धृतराष्ट्राश्च कश्चतमश्रीतिजनमेजया ।

शतश्व ब्रह्मादत्ताना शौरिणा वीरिणा शतम् ॥३१३॥

तत शत पुलोमाना श्वतकाशकुशादय ।

ततोऽपरे सहस्र वै येऽतीता शतविन्दव ॥३१४॥

ईजिरे चाश्वमेधस्ते सर्वे नियुतदक्षिण ।

एव राजपयोऽतीता शतशोऽप्य सहस्रश ॥३१५॥

भनर्वैवस्यतस्यास्मिन् यत्तमानेऽन्तरे तु ये ।

तेषा निबोधतोत्पन्ना लोके सन्ततय स्मृता ॥३१६॥

न क्षम्य विस्तर तेषा सन्तानाना परम्परा ।

तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वयश्चतैःपि ॥३१७॥

भष्टाविसष्ट्युवाख्यास्तु यता धवस्वतेऽन्तरे ।

एता राजर्षिभि राद्धं सिद्धा यास्ता निबोधत ॥३१८॥

उतना ही सोनो का विस्तार दुगुना कहा गया है । यह क्षत्र तीस है जो गया दिशा में चारों ओर थे ॥३११॥ उनमें जो धतीत होगये और जो समान हैं उन्हें वतलाने वाले मुक्त से भली शक्ति जान लो । जो तो प्रतिविंध्यों का या और एक ही नामा से तथा ही हय थे ॥३१२॥ धृतराष्ट्र के एव सो व

तथा जनमेजय के अस्मी थे । ब्रह्मादत्तो के एक सौ थे तथा क्षीरि और वीरियो के एक शत थे ॥३१३॥ इसके अनन्तर पुत्तमो के सौ श्वेत वाश कुशादि थे । इसके पश्चात् दूसरे एक सहस्र थे जो दत्तविन्द व अतीत हो चुके हैं ॥३१४॥ उन सब ने नियुक्त दक्षिणा वाले अश्वमेधो के द्वारा यजन किया था । इस प्रकार से सैंकड़ों तथा सहस्रो ही राजपि गण अनीत हो चुके हैं ॥३१५॥ वैवस्वत मन्वन्तर में तो जो उत्पन्न हुए उनकी उन्नति लोक में नहीं गई है, उसका ज्ञान प्राप्त करलो ॥३१६॥ विस्तार से वह नहीं कहा जा सकता है । उनके सन्तानों की परम्परा तथा उनका पूर्वा पर योग यह सब सैंकड़ों वर्षों में भी नहीं बताया जा सकता है ॥३१७॥ वैवस्वत अन्तर से अठ्ठाईस युगाख्या गत होगई । यह राजपियों के साथ जो शिष्ट है उसे जानलो ॥३१८॥

चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्या सह राजभि ।

युगाख्याना विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥३१९॥

एतद् कथित सर्वं समासव्यासयोगत ।

पुनरुक्त बहुत्वाच्च न शक्यन्तु युगं सह ॥३२०॥

एते ययातिपुत्राणा पञ्चविंश विशा हिता ।

कीर्त्तिताभ्यामिता ये मे लोकान् वी धारयन्त्युत ॥३२१॥

सभते च वरेण्यश्च दुर्लभानिह लौकिकान् ।

भ्रायु कीर्त्ति धन पुत्रान् स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥३२२॥

धारणाच्छ्रवणाच्च ये ते लोकान् धारयन्त्युत ।

इत्येष वो मया पादस्तृतीय कथितो द्विजा ।

विस्तेरेणानुपूर्वी च विम्भूयो वर्त्तयाम्यहम् ॥३२३॥

जो चामीम राजाओं के साथ भागे होंगे इनके पश्चात् वैवस्वत के क्षय युगाख्याओं के वे विशिष्ट हैं ॥३१९॥ यह सब कुछ मत्सेप और विस्तार में ने कह दिया है । बहुत होने के कारण से पुन कहना युगों के साथ नहीं हो जाता है ॥३२०॥ ये विशो के हित करने वाले ययानि के पुत्रों के पक्षीन हुए । उन्हें मेरे द्वारा बतला दिया गया है और जो लोकों को धारण किया करते ॥३२१॥ वे वरेण्यता को प्राप्त किया करते हैं और यहाँ पर लौकिक दुर्लभ

पदार्थों को प्राप्त करते हैं । धाम्-वीति-धन-पुन-स्वर्ग और अनन्तता को भी प्राप्त किया करते हैं ॥२२॥ धारण करने से तथा व्यवहार करने से वे लोकों को धारण किया करते हैं । हे द्विजवृन्द ! यह मैंने तृतीय याद कह दिया है जोकि विस्तार पूर्वक तथा ध्यानपूर्वक के सहित ही कह दिया है । अब पुन क्या मैं कहूँ ॥ २२

प्रकरण ६२—मन्वन्तर कथन

नि शेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह ।
 धन्तेऽनेकयुगे तस्मिन् क्षीणे सहार उच्यते ॥१॥
 सप्ततं भगवा देवा मन्ते मन्वन्तरे तदा ।
 भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगास्या ह्यसप्ततिम् ॥२॥
 पितृभिर्मनुभिश्चैव साद्वं सप्तपिभिस्तु ये ।
 यज्वानश्चैव तेऽप्यन्ये तद्भ्राताश्चैव तं सह ॥३॥
 महर्लोकं गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यमीश्वरा ।
 ततस्तेषु गतेषुद्वं क्षीणे मन्वन्तरे तदा ।
 अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं च भविष्यति ॥४॥
 ततः स्थानानि चान्यानि स्वामिना तानि ये द्विजाः ।
 प्रभ्रमन्ति विमुक्तानि ताराश्चक्षुःप्रहस्तया ॥५॥
 ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ।
 सैन्द्राष्टेषु महर्लोकं यस्मिन्ते कलवांसिन ॥६॥
 त्रितालाश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दन्त ।
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्तु च महौजस ॥७॥
 ततस्तेषु गतेषुद्वं सायोज्य वल्पचासिनाम् ।
 समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते सबलने तदा ॥८॥

श्री भूउजी ने कहा—यहाँ उस समय सब मन्वन्तरो के नि शेष होजाने पर धनंजय युग के धम्म से उसने क्षीण होजाने पर सहार कहा जाता है ॥१॥

उस समय मन्वन्तर के अन्त में ये मान भाग्य देव हुए जो त्रैलोक्य के मध्य में स्थित होते हुए एक सप्तति अर्थात् इकहत्तर युगाद्या का भोग करने वाले थे ॥२॥ पितरगण—मनुवृन्द और सप्तपितृ के साथ जो यज्ञा थे और जो अन्य उनके भक्त थे उनके साथ इस त्रैलोक्य का त्याग करके महर्लोक में वे ईश्वर चले जायेंगे । इसके पश्चात् उनके ऊर्ध्व को चले जाने पर उस समय मन्वन्तर के क्षीण होने पर यह ममस्त त्रैलोक्य मनाधार हो जायगा ॥३-४॥ हे द्विज-गण ! तब स्थानियों के वे देव ममस्त स्थान धूय होने हुए तारा ऋक्ष और ग्रहों के द्वारा विमुक्त होकर प्रभ्रष्ट हो जायेंगे ॥५॥ इसके अनन्तर त्रैलोक्य के व्यतीत हो जाने पर जोकि इन्द्र के महिमा प्राप्त थे, वे सभी ब्रह्म तब महर्लोक में वास करने वाले हैं ॥यहाँ पर जिताद्य और आशुपान्त चौदहगण हैं समस्त मन्वन्तरो में वे महान् भोज वाले देव थे ॥७॥ इसके पश्चात् उनके ऊपर चले जाने पर वरुण धामियों के सायोज्य को प्राप्त कर उस समय सकलव प्राप्त होने पर वे सब देव जो थे ॥८॥

महर्लोक परित्यज्य गणास्ते धी चतुर्दश ।
 सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोक सहानुगा ॥६॥
 एव देवेष्वसीतेषु महर्लोकैकाग्रं प्रति ।
 भूतादिष्ववशिष्टेषु म्यावरान्तेषु चाप्युत ॥१०॥
 दूग्येषु शोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु ।
 देवेषु च गतेषूढं सायोज्य वस्पवासिनाम् ॥११॥
 सः सत्यं तास्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् ।
 सस्यापयति धौ सगं महद्दृष्ट्वा युगक्षये ॥१२॥
 तत्र युगसहस्रान्तमहर्गद्वद्ब्रह्माणो विदुः ।
 रात्रि युगसहस्रान्तमहोरात्रविदो जनाः ॥१३॥
 नैमित्तिक प्राकृतिको यश्चैवात्यन्तिकोऽर्थ्यत ।
 त्रिविध सर्व्वभूतानामित्येष प्रतिसन्धरः ॥१४॥
 ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाह प्रसयमः ।
 प्रतिसर्गं तु भूतानां प्राकृतं वरणक्षयः ॥१५॥

ज्ञानाच्चात्यन्तिकं प्रोक्त कारणानामसम्भवः ।

ततः सत्सृज्य तान् ब्रह्मा देवास्त्रैत्र्योक्त्यवाप्तिनः ॥१६॥

अहरन्ते प्रकुस्ते सर्गस्य प्रलयं पुनः ।

सुषुप्नुर्भगवान् ब्रह्मा प्रजा सहर्तते तदा ॥१७॥

ये सब देव महर्षीक का परित्याग करके सघरीर चौदहगण अनुगों के साथ जनलोक में गये ऐसा सुना जाया है ॥१६॥ इस प्रकार में महर्षीक से उन देवों के जनलोक के प्रति चले जाने पर अथशिष्ट भूतादि और स्वान राजों के साथ लोक स्वानों के एवं महान् भू आदि के दूख होजाने पर फिर उन देवों के ऊपर जाने पर कल्प पर्यन्त वाम हुआ और उनको सायोज्य प्राप्त हुआ था ॥१०-११॥ इसके उपरांत उनको वहाँ से सज्जन करके ब्रह्माजी देवर्षि-पितृ तथा मानवों को युवक्षय में मद्दृष्टि से सर्ग को संस्थापित करते हैं ॥१२॥ वहाँ एक सहस्र युग तक जो ब्रह्माजी का दिन कहा जाता है और रात्रि का युग सहस्र पर्यन्त होता है । इस प्रकार से ब्रह्मा के महोरात्र को मनुष्य जानते हैं ॥१३॥ नैमित्तिक-प्राकृतिक और जो अर्थ से आत्यन्तिक यह तीन प्रकार का समस्त प्राणियों का सञ्चार होता है ॥१४॥ प्राण्य नैमित्तिक होता है उसका कल्पहार प्रसंग होता है । प्राणियों के प्रत्येक सर्ग में करण क्षय प्राकृतिक होता है ॥१५॥ और ज्ञान आत्यन्तिक कहा गया है जो कारणों का असम्भव होता है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी त्रैत्र्योक्त्यवाप्ति उन देवों को सज्जन करके दिन के अन्त में मर्त्य का प्रलय किया करते हैं । सोने की इच्छा वाले ब्रह्मा उस समय में प्रजाओं का सहार किया करते हैं ॥१६-१७॥

ततो युगसहस्रान्ते संप्राप्ते च युवक्षये ।

तनात्मस्या प्रजा वत्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः ॥१८॥

तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी ।

तथा यान्यन्यसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥१९॥

तान्येवान् प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च

सप्तर्श्मिरयो भूत्वा ह्युदतिः षड्भिभावसु ॥२०॥

असह्यारश्मिर्भगवान् पिवन्नम्भो गभस्तिभिः ।
हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभिः ॥२१॥
भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वनं शनैः ।
भौम काष्ठं धनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥२२॥
तस्मादुदकं सूर्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते ।
नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविप्यते ॥२३॥

इसके पश्चात् सहस्र युग के अन्त में युव क्षय के सम्प्राप्त होने पर वह प्रजापति वहाँ पर अपनी आत्मा में स्थित प्रजा के करने के लिये प्रस्तुत होते हैं ॥१८॥ उस समय में सौ वर्ष पर्वन्त अनावृष्टि हुमा करती है । इस प्रकार से अल्पसार वाले जो जीव इस पृथ्वी तल में होते हैं वे यहाँ पर ही प्रलीन हो जाया करते हैं और भूमि में मिल जाया करते हैं । इसके उपरान्त विभावमु (मूर्य) सप्तरश्मि होकर उदित होता है ॥१९-२०॥ भगवान् सूर्य बहुत ही तीव्र किरणों वाले होते हैं । जिनको कोई सहन नहीं कर सकता है । वे अपनी किरणों के द्वारा जन का पात किया करते हैं । उसी हरित रश्मियाँ अत्यन्त ही सप्तो के द्वारा ही दीप्यमान होनी हैं ॥२१॥ शनैः शनैः वन में व्याप्त होते हुए फिर विवर्तित होनी हैं । भूमि के वायु, धन, तेज को बहुत ही भक्षण करते हुए दीप्त होते हैं ॥२२॥ इसमें तपते हुए सूर्य का उदक कहा जाता है । अनावृष्टि में सूर्य तपता है और नावृष्टि से परिविष्ट होता है ॥२३॥

नावृष्ट्या परिविम्बन्ति वारिणा दीप्यते रविः ।
तस्मादपि पिवन् या वै दीप्यते रविश्चम्बरे ॥२४॥
तस्य ते रश्मयः सप्त पिवन्त्यम्भो महार्णवात् ।
तेनाहारेण सन्दीप्तं सूर्यं सप्त भवत्युत ॥२५॥
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ॥२६॥
प्राप्नुवन्ति च भाभिरतु ह्युद्धं चाघश्च रश्मिभिः ।
दीप्यन्ते आस्त्राः सप्त युगान्ताग्निं प्रतापिनः ॥२७॥

ते वारिणा च सदीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः ।
 स समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो बसुन्धराम् ॥२८॥
 ततस्तेषां प्रनापेन दह्यमाना बसुन्धरा ।
 साद्रि नद्यण्वा पृथ्वी दिस्नेहा समपद्यत ॥२९॥
 दीप्ताभिः सन्तताभिश्च चित्राभिश्च समन्ततः ।
 अधश्चोर्ध्वञ्च तिर्यक् च सरदः सूर्यरश्मिभिः ॥३०॥

नावृष्टि से रवि परिवर्धित होता है और बारि (जल) से दीप्त हुआ करता है । इससे जो जल का पान करती है उससे सूर्य अम्बर में दीप्त हुआ करता है ॥२४॥ उगकी तान रश्मियाँ महाजन में जल का पान किया करती हैं । उस माहार में सन्दीप्त होने वाला सूर्य मल्य होता है ॥२५॥ इसके अनन्तर सात रश्मियाँ चारों दिशाओं में सूर्य मूल होती हुई उस समय शिखी (धनि रूप) के इन चतुर्भुज को सर्व को दह्य किया करती हैं ॥२६॥ ऊपर और नीचे अपनी दीप्तियाँ से रश्मियाँ सर्वत्र प्राप्त हो जाती हैं । प्रताप वाले सूर्य की मुखानि तप्त आम्बर दीप्यमान होने हैं ॥२७॥ वे बहु महान् रश्मियाँ जन के द्वारा सन्दीप्त हो जाया करती हैं । इस बसुन्धरा को जलानी हुई मायाज को आवृत करके रखा करती हैं ॥२८॥ इसके अनन्तर उनके प्रकट ताप से यह समस्त बसुन्धरा दह्यमान हो जाया करती है । परंतु वे महिन नदी और समुद्र से युक्त यह समस्त पृथ्वी बिना स्नेह वाली अर्थात् एतद्वत् शुष्क हो जाती है ॥२९॥ दीप्त-मन्त्रण फैली हुई — विविध क्षेत्र से युक्त सूर्य की विरणों में नीचे के भाग और ऊपर का भाग और निम्न भाग सभी मरद हो जाते हैं ॥३०॥

सूर्याग्नीना प्रवृद्धानां समृष्टानां परस्परम् ।
 एतद्वत्प्रपन्नानामेवज्वाल भवत्युत ॥३१॥
 गर्जनोऽप्रणासाश्च मोर्ध्मनभूत्वा तु मण्डली ।
 चतुर्भोजमिदं सर्वं निर्दहत्यागु तेजसा ॥३२॥
 ततः प्रमोयते सर्वं जङ्गमं म्यावर तदा ।
 निवृत्ता निम्बृणा भूमिः क्षमपृष्ठमया भवेत् ॥३३॥

अम्बरीषमिवामाति सर्वं मारिगित जगत् ।
 सर्वमेव तदार्चिभिः पूर्णं जज्वाल्यते नभः ॥३४॥
 पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च ।
 ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥३५॥

इस प्रकार से बड़ी हुई और परस्पर में मगूँ घर्षात् मिली हुई मूर्ध की
 अविद्यो का जोकि सभी मिलकर एक स्वप्न को प्राप्त हो गई है फिर सबकी
 एक ही महान् ज्वाला का रूप हो जाया करता है ॥३१॥ वह मण्डली इस
 प्रकार ने भीषण अग्नि का स्वरूप धारण करके तेज से समस्त लोको का प्रदूष
 नाश किया करता है और इस चतुर्लोक को समस्त को दीप्त ही तेज में निर्दग्ध
 कर देता है ॥३२॥ इसके पश्चात् यह समस्त स्थावर और जङ्गम उस समय
 प्रलीन हो जाता है । यह भूमि ऐसी हो जाती है कि इस पर एक भी वृक्ष नहीं
 रहता है तथा वृक्षों में हीन भूमि के पृष्ठ के समान एकदम पट्ट सी होजाती है
 ॥३३॥ यह समस्त मारीपित जगत् अम्बरीष की भांति प्रलीन होता है । उस
 समय में अविद्यो के द्वारा यह समस्त आकाश मण्डल परिपूर्ण रूप से जाद-
 ल्यमान हो जाता है ॥३४॥ पाताल में जो प्राणी हैं और महा समुद्र में हैं वे
 भी उस समय प्रलीन हो जाते हैं और भूमित्व को प्राप्त हो जाया करते हैं
 अर्थात् भूमि में मिलकर अपना अस्तित्व खो देने हैं ॥३५॥

द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महादधि ।
 सर्वं तद्भस्ममावृचक्र मूर्धात्मा पावकस्तु स ॥३६॥
 समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वतः ।
 पितृक्षप समिद्धोऽग्नि पृथिवीमाधितो ज्वलन् ॥३७॥
 ततः सर्वतःक शूलानतिक्षम्य महास्तथा ।
 लोकान् सहृते दीप्तो घोरः सर्वतरोऽजल ॥३८॥
 ततः म पृथिवी भित्त्वा रसानलमगोनयत् ।
 निर्दग्ध ताम्स्तु पातालान्नागलोकमथादहन् ॥३९॥
 अघस्तात्पृथिवी दग्धा ह्यूर्ध्वं स दहते दिवम् ।
 योजनाना सट्स्याणि ह्ययुनान्यवुं दानि च ॥४०॥

उदतिष्ठन्निष्पाम्नस्य प्रह्वयः सवर्तकस्य तु ।
 गन्धर्वाश्च पिशाचाश्च समहारगराक्षसान् ।
 तदा दहति सदीप्तो गोलवः चैव सर्व्वं ॥४१॥
 भूर्लोकन्तु भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च महस्तथा ।
 घोर दहति कालाग्निरेव लोकचतुष्टयम् ॥४२॥
 व्याप्तपु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमयाग्निना ।
 तत्तेजः समनुप्राप्तं कृत्स्नं जगदिदं शनं ।
 अयोगुडनिभं सर्व्वं तदा ह्येष प्रवाशते ॥४३॥
 ततो गजकुलाकारास्तडिद्धिः समलकृताः ।
 उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि सवर्तका घना ॥४४॥

मर्दाना उन पावक न द्वीप-पर्वत-वप घोर महा समुद्र इन सबको
 भस्म सात् कर दिया था ॥३९॥ समुद्रो म-नदिशा से घोर पाताली में सब
 घोर से जल का पान करते हुए समिद्ध हुआ वह अग्नि जलता हुआ पृथिवी में
 आभित होगया था । इसमें अनन्तर वह महान् सवर्तक अग्नि घौली का अग्नि
 क्रमण करके घट्यत्त घोर तथा दीप्त होता हुआ खाका का सहार करता है
 ॥३७ ३८॥ इसके पश्चात् वह इस पृथ्वी का भस्म करके रसातल में पहुँचना है
 घोर उसने उसका ग्राहण कर दिया था । उन पाताल लोको को निर्दग्ध करके
 उसके पश्चात् उमने नागलोक को भी जला दिया था ॥३९॥ नीचे के समस्त
 भाग में पृथ्वी को दग्ध करके वह फिर ऊर्ध्व भाग में दिवलोक जना देता है ।
 सहस्र श्रद्दुत घोर अश्रुद योजनो तक उस सवर्तक अग्नि की बहुत सी शाखाएँ
 उठ गई थी । फिर वह गन्धर्वो को-पिशाचो को-बहोरगो को घोर राक्षसों को
 उस समय सदीप्त होता हुआ जलाता है ॥४०-४१॥ भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोक
 घोर महर्लोक इन चारों लोकों को इस प्रकार से वह घोर वाताग्नि दग्ध कर
 दिया करता है ॥४२॥ तिर्यग घोर ऊर्ध्व भाग में उन अग्नि के द्वारा उन लोकों
 में व्याप्त हो जाने पर वह तेज घीरे घीरे सम्पूर्ण इस जगत् में प्राप्त हो जाता
 है । उन समय वह सब अयोगुड के समान प्रकाशित होने लगता है ॥४३॥

इसके पश्चात् हाथियों के समान धाकार जाने विद्युत् से बलवत् उस समय
धाकार म परम धार स्वरूप जाने सवत्तव मेष उठ आते हैं ॥४४॥

✓ केचिन्नीलात्पलङ्क्यामा केचित्कुमुदसन्निभा ।
केचिद्द्वयमकाशा इन्द्रनीलनिभा पर ॥४५॥
महकुन्दनिभाभ्रान्ये जात्यश्रुतनिभाम् तथा ।
धूम्रवर्णा घना केचित्केचित्पीता पद्माधरा ॥४६॥
केचिद्रामभवर्णाभा लाक्षारक्तनिभाम् तथा ।
मन शिलाभास्त्वपरे कपालाभाम् तथा मृदा ॥४७॥
इन्द्रगोपनिभा केचिदुत्तिष्ठन्नि घना दिशि ।
केचित्पुरघराकारा केचिद्गजकुनापमा ॥४८॥
केचित्पयतसकाशा केचित्स्पलनिभा घना ।
कुण्डागारनिभा केचित्केचिन्मीनकुनापमा ॥४९॥

उन मेषों में कुछ तो नील वस्त्र के महान् आकार होने हैं और कुछ कुमुद
के समान हुंसा करने हैं । कुछ बंदूक के तुल्य हैं तो दूसरे इन्द्र नील के सदृश
होते हैं ॥४५॥ अन्य गम और कुन्द के तुल्य हैं तो कुछ धूम्रवर्ण के समान होते
हैं । कुछ मेष धूम्र वर्ण धान होते हैं तो कुछ पद्म पीत हैं ॥४६॥ कुछ रातम
(गंधा) के वर्ण जैसे वर्ण होते हैं तो कुछ ताल के जैसे रत्न वर्ण होते हैं ।
कुछ मैथिल के समान आभा में युक्त हैं तथा कुछ मधुकर (बबूरा) की सी
आभा वाले होते हैं ॥४७॥ कुछ बांदव इन्द्र गगन के तुल्य इन धाकारों में उठते
हैं । कुछ पुष्पर के आकार के होते हैं तो कुछ सर्प के समान होते हैं ॥४८॥
कुछ पवना के समान हैं तो कुछ स्पल के महान् मेष होते हैं । कुछ
गार के तुल्य कुन्द हैं तो कुछ मीन कुंज के तुल्य होते हैं ॥४९॥

बहुरूपा धोरूपा घाग्म्वरनिनादिन ।
तदा जनघरा मने पूर्यति नभस्य नभः ॥५०॥
सगस्ने जनदा घोरा नवीना भास्वरातिमना ।
ममथा मवृतामानस्तर्माग धामयन्त्युन ॥५१॥

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्ति च महोद्यमम् ।
 सुधोरमशिव नाशयन्ति च त पावकम् ॥५२॥
 प्रवृष्टैश्च तथात्यर्थं वारिमि पूर्यन्ते जगत् ।
 अद्भिस्तेजोऽभिभूतश्च तदाग्निं प्राविशत्यपः ॥५३॥
 नष्टे चाग्नीं वर्षंशते पयोदा पावसम्भवा ।
 प्लावयन्ति जगत्सर्वं बृहज्जालपरिस्रवं ॥५४॥

बहुत से रूपों वाले तथा घोर स्वरूप घारी घोर अग्नि घोर निनाद करने वाले जलधर उस समय म नभ के रथन भर दिया करते हैं ॥५०॥ इसके अनन्तर भास्करात्मिण वे नये मेघ जिनका कि परम घार स्वरूप है मात प्रवार से सवृत आत्मा वाल उस अग्नि को शमन कर देते हैं ॥५१॥ इसके उपरान्त वे जलधर महान् उद्यम वाली वर्षा का रथाग किया करते हैं अर्थात् अत्यन्त जोर से बरसते हैं घोर उस परम घोर अमञ्जल उस पावक का नाश कर देते हैं ॥५२॥ प्रवृष्ट रूप से वर्षा करने वाले अग्नि जलो के द्वारा यह जगत् पूरित हो जाता है । फिर वह तेजोऽभिभूत अग्नि असो के द्वारा जल ही में प्रवेश कर जाता था ॥५३॥ पाक से समुत्पन्न वे खनद वृन्द भी वर्षं तब बरसते हुए अग्नि को शान्त कर देने पर बृहत् जल के समूह के परिस्रवों के द्वारा इन समस्त जगत् को प्लावित कर देते हैं ॥५४॥

धाराभि पूरयन्तीम चोद्यमाना स्वयम्भुवा ।
 अन्ये तु मलिलीर्षस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।
 साद्रिर्द्वीपास्तर पृथ्वी ह्यद्भिः सद्वाचते तदा ॥५५॥
 तस्य वृष्ट्या च ताय तत्मर्ध्वं हि परिमण्डितम् ।
 प्रविशत्युदधौ विप्राः श्रोत मूर्ध्न्यस्य रश्मिभि ॥५६॥
 आदित्यरश्मिभि पीत जनमभ्रेषु तिष्ठति ।
 पुन पतति तद्भूमौ तेन पूर्यन्ति चार्णवा ॥५७॥
 तत समुद्रा स्वा वेना परिक्रामन्ति मर्ध्वंश ।
 पर्व्यन्ताश्च विशीर्यन्ते मही चाप्यु निमज्जति ॥५८॥

ततस्तु महसोद्भ्रान्त पयोदास्ताम्रभस्तले ।
 सवेष्टयात घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ॥५६॥
 तस्मिन्नेकाणवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
 पूर्णं युगसहस्रं वै निशेष कल्प उच्यते ॥६०॥
 अयाम्भसा घृते लोके प्राहुरेकाणव बुधा ।
 अथ भूमितल खञ्ज वायुश्चैकाणवे तदा ।
 नष्टे भावेऽवलोन तत्प्राज्ञायत न विश्वम् ॥६१॥
 पाण्डिवास्तव्य सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्व्वश ।
 प्रसरन्त्यो व्रजन्त्येव सन्निवाह्या भजन्त्युत ॥६२॥

स्वयम्भू के द्वारा प्रेरित हुए ये भैरवी प्रानी भूमतापार धाराओं के द्वारा हम जगत् को भर दिया करते हैं । अग्न तो अपने जल के ओथो के द्वारा बेला को भी अभिभूत कर देने हैं । उस समय में पर्वत और द्वीपों के प्रन्तरो के सहित यह पृथ्वी जलो के द्वारा समाच्छादित हो जाया करती है ॥५५॥ और उसकी वृष्टि से हे द्विजगण ! परिमलित यह समस्त जल सूर्य की किरणों के द्वारा पान लिये गये समुद्र में प्रवेश करता है ॥५६॥ सूर्य के द्वारा पीया हुआ यह जल मेघों में स्थित हो जाता है फिर वही जल यहाँ पर भूमि में पड़ता है उसमें समुद्र भर जाया करते हैं ॥५७॥ इसके उपरान्त ये समुद्र अपनी बेला को सभी ओर में परिकल्पित कर दिया करते हैं । तब सर्व्वेन विनीत हो जाते हैं और समस्त भूमि जल में डूब जाया करती है ॥५८॥ इसके पश्चात् महमा उद्भ्रान्त वायु सभी ओर से घोर रूप धारण करके पाशान में उन मेघों को गवेष्टित कर लेता है ॥५९॥ उस समुद्र में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर पूरे एक सहस्र युग में निशेष कल्प बहा जाता है ॥६०॥ इसके अनन्तर एकमात्र जल के द्वारा समस्त लोक के व्यापृत हो जाने पर पुन एका-गणव बहा करने हैं और इस अनन्त तथा आवाग को वायु जब एकागणव बना देता है तब उस समय में भाव के नष्ट होने पर कुछ भी नहीं जाता जाता था ॥६१॥ पाण्डिवा—सामुद्र और हिम से होने वाले जल सभी ओर फैले हुए एक सन्निवाह्या को प्राप्त किया करने हैं ॥६२॥

आगतागतिकं चैव तदा तस्माल्लिल स्मृतम् ।
 प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमर्णवाख्य च तज्जलम् ॥६३॥
 आभान्ति यस्मात्ता भाभिभाशब्दव्याप्तिदीप्तिषु ।
 भस्म सर्व्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यते ॥६४॥
 नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते ।
 एकार्णवे तदा यो वै न शीघ्रास्तेन ता नरा ॥६५॥
 तस्मिन् युगसहस्रान्ते दिवसे ब्रह्मणो गते ।
 तावन्त कालमेव तु भवन्प्रेकार्णव जगत्
 तदा तु सर्व्वव्यापारा निवर्त्तन्ते प्रजापते ॥६६॥
 एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावर जङ्गमे ।
 तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राद्य सहस्रपात् ॥६७॥
 सहस्रशीर्षा सुमना सहस्रपात् सहस्रबधुर्वदन सहस्रवाक् ।
 सहस्रबाहु प्रथम प्रजापतिस्त्रयीपथे य पुरुषो निरुच्यते ॥६८॥
 आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व्व एकः प्रथमस्तुरापाद् ।
 हिरण्यगर्भं पुरुषो महान् धीं सपद्यते वै तमस परस्तात् ॥६९॥
 चतुर्युगसहस्रान्ते सर्गत सलिलप्लुत ।
 सुपुंस्तुप्रवासा स्वा रात्रि तू कुरुते प्रभू ॥७०॥

उस समय में वह जन आगतागतिक कहा गया है । अर्थात् वे नाम
 वाला वह जन इस भूमि को ढक कर स्थित रहता है ॥६३॥ क्योंकि वह भस्मो
 के द्वारा भी—इस शब्द की व्याप्ति की दीप्तिघो में आमा युक्त होता है सबको
 भस्म में धनु प्राप्त करना है इसलिये वह अम्भ कहा जाता है ॥६४॥ और
 नानात्व में एक शीघ्र में अरधातु नहीं जानी है । उस समय में एकार्णव में जो
 शीघ्र नहीं है इससे वह नर कहा गया है ॥६५॥ ब्रह्मा के युग सहस्र वाले उस
 दिन के पन होने पर उस समय तक ही यह जगत् एकार्णव रहता है और तब
 प्रजापति के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाया करते हैं ॥६६॥ इस प्रकार से
 उस एक अर्णव में समस्त स्थावर और जङ्गम के नष्ट हो जाने पर तब ब्रह्मा
 महस नेत्रा और महत्त चरणा जाने होत हैं ॥६७॥ सहस्र शीर्ष जाने-सुमना-

महस्य पादो म युक्त सहस्र चक्षु घोर मुखो मे पूर्ण—महस्य नाक्—सहस्र बाहुयो
 याना त्रयीपथ म प्रथम प्रजापति हाता है जात्रि पुरुष कहा जाता है ॥६८॥
 आदित्य के समान चण वाला—इम भुवन को गोता प्रथम तुरापाट एक ध्रुव
 ही होता है । वह हिरण्य गर्भ पुरुष तम से परे महान् मय्यन्न होता है ॥६९॥
 एह महस्य बारो यूगा के अत म सब घोर भ चल म न्युन म मोन की इच्छा
 करने वाला वह प्रभु प्रकाश हीन उम अपनी रात्रि को किया करता है ॥७०॥

चतुर्विधा यदा वेतो प्रजा सर्व्वर्ण्डमण्डिता ।

पश्यन्ते त महात्मान कान मत्त महर्षय ॥७१॥

जनलोवविवर्तन्तस्तपमा लब्धचक्षुष ।

भृशदयो महात्मान पूर्व्वो व्याख्यातलक्षणा ॥७२॥

सत्यादीन् सप्तलोकान् वी त हि पश्यन्ति चक्षुषा ।

ब्रह्माण त तु पश्यन्ति महाबाह्योपु रात्रिषु ॥७३॥

बल्पाणा परमेष्ठिस्वात्तस्मादाद्य स पठ्यते ॥७४॥

स यष्टा सर्गभूताना बल्पादिषु पुन पुन ।

एवमावगमिन्वा तु स्यात्मन्यव प्रजापति ॥७५॥

अथात्मनि महानजा सर्व्वमादाय सर्व्वदृत् ।

तनस्त वपत रात्रि तमस्थेराणवे जले ॥७६॥

ततो रात्रिक्षये प्राप्त प्रतिबुद्ध प्रजापति ।

मन मिमृशवा युक्त सर्गाय निदधे पुन ॥७७॥

एव स नोके निर्गुत्त उपदान्त प्रजापतो ।

ब्रह्मर्नमित्तिके तस्मिन् कल्पित वी प्रमयम ॥७८॥

देहैवियोग सत्त्वाना तस्मिन् वी कृत्स्नश स्मृत ।

ततो दग्धेषु भूतषु सबोत्पादित्यरदिमनि ।

दव्यपिम नुवम्येषु तस्मिन् सद्गुलने तदा ॥७९॥

गधर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचान्तानि मर्वांस ।

बल्पादाद्यप्रतप्तानि जनमवाथयन्ति वै ॥८०॥

त्रिम समय म सर्वाण्ड मण्डित चार प्रकार या प्रजा गन करती है

तो सप्तपिण्ड उम महान् आत्मा वाले काल को देखा करते हैं ॥७१॥ जल लोक में विद्यमान और तप के द्वारा नेत्रों की दृष्टि को प्राप्त करने वाले भृगु आदि महात्मा होते हैं जिनका पूर्व में नक्षत्रों की व्याख्या कर दी गई है । मरत्य प्रभृति सातों लोकों को वे ही षष्ठु के द्वारा देखा करते हैं । उन महा ब्राह्मी रात्रियों में वे ब्रह्मा को भी देखा करते हैं ॥७२॥ सप्तपिण्ड अपनी रात्रियों में सोये हुए काल को देखते हैं । कल्पो का परममेव होने से वह आद्य पञ्चा जाता करता है ॥७३-७४॥ वह समस्त प्राणियों का कल्पो के आदि में पुन पुन दृष्ट होता है । इस प्रकार से प्रजापति अपनी आत्मा में ही आवेष्टित होता है ॥७५॥ इसके अनन्तर महान् तेज काल सबको आत्मा में लाकर सब कुछ के करने वाला इसके पश्चात् एकार्णव जल में जोकि एकदम अन्धकारमय है वहाँ रात्रि में बाम किया करता है ॥७६॥ इसके उपरान्त उस रात्रि के क्षय हो जाने पर वह प्रजापति प्रति बुद्ध होता है और फिर सृजन करने की इच्छा से मनको युक्त करके पुन मर्म के लिये निश्चित किया करता है ॥७७॥ इस तरह से सलोक के निवृत्त होने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा ब्रह्म नैमित्तिक उम कल्पित के प्रसयम होने पर सत्त्वों का देहों से वियोग होता है और उसको पूर्णरूप में कहा गया है । इसके पश्चात् सूर्य की किरणों के द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर उम समय में मनुज श्रेष्ठ देवपितृ के उम सङ्कलन में गन्धर्व आदि जीव और पिशाचान्त तक कल्प के आदि में अग्रत होत हुए जन्म लोक का आश्रय लिया करते हैं ॥७८-७९-८०॥

तिर्यग्योनीनि सत्त्वानि नारकेषानि यान्यपि ।

जने तान्युपपद्यन्ते यावत्सप्त्तवते जगत् ॥८१॥

ध्रुष्टायान्तु रजन्या तु ब्रह्मणेऽप्यक्तयोनये ।

जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि वृत्तनश ॥८२॥

ऋषयो मनवा देवा प्रजा सर्वाश्चतुर्विधा ।

तेषामपीह सिद्धाना निधनोत्पत्तिश्च्यते ॥८३॥

यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयान्तमन स्मृतम् ।

तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥८४॥

धाम्भूतसत्त्ववात्तस्माद्भुव. ससार उच्यते ।

यथा सर्वानि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ॥८५॥

स्थावरादीनि सत्त्वानि बल्के बल्के तथा प्रजाः ।

यथात्तुलितुलिङ्गानि नानारूपाणि पथ्यये ॥८६॥

दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मात्तरानिषु ।

प्रत्याहारे च सर्वे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥८७॥

निष्क्रमन्ते विदन्ते च प्रजावार प्रजापतिम् ।

ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोग महेश्वरम् ॥८८॥

ओ निर्यक् योनि याते जीव ये धीर ओ नारसीय जीव ये उग ममय
मे ये मभी सध प्रवार से नष्ट पाथो वात्त होने हुए दग्ध होवये ये । जब तब
जगत् गण्धारिन रहना है तब तब ये मभी मत्त्व जनता में उत्पन्न हुआ करते
है ॥८१॥ अथवा योनि ब्रह्मा के निर्य रजनी के शुद्ध हो जाने पर फिर के
समस्त प्राणी पूर्ण रूप में उत्पन्न होने है ॥८२॥ श्रुतिवर्ग-मनुस्मृत-देवता-
प्रजा ममस्त चागे प्रवार की—इन सबका धीर यही पर निजो का भी निघन
होना तथा उत्पन्न होना कहा जाता है ॥८३॥ जिस तरह में हम लोक में मूर्ख
का उदय होना धीर अज्ञ होना कहा गया है—उसी तरह में प्राणियों का
जन्म धीर निरोध दिगनाई देना है ॥८४॥ उग भूत मध्यम से लेकर मन समाप्त
कहा जाता है । जैसे ममस्त प्राणी यही वर्ण में उत्पन्न हुआ करते हैं ॥८५॥
जिस तरह श्रुति के समय में पर्यय होने पर जनक प्रवार के श्रुति के विना जाने
है उसी तरह कर्म-कर्म में म्दावत् आदि तत्त्व धीर प्रजा हुआ करते हैं ॥८६॥
ब्रह्मा की वात्त रात्रिधो में वे-वे ही प्रत्याहार में और सर्व में ध्रुव धीर गति-
मान् दिगनाई दिग करने हैं ॥८७॥ मनुस्मृत याव जाते मन्थर प्रजा के प्रसार
का प्रजापति ब्रह्मा में ममस्त प्राणी प्रवेश करने हैं धीर निरामग निरा
करने हैं ॥८८॥

मयष्टा गयेभूतानां कन्नादिषु पुन. पुन ।

ध्याताध्यातां मशुदेवगम्य गरीमिह जगत् ॥८९॥

येनैव नृष्टा प्रथम प्रयाता द्यापो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।

पूर्वप्रयातेन तथा ह्यपोऽन्यास्तेनैव तेनैव तु सव्रजन्ति ॥६०॥

यथा नृभेन त्वशुभेन कर्मणा तत्रैव च तेन विवर्त्तमाना ।

मर्त्यास्तु देहान्तरभावितत्त्वाद्भवेर्वशाद्दुर्धर्मघश्चरन्ति ॥६१॥

ये चापि देवा मनव प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धा ।

सद्भावितारुष्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्निसर्गेण भवन्ति सत्त्वा ॥६२॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसप्तवम् ।

मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्यारयातानि मया द्विजाः ।

सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ॥६३॥

स युगाख्या सहस्रं तु मर्वाण्येवान्तराणि वै ।

अस्या सहस्रे द्वे पूर्णे निःशेष कल्प उच्यते ॥६४॥

एतद्ग्राह्यमहो ज्ञेय तस्य सख्या निबोधत ।

निमेषस्तुल्य मात्रा हि कृतो लघ्वक्षरेण तु । ६५॥

मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदश स्मृताः ।

लव क्षणास्तु पञ्चैव विशत्काष्ठा तु ते त्रय ॥६६॥

कल्पो के भावि कालो मे समस्त प्राणिनो का बार बार स्रष्टा, व्यक्त

धीर अव्यक्त महादेव हैं और उसका यह सारा जगत् है ॥६६॥ जिस मार्ग के

ही द्वारा प्रथम सृष्ट किया हुआ अत इम महीतल में गये हैं उसी प्रकार स पूर्व

प्रयात मार्ग से अन्य जल भी जाया करते हैं ॥६०॥ जैसे शुभ और अशुभ कर्म

से वहाँ-वहाँ पर ही विवर्त्तमान मनुष्य अन्य देहों में भावित होने के कारण मे

रवि के वश से ऊर्ध्व में तथा अधोभाग में विचरण किया करते हैं ॥६१॥

जो भी देव-मनुष्य-प्रजेश और अन्य भी जो स्वर्ग में गये हुए निद्र हैं वे सब

सद्भावित आरुष्याति के वश होने से पुन निसर्ग के द्वारा धर्म से मुक्त जीव होते

हैं ॥६२॥ हे द्विजगण ! मैंने मन्वन्तरो की व्याख्या जोनि यह भली भाँति करदी

है अब इस से आगे आभूत सप्तलव काल की वतलाऊंगा । मनुष्य प्रजा निसर्ग

के साथ और देवों के साथ चौदह हुए थे ॥६३॥ वह सब अन्तर युगाया सहस्र

है । इसके दो सहस्र पूर्ण निःशेष कल्प बँटा जाता है ॥६४॥ यह ग्राह्य नाम

बाला जानना चाहिये उसकी मर्यादा का ज्ञान प्राप्त करने के द्वारा किया हुआ निमेष तुल्य माना जाना होता है ॥६५॥ मनुष्यों की आँखों के निमेष तो पन्द्रह काशा वही गई है। पाँच क्षण का जब होता है और तीन लवों की बीस काशा होती है ॥६६॥

प्रस्थ सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लव स्मृत ।

लवार्धिशतकला ज्ञेया मृहूर्तस्त्रिंशत् कला ॥६७॥

मृहूर्तस्तु पुनस्त्रिंशदहोरानभिति स्थिति ।

अहोरान कलानान्तु व्यधिकानि शतानि पट् ॥६८॥

ताश्चैव सस्यया ज्ञेय चन्द्रादित्यगतिर्यथा ।

निमेषा दश पञ्चैव काशास्तास्त्रिंशत् कला ॥६९॥

त्रिंशत्कला मृहूर्तस्तु दशभागः कला स्मृता ।

चत्वारिंशत्कलानान्तु मृहूर्त इति मज्जित ॥१००॥

मृहूर्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञं प्रवर्त्तिता ।

तत्स्थाने नाम्भसाश्चापि पलान्यथ त्रयोदश ॥१०१॥

मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयत ।

एते चाप्युदकप्रस्थाश्चत्वारो नालिको घट ॥१०२॥

हैममापै कृतच्छिद्रंश्चतुर्भिश्चतुरगुलै ।

समाह्वानि च रात्रौ च मृहूर्तो वै द्विनालिको ॥१०३॥

रवेगतिविशेषेण सर्वेषु नृषु नित्यम् ।

अधिक पट् शत पञ्च कलानां प्रविधीयते ॥१०४॥

सप्तोदक का प्रस्थ होता है और साधिका सब कशा गया है । तीस लवों की एक कला जाननी चाहिये तथा बीस कला का मृहूर्त होता है ॥६७॥ तीस मृहूर्त का अहोरात्र होता है । एक सौ कलाओं का अहोरात्र होता है ॥६८॥ उनकी मर्यादा से चन्द्र और सूर्य को गति की भाँति जानना चाहिये । पन्द्रह निमेष और तीस काशाओं की कला होती है ॥६९॥ तीस कला का मृहूर्त और दश भाग कला वही गई है । चालीस कलाओं का मृहूर्त यह सना जाना होता है ॥१००॥ प्रमाण के ज्ञाताओं के द्वारा मृहूर्त तथा लव प्रकल्पित किये गये

हैं। उस स्थान बाल जल से भी तेरह पत होते हैं ॥१०१॥ मागध मान के द्वारा ही जल प्रस्थ का विधान होता है। ये चारों उदक प्रस्थ हैं और नालिक घट होना है ॥१०२॥ छेद किये हुए चार अंगुल बाने चार हेममाण्ड के समान दिन में और रात्रि में द्विनालिक मूहर्ष होता है ॥१०३॥ सूर्य की गति विशेष से समस्त मनुष्यों में निश्चय ही पाँचसौ छैं ब्रह्माण्डों का प्रविधान होता है ॥१०४॥

तदहर्मानुष ज्ञेय नाक्षत्रन्तु दशाधिकम् ।

साधनेन तु मासेन ह्यब्दोऽयं मानुष स्मृत ॥१०५॥

एतद्विष्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः ।

अह्नाऽनेन तु या सख्या मासत्वंयनवापिकी ॥१०६॥

तदा बद्धमिदं ज्ञानं सज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् ।

कलानां सुपरीमाणत्वाल इत्यभिधीयते ॥१०७॥

यदहर्ब्रह्मणो प्रोक्तं दिव्या कोटी तु तत् स्मृता ।

शतानाञ्च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।

नवतिञ्च सहस्राणि तथैवाग्यानि यानि तु ॥१०८॥

एतच्छ्रुत्वा तु श्रुतयो विस्मय परमाकुतम् ।

संस्थासम्भजनं ज्ञानमपृच्छन्तरन्तदा ॥१०९॥

संस्लावनस्य बालस्तु मानुषेणैव सम्मतम् ।

मानेन श्रोतुमिच्छाम सक्षेपार्थंपदाक्षरम् ॥११०॥

तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः ।

सक्षेपाद्विषयक्षुप्मान् प्रोवाच भगवान् प्रभुः ॥१११॥

एते राश्रहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके ।

तासां सख्यामवपात्रि ब्राह्म वक्ष्याम्यहं क्षये ॥११२॥

यह मानुष दिन जानना चाहिये और नक्षत्र तो दस अधिक बाला होता है। सावन मान में यह मानुष शब्द कहा गया है ॥१०५॥ यह दिव्य महोरात्र होता है—ऐसा शास्त्र का विनिश्चय है। इस दिन से जो सख्या है वह मास भयन श्रुत और धर्म की है ॥१०६॥ उम समय यह बद्ध ज्ञान जो सज्ञा है उसे उपलक्षित करो। ब्रह्माण्डों के सुपरीमाण से काल ऐसा नामसे कहा जाता है ॥१०७॥

जो ब्रह्मा का दिन ब्रह्मा गया है वह दिव्यबोटी वही गई है । सो महस्र दण और दो से गुणित होते हैं । और नव्वे सहस्र तथा जो अन्य हैं वे दण प्रकार के होते हैं ॥१०८॥ इसे श्रवण करके ऋषिगण परम प्रभुत विष्णु को प्राप्त हुए यह सस्या का सम्मजन ज्ञान ऐसा ही प्रभुत था । उस समय प्रभु को पूछा ॥१०९॥ ऋषियो ने कहा—सम्प्लावन होने का समय मानुष के द्वारा ही सम्मत है । हम मान से श्रवण करने की इच्छा करते हैं जो कि सशेषार्थ पदाक्षर है ॥११०॥ लोच के हित भ रति रखने वाले उस चापुदेव ने उनकी इस बात को सुनकर भगवान् प्रभु जो कि दिव्य नेत्रो वाले थे, शेष से बोले ॥१११॥ ये रात्रि और दिन यहाँ लौकिक पहिले कीर्तित किये हैं । उनके वर्षाप्र को सस्या करके प्रब दिन के क्षय में जो ब्रह्मा है उसे बताऊँगा ॥११२॥

कोटिशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु ।

द्वानिशच्च तथा कोट्य सहस्रधाता सहस्रधया द्विजै ॥११३॥

तथा शतसहस्राणि एकोननवति पुन ।

आसीत्तिष्ठ सहस्राणि एष काल प्यवस्य तु ॥११४॥

मानुषाख्येण सहस्रधात कालो ह्याभूतसप्तव ।

सप्त सूर्यास्तदाऽग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ॥११५॥

महाभूतेषु लीयन्ते प्रजा सर्वाश्चतुर्विधा ।

सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥११६॥

विनिवृत्ते च सहारे उपशान्ते प्रजापती ।

निरालोके प्रदग्धे तु नैवेन तु समावृते ।

ईद्वराधिष्ठिते ह्यस्मिस्तदा ह्यवर्णवे तदा ॥११७॥

तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदह प्रभो ।

रात्रिस्तु सलिनावस्था निवृत्ती चाप्यह स्मृतम् ॥११८॥

अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते ।

आभूतसप्तवो ह्येष अहोरात्र स्मृत प्रभो ॥११९॥

त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।

आभूतेभ्य प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसप्तव ॥१२०॥

चारसौ करोड़ मानुष सूर्य तथा बत्तीस कोटि द्यु के द्वारा सूर्या में
 श्रम्यात किये गये हैं ॥११३॥ तथा सौ सहस्र नवासी और अस्मी सहस्र यह
 बाल प्लव वा होता है ॥११४॥ यह आभूत मन्त्रव काल मानुषाण्य के द्वारा
 सूर्यात किया गया है । उन समय उन अग्रलोको में सप्त सूर्य होते हैं ॥११५॥
 चारों प्रकार की समस्त प्रजा महामूनो में लीन होजाती है । जबकि लोक जल
 से आलुप्त होजाता है और स्थावर और अज्जम सब नष्ट हो जाते हैं ॥११६॥
 संहार के दिनिवृत्त होने पर और प्रजापति के उपदान्त होजाने पर बिना प्रकाश
 वाले प्रकृष्ट रूप से जले हुए होने पर तथा रात्रि के अन्धकार समावृत होने पर
 सप्त समय यज्ञ एकाणव केवल ईश्वर से अधिष्ठित होता है ॥११७॥ उसका
 जब तक दिन रहता है तब तक यह एकाणव जानना चाहिये । जलकी अवस्था
 ही रात्रि है और उसकी निवृत्ति होजाने पर दिन कहा गया है ॥११८॥ उन
 प्रकार से इसका महोरात्र क्रम से परिवर्तित हुआ करता है । यह आभूत मन्त्रव
 प्रभु का महोरात्र ही कहा गया है ॥११९॥ त्रैलोक्य में जो गति वाले ध्रुव
 सत्त्व हैं वे अभूता से प्रलीन हो जाया करते हैं इस कारण से इसका नाम आभूत
 सत्त्व ऐसा कहा गया है ॥१२०॥

अग्रे भूत प्रजानाम्बु तस्माद्भूत प्रजापति ।
 आभूत प्लवते चैव तस्मादाभूतसप्लव ॥१२१॥
 शाश्वते आभूतत्वे च शब्दे आभूतसप्लव ।
 अतीता वत्तमानाश्च तथैवानागता प्रजाः ।
 दिव्यसङ्ख्या प्रसङ्ख्याता ह्यपरार्धगुणीकृता ॥१२२॥
 परार्धद्विगुणश्चापि परमायुः प्रवीतितम् ।
 एतावान् स्थितिकासस्तु ह्यजस्येह प्रजापते ।
 स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मण परमेष्ठिनः ॥१२३॥
 यया वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति ।
 तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥१२४॥
 तथा ह्यप्रतिसमृष्टे महदादौ महेश्वरे ।
 महत्प्रलीयतेऽव्यक्तं गुणसाम्यं ततो भवेत् ॥१२५॥

इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसप्लव ।
 ग्रहणैर्मित्तिको ह्येष सप्रक्षालनसयम ॥१२६॥
 समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्त्तयामि व ।
 य इद धारयेन्नित्य शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णश ।
 कीर्त्तनाञ्छ्रवणाच्चापि महती सिद्धिमाप्नुयात् ॥१२६॥

समस्त प्रजाओं के आगे हुआ था इससे प्रजापति भूत है और आभूत सप्लवित होता है इस कारण से आभूत सप्लव इस नाम से इसे कहा जाया करता है ॥१२१॥ और आभूत समृतत्व शब्द में आभूत सप्लव है । जो व्यतीत होगये हैं वे-वर्त्तमान में रहने वाले और उसी प्रकार से अनागत अर्थात् भविष्य में होने वाले समस्त प्रजा की अपराध गुणीकृत दिव्य शक्ति होते हैं ॥१२२॥ परादिगुण भी परमायु कही गई है । प्रजापति अजका इतना ही स्थिति का काल होता है । प्रत्येक सर्ग की स्थिति के अन्त में परमेश्वी ब्रह्मा का स्थिति काल होता है ॥१२३॥ जिस तरह वायु के प्रवेग वाले भोके से दीपों की प्रवि (ली) उपशान्त होजाया करती है उसी प्रकार से प्रत्येक सर्ग से ब्रह्मा भी उपशान्त होजाया करता है ॥१२४॥ तथा महदादि में महेश्वर के अग्रति समृष्ट होने पर महत् अभ्यक्त में प्रलीन हो जाता है तब गुणों की साम्यावस्था होजाया करती है ॥१२५॥ इस तरह मैंने यह आभूत सप्लव समाख्यात कर दिया है यह सम्प्रक्षालन सयम ब्रह्मा के निमित्त वाला होता है ॥१२६॥ मैंने यह संक्षेप से कह दिया है । अब आगे आप लोगों को क्या बताऊँ ? इसे जो नित्य ही धारण किया करता है अथवा बार-बार श्रवण किया करता है । इसके कीर्त्तन करने में तथा श्रवण करने से महती सिद्धि को प्राप्त होता है ॥१२७॥

प्रकरण ६३—शिवपुर वर्णन

असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्द्विजैः ।
 धर्म्मवैशेषिकैश्चैव ह्याचूर्णमूढमदक्षिभिः ॥१॥

ते देव्यं सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः ।
 चतुर्दशंते मनव कीर्त्तिता कीर्त्तिवर्धना ॥२॥
 अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानामताश्च ये ।
 अपिभिर्देवतैश्चैव सह गन्धवराक्षसं ॥३॥
 मन्वन्तराधिकारेषु जायन्तीह पुनः पुनः ।
 देवाः सप्तर्षयश्चैव मनव पितरस्तथा ॥४॥
 सर्व्वे ह्यपि क्रमातीता महर्लोक समाश्रिता ।
 ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैः सहितैः सुराः ॥५॥
 तैस्तत्प्यकारिभिर्मुक्तैः श्रद्धावद्भिरदणितैः ।
 वर्णाश्रमाणा धर्म्मेषु श्रोतस्मात्तैषु सस्थितैः ।
 विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरदशाय ॥६॥
 महर्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिष्वस्त्वया विभो ।
 प्रतिलोके च वर्त्तंभ्यमनेकं समधिष्ठिता ॥७॥
 यावन्तश्चैव ते लोका दह्यन्ते ये न ते प्रभो ।
 एतन्नः कथय प्रीत्या त्वं हि वेत्स्य यथातथम् ॥८॥

श्री वायुदेव ने कहा—असाधारण चरित्र वाले हुत शेष आदि ऋषियों के साथ तथा धर्म के वैशेषिक आचरण मूढम दशियों के साथ और देवों के साथ वे महर्लोक के निवासी होते हुए रहा करते हैं । ये कीर्त्ति के बढ़ाने वाले और मनु बताये गये हैं ॥१-२॥ अतीत—वर्त्तमान और भूनागत जो हैं वे ऋषियों के—देवों के और गन्धर्वों के एवं राक्षसों के साथ मन्वन्तरों के प्रधिबारी में बारम्बार उत्पन्न होते हैं । इसी तरह देव—सप्तर्षिण—मनु और पितृवृन्द पूजा करते हैं ॥३-४॥ सभी क्रम से अतीत हुए महर्लोक में समाश्रित होते हैं । ब्राह्मण—क्षत्रिय और वैश्यों के सहित सुर वहाँ आश्रय किया करते हैं ॥५॥ तत्प्यों के करने वाले—श्रद्धा से युक्त—दण्ड से रहित—युक्त—वर्णाश्रमों के धर्मों में तथा श्रोत एवं स्मार्त धर्मों में वे स्थित उनसे विनिवृत्त अधिकार वाले वे जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है वहाँ रहा करते हैं ॥६॥ ऋषियों ने कहा—हे मातरिश्वन् ! हे विभो ! आपने महर्लोक—यह कहा है और प्रतिलोक में अनेकों

के द्वारा वनंध्य मे समविष्टित बताये हैं ॥७॥ हे प्रभो ! और जितने वे लोक हैं उनमे जो नहीं दग्ध होते हैं—यह सब हमको बताइये और प्रेम के माय वर्णन करिये क्योंकि आप सभी कुछ ठीक ठीक जानते हैं ॥८॥

एवमुक्तस्ततो वायुमुनिर्विविनयात्मभि ।

प्रोवाच मधुर वाक्य यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥९॥

चतुर्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभि ।

लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवा ॥१०॥

सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै ।

भूरादयस्तु सङ्ख्याता सप्त लोका कृतान्त्वह ॥११॥

अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै ।

स्थानानि स्थानिभि सार्द्धं कृतानि तु निबन्धनम् ॥१२॥

पृथिवी चान्तरिक्ष च दिव्य यच्च मह स्मृतम् ।

स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्याणवकानि च ॥१३॥

क्षयातिशयमुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते ।

यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्यामतसप्तवम् ॥१४॥

जनस्तपश्च मायश्च स्थानान्येतानि त्रीणि तु ।

ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाप्रसयमात् ॥१५॥

व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै ।

भूलोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुव स्मृत ॥१६॥

विनय स मुक्त आत्मा वाले मुनियो के द्वारा इस तरह कहे गये वायु देव मधुर वाक्य बोले क्योंकि वे तत्त्वों के ज्ञेता थे अतः यथा तत्त्व ही उनके वचन भी थे ॥९॥ श्री वायु ने कहा—महर्षियो ने चौदह ही स्थानों का वर्णन किया है जो कि लोक—इस नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनमें मनुष्य निवास की स्थिति किया करते हैं ॥१०॥ उनमें सात तो कृत हैं और सात अकृत हैं । भूलोक प्रादि नामों से जो संख्यात होते हैं वे ही सात लोक यहाँ कृत होते हैं ॥११॥ और अकृत तो सात ही होते हैं जो कि प्राकृत हैं । स्थानियों के साथ ये स्थान कृत हैं और निबन्धन होते हैं ॥१२॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष और दिव्य जो

महर्लोक कहा गया है ये चार स्थान आखण्डक कहे गये हैं ॥१३॥ ये क्षयानशय से युक्त होते हैं तथा युद्ध कहे जायगे । जो नैमित्तिक होते हैं ये भाभूत सप्तव तक रहा करते हैं ॥१४॥ जन-तप और सत्य ये तीस स्थान हैं जहाँ पर आप-सयम से एकान्तिक सत्त्व ठहरा करते हैं ॥१५॥ ये साठ स्थान व्यक्त हैं इनको मैं बताता हूँ—

स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै मह स्मृत ।

जनस्तु पञ्चमो लोकस्तप पष्ठो विभाव्यते ॥१७

सत्यन्तु सप्तमो लोको निरालोकस्ततः परम् ।

भूरिति व्याहृते पूर्वं भूलोकाश्च ततोऽभवत् ॥१८

द्वितीय भुव इत्युक्तं अन्तरिक्षं ततोऽभवत् ।

तृतीय स्वरितित्युक्ते दिवं प्रादुर्बभूव ह ॥१९

व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तु ब्रह्मलोकमकल्पयत् ।

ततो भू पार्थिवो लोकः अन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ॥२०

स्वर्लोको वै दिवं ह्येतत्पुराणं निश्चयं गतम् ।

भूतस्माधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपति स्मृत ॥२१

वायुर्भुवस्याधिपतिस्तेन वायुर्भुवपतिः ।

भव्यस्य सूर्योऽपिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पतिः ॥२२

महेतिव्याहृतेनैव महर्लोकस्ततोऽभवत् ।

विनिवृत्ताधिकाराणां देवानां तत्र वै क्षयः ॥२३

जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति वै जनाः ।

तासां स्वाय भुवाद्यानां प्रजानां जननाज्जननः ॥२४

तृतीय स्वर्लोक होता है और चतुर्थ महर्लोक जानने के योग्य कहा गया है । जनलोक पार्थिव होता है और छटा तपलोक होता है ॥१७॥ सत्यलोक नाम वाला सप्तम लोक होता है इससे आगे निरालोक होता है । पूर्व में भू—यह व्याहृत होने पर इससे ही भूलोक हुआ ॥१८॥ फिर दूसरा भुव—यह कहा गया वह अन्तरिक्ष भुव कहा गया है । तीसरा स्व—यह कहने पर दिव का प्रादुर्भाव हुआ था ॥१९॥ इन तीन व्याहारों के द्वारा ब्रह्मलोक कल्पित हुआ

था । इमने भू पाण्डित्य लोक है और भुव यह अन्तरिक्ष कहा गया है ॥२०॥
 और स्वर्लोक यह दिव है—ऐसा पुराण में निश्चय को प्राप्त हुआ है । भूत का
 अधिपति अग्नि है इसके पश्चात् भूत पति कहा गया है ॥२१॥ वायु भुव पति
 है । भूम्य का अधिपति सूर्य होता है इससे सूर्य दिवस्पति कहा गया है ॥२२॥
 यह इस तरह व्याहृत होनेसे ही इस प्रकार से महर्लोक फिर हुआ था । विनिवृत्त
 अधिकार वाले देवों का वहाँ पर क्षय होता है ॥२३॥ जन पाँचवाँ लोक है
 उससे जन उत्पन्न हुआ करते हैं । उन स्वायम्भुवादि प्रजापति के जनन से जन
 होता है ॥२४॥

यास्ता स्वायम्भुवाद्या हि पुरस्तात्परिवीक्षिता ।

कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठन्ति तदा तप ॥२५॥

ऋभु सन्तुष्टुमाराद्या यन सन्त्यूद्धरेतस ।

तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तप ॥२६॥

सत्येति ब्रह्मणः शब्द सत्तामात्रस्तु ॥ स्मृतः ।

ब्रह्मलोकस्ततः सत्य सप्तमं स तु भास्वर ॥२७॥

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसा ।

सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुष्यं ।

स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः ॥२८॥

मरुतो मातरिश्रानो रुद्रा देवास्तथाश्विनौ ।

अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लोक्या दिवोकसः ॥२९॥

आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा ।

ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोक समाश्रिता ॥३०॥

एते वंमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः ।

इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसम्भवा ॥३१॥

भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृता ।

भारभ्यन्ते तु तन्मात्रं शुद्धास्तेषां परस्परम् ॥३२॥

जो स्वायम्भुवादि पहिले कहे गये हैं कल्प के दग्ध होने पर उस समय
 लोक में तप को प्रतिष्ठित किया करते हैं ॥२५॥ ऋभु सन्तुष्टुमार आदि जहाँ पर

ये ऊर्द्धरेता लोण होते हैं जो तप के द्वारा भावित आत्मा वाले वहाँ पर हैं इसमें तप कहा गया है ॥२६॥ सत्य—यह ब्रह्म का शब्द है और वह मत्तमान कहा गया है । इससे सत्य लोक जो है वह ब्रह्मलोक सत्तम है और वह भास्वर है ॥२७॥ गन्धर्व—अप्सरार्यो—यक्ष—गृह्यकराक्षसों के सहित—समस्त भूत और पिशाच नाग मनुष्यों के सहित ये सब देव स्वर्लोक के निवास करने वाले हैं जोकि भुवि निवासी हैं ॥२८॥ मरुत—मातरिश्वान—इन्द्र—देवता तथा अश्विनीकुमार होशों के अनिकेतान्तरिक्ष हैं और बिज में स्थान वाले सब भुवर्लोक्य होते हैं ॥२९॥ आदित्य—ऋभु—विश्वेदेव—साम्य—पितर—ऋषिगण और अङ्गिरस ये सब भुवर्लोक में समाश्रित होते हैं ॥३०॥ ये ताराग्रह निवासी देव वैमानिक होते हैं । ये सब क्रम से ब्रह्म के व्याहार से उत्पन्न होने वाले वह दिये गये हैं ॥३१॥ भूर्लोक प्रथम लोक है और महदन्त में बड़े गये हैं । परस्पर में उनकी सम्मानाओं से कुछ आरब्ध किये जाते हैं ॥३२॥

शुक्राद्याश्चाक्षुषान्ताश्च ये व्यतीता भुव धिता ।
महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिनः ॥३३॥
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ये स्मृता ।
तान् सर्वान् सप्त सूर्यास्ते अर्द्धिभिर्निदहन्ति वै ॥३४॥
मरीचि कश्यपो दक्षस्तथा स्वामभुवोऽङ्गिरा ।
भृगु पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः ॥३५॥
प्रजानां पतयः सर्वे वर्तन्ते तत्र ते सह ।
नि सत्त्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्द्धरेतसः ॥३६॥
ऋभु सनत्कुमाराद्या वैराज्यास्ते तपोधनाः ।
मन्वन्तराणां सर्वेषां सावर्णानां ततः स्मृताः ।
चतुर्दशानां सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः ॥३७॥
योग तपश्च सत्यञ्च समाधाय तदात्मनि ।
पठे काले निवर्तन्ते तत्तदाहविर्पर्यये ॥३८॥
सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मर्गिणामिनाम् ।
ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः ॥३९॥

पर्यासपारिभाष्येन भूर्लोकं समिति स्मृतः ।

भूम्यन्तरं यदादित्यादन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ॥४०॥

शुक्राद्य और चाक्षुषान् जो व्यतीत है वे भुव में आश्रित होते हैं ।
महर्लोक तो चौथा है उसमें वे कल्प वासी रहते हैं ॥३३॥ भूर्लोक से प्रथम
लोक जो महद्गन्त कहे गये हैं उन सबको सप्त सूर्य अपनी अग्निधियों के द्वारा निर्वन्ध
कर दिया करते हैं ॥३४॥ मरीचि-वश्यप-दक्ष-स्वायम्भुव-अङ्गिरा-भृगु-
पुनस्त्य-पुलह और क्रतु इत्येवमादि हैं ॥३५॥ वे सब प्रजापति के पति हैं
और वहाँ पर वे उनके साथ रहते हैं । वे वहाँ निरुत्तम और निमग्न एवं ऊर्ध्व-
रेता होते हैं ॥३६॥ अश्रु और सनत्कुमार आद्य वे सब तपोघन वैराग्य हैं ।
मावर्ण समस्त मन्वन्तरो के वे कहे गये हैं जो कि चौदहों लोकों के सब के पुनरा-
वृत्ति होने के हेतु होते हैं ॥३७॥ उस समय में योग-तप और सत्य की आत्मा
समाधान करके पृथु काल में उस अहं के विपर्यय में निवृत्त होजाते हैं ॥३८॥
मत्स्य तो सप्तम लोक है जो कि अपुनर्मर्गि ग्राभियों का लोक होता है । वह
अप्रतीक्षात लक्षण वाला ब्रह्मलोक कहा गया है ॥३९॥ पर्यास पारिभाष्य में
भूर्लोक समिति कहा गया है । भूमि के अन्तर में जो आदित्य से अन्तरिक्ष है
वह भुव कहा गया है ॥४०॥

सूर्यध्रुवान्तरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः ।

ध्रुवाज्जनान्तरं यच्च महर्लोकस्तदुच्यते ॥४१॥

विद्याता सप्तलोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः ।

भूर्लोकवासीनः सर्वे ह्यन्नादास्तु रसात्मकाः ॥४२॥

भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्च ये ।

चतुर्थे येऽपि वर्तन्ते महर्लोकं समाधिताः ॥४३॥

विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणाः ।

सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्व्वमीप्सितम् ॥४४॥

एते देवा यजन्ते वे यज्ञं सर्वे परस्परम् ।

अतीतान् वतमानान् च वर्त्तमानानागतान् ॥४५॥

प्रथमानन्तरैरिष्टा ह्यन्तरा. साम्प्रतं पुनः ।
 निवर्तन्तीत्यासम्बन्धोऽस्तीति देवगणो ततः ॥४६॥
 विनिवृत्ताधिकाराणा सिद्धिस्तेषान्तु मानसी ।
 तेषान्तु मानसी श्रेया शुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥४७॥
 उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा ।
 समासेन मया विप्रा भूयस्त वर्तयामि वः ॥४८॥

घोर जो मूर्ख ध्रुवान्तर मे है वह स्वर्ग लोक दिन कहा गया है । ध्रुव से जनान्तर जो है वह महर्लोक कहा जाता है ॥४१॥ ये सात लोक विख्यात हैं अब उनकी सिद्धियों को बघाता हूँ । भूर्लोक के निवास करने वाले सभी भक्त खाने वाले रसामय होते हैं ॥४२॥ भुव मे घोर स्वर्ग मे जो सब हैं वे सोम पान करने वाले घोर आभ्य पान करने वाले होते हैं । चौथे मे जो रहा करत हैं जोकि महर्लोक को आश्रय किये हुए हैं ॥४३॥ उनकी पाँच लक्षणों वाली मानसी सिद्धि जानने के योग्य है । उनके मन से जो भी कुछ अभीष्ट होता है वह तुरन्त ही उत्पन्न हो जाता है ॥४४॥ ये देव समस्त यज्ञों के द्वारा परस्पर मे यजन किया करते हैं । जो अतीत होगये हैं—जो वर्तमान हैं और जो अनागत हैं उन सभी को करते हैं ॥४५॥ प्रथमों को अन्तरों के द्वारा यजन करके फिर साम्प्रतों के द्वारा अन्तरों को करते हैं फिर देवगण के अनीत होने पर आसम्बन्ध निवर्तित हो जाता है ॥४६॥ उन विनिवृत्त अधिकार वालों की मानसी सिद्धि हुआ करती है । उनकी शुद्ध सिद्धियों की परम्परा मानसी जाननी चाहिए ॥४७॥ चार लोक कह दिये गये हैं तथा हे विप्रवृन्द ! उनकी अनुविधि भी संक्षेप से मैंने बतसा दी है मैं पुन उसको तुम्हारे सामने कहता हूँ ॥४८॥

भरीचि कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः ।
 पुलस्त्य पुलहश्चैव ऋत्विगमादयः ॥४९॥
 पूर्वं ते सप्रभूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह ।
 ततः प्रजा प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयन्ति ते ॥५०॥
 कल्पदाहप्रदीप्तेषु तदा कालेषु तेषु वै ।
 भूरादिषु महान्तेषु भृश व्याप्तेष्वयाग्निना ॥५१॥

शिखा सवर्त्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जना ।

यामादयो गणा सर्वे महर्लोकनिवासिन ॥५२

महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते ।

सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥५३

तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्तिधरास्तथा ।

जन लोके विवर्त्तन्ते यावत्सप्तवते जगत् ॥५४

व्युष्टायान्तु रजन्या धं ब्रह्मणोऽन्यक्तयोनिन ।

अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्वह ॥५५

स्वायम्भुवादय सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधका ।

देवास्ते वै पुनस्तेषां आयन्ते निधनेऽप्यह ॥५६

श्री वायुदेव ने कहा—मरीचि—कश्यप—दक्ष—वसिष्ठ—अङ्गिरा—भृगु—गुल-
स्त्य—पुनह और क्रतु इत्येवमादि भोग पहिले यहाँ ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होते
हैं फिर ये प्रजापति की प्रतिष्ठापित करके जन का ही आश्रय लिया करते हैं ॥५६
५०॥ कल्पशाह के प्रदीप्त उन कालों में भू से आदि लेकर महान्न तब अग्नि के
अग्नी तटह व्याप्त हो जाने पर सर्वात्मिका शिखा जाननी चाहिए जिसको कि
मनुष्य सदा ही प्राप्त किया करते हैं । यामादि समस्तगण जो महर्लोक के निवास
करने वाले हैं ॥५१-५२॥ वे महर्लोक के दीप्त होजाने पर जन लोक का आश्रय
ग्रहण कर लेते हैं । वही पर वे सभी सूक्ष्म शरीर वाले होने हुए वहाँ ही अपनी
स्थिति किया करते हैं ॥५३॥ उनके वे तुल्य सामर्थ्य वाले और समान ही
मूर्तियों की धारण करने वाले जब तक यह जगत् सप्तावित होगा है जनलोक
में ही विशेष रूप से रहा करते हैं ॥५४॥ अव्यक्त योनि ब्रह्मा की रजनी के
व्युष्ट होजाने पर दिन के आदि में यहाँ पुन पूर्व की भाँति क्रम से उत्पन्न किया
करते हैं ॥५५॥ यह विषय होने पर समस्त स्वायम्भुवादि और मरीच्यन्त
साधक देव वे फिर उनके जन्म ग्रहण लिया करते हैं ॥५६॥

यामादय क्रमेणैव कनिष्ठाद्या प्रजापतेः ।

पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥५७

देवान्वये देवता हि सप्त सम्भूतय स्मृताः ।
 व्यतीता बल्यजास्तेषा तिस्रः सिष्टास्तथापरे ॥१८॥
 भावत्तमाना देवास्तु क्रमेणैते न सर्व्वशः ।
 गत्वा ज्वन्तवीभावन्दशकृत्वः पुन पुन ॥१९॥
 ततस्ते वै मरणा सर्व्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् ।
 भाविनोऽयंस्य च वत्सात् पुण्याख्यातिबलेन च ॥२०॥
 निवृत्तवृत्तयः सर्व्वे स्वस्या सुमनसस्तथा ।
 वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्य तज्जनम् ॥२१॥
 ततोऽन्येनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः ।
 कथनाच्चैव धर्मस्य तेषा ते जज्ञिरेऽन्वये ॥२२॥
 इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थाना प्रापूरयन्त्युत ।
 देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्व्वशः ॥२३॥
 एव देवगणा सर्व्वे दमकृत्वो निवर्त्यं वै ।
 वैराजेपूपपन्नास्ते दश तिष्ठन्त्युपप्लवान् ॥२४॥
 पूर्णो पूर्णो तत बल्ये स्थित्वा वैराजके पुनः ।
 ब्रह्मलोके विवर्त्तते पूर्व्वपूर्व्वक्रमेण तु ॥२५॥

यामादि धीर वनिष्ठाव क्रम से ही प्रजापति होने हैं । जो पहिले हैं प्रथम
 वे प्रभूत होते हैं और जो पीछे वाले हैं वे पीछे समुत्पन्न हुआ करते हैं । देवों के
 अन्वय में देवताओं की सात सम्भूतियाँ कही गई हैं । उनके व्यतीत बल्यज होने
 हैं तीन सिष्ट हैं तथा अन्य होते हैं ॥१८॥ वे देव क्रम से भावत्तमान होते हैं
 सभी नहीं होते हैं । वे पुन पुन दशवार आन्तधीभाव की प्राप्ति किया करते हैं
 वे सब गए भावों में अनित्यता का दर्शन करके भावी अर्थ के बल से धीर
 पुण्याख्याति के बल से सब निवृत्त वृत्ति स्वस्थ भुमनस उम जनलोक का त्याग
 कर वैराज में उत्पन्न होते हैं ॥२०-२१॥ इसके अनन्तर अन्य काल से ही वे
 नित्य युक्त तपस्वी धर्म के कथन से वे उनके वश में उत्पन्न हुए हैं ॥२२॥ यहाँ
 पर उत्पन्न हुए वे फिर निश्चय ही स्थानों को प्रापूरित कर देते हैं कही देवत्व
 में तो कही ऋषित्व के रूप में और सब और मनुष्यत्व के स्वरूप में उत्पन्न हुआ

बाने व्यासजी के पुत्र और पुराणों के पूर्ण ज्ञाता मूनजी से कहा—॥३०॥
 श्रुतिवृन्द बोच—वे बैराज जिन आहार बाने जिन मत्स्य बाने और त्रिग
 धाश्रय बाने होकर रहते हैं और जिनने समय कर ठहरते हैं वह हमने ठीक-थीक
 कहिए ॥३१॥

तदुक्तमृषिभिर्वाच्य श्रुत्वा लोकायंतत्ववित् ।
 मून पौराणिको वाचय विनयेनेदमब्रवीत् ॥३२
 ततः प्राप्यन्त ते सर्वे धुडिगुडतमाश्रये ।
 आभून् मप्सवास्तस्य दश तिष्ठन्ति ते जनाः ॥३३
 सर्वे मृक्षमशरोरास्ते विद्वांसो घनमूलतयः ।
 म्पित्तलोकास्मिन्नावाह्य तेषां भूत न विद्यते ॥३४
 ऊबु मन्त्रकुमाराद्याः सिद्धास्त योगधामिणः ।
 न्यानि नैमित्तिकी तेषां पथ्यपि समुपस्थिते ॥३५
 स्थानत्यागे मनश्चापि युगपरमप्रवर्तते ।
 ऊबु सर्वे तदान्वोऽग्न्य वंराजाऽप्युद्धवुद्धयः ॥३६
 एवमेव महाभागाः प्रणवः सम्प्रविश्य ह ।
 ब्रह्मर्षीके प्रवर्तारिग्नयः श्वेयो भविष्यति ॥३७
 एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिनः ।
 योजयित्वा तदा सर्वे वरांन्ते योगधामिणः ॥३८
 तत्रैव सम्प्रसीयन्ते शान्ता दीपाविरो यथा ।
 ब्रह्मरायमवर्तन्ते पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३९
 सर्वे ॥ समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम् ।
 ध्यानन्द ब्रह्मणः प्राप्य त्रिमूर्तराय ते गताः ॥४०
 वंरावेभ्यस्तर्ध्वकोटं मन्त्ररे वद्गुणो गतः ।
 ब्रह्मर्षीः समान्तरागो यत्र ब्रह्मा पुनोऽस्ति ॥४१

प्राप्त सत्त्व तक ठहरा करते हैं ॥२३॥ वे सब सूक्ष्म शरीर वाले विद्वान् और धन भूति वाले हैं और स्थित लोक में आस्थित होने से उनका भूत नहीं होता है ॥७४॥ सनत्कुमार प्राप्त विद्व और योग धर्मों उनके पर्याय के समुपस्थित होने पर नैमित्तिकी स्वाति को कहते हैं ॥७५॥ स्थान के त्याग करने पर मन भरे एक ही साथ सप्रवृत्त होता है । उस समय शुद्ध बुद्धि वाले सब धन्योन्म्य में बैराजों को कहते हैं ॥७६॥ इसी प्रकार से ही महाभाग प्रणव में सप्रवेश करके ब्रह्मलोक में प्रवर्त्तन करने वाले हमारा श्रेय होगा ॥७७॥ इस रीति से कहकर उस समय में सब ब्रह्मान्त में व्यवसाय करने वाले योजित करके सब सब योग धर्मों होने हैं ॥७८॥ वहाँ पर ही जैसे दीप की अविद्या घान्त होजाया जाती है ये सम्प्रसीन हो जाने हैं ॥७९॥ वे सब उस भावनामय लोक को अनु-प्राप्त करके और ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति करके वे अमृतत्व की प्राप्ति हो जाया करते हैं ॥८०॥ बैराजों से उसी प्रकार से ऊर्द्ध में पद्मगुण अन्तर में ब्रह्मलोक प्राप्त है जहाँ ब्रह्मा पुरोहित हैं ॥८१॥

ते सर्वे प्रणवात्सानो बुद्धशुद्धतपास्तथा ।

आनन्द ब्रह्मण प्राप्यामृतत्वञ्च भजन्त्युत ॥८२॥

द्वन्द्वे स्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिता ।

आधिपत्यं विना तुल्या ब्रह्मणस्ते महोजस ॥८३॥

प्रभावविर्यश्चर्यस्थितिर्वैराग्यदर्शनी ।

ते ब्रह्मलोकिनाः सर्वे गतिं प्राप्य विवर्त्तनीम् ॥८४॥

ब्रह्मणा सह देवैश्च सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।

तपमोऽन्ते त्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः ।

अव्यवृत्ते सप्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिन ॥८५॥

इत्येतदमृतं शुक्रं नित्यमदायमव्ययम् ।

देवर्षयो ब्रह्मसत्रं मनातनमुपासते ॥८६॥

अपुनर्मर्गिणादीनां तेषां चैवोद्धरेतगाम् ।

वर्माभ्यासश्रुता बुद्धिर्वेदान्तेषूपलभ्यते ॥८७॥

शतमाहु परिदृढ सहस्र परिपञ्चकम् ।
 विज्ञेयमयुत तस्मान्त्रियुत प्रमृत ततः ॥१००॥
 अर्बुदं निबुदश्चैव सनुदश्च ततः स्मृतम् ।
 खर्वंश्चैव निखर्वंश्च शङ्कु पद्मं तथैव च ॥१०१॥
 समुद्र मध्यमश्चैव पराद्धं मपर ततः ।
 एवमष्टादशतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥१०२॥
 शतानीति विजानीयात् सन्नितानि महर्षिभिः ।
 कल्पसंख्या प्रवृत्तस्य पराद्धं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥१०३॥
 तावच्छ्रेयोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रसिद्यते ।
 पर एष पराद्धश्च संख्यात संख्याया मया ॥१०४॥

सौ सहस्र करोडों की शङ्कु—इस नाम से कहा जाता है । सहस्रों करोडों के सहस्र को फिर दसवार गुणित कर देन पर संख्या के वेत्ता लोग उसे समुद्र इस नाम से कहते हैं ॥१००॥ कोटियों का सहस्र अयुत है—यह मध्य कहा जाता है । कोटि सहस्र नियुत जो है वह 'अन्त'—इस सज्ञा वाला होता है कोटियों के कोटि सहस्र पराद्ध इस नाम से कहा जाता है । पराद्ध का बुगुना भी मनीषियों के द्वारा परम कहा जाता है ॥१०१॥ शत को परिदृढ कहते हैं और सहस्र को परिपञ्चक कहते हैं । उससे अयुत जानना चाहिए और फिर नियुत तथा प्रयुत होना है ॥१००॥ अर्बुद—निबुद और सनुद कहा गया है । खर्व—निखर्व और फिर शङ्कु तथा पद्म कहा जाता है ॥१०१॥ समुद्र और मध्यम और इसके पश्चात् पराद्ध होना है । इस तरह से इन गणना की विधि के अठारह स्थान होते हैं ॥१०२॥ शतानि—यह जानना चाहिए जोकि मनीषियों के द्वारा सज्ञा वाले हुए हैं । कल्प संख्या में प्रवृत्त उस ब्रह्मा का पराद्ध कहा गया है ॥१०३॥ उसना उसका शेष काल भी उसके अन्त में प्रति सृष्ट किया जाता है । यह पर और पराद्ध मैंने संख्या से गिना हुआ किया है ॥१०४॥

यस्मादस्य पर वीर्यं परमायु परन्तपः ।

परा शक्ति परी घर्म्म परा विद्या परा धृति ॥१०॥

पर ब्रह्म पर ज्ञान परमेश्वरमेव च ।
तस्मात्परतर भूत ब्रह्माण्डेभ्यश्च विद्यते ॥१०६॥
परे स्थितो ह्येष परः सर्वार्थेषु ततः परः ।
सख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्याद्धं तु पराद्धं ता ॥१०७॥
सख्येय चाप्यसख्येय सतत चापि त त्रिकम् ।
सख्येय सख्यया दृष्टमपाराद्धाद्विभाष्यते ॥१०८॥
राशौ दृष्टे न सख्यास्ति तदसख्यस्य लक्षणम् ।
आनन्दस्य सिक्ताभ्येषु दृष्टवान् पञ्चलदाणम् ॥१०९॥
ईश्वरैस्तत्प्रसम्भ्यात् शुद्धत्वाद्विध्यदृष्टिभिः ।
एव ज्ञानप्रतिष्ठत्वात् सर्वं ब्रह्मानुपश्यति ॥११०॥
एतच्छ्रुत्वा तु ते मर्षे नैमिषेवास्तपस्विन ।
वाप्यपर्म्याकुलास्तास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वरा ॥१११॥
पप्रच्छुर्मतिरिश्चान सख्यौ ते ब्रह्मवादिन ।
ब्रह्मलोपस्तु भगवन् यावन्माशान्तरं प्रभो ॥११२॥
योजनाप्रेण सख्यातः साधनं योजनस्य तु ।
श्लोकास्य च परीमाणु श्रान्तुमिच्छामि तत्त्वतः ॥११३॥

त्रिंशत् कारण मे इसकी पर कीर्ति है—परम धाम्—परम तप—परा शक्ति—
पर धर्म—परा विद्या—परा धूर्ति—परम ब्रह्म—परम ज्ञान और परम ऐश्वर्य होता
है उससे परतर भूत होता है जोकि यह मे अग्यन् कोई नहीं है ॥१०५-१०६॥
पर मे स्थित यह पर है और सगस्त सबों मे पर है उससे पर ब्रह्मा मस्यान
होता है और उमका घड्ड ही पराद्धंता होती है ॥१०७॥ मख्या करने के योग्य
और मख्या न करने के भी योग्य सर्वदा उग त्रिक की मख्या से सख्या करने के
योग्य देता है जो अपराद्धं मे विभाषित किया जाता है ॥१०८॥ राशि के
देगने पर मख्या नहीं है वह धाम्म्य का लक्षण है । सिक्ता नाम बानो का
पञ्च सधन बाना आनन्द देता है ॥१०९॥ दिव्य दृष्टि वाले ईश्वरो के द्वारा
शुद्ध होने मे यह प्रसम्भ्यात है । इस प्रकार मे ज्ञान प्रतिष्ठ होने मे सब ब्रह्म का
धनुर्गन करता है ॥११०॥ यह शरण कर के सब नैमिषेय तपस्वी लोग बाणों

से आनुल नञो वाले प्रवृष्ट हर्ष से गदगद स्वर वाले होगये थे ॥१११॥ उन समस्त ब्रह्म वादियो ने वायुदेव से पूछा—हे प्रभो ! हे ममवाद् ! ब्रह्मलोक जितना अन्तर बाना है वह योजनाग्र से सव्यायात किया गया है । योजना का साधन धीरे कोस का परीमाण तत्त्व पूर्वक हम योग सुनने की इच्छा करते हैं ॥११२-११३॥

तेषा तद्वचन श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक् ।
 उवाच मधुर वाक्य यथादृष्टं यथाक्रमम् ॥११४॥
 एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मे विवक्षितम् ।
 अव्यक्ताव्यक्तभागो वै महास्थूलो विभाप्यते ॥११५॥
 दशैव महता भागा भूतादिः स्थूल उच्यते ।
 दशभागाधिक चापि भूतादि परमाणुक ॥११६॥
 परमाणु सुमूढमस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा ।
 यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणु तत् ॥११७॥
 जालान्तरगतं भानोर्यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
 प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते ॥११८॥
 अष्टानां परमाणूनां समवाया यदा भवेत् ।
 त्रसरेणुं समाख्यातस्तत्पञ्चरज उच्यते ॥११९॥
 त्रसरेणुवच्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः ।
 तैऽप्यष्टौ समवायस्या बालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ॥१२०॥
 बालाग्राण्यष्ट लिखा स्याद्यूका तच्चाष्टकं भवेत् ।
 यूकाष्टकं यथा प्राहुरङ्गं लन्तु यवाष्टकम् ॥१२१॥

उनके उस वचन का श्रवण कर विनीत यवन वाले वायुदेव जैसा भी देता है उसे यथाक्रम से मधुर वाक्य कहने लगे ॥११४॥ वायु ने कहा—यह मैं आपको बतला दूंगा मेरे विवक्षित को आप सुनिये । अव्यक्त भाग निश्चय ही महान् स्थूल विभापित होता है ॥११५॥ महता के दश ही भाग हैं । भूतादि स्थूल कहा जाता है । दश भागो से अधिक भी भूतादि परमाणुक होता है ॥११६॥ परमाणु बहुत ही मूढम होता है और वह भावग्राह्य है अक्षु क द्वारा

प्राह्य नहीं होता है । जो लोक म अभेद्यम होता है उमो वो परमाणु जानना चाहिए ॥११७॥ भानु के जान के अन्तगत जो सूक्ष्म रज के कण दिखलाई देने हैं । प्रथम उमके प्रमाण वातो वो परमाणु कहते हैं ॥११८॥ घाठ परमाणुमो का समवाय जब हो जाता है तो उसे त्रसरेणु इस नाम से समाख्यात करते हैं यह पदरज कहा जाता है । घाठ त्रसरेणुमो का रसरेणु कहा जाता है । घाठ रसरेणुमो का जब समवाय होता है तो सुषो के द्वारा बलाप्र कहा गया है ॥११९ (२०॥ घाठ बलाप्रमो का एक लिङ्गा और घाठ लिङ्गाओ का एक सूत्र होती है । घाठ सूत्रमो का एक यव और घाठ यव का एक अंगुल होता है ॥१२१॥

द्वादशांगुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते ।
 रत्निश्चांगुलपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशति ॥१२२
 षत्वार्ति विंशतिश्च हस्त स्यादंगुलानि तु ।
 किष्कुद्विरत्तिविज्ञेयो द्विचत्वारिंशदंगुल ॥१२३
 पण्यवत्पंगुलश्च धनुराहुमनीयिण ।
 एतद्गव्यूतिसंख्याया पादानां धनुष स्मृत ॥१२४
 धनुर्दण्डा युगं नाली तुल्यान्येता यथांगुलै ।
 धनुषस्त्रिंशत नत्वमाहु सख्याविदो जना ॥१२५
 धनु सहस्रं द्वे चापि गव्यूतिरूपदिश्यते ।
 अष्टौ धनु सहस्राणि योजनान्तु विधीयते ॥१२६
 एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते ।
 एतत्सहस्रं विज्ञेयं शकञ्जीशान्तरन्तथा ॥१२७
 योजनानान्तु सख्यात सख्याज्ञानविशारदं ।
 एतेन योजनाग्रेण शृणुष्व ब्रह्मणोऽन्तरम् ॥१२८
 महीतलात्सहस्राणां शताद्दूर्ध्वं दिवाकरः ।
 दिवाकरात्सहस्रेण तावद्दूर्ध्वं निशाकरः ॥१२९
 पूर्णं शतसहस्रान्तु योजनानां निशाकरात् ।
 नक्षत्रमण्डलं कुत्स्त्रमुपरिष्ठात्प्रकाशते ॥१३०

द्वादश भगुलो के पर्वों का एक वितस्ति होता है । जोकि बघों के द्वारा वितस्ति स्थान बड़ा जाता है । इसकीम भगुनो का एक पर्व जानना चाहिये ॥१२२॥ चौबीस भगुलो का एक हस्त होता है । दो रात्रियों का त्रिसमे बया सीस भगुल हुआ करते हैं एवं निष्ठु होना है ॥१२३॥ द्दयानवे भगुल वाला जो होता है उसे मनीषी लोग एक धनु कहते हैं । यह गव्यूति सस्या में पादों का कहा गया है ॥१२४॥ दो धनुदंष्ट्र वाला नीसी है जैसे भगुलो के तुल्य है । तीनसी धनुषो का नस्व सस्या के विद्वान् जन कहते हैं ॥१२५॥ दो सहस्र धनुषों का एक गव्यूति कहा जाता है । आठ सहस्र धनुषों का एक योजन होता है ॥१२६॥ इस धनुष से योजन समाप्त किया जाता है । यह जब एक सहस्र हो तो शक्र क्रोशान्तर होता है ॥१२७॥ सस्या के ज्ञान रखने वाले पण्डितों के द्वारा योजनों की सस्या की गई है । इस योजनाप्र से ब्रह्मा का अन्तर श्रवण करो ॥१२८॥ महीतल से सौ सहस्र ऊपर दिवाकर होता है । दिवाकर से सहस्र ऊपर निशा कर होना है ॥१२९॥ निशाकर से ऊपर एक पूरे सौ सहस्र समस्त ताराग्रहो का नक्षत्र मण्डल होता है जोकि प्रकाश करता है ॥१३०॥

शत सहस्र सस्यातो मेरुद्विगुणित पुन ।
 ग्रहान्तरमयैकैवमूदूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥१३१॥
 ताराग्रहाणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः ।
 तस्यादूर्ध्वञ्चरते शुक्रस्तस्मादूर्ध्वं च सोहित ॥१३२॥
 ततो बृहस्पतिश्चोदूर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं शनैश्चरः ।
 ऊदूर्ध्वं शतसहस्रान्तु योजनानां शनैश्चरात् ॥१३३॥
 सप्तपिमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्ठात्प्रकाशते ।
 ऋषिभिस्तु सहस्राणां शतदूर्ध्वं विभाव्यते ॥१३४॥
 योऽसौ तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके ।
 उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढिभूतो ध्रुवो दिवि ॥१३५॥
 त्रैलोक्यस्यैव उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया ।
 मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यथैव लोकिनी ॥१३६॥

वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्या प्रवर्तते ।
 सर्वेषां देवयोनीनां स्थितिहेतुः स वै स्मृतः ॥१३७॥
 त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत ।
 ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।
 एकयोजनकोटी सा इत्येव निश्चयः गतम् ॥१३८॥

सौ सहस्र सख्या से मेह द्विगुणित बताया गया है । ग्रहों का एक-एक
 में ऊपर नक्षत्र मण्डल से अन्तर होता है ॥१३१॥ तबस्त ताराग्रहों के नीचे के
 भाग में बुध रहता है । उसके ऊपर शुक्र है और उसने ऊपर लोहित चरण
 करता है ॥१३२॥ उससे ऊपर बृहस्पति और उससे ऊपर शनैश्चर होता है ।
 शनैश्चर से सौ सहस्र योजन ऊपर सप्तपिण्डों का मण्डल हुआ करता है जोकि
 पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ करता है । अपिण्डों से सौ सहस्र ऊपर ह्रस्वर्षक
 इस दिव्य तारामय विमान में जो मह मेदिभूत वतानपाद राजा का पुत्र ध्रुव
 शिव में प्रकाशित होता है ॥१३३, १३४-१३५॥ मैंने यह त्रैलोक्य का उल्लेख
 (ऊँचाई) व्याख्यात कर दिया है, अर्थात् बुलामा बतला दिया है जोकि योजना के
 द्वारा होता है । मन्वन्तरो में जहाँ पर ही सौमिकी देवों की इज्या होती है
 ॥१३६॥ जो इज्या यहाँ लोक में वर्णाश्रमों में प्रवृत्त हुआ करती है । समस्त
 देव योनि वालों की वह ही स्थिति का हेतु बताया गया है ॥१३७॥ मैंने यह
 इस तरह त्रैलोक्य की व्याख्या कर दी है अब इसमें आगे समझो । ध्रुव से
 ऊपर महर्लोक है जिसमें वे कल्पवासी रहते हैं । वह एक कोटि योजन है
 इसी प्रकार निश्चय किया गया है ॥१३८॥

द्वे कोट्यौ तु महर्लोकायस्मिंस्ते कल्पवासिनः ।
 यत्र ते ब्रह्माण, पुत्रा दद्यात् साधवा स्मृता ॥१३९॥
 चतुर्गुणोत्तरादूर्ध्वं जननोऽनात्प स्मृतम् ।
 वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविर्बज्रिता ॥१४०॥
 पद्मगुणान्तु तपोलोवात्मन्यनोरान्तरं स्मृतम् ।
 अपुनर्मरिषामाना ब्रह्मलोकः स उच्यते ॥१४१॥

यस्मात् च्यवते भूयो ब्रह्माण स उपासते ।
 एक्कोटिर्योजनाना पश्चादग्नियुतानि तु ॥१४२॥
 ऊर्ध्वं भागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलाकात्पर स्मृत ।
 चतुरश्रं च कोट्यस्तु नियुता पश्चपष्टि च ॥१४३॥
 एपोऽष्टदशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापर स्मृत ।
 ध्रुवाग्रमेतद्व्याख्यात योजनाग्राधयात्तम् ॥१४४॥
 अधोगतीना वक्ष्यामि भूताना स्थानकल्पनाम् ।
 गच्छन्ति घोरकर्म्मणु प्राणिनो यत्र कर्मभि ॥१४५॥
 नरको रौरवो रोघ सूकरस्ताल एव च ।
 संसकुम्भो महाज्वाल शबलोऽय विमोचन ॥१४६॥
 कुम्भी च कुमिमक्षश्च लालामक्षौ विशसन ।
 अध शिरा पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च ॥१४७॥
 तथा वैतरण कृष्णमसिपत्रवन तथा ।
 अग्निज्वालो महाघोर सदसोऽय श्वभोजन ॥१४८॥
 तमश्च वृष्णसूत्रश्च लाहश्चाप्यसिजस्तथा ।
 अप्रतिष्ठोऽय वीच्यश्वनरका ह्येवमादय ॥१४९॥

महलोक से दो कोटि ऊपर जहाँ वे कल्प पर्यन्त वास करने वाले हैं और
 ॥१४९॥ के पुत्र दक्ष आदि साधव कहे गये हैं ॥१११॥ जनलोक से चतुर्गुण
 ऊपर तपोलोक गताया गया है जहाँ पर वैराज देव रहते हैं आकि भूत दाह स
 रहित रहा करते हैं ॥१४०॥ तपोलोक से षट् गुण ऊपर सरयलोक का अन्त
 होता है । जो अपुनर्मरिचो का ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥१४१॥ जहाँ से फिर
 कोई भी च्यवन नहीं किया करता है और वह ब्रह्मा की उपासना किया करता
 है । एक करोड़ योजन और पचास नियुत ऊपर उससे अष्ट का भाग है जो
 ब्रह्मलोक से भी पर कहा गया है चार कोटि और पैसठ नियुत है ॥१४२॥ १४३॥
 इसका यह अर्द्धांश प्रचार अपर गत्यन्त कहा गया है । यह जैसा भी सुना गया
 है योजनाग्र से ध्रुवाग्र की व्याख्या करदी गई है ॥१४४॥ अब अधोगति वाले
 प्राणियों की स्थान कल्पना को बतनाता है । जहाँ पर घोर कर्म करने वाले

प्राणीगण अपने कर्मों के द्वारा जाया करते हैं ॥१४४ १४५॥ नरको क नाम ये हैं- रोरव-रोध-सूकर-सान-सप्तकुम्भ-महाज्वाल-शबल विमोचन-कृमी-कृमि-भक्ष-मानामभ-विजयन-अधिशिरा-पुष्यवह-रघिरा ध-रैतरण-कृष्ण-अग्निपत्र-वन-अग्निज्वाल-महाधोर-सदश-अभोजन-तम-कृष्णमूत्र-सोह - अग्निज-अप्र-तिष्ठ-वीर्यश्च इम प्रकार से ये नरक होते हैं ॥१४६ से १४८॥

तामसा नरका सर्वे यमस्य विषये स्थिता ।

येषु दुष्कृतकर्मिण पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥१५०

भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्या प्रकीर्तिताः ।

रौरवे कूटमाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिजानति ।

अरग्रहे पक्षवादी ह्यरुत्य पतते नर ॥१५१

रौधे गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च ।

सूकरे ब्रह्महा मज्जेतमुराप स्वर्णतस्कर ॥१५२

तालै पतेरक्षत्रियहा हत्या वैश्यश्च दुर्गतिम् ।

ब्रह्महत्याश्च य पुर्याद्यश्च म्यादगुरतरूपग ॥१५३

मसकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च य ।

तप्तलोहे चाश्ववणिक्तया बन्धनरक्षिता ॥१५४

साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्त पणित्यजेत् ।

महाज्वाले दुहितर स्नुषा गच्छति यस्तु वै ॥

य समस्त तामस नरक यमराज के दण्ड में स्थित होने हैं । उन नरकों में जो पाप कर्मों के करने वाल पृथक् होत हैं वे अपने अपने इन कर्मों के अनुसार पृथक् पृथक् पतित होने हैं ॥१५०॥ वे सब नरक भूमि के नीचे भाग में रौरव आदि होते हैं । जो कूटमाक्षी अर्थात् भूटी कहाही देने वाला है और सर्वथा मिथ्या बोधना है वह क्रूरग्रह रौरव नामक नरक में मिथ्यावादी तथा पक्ष में बोलने वाला जाजर गिरता है ॥१५१॥ रौध नामक नरक में गो गो हत्या करने वाला तथा भ्रूणों का वध करने वाला और नगर में भाग लगाने वाला जाया करता है । ब्रह्मण का वध करने वाला सूकर में गिरता है । गुरागान करने वाला और स्वयं का बुराने वाला ताल नाम का नरक में गिरता है । अत्रिय

का हनन करने वाला तथा वैश्य की दुर्गति करने वाला और जो ब्रह्महत्या करता है एवं जो गुप्तली का गमन करता है वह तप्तकुम्भ नरक में जाता है । स्वसा का गमन करने वाला और जो राजमट होता है वह और ग्रन्थो का वेचने वाला तथा बन्धन रक्षिता ये सब तप्तलोह नामक नरक में पतन प्राप्त किया करते हैं ॥१५२-१५३-१५४॥ स्वाध्वी के विक्रय करने वाला और भक्त का परित्याग कर देता है तथा पुत्री एवं स्नुषा का गमन किया करता है वह महा-ज्वाल नाम वाले नरक में गमन करके पाषो के फल को भोगता है ॥१५५॥

वेदो विक्रीयते येन वेद दूषयते च य ।

गुरुश्चावावगम्यन्ते चाक्क्रोशंस्ता डयन्ति च ॥१५६

अगम्यगामी च नरो नरक श्वल व्रजेत् ।

विमोहे पतिते चोरे मर्यादा यो भिनत्ति वै ॥१५७

दुरध्व कुरुते यस्तु कीटलोह प्रपद्यते ।

देवब्राह्मणविद्वेषा गुरुणाश्चाप्यपूजक ।

रत्न दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्य प्रपद्यते ॥१५८

पर्य्यस्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणी मुस्वद मुतात् ।

लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरके गतः ॥१५९

काण्डकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्त्ता चिकित्सक ।

आरामेऽप्यग्निदाता य पतते स बिभ्रसने ॥१६०

असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजक ।

नक्षत्रैर्जोषितो यश्च नरो गच्छत्यघोमुल्लभ ॥१६१

ब्रिमके द्वारा वेदों का विक्रय किया जाता है और जो वेदों को दूषित किया करता है तथा गुरुगण का जो अपमान करता है एवं चाक्क्रोशों के द्वारा जो ताड़ना किया करते हैं एवं अगम्या गमन करते हैं वे सभी श्वल नामक नरक में जाया करते हैं । चोर विमोद नाक में पतित होते हैं और जो मर्यादा को तोड़ने हैं वे भी जमी नरक में जाते हैं ॥१५६-१५७॥ जो दुरध्व करता है वह कीटलोक नरक में जाता है । देव-ब्राह्मणों का द्वेष करने वाला तथा गुरुओं की पूजा न करने वाला और जो रत्न को दूषित किया करता है वह कृमिभक्ष्य

नामक नरक में प्राप्त हुआ करता है ॥१५८॥ जो एक अन्य ब्राह्मणी और मुहूर्त की पुत्री का उपभोग करता है वह दुर्गन्ध वाले लानाभक्ष नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१५९॥ काण्डवर्त्ता-कुम्हार-निष्ण का हरण करने वाला तथा बिरिमा करने वाला एवं बाग में आग लगाने वाला व्यक्ति जो होता है वह विगमन नाम वाले नरक में गिरता है ॥१६०॥ अमत् वस्तु के अनिग्रह का लेने वाला और उसी तरह से जो यात्रन के अयोग्य है उसको यात्रन कराने वाला तथा नक्षत्रों के द्वारा जो जीविका चलाता है अर्थात् गणक ज्योतिषी मनुष्य होता है वह अघोमुख नामक नरक में जाता है ॥१६१॥

क्षीर सुरा च मांस च लाक्षा गन्ध रमन्तिमान् ।

एवमादीनि विष्क्रीणन्धोरे पूयवहे पतेत् ॥१६२॥

य कुक्कुटानि वध्नाति मार्जारान्सूकराश्च तान् ।

पक्षिणश्च भृगाञ्छागान्सोऽप्येन नरकं व्रजेत् ॥१६३॥

आजीविषो माहिषस्तथा चक्रध्वजी च यः ।

जङ्घोपजोविषो विप्रं दानुनिग्राम याजक ॥१६४॥

अगारदाही गरुड कुण्डाक्षी सोमविक्रयी ।

सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातक ॥१६५॥

विद्य (श्च) स्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च ।

पर्यवारश्च मूची च यश्च स्यान्मित्रघातकः ।

रघिराग्रे पतन्त्येते एवमादृमनीषिणः ॥१६६॥

क्षीर (द्रव्य)-सुरा-मांस-लाक्षा-गन्ध (गुणधिन पदार्थ)-रग और निरी

को एवं इन प्रकार की वस्तुओं को खपने वाला व्यक्ति और पूय वह नामक नरक में जाकर गिरता है ॥१६२॥ जो मुर्गों को खप करता है तथा मार्जारों को और सूकरों को-पक्षियों को-मृगों को तथा छागों को खप किया करता है वह भी इसी नरक में गिरता है ॥१६३॥ आजीविष-माहिष और जो चक्रध्वजी होता है-जो रङ्गो में उपजीविका करने वाला विप्र है तथा दानुनि एवं ग्राम याजक होता है-अगार को दाह करने वाला-विप्र देने वाला-कुण्डाक्षी-गोम का निषेध करने वाला-मदिरा पीने वाला-मांस भक्षण करने वाला-

पशुग्रीवा का वध करने वाला—महिष आदि का विध्वंस—मृगो का हनन करने वाला—यवं का—मूची घोर जा मित्र घातक होता है—ये सब रुधिरान्व में जकर गिरा करते हैं ऐसा मनोपीयण कहते हैं ॥१६४-१६५-१६६॥

पतन्ति नरके घोरे विद्भुजे नात्र सशयः ॥१६७

मृपावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशनोऽशुभः ।

पतेत्तु नरके घोरे मूत्राकीर्णं स पापकृत् ॥१६८

मधुप्राहाभिहन्तारो यान्ति वंतरणी नराः ।

उन्मत्ताश्चित्तमग्नाश्च शौचाचारविवर्जिताः ॥१६९

क्रोधना दुःखदार्श्वं बुहका कृष्टगामिनः ।

असि पत्रवने छेदी तथा ह्योरभ्रिवाश्च ये ।

कर्त्तनैश्च विकृध्यन्ते भृगव्याघ्रा मुदारणैः ॥१७०

आश्रमप्रत्यवसिता अग्निज्वाले पतन्ति वै ।

भोज्यन्ते द्याम दावलैर्यस्तुण्डैश्च वायसैः ॥१७१

इज्याया स्रतमालोपात्सन्दशे नरके पतेत् ।

स्वन्दन्ते यदि वा स्वप्ने सतिनो ब्रह्मचारिणः ॥१७२

पुत्रैरप्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये ।

ते सर्वे नरकं यान्ति नियतन्तु श्वभोजने ॥१७३

यर्णाश्रमविरद्धानि क्रोधहर्षसमन्विताः ।

धर्माणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयगामिनः ॥१७४

एव ही पंक्ति में बँटे हुए व्यक्ति को जो विषम भोजन कराता है । वह

विद्भुज नामक घोर नरक में गिरता है इसमें कुछ भी समय नहीं है ॥१६७॥

जो मनुष्य मिथ्यावाद करने वाला होता है तथा जो अनुभ एव प्राक्रोश करने

वाला होता है । वह पापी मूत्राकीर्ण नामक नरक में जोरि बड़ा ही घोर हुना है

गिरता है ॥१६८॥ मधुप्राह के अग्नि हनन करने वाले नर वंतरणी में जाया

करते हैं । जो उन्मत्त—मान—विस्त जाने—शौच एवं आचार से रहित—अश्रम

प्रचारण क्रोध करने वाले—दुःख देने वाले—बुहक घोर कृष्टगामी मनुष्य है वे

अग्नि पत्रवन नाम वाले नरक में जाया करते हैं । जो छेदन करने वाले तथा

घोर भ्रम एक कर्त्तनी (छुटियो) के जैसे सुदारुणो अस्त्रो से मृग एवं व्याधो का विक्पण किया करते है वे अपने आश्रमसे प्रत्यवसित होते हुए अग्निज्वाल नामक नरक में गिरते हैं । जो इयाम और शवल अवस्तुण्ड और वायसो के साथ लाया करते हैं इत्या धे अन के भानोप से सन्देश नामक नरक में गिरते हैं । वतधारी बहाचारी गण यदि स्वप्न में भी स्कन्दित होते हैं और जो पुत्रो के द्वारा मध्यादित एवं पुत्रो के द्वारा आश्रित होते हैं वे सब श्वभोजन प्राप्तक नरक में नियत रूप से जाकर पडा करते हैं ॥१८६ से १७१॥ क्रोध तथा हर्ष समन्वित होते हुए जो भोग वरुणों तथा आश्रमो के विपरीत कर्मों को किया करते हैं वे सब नरक के गामी हुजा करते हैं ॥१७४॥

उपरिष्ठात्सितो घोर उच्छ्वात्मा रौरवा महान् ।

सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तप स्मृत ॥१७५॥

एवमादि क्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत ।

भूमेरधस्तात्सप्तैव नरका परिकीर्तिता ॥१७६॥

अथमंसूनवस्ते स्युरन्धतामिलकादय ।

रौरव प्रथमस्तेषा महा रौरव एव च ॥१७७॥

अस्याध पुनरप्यन्ध शीतस्तप इति स्मृत ।

तृतीय कालसूत्र स्यामहाहविविधि स्मृत ॥१७८॥

अप्रतिष्ठ अतुर्य स्यादवीची पञ्चम स्मृत ।

लोहपृष्ठन्तमस्तेषामविधेयस्तु सप्तम ॥१७९॥

घोरयाद्रीरय प्रोक्त साम्भको दहन स्मृत ।

सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपोऽथमः ॥१८०॥

सर्पो निवृन्तन प्रोक्त कालसूत्रेति दारुण ।

अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति अमस्तस्मिन्सुदारुण ॥१८१॥

अवीचिर्दारुण प्रोक्तो यन्त्रसजीडनाच्च स ।

तस्मात्सुदारुणो लोहः शर्मणा क्षयणाच्च स ॥१८२॥

ऊपर से मिल-घोर उष्मा स्वरूप वाया महात् रौरव नरक होना है ।

सुदारुण तो शीततामा होना है चित्तु उमक नीचे तथा कहा गया है ॥१७५॥

एवम दि क्रम से ही बखुन किये हुए नरको का समझ लो । भूमि के नीचे के भाग में सात ही नरक बहे गये हैं ॥१७६॥ वे अथ तामिस्नकादि अथम के सूनु हैं । रोरव और महा रोरव उनमें प्रथम है ॥१७७॥ इसके नीचे फिर भी अन्य तीनस्तय कहा गया है । तीसरा काल सूत्र होता है जो महा हवि बिधि कहा गया है ॥१७८॥ अप्रतिष्ठ चौथा और पाँचवाँ अवीची नाम बाला होता है । उनमें लोह पृष्ठ स्तम्भ जो अविधेय है सातवाँ होता है ॥१७९॥ घोर होने से रोरव कहा गया है और साम्भक रहन कहा गया है । मुदाहण तो शीतारमा होता है उनके नीचे अथम तप होना है ॥१८०॥ सप्त निहन्तन कहा गया है । बाल सूत्र यह दाहण है । अप्रतिष्ठ में स्थिति नहीं है उसमें मुदाहण भ्रम होता है ॥१८१॥ अवीची नरक दाहण कहा गया है क्यों वह यत्र पीडित करता है । उसमें भी मुदाहण कर्मों के क्षय के कारण लोह नामक नरक होता है ॥१८२॥

तथाभूतो शरीरत्वादविधिभ्यस्तु स स्मृत ।

पीडबन्धवधासङ्गादप्रतीवारलक्षण ॥१८३॥

ऊर्ध्व दलमितास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृता ।

दुःखोत्पत्तस्तु सर्वेषु ह्यथमस्य निमित्तत ॥१८४॥

ऊर्ध्व लोभं समावेतो निरालोको च तावुमी ।

कूटाङ्गारप्रमाणंश्च शरीरी मूत्रनायक ॥१८५॥

उपभोगसमर्थस्तु सद्यो जायन्ति नमंभि ।

दुःख प्रकर्षश्चोपत्व तेषु सर्वेषु वै स्मृतः ॥१८६॥

यातनाश्चाप्यसत्येया नारकाणां तथा स्मृता ।

तत्रानुभूयत दुःख क्षीणो नमसि वै पुन ॥१८७॥

तिपंग्योनौ प्रमूयन्त नमंशेषे गते तत ।

देवाश्च नारकाश्चैव ह्यूर्ध्वं चाधश्च सस्थिता ॥१८८॥

धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्च्छय ।

उपभोगार्थमुत्पत्तिरीपपत्तिकर्मत ॥१८९॥

पश्यन्ति नारवान्देवा ह्यधोवक्त्रान् ह्यधोगतान् ।

नारकाश्च तथा देवान् सर्वान्पश्यन्त्यधो मुग्धान् ॥१९०॥

अनप्रमूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः ।

तस्माद्दूर्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते ॥१६१॥

एषा स्वभाविकी सज्ञा लोकालोके प्रवर्तते ।

अथाब्रुवन्पुनर्वायु ब्राह्मणा सत्रिणस्तदा ॥१६२॥

सर्गेषामेव भूतानां लोकालोकनिवासिनाम् ।

ससारे ससरन्तीह यावन्त प्राणिनश्च तान् ॥१६३॥

सङ्ख्यया परिसङ्ख्याय तत प्रब्रूहि कृत्स्नशः ।

ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा मास्तु वाक्यमब्रवीत् ॥१६४॥

तथा भूत शरीर होने प्रविधिमें वह कहा गया है । पीडवन्ध और बध के प्रामाण्य होने से अप्रतीकार लक्षण वाला होता है ॥१६३॥ वे ऊपर में शील को गये हुए तथा बिना आलोक वाले बहे गये हैं । अधर्म के निमित्त होने से सब में दुःख का उपपन्न हुआ करता है ॥१६४॥ ऊर्ध्व भाग में ये लोको के समान होते हैं तथा ये दोनों निरालोक होते हैं । और कूटाकार प्रमाणों में शरीरी मूल नायक होता है ॥१६५॥ उपभोग में समर्थ कर्मों से तुरन्त ही होते हैं । उन सब में दुःखों का प्रवर्ण और उपपत्ति बहे गये हैं ॥१६६॥ नरकों में होने वाली यातनाएँ अमर्य कहो गई हैं । वहाँ पर फिर क्षीण कर्म में दुःख का अनुभव किया जाता है ॥१६७॥ इनके पदचान् कर्मों के दोष रहने पर जीवात्मा नियंक्ष्योनि में जन्म लिया करते हैं । देवगण और नारकीगण ऊपर और नीचे के भागों में संस्थित होते हैं ॥१६८॥ धर्म और अधर्म के निमित्त होने से तुरन्त भूतिर्वा उत्पन्न हो जाती है । औपपत्तिक कर्म से उपभोग करने के लिये उत्पत्ति होती है ॥१६९॥ देवगण अधोगत और नीचे की ओर मुक्त करने वाले नारकी प्राणियों को देता करते हैं । और नास्व ममस्त देवों को अपो मुक्त किये हुए देगते हैं ॥१७०॥ जिस कारण से अनप्रमूलता और स्वभाव से धारण होती है उसमें लोकालोक में ऊर्ध्वभाव तथा अधोभाव नहीं होता है ॥१७१॥ लोकालोक में यह स्वभाविकी सज्ञा होती है । इसके अनन्तर उक्त समय में मत्र करने वाले ब्राह्मणों ने फिर वामदेव कहा—॥१७२॥ ऋषियों ने कहा—लोकालोक के निवास करने वाले सभी प्राणियों में से यहाँ ससार में जितने प्राणी समरण

रिया करते हैं उनको मर्यादा से पर्याप्त करने हमने यद्वान् पूर्ण रूप से बता
इय । ऋषियों व उम वचन को मुनवर माहन देव न बह्य—॥१६४॥

न शक्या जन्तय कृत्स्ना प्रसख्यातु वयञ्चन ।

अनाद्यन्ताश्च सर्वाण्यह्यप्युद्भूतव्यवस्थिता ।

गणना विनिवृत्तपामानन्त्येन प्रकीर्तिता ॥१६५॥

न दिव्यचक्षुषा ज्ञातु शक्या ज्ञानेन वा पुन ।

चक्षुषा च प्रसख्यातुमतो ह्यन्ते नराधिप ॥१६६॥

अनाध्यानादवेक्षयान्नैव प्रप्तो विधीयते ।

ब्रह्मणा सजितं यत् सख्यया तन्निबोधत ॥१६७॥

य सहस्रतमो भाग स्यावराणा भवेदिह ।

पार्थिव कृमयस्तावत्संसेवार्थेषु सम्मता ॥१६८॥

मसर्वजानाम्भागेन सहस्रेणैव सम्मिता ।

श्रीदक्षा जन्तव सर्वे निश्चयात्तद्विचारितम् ॥१६९॥

सहस्रेणैव भागेन सर्वाना सलिलीकसाम् ।

विहङ्गमास्तु विज्ञया लोकिनास्त च सर्वश ॥१७०॥

वायु देव बोले—मह्मपूण जन्तुगण किसी भी प्रकार से प्रसम्मान नहीं
किये जा सकते हैं । वे सब अनाद्यन्त—सर्वाण्य और ऊह से भी व्यवस्थित हैं ।
इनकी गणना आनन्त्य होने से विनिवृत्त कही गई है ॥१६५॥ अथवा दिव्य
चक्षु में भी ज्ञान के द्वारा नहीं जानी जा सकती है । हमलिये अन्त में नराधिप
प्रसम्मान करने के लिय लिया गया है ॥१६६॥ अनाध्यान होने से तथा अवेक्षत्व
होने से यह प्रश्न ही नहीं किया जाता है । ब्रह्मा के द्वारा जो सख्या से सजित
किया गया है उसको जान तो ॥१६७॥ यहाँ पर स्यावरो का जो सहस्रतम भाग
होता है उतने ससकादि में होने वाले पार्थिव कृमि होते हैं ॥१६८॥ समेकजो
के सहस्रतम भाग के सम्मित समस्त श्रीदक्ष (जल में रहने वाले) जन्तुगण होते
हैं यह निश्चय से विचार लिया गया है ॥१६९॥ सलिल में रहने वाले सर्वो के
सहस्र ही भाग से विहङ्गम जानने चाहिए और वे सब लौकिक हैं ॥१७०॥

य सहस्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणा भवेत् ।

पशवस्तत्तमा ज्ञेया लोकिनास्तु चतुष्पदा ॥२०१॥

चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्रेणैव समता ।

भागेन द्विपदा ज्ञेया लोकिनेऽस्मिस्तु सव्यश ॥२०२॥

य सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदा पुनः ।

धार्मिकास्तेन भागेन विज्ञेया सम्मिता पुनः ॥२०३॥

सस्रस्रणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवङ्गता ।

य सहस्रतमो भागो धार्मिकाणां भवेद्दिवि ।

समितास्तन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ॥२०४॥

स्वर्गोपपादकैस्तुल्या यातना स्थानवासिनः ।

पतिता पूरणमुद्देशाद्दुरात्मनो त्रियन्ति ये ।

रीरवे तामसे ह्येते शीतोष्णं प्राप्नुवन्ति ते ॥२०५॥

वेदनाकटुकास्तभ्या यातना स्थानमागताः ।

उष्णस्तु रीरवो ज्ञेयस्तेजो घोररसात्मकः ॥२०६॥

तता धनार्थिश्चापि शीतात्मा मरत तपः ।

एव सुदुर्लभा सन्त स्वर्गे च धार्मिका नरा ॥२०७॥

एषा सत्या कृता सत्या ईश्वरेण स्वयम्भुवा ।

मणानां विनिवृत्तीषां सङ्ख्या ग्राह्या च मानुषी ॥२०८॥

जो उन पणिया का हनारवा हिस्सा होता है उनके बराबर नौकिक चतुष्पद पशु जानने चाहिये ॥२०१॥ समस्त चतुष्पदों के सहस्र भाग से सम्मित इस समस्त लौकिक में द्विपद जन्तु जानने चाहिए ॥२०२॥ फिर उन द्विपदों में भाग में जो सहस्रवा भाग होता है उस भाग में धार्मिक जानने चाहिए ॥२०३॥ हजारवें भाग से ही उन धार्मिकों में से प्राणी दिवलोक में प्राप्त होने वाले होते हैं । उस दिवलोक में भी उन गये हुए धार्मिकों में से हजारवाँ भाग मोक्ष प्राप्त करने वाला हुआ करते हैं ॥२०४॥ स्वर्ग के उपपादकों के तुल्य यातना स्थान वाली की है । उद्देश से पूर्ण की पतित दुष्ट धात्मा जाने मरत हैं ये सब रीरव तामस में गिरत हैं और शीतोष्ण की वे

प्राप्त किया करते हैं । २०५॥ वेदना से बहुत एव स्तब्ध यातना के स्थान को प्राप्त हो गये । उष्ण तो रौरव जानना चाहिये जो कि घोर रमात्मक रोज है ॥२०६॥ इसके पश्चात् घनाग्निमक भी जीतात्मा सतत तप है । इस प्रकार से मुदुलंभ होते हुए भी स्वर्ग में घाम्मिक नर होते हैं ॥२०७॥ यह सख्या स्यम ईश्वर के द्वारा की गई है । यह संख्या ब्राह्मी और मानुषी है । यह गणना विनिवृत्त हो गई है ॥२०८॥

महोजनस्तपः सत्य भूतो भाव्यो भवस्तथा ।

उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामन्तरेण च ।

लोकान्तरञ्च यादृग्मी तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥२०९॥

तेषा तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूद्वर्ध्वरेतसाम् ।

स वायुर्दृष्टत्त्वार्थं इदन्तत्त्वमुवाच ह ॥२१०॥

व्यक्त तर्केण पश्यन्ति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः ।

प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा च क्रियात्मनः ॥२११॥

ऋभुः सनत्कुमाराद्याः सम्बुद्धाः शुद्धबुद्धयः ।

व्यपेतशोका विरजाः सन्तो ब्रह्मे बसत्तमाः ॥२१२॥

अक्षया प्रीतिसयुक्ता ब्रह्मे तिष्ठन्ति योगिनः ।

ऋषीणां बाललित्यानां तैर्यथाहृतमीश्वरं ॥२१३॥

यथा चैव मया दृष्टं सांनिध्यन्तर्न कुर्वता ।

अनह्यसत्कृताथनामालय नेश्वरस्य यत् ॥२१४॥

ईश्वर परमाणुत्वाद्भावग्राह्यो मनीषिणाम् ।

ज्ञान गौराग्यमंश्चर्यन्तप सत्य क्षमा धृति ॥२१५॥

द्रष्टृत्वमात्मसम्बन्धमधिष्ठानत्वमेव च ।

अव्ययानि दर्शयन्ति तस्मिन्तिष्ठति शङ्करे ॥२१६॥

ऋषियो ने कहा—आपने यह-जन तप-मत्य-भूत भाव्य और भव ये सब सोच हमको बताये हैं । अब सोचो के अन्तर से अन्य जिस प्रकार के सोच हैं उन्हें ठीक-ठीक हमको बताइये ॥२०६॥ उन ऋषियों ने जो कि ऊर्ध्वरेता थे उस वचन का धारण कर तत्त्वार्थ को देख लेने वाले उन वायुदेव ने उस

तत्त्व को कहा था ॥२१०॥ वायुदेव ने कहा—प्रत्यक्षदर्शी योग से तर्क के द्वारा व्यक्त को देखा करते हैं और क्रिया के स्वरूप वाले प्रत्याहार-ध्यान तथा तप के द्वारा देखते हैं ॥२११॥ श्रुमु सनत्कुमार आदि सब भली भाँति ज्ञान युक्त तथा सम्बुद्ध बुद्धि वाले हैं । ये सब शोक रहित विरज ब्रह्म की भाँति ही श्रेष्ठ हैं ॥२१२॥ ये क्षय से रहित-प्रीति से समुक्त योगी हैं जो ब्रह्म में ही धास्तित रहा करते हैं । उन परम समर्थ प्रभुओं ने बालवित्त्य ऋषियों से जैसा कहा था और उनका सानिध्य करने वाले मैंने जिस तरह से देखा था कि ये तप पर्यन्त ईश्वर के असत्कृत वाले नहीं होते हैं ॥२१३॥॥२१४॥ ईश्वर परम अणु होने के कारण से मनीषियों के भाव के द्वारा ही ग्रहण करने के योग्य होता है । उस शङ्कर म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य तप-सरण क्षमा-धृति-द्रष्टृत्व होना-आत्म सम्बन्ध और अधिष्ठानत्वं य अयम दत्त बाते स्थित रहा करती है ॥२१५॥॥२१६॥

विभुत्वात्स्वसु योगाग्निर्ब्रह्मणोऽनुग्रहे रत ।

स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते ॥२१७

अक्षर ध्रुवमव्ययमष्टमन्तवीपसगिकम् ।

तत्त्वेश्वरस्य यन्मात्रस्थान मायामय परम् ॥२१८

मायया कृतमाचष्टे मायी देवो भृहेश्वर ।

देवानामुहसहस्रारस्तत्प्रमाण हि कीर्त्यते ॥२१९

विस्तरेणानुपूर्व्या च श्रुवतो मे निबोधत ।

त्रयोदशैव कोट्यस्तु निघृता दश पञ्च च ।

भूलोकाद् ब्रह्मलोको मे योजनैः सम्प्रकीर्त्यते ॥२२०

एकयोजनकोटी तु पञ्चाशच्चिघृतानि च ।

ऊर्ध्वं भागयताण्डन्तु ब्रह्मलोकात्पर स्मृतम् ॥२२१

एषोढ्गप्रचारस्तु गत्यन्तश्च तत स्मृतम् ।

नित्या हृद्यपरिमर्येया परस्परगुणाथया ॥२२२

मृक्षमा प्रसवधमिष्यस्तत प्रकृतयः स्मृता ।

येभ्योऽधिकर्त्ता सज्जं क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसहित ॥२२३

विभु होने के कारण वह योग की अग्नि बाना प्रभु ब्रह्म के अनुग्रह में रहते हैं । ये लोक विग्रह होकर सहायता किया करते हैं ॥२१७॥ उस ईश्वर के अंगर ध्रुव अथवा अष्टम ओषधिविष परम मायाभय यमान स्थान है ॥२१८॥ महेश्वर देव माया से युक्त हैं और माया के द्वारा ही सब कुछ किया करते हैं । देवा का उप सहार भी इसी प्रकार किया करते हैं । उसका प्रमाण अब कहा जा रहा है । मैं विस्तार के साथ उसे आनुपूर्वी से कहता हूँ । आप लोग उसे मुझसे जान लेंगे । इस भूलोक से ब्रह्मलोक अयोध्या कीटि तथा पद्मह निपुन बीजों से युक्त कहा आया करता है ॥२१९॥२२०॥ इन ब्रह्म लोक से भी ऊपर एक नराह पचास निशुत योजन भागवतारु स्थित है ऐसा कहा गया है ॥२२१॥ यह इनसे ऊपर गमन करने वाला प्रचार है और ब्रह्म गति का अन्त होता है ऐसा बताया गया है । परस्पर में गुणा के प्राप्ति जो है वे नित्य हैं और अपरिमित्य होते हैं ॥२२२॥ प्रसव के धर्म वाली जो प्रकृतियाँ हैं वे परम सूक्ष्म हैं जिनमें अधिकर्ता ब्रह्म ही सत्ता वाला क्षेत्र उत्पन्न होता है ॥२२३॥

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् ।

अनुत्पाद्य परन्धाम परमाणु परक्षेयम् ॥२२४॥

अक्षयश्चाप्यनुह्यश्च अभूत्तिमूर्तिमानसो ।

प्रादुर्भाविस्तिरोभाव स्थितिश्चैवाप्यनुग्रह ॥२२५॥

त्रिधिरन्यैरनीपम्य परमाणु महेश्वर ।

मतेजा एष तममो य परस्तात्प्रकाशक ॥२२६॥

मदण्डमासीत्तत्सौवर्णं प्रथमन्त्वोपसर्गिकम् ।

वृहत् सर्वतोवृत्तमीश्वराद्वनवजायत ॥२२७॥

ईश्वरदाद् बीजनिर्भेद क्षेत्रज्ञो बीज इत्येते ।

यानि प्रवृत्तिमाचष्टे मा च नारायणात्मिका ॥२२८॥

विभुलोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसंस्थानमव च ।

सन्निसर्गं स तन्वा च लोकघातुमहात्मन ॥२२९॥

पुरस्ताद्व्रह्मलोकस्य ह्यष्टादशविक्रमः ।

तयोर्मध्ये पुरं दिव्य स्थान यस्य मनोमयम् ॥ २३०

तद्विग्रहयत स्वानभीष्टवरस्यामितोजमः ।

शिव नाम पुर तत्र धारण जन्मभीरणाम् ॥ २३१

उनमें प्रकृति बाला मूलम एवं अर्धय अधिशानुत्व होता है । यह पर-
माणु परमेव परधाम धनुत्पादन के योग्य होता है ॥२२५॥ यह धम से रक्षित-
उहा करने के प्रयोग बिना भूति बाला और यह भूतिमाय है जिसका
आविर्भाव और निरोभाव तथा न्यति भी एक प्रकार का धनुष ही होता
है ॥२२५॥ यह परमाणु मष्टेष्टर धर्मों के द्वारा धनुषम विधि होता है । यह
तमकी परम प्रकाश करने वाला तेज से युक्त होता है ॥२२६॥ जो यह प्रथम
मौर्ग्य एक औपमगिक धनु होता है । सभी ओर से वृत्त और परम विशाल
वह ईश्वर से उत्पन्न हुआ था ॥२२७॥ ईश्वर से बीज का निर्भेद होता है ।
जो क्षेत्र होता है वही बीज होता है । प्रकृति को उस बीज को धारण करने
वाली मोति कहा जाता है और वह भी नारायण के स्वप्न वाली होती
है ॥२२८॥ विभु न लोक की सृष्टि के धिय लोक सस्थान किया है लोकों के
धाना उस महात्मा के धारी से ही यह निम्न होता है ॥२२९॥ मयमे पहले
ब्रह्म होता है और फिर ब्रह्म का धनु है । इन दोनों के मध्य म पुर जिसका
मनोमय परम दिवा स्थान होता है ॥२३०॥ अपरिमित धोज वाले विग्रहधारी
उस ईश्वर का स्थान है । वह शिव नाम वाला पुर है और वहा पर जन्म
मरण के भय से भी न जीवा की रक्षा होती है अर्थात् वही शिवपुर उनका
धारण है ॥२३१॥

सहस्राणां शत पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमा ।

अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महीमण्डलसंस्थितम् ॥२३२

मध्याह्नाकंप्रकाशेन परतेजोऽभिर्मदिता ।

सातवीम्भेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा ॥ २३३

द्विरंशनुभि सोवर्णमुक्तादामविभूषितं ।

तपनीयनिभं शुभ्रैर्गाढ मुकृतवेष्टनम् ॥ २३४

तच्चाकाशे पुर रम्य दिव्य घण्टादिनादितम् ।
 न तत्र क्रमते मृत्युर्न तपो न जरा श्रमाः ॥२३५॥
 न हि तस्य पुरस्यान्यैरूपमा वर्तुमर्हति ।
 सहस्राणां शत पूर्णं योजनानां दिशो दश ॥२३६॥
 तत्पुर गोवृषाङ्कुस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति ।
 भावेन मनसो भूमिर्विन्यस्ता वनकामयी ॥ २३७॥
 रत्नबालुकया तत्र विन्यस्ता शुशुभेऽधिकम् ।
 शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च । २३८॥
 अर्धं श्वेतार्धं रक्तानि सौवर्णानि तथैव च ।
 रथचक्रप्रमाणानि नालैर्मरकतप्रभं ॥२३९॥
 सौकुमारेण रूपेण गन्धिनाप्रतिमेन च ।
 तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेपूषवनेषु च ॥ २४०॥
 भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च ।
 अर्धं कृष्णार्धं रक्तानि सुकुमारान्तराणि च ॥ २४१॥
 मातपत्र प्रमाणानि पङ्कजैः सवृतानि च ।
 भूय सप्त महानद्यस्तासां नामानि बोधत ॥ २४२॥
 वरा वरेण्या वरदा वरहर्षा वरवर्णिनी ।
 वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३॥
 पद्मोत्पदलोन्मिश्र फेनाद्यावत्तं विग्रहम् ।
 जल मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्धरा ॥२४४॥

हे द्विजोत्तमो । वह सौ महान् योजनो से पूर्ण हैं । उसके अन्दर एक परम
 विस्तीर्ण महीमण्डल सन्स्थित होता है ॥२३२॥ मध्याह्न के सूर्य के प्रकाश
 का भी अभिमर्दन करने वाला वहा तेज का प्रकाश है । उसका सुवर्ण का
 विशाल प्राकार होता है जो सूर्य के वचन जैसा है ॥२३३॥ सुवर्ण निर्मित
 चार उसम द्वार हैं जो कि मुक्ताओ की मालाओ से समस्तङ्कृत हैं । सोने के
 समान परम भास्वर वस्तुओ से भनी भाति वेष्टित हैं ॥२३४॥ वह पुर अत्यन्त
 रम्य आकाश म है जो कि घण्टाणाद से निनादित एव भति दिव्य है । वहा

पर मृत्यु ताप-जरा और श्रम ये कोई भी नहीं पहुँच सकते हैं । ऐसा श्रम कोई भी पुर या स्थल नहीं है जिसकी उपमा इस पुर को दी जा सके अर्थात् साराश यह है कि यह अत्यन्त अनुपम है । दशो दिशाओं में यह सौ सहस्र योजन तक फैला हुआ है ॥२३६॥ वह पुर गोवृषाङ्क के दिवा तेज से व्याप्त होना हुआ सस्थित रहता है । मन के भाव के द्वारा वहाँ कनकामयी भूमि विव्यस्त की गई है ॥२३७॥ रत्नों की बालुका के द्वारा वह और भी अधिक शोभा में शोभित है । बाल सूर्य के समान शारदीय चन्द्र के प्रकाश वाले आधे श्वेत और आधे रक्त सुवर्ण निर्मित जैसे वन और उपवनो में पद्म हैं जिनका प्रमाण रण के चक्र के समान है और मरवत भाणिकी प्रभा के तुल्य उनके नाल हैं । परम सौकुमार रूप है और अप्रतिम गन्ध से युक्त है ऐसे दिवा पद्म वहाँ पर हैं ॥२३८॥॥२३९॥॥२४०॥ मृग पत्र के तुल्य जो तपनीय थे वे आधे कृष्ण और आधे रक्त थे और सुबोमल अन्तर वाले थे ॥२४१॥ आतपत्र (छत्र) के प्रमाण वाले तथा पङ्कजों से सवृत थे । सब सात जो महा नदियाँ हैं उनके नामों को समझ लो ॥२४२॥ महा नदियों के नाम ये हैं— वरा-वरेण्या वरदा-वराही वर वाणिनी- वरमा और वरभद्रा । ये सात महानदी उस उत्तम पुर में परम रम्य हैं ॥२४३॥ ये श्रेष्ठ नदियाँ मणिदल के समान प्रति स्वच्छ जल के प्रवाह वाली थी वह जल पद्मोत्पल दलों में उन्मिथ था और फेन आदि आवर्तों के स्वरूप से युक्त था ॥२४४॥

न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुरा पितरस्तथा ।

न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ॥ २४५

तत्र ये ध्यानमव्यग्रा सुयुक्ता विजितेन्द्रिया ।

पश्यन्तीह महात्मान पुरन्तद्गोवृषात्मन ॥२४६

मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजस ।

सुमहान्मेरुसङ्काशो दिव्यो मद्रश्रिया वृत ॥ २४७

सहस्र पाद प्रासादस्थपनीयमय शुभ ।

अनुपमेयं रत्नैश्च सवत स विभूषित ॥२४८

स्फटिकैश्चन्द्रमङ्गाशैवैदूय सोममप्रभं ।
 बालसूर्यप्रभैश्चैव सौमर्ण्यैश्चाग्निसप्रभं ॥ २४६
 राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयं शुभं ।
 हृदयैश्चमयैश्चैव इत्येव सुमहाहितं ॥ २४७

ईश के उस परम सुन्दर पुर की ब्रह्मर्षि-देव-अमुर-पितर तथा अन्य कोई भी नहीं जानते हैं क्या कि ईश स्वयं अप्रमेय हैं अर्थात् प्रभा के विषय नहीं हैं ॥ २४६ ॥ उस गोवृषात्मा प्रभु के उस पुर की ऐसे ही महान् आत्मा वाले ही पुरष देखते हैं जो ध्यान में सदा अग्रगण्य रहते हैं सुमुक्त और विजित इन्द्रियो वाले होते हैं ॥ २४६ ॥ उस परम रमणीय श्रेष्ठतम पुर के मध्य में अप्रमित तेज वाले उस ईश्वर का भद्रस्थी में वृत्त-अतिदिग्ध और सुविशाल नेत्र के सहस्र महत्प्रपाद् प्रासाद हैं जो परम शुभ एवं सुखों के समान हैं । वह प्रासाद (महल) अनुपम रत्नों के द्वारा सभी ओर में सुविभूषित है । २४७ ॥ २४८ ॥ अन्तर्यामि के मुख्य स्फटिक मणि और सोम के सहस्र प्रभा वाली वैदूर्य मणियों से वह सुशोभित था । बालसूर्य अर्थात् प्रातः कालीन सूर्य की प्रभा वाली तथा अग्नि के समान प्रभा से युक्त एवं सुखों की ओर राजत (चादी की) वस्तुओं से वह विभूषित था और शुभ इन्द्र नील मणियों में सुन्दर शोभा से युक्त हो रहा था । हीरा से अटित परम हृदय एवं शोभा से सम्पन्न वह पुर था ॥ २४६ ॥ २४७ ॥

जलैश्च विविधाकारैर्दीप्यद्भिरविवासितम् ।
 चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पद्माभिः रत्नैश्च ॥ २४९
 रत्नमण्डपानिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवः ।
 विन्नराणामधीवासैः सन्ध्याघ्राकारराजितं ॥ २५०
 परिवारममन्तास्तु हेमपुष्पोदयप्रभं ।
 यथा हि मेघशैलेन्द्रो ह्रमशृङ्गैर्विराजत ॥ २५१
 नामीवरमयीभिस्तु पद्माभिस्तथा पुरम् ।
 एव प्रामादराजोऽपि भूमिराभिराजते ॥ २५२

वसन्तप्रतिमा यत्र श्रम्यस्वकस्य निवेशने ।

लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्माया वीर्तिः शोभा सरस्वती ॥२५५॥

देव्या वं सहिता ह्येता रूपागन्धममन्दिता ।

नित्या ह्यपरिसङ्ख्याता परम्परगुणाश्रया ।

भूषण सर्वरत्नाना योन्य कान्तिवितासयो ॥२५६॥

कोटिशत महाभावा धिमज्ज्यात्मानमात्मना ।

भगवन्त महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिता ॥२५७॥

विविध आकार वाले जलो से घर्षात् जमागयो में वह युक्त था जोकि दीप्यमान थे । चन्द्रमा की चिरणों के सुन्य प्रकाश वाली पनावायो में वह पुर ममर्द्धन हो रहा था ॥२५१॥ सुवर्ण के बने हुए घण्टा वही पर थे जिनकी ध्वनियों में मदा ही प्रमुदित उत्सवों वाला रहना है । विभक्तों के वही प्रथिवाम थे जो मत्स्याशाल के मेषों के समान शोभा वाले और हब पुष्पोदर की प्रभा से मयुक्त परिचार वाले वही चारा वार रहा करते थे । त्रिम नरह मेह पिरि-राज हो उगी भौति वह सुवर्ण व निम्नरो से युत विराजमान है ॥२५२-१५३॥ सुवर्ण की पनावायो में वह पुर त्रिम नरह गुणाभिन था उगी भौति यह प्राणाद राज भी भूमिकाओं में विभूषित था । २५४॥ जहाँ पर अगवात् श्रम्यक के निवेशन (धारण) में जगन्त की प्रतिमा वाली लक्ष्मी-श्री-वपुर्माया-वीर्ति-शोभा-सरस्वती रूप-माधुर्य एवं गन्ध से समृद्धित थे सब देवी के गतिन वही समवस्थित थी । य नित्य तथा अचरितग्यात (अचरित) थी जोकि परम्पर में गुणों की आधार थी । य समस्त प्रकार के रत्न की भूषण तथा कान्ति और विनाय की शोभिया थी ॥२५५ २५६॥ य महात् भाग वाली आत्मा में आत्मा की विभक्त करन में वडा करोड थी जोकि अर्थात् हाकर अर्थात् यनि ममाटिन होनी हुई महान् गम मगवान् वा अतिमोदित किया जाती ॥२५७॥

सागा मट्यशान्ध्या पृथुन पञ्चिगिका ।

रुपिष्यञ्च धिया युक्ता मया वपुर्माया ॥२५८॥

लीलाविनायकमुक्तं भौतिरतिमोदकं ।

गणगता सह मादन्ते दीनानि पावकोदमं ॥२५९॥

कुब्जा कामनिकामैश्च वरगात्रा हयानना ।
 पुण्डाश्च विवटार्धैव करालाश्चिपिटानना ॥२६०॥
 लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्रा ह्रस्वपादिका ।
 मृगेद्रवदनाश्चान्या गजवक्त्रोदरास्तथा ॥२६१॥
 गजाननास्तर्षेवान्या सिंह व्याघ्राननास्तथा ।
 लोहिताक्षा महास्तन्य मुमगाश्चारलोचना ॥२६२॥
 ह्रस्वकुक्षितकेशाश्च सुन्दर्यश्चारलोचना ।
 ग्रन्थाश्च कामरूपिण्यो नानावेषधरा स्त्रिय ॥२६३॥
 ग्रन्थन्तरपरिस्क्न्धा देवावासगृहोचिता ।
 रराम भगवास्तत्र दशबाहुमहेश्वर ॥२६४॥

स भी पीछे भय सहस्रों ही परिवारिकाएँ थी जो परम सुन्दर रूप वाली श्री सम्पत्त और सभी कमल के समान लोचनों वाली हैं ॥२६५॥ लीला के विलासों से मयुक्त अथवा मनोहर भावों के द्वारा वे सब शैल के समान आभा वाले तथा अग्नि के तुल्य तेज से युक्त गला के साथ आनन्द विहार किया करते हैं ॥२६६॥ उन विलासिनियों के विभिन्न रूप थे—कुम्भा हैं और काम निकामों से श्रेष्ठ गात्रों वाली हैं । कोई हथ के समान मुख वाली हैं । पुण्ड्रा—विण्डा—कराल और विण्ड मुख वाली हैं ॥२६७॥ उनमें कुछ लम्बे उदर वाली—छोटी भुजाओं से युक्त—विनेत्रा ह्रस्व पादों वाली—मृगेन्द्र के समान वदन से युक्त तथा भय गज के समान मुख तथा उदर वाली हैं ॥२६८॥ कुछ गज के जैसे आनन वाली तथा भय सिंह और व्याघ्र के समान मुख वाली हैं । कुछ ऐसी हैं जिनकी आँखें एकत्र लोहित हैं और कटिपथ महान् स्तना वाली हैं तथा परम मुमगा और सुन्दर नेत्रों वाली हैं ॥२६९॥ कुछ विलासिनी ऐसी थी जिनके केश छोटे और कुक्षिन थे । कटिपथ वहाँ पर परम सुन्दरी तथा चाँद लोचनों वाली थी । भय ऐसी थी जो अपनी इच्छा से ही मनावारित रूप धारण कर लिया करती थी । ऐसे वहाँ नाना प्रकार के वेषों को धारण करने वाली स्त्रियाँ थी ॥२७०॥ य सब अदर ही रहने वाली और देव वाम गृह के उचित थी । दशबाहुओं वाले भगवान् महेश्वर वहाँ पर इन सबके साथ रमण किया करते थे ॥२७१॥

नन्दिना च गणैः साद्धं विश्वरूपैर्महात्मभिः ।
 तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्योदीर्य्यपराक्रमैः ॥२६५॥
 पावकात्मजसङ्काशैर्भूषदष्टोत्कटाननैः ।
 बन्धमानो विमानश्च पूज्यमानश्च तत्परैः ॥२६६॥
 सर्वतुङ्गकुसुमा माला जिघ्रमाणोरसि स्थिताम् ।
 नीलोत्पलदलश्याम पृथुताम्रायत्तदणाम् ॥२६७॥
 ईश्वराललम्बोष्ठ तीक्ष्णदष्ट्रा गणाश्रितम् ।
 पद्मदूर्ध्वनेत्र दुःप्रेक्ष्य रुचिरश्चौरवाससम् ॥२६८॥
 आहवेष्ट्वपरिविलष्ट देवानामरिनाशनम् ।
 बाहुना बाहुमावेश्य पार्श्वे सव्येऽन्तरे स्थितम् ॥२६९॥
 रराजापदिशन्तस्य वामाग्रकरगोचरम् ।
 महाभैरवनिर्घोष बलेनाप्रतिमोजमम् ।
 दशवराधनुश्चैव विचित्र शोभतेऽधिबम् ॥२७०॥
 त्रिशूल विद्युताभासममोघ शत्रुनाशनम् ।
 जाज्वल्यमान वपुः परम तत्त्वित्वा युतम् ॥२७१॥

वहाँ पर तन्त्री तथा अन्य गणों के साथ भगवान् महेश्वर रमण करते हैं जोकि विश्वरूप वाले तथा महान् आत्मा वाले हैं । समान घोरायं और पराक्रम मे समन्वित ध्वजगण भी वहाँ हैं ॥२६५॥ जा पावकात्मज के तुल्य हैं और भूष के समान दष्ट्रा तथा उत्कट मुखों वाले हैं । ये सब महेश्वर की सेवा मे परापूर्ण रहा करते हैं । इनके द्वारा भगवान् सर्वदा बन्धमान एवं विमान और पूज्यमान रहते हैं ॥२६६॥ समान शत्रुओं के कुसुमों की माला उनके वक्ष स्थल मे धारण है उसकी गन्ध का ध्याण करते हुए हैं । आपका वर्ण नील उत्पल के दल के समान श्याम है और नेत्र अत्यन्त ताम्र वर्ण के समान रक्त हैं ॥२६७॥ छोटे कराल एवं लम्बे ओष्ठ वाले—तीक्ष्ण दष्ट्रा वाले गणों के द्वारा पूजित हैं । छे उर्ध्व नेत्रों वाले—दर्शन करने मे असह्य—परम रुचिर और चौर धारण करने वाले हैं ॥२६८॥ मुठों मे अत्यन्त परिवर्तन से रचित तथा देवों के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं । बाहु से बाहु को आविष्ट करके सव्य पार्श्व के अन्तर मे

स्थित हैं ॥२६१॥ वामाग्र करमे गोबर होने वाले अपदेश करने हुए सुगोभिन हो रहे हैं । आगका निर्घोष महान् भँवर हैं और वन के द्वारा अग्रतिम (अनुपम) ओज वाले हैं । दग्धवर्ण धनुष जोकि परम विचित्र है अत्यधिक शोभा दे रहा है । भगवान् महेश्वर का निगूढ विद्युत् की आभा के समान एवं अमोघ आग्नेय जोकि अशुभों का एकदम नाश कर देने वाला है । उसही कान्ति से युवन वायु से आज्वल्यमान हैं ॥२७०-२७१॥

असिर्ध्वं योजसा श्रेष्ठ शीतरश्मिः शशी तथा ।

तेजसा वपुषा बान्त्या देवेशस्य महारमनः ।

शुशुभेऽभ्यधिकं तत्र वेद्यामग्निगिरा इव ॥२७२॥

स्थित्यं पुग्स्ताद् देवस्य धानकौम्भमयो महान् ।

शुशुभे रश्मिः श्रीमान्सोदकं सकमण्डलु ॥२७३॥

अग्निमावेदय चाङ्गेषु पाण्डुराम्बर धारिणी ।

उरद्व्यदेन महता मीत्तिनेन विराजिता ।

चतुर्भुजा महाभागा विजया लोकसम्मता ॥२७४॥

देव्या आद्य प्रतीहारो श्रीरिवाप्रतिमा परा ।

विभ्राजतो स्थिता चैव कृत्वा देवस्य चाश्वलिम् ॥२७५॥

तस्या पृष्ठानुगाश्चान्या स्त्रियोऽम्बरोगुणान्विताः ।

ता त्वत्प्रभिनवैः बान्तरपतिष्ठन्ति शङ्करम् ॥२७६॥

मर्धलक्षणसम्पन्ना वादित्रं स्पष्टं हिता ।

उपगायन्ति देवेशं गणा मन्धर्वयोनयः ॥२७७॥

अम्पुत्रतो महोरस्कः क्षण्मेघममद्युतिः ।

शोभने नन्दमानश्च गौरनिस्तम्ब वेदमनि ॥२७८॥

भगवान् महेश्वर ओजस्वियों में परम श्रेष्ठ हैं और अग्नि के आग्नेय की धारण किये हुए हैं तथा शीत विरगों वाला चन्द्र भी विराजमान है । तेज और वपु तथा बान्ति से महान् आत्मा वाले देवों के स्वामी महेश्वर वहाँ पर वेदी में अग्नि की शिखा के समान धरत्यधिक शोभा में युवन हो रहे थे ॥२७२॥ भगवान् महेश्वर देव व आगे एक सुवर्ण का निर्मल महान् परम सुन्दर तथा जन

सं नरा द्रुधा एव कमण्डलु स्थित है त्रिमयी एव अत्यद्भुत शोभा हो रही थी ॥२७३॥ अपने ब्रह्मों में अग्नि को धारण किये हुए तथा पाण्डुर वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली एव महान् मोक्षियों के उरश्चर से विराजित-धार भुजाधो वाली महान् भाग वाली लोक सम्मता विजया यहाँ पर विद्यमान है ॥२७४॥ यह देवी की सर्व प्रथम प्रतीहारि है जोकि अनुपम दूखरी श्री के ही तुल्य है । यह देव के प्राये ब्रह्मनि करके अग्नि विभ्राजमान होती हुई सस्यन रहा करती है ॥२७५॥ उसके पृष्ठ भाग में अनुपमन करने वाली अन्य स्त्रियाँ हैं जोकि अम्भराक्षों के गुण से युक्त हैं । वे सब अभिनव एव अति कान्त वाद्यादि के द्वारा भगवान् शङ्कर का उपस्थान किया करती हैं ॥२७६॥ समस्त शुभ लक्षणों में सम्पन्न तथा अनेक वादित्रों से उपपृ हित गन्धर्वों की योनियाँ एव गण भगवान् देवेन का उपगायन किया करते हैं ॥२७७॥ भगवान् गोपति अपने वेश में परमानन्द करते हुए शोभित होते हैं । अत्यन्त उत्तम आपका कलवर है तथा विशाल वक्ष स्पष्ट है और शरत्काल के मेघ के समान आपके शरीर की कान्ति है ॥२७८॥

स्कन्दश्च सपरीवार पुनोज्ज्यामितवीर्यरान् ।
रक्ताम्बरधर श्रीमान्वराम्बुजदलेक्षण ॥२७९॥
तस्य शाखा विशाखश्च नैगमेयश्च चाष्टवान् ।
व्यपेतव्यसनाक्रूरा प्रजाना पालने रता ॥२८०॥
तं साढं स महावीर्यं शोभते शिखिबाहन ।
व्यालकीहनकंस्तत्र कीदृते विश्वतोमुख ॥२८१॥
ये नृपा विप्रुधेन्द्राणा वाञ्छनस्य प्रदायिन ।
ये च स्वायतना विप्रा गृहस्था ब्रह्मवादिन ॥२८२॥
गूढस्वाध्याय तपसस्तथा चैवोञ्छवृत्तय ।
एते सभासदस्तस्य देवेशस्य च सम्मता ॥२८३॥
मन्वन्तराभ्यनेकानि व्यवर्त्तन् पुन पुन ।
श्रूयता देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥२८४॥

व्याघ्राश्चैवानुगास्तत्र काञ्चनाभास्तरस्विन ।

स्वच्छन्दचारिणः सर्वे स्वयं देवेन निर्मिता ॥२८५॥

मृत्योर्मृत्युसमास्ते तु यमदर्पापहारिणः ।

विभूतिमप्यसह्येया को न स्वत्वमिषास्यते ॥२८६॥

अतः परमिदं भूयो भवेनाद्भुतमुत्तमम् ।

भूतानामनुकपार्थं यत्कृतं तन्निबोधत ॥२८७॥

भगवान् महेश्वर के पुत्र स्कन्द हैं जोकि प्रमित वीर्य—पराक्रम से युक्त हैं । यह भी परिवार के सहित वहाँ पर विराजमान हैं । स्कन्द रक्त वर्ण से वस्त्र धारण करने वाले हैं । श्री से सम्पन्न और कमल दल के तुल्य नभो वाले हैं ॥२८६॥ उनके चरित्र में शास—विशाल—नैर्गमेय—महवान् हैं जोकि व्यसन रहित एवं क्रूर हैं तथा प्रजा के पासन करने में सदा रत रहने वाले हैं ॥२८७॥ इनके साथ वह महान् वीर्य वाले सिद्धिवाहन स्कन्द शोभित होते हैं । यह विश्व-सोमुख स्कन्द ध्यालों (सर्पों) के सिल्लियों से वहाँ झीड़ा किया करते हैं ॥२८८॥ काञ्चन के प्रदान करने वाले विबुधेन्द्रो के जो नृप हैं तथा जो गृहस्थ ब्रह्मवादी स्वायम्भुव विप्र हैं तथा गूढ स्वाध्याय में जो रत रहने वाले—तपश्चर्या करने वाले और उपर कृति वाले लोग हैं वे ही सब उन देवों के देव भगवान् के समान हैं । भगवान् ऐसे ही मन्त्रमयी को पसन्द किया करते हैं ॥२८९-२९०॥ अनेक मन्त्रन्तर बारम्बार व्यतीत हो जाते हैं । अब देवों के देव महेश्वर का उत्तम भविष्याश्चर्य का आप लोग श्रवण करें ॥२९१॥ यहाँ पर व्याघ्र और काञ्चन के समान आभा वाले तपस्वी (देव वाले) अनुगामी गण सभी स्वच्छन्द चारण करने वाले हैं और इन सबकी रचना स्वयं ही देव के द्वारा हुई है ॥२९२॥ वे मृत्यु को मृत्यु के समान हैं और यमराज के भी रूप के हरण करने वाले हैं । अगस्त्य अपरिमित विभूति का देवदेव ने निर्माण किया या उसे कौन कह सकता है ? अर्थात् वह अनर्णीय है ॥२९३॥ इनके भी आने भव ने यह एक दूसरी वस्तु बहुत ही अद्भुत एवं उत्तम की थी । यह सब भूतो पर अनु-कम्पा के ही लिये जो कुछ भी है किया है । उसे भी आप लोग समझ कर जान लें ॥२९४॥

मन्दरादिप्रकाशानां बलेनाप्रतिमोजसाम् ।
 हारकुन्देन्दुवर्णानां विद्युद्धननिनादिनाम् ॥२८८
 चूडामणिधराणां वै मेघसन्निभवाससाम् ।
 श्रीवत्साङ्कितवज्राणामङ्गुलीभूलपाणिनाम् ॥२८९
 एव दिशानां देवानां रूपेणोत्तमशालिनाम् ।
 तस्य प्रासादमुख्यस्य स्तम्भेषूत्तमशोभिषु ॥२९०
 सयताग्निमयीभिस्तु शृङ्खलामि पृथक्पृथक् ।
 मायासहस्रसिंहानां सुखं तत्र निवासिनाम् ॥२९१
 स्तम्भेषूप्यपासृतापः प्रयम्बकस्य निवेशने ।
 अथ तत्प्रतिसंपूज्य वायोर्वाक्यं भुविस्मिताः ।
 शृण्वन् प्रत्यभापन्त नैमिषेयास्तपस्विनः ॥२९२
 भगवन्सर्वभूतानां प्राणसर्गत्रयप्रभो ।
 के ते सिंहमहाभूताः क्व ते जाता किमात्मकाः ॥२९३
 सिंहाः केन शराक्षेण भूतानां प्रभविष्यन्ताः ।
 वीश्वानरमयं पार्श्वं सरुद्धास्तु पृथक्पृथक् ॥२९४
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यं जगाद ह ।
 यद्वै सहस्रसिंहानां भो श्वरेण महात्मना ।
 व्यपनीयं स्वकाददेहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहाः ॥२९५

मन्दिर आदि के प्रकाश वाले—बल के द्वारा अमित भोज से मुक्त—हार,
 पुष्प और चन्द्रमा के तुल्य वर्ण वाले—विद्युत् के घन निनाद से समन्वित—
 मणि की धारण करने वाले—मेघ के समान बस्त्रों वाले—श्री भ्रम से अकित
 से मुक्त तथा अङ्गुली मुक्त भूल हाथ में रखने वाले दिनाग्र और देवों के
 से उत्तमता युक्तों के मध्यमें उस देव के मुख्य प्रासाद के उत्तम शोभा वाले
 हैं ॥२८८-२८९-२९०॥ उन स्तम्भों में सयत अग्निमयी शृङ्खलाओं से
 ह २ मायव माया से सहस्र सिंह हैं जो कि वहाँ पर मुख पूर्वक निवास करते
 २९१॥ भगवान् प्रयम्बक ने निवेदन में वे स्तम्भ में भी आसृता पड़ हैं ।
 ॥ अन्तर वायुदेव के इस वाक्य का भली भाँति समझकर सृष्टि करके

मुक्तिमग्न होने हुए ऋषियो न जोकि नैमिषाण्य म रहा करत ये भीर तपस्वयो
करने वाले थे वायुदेव ने कहा—॥२६२॥ हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण प्राणियों
के भी प्राण स्वरूप है—सर्वत्र गमन करने वाले हैं तथा प्रभु हैं । यह कृपा कर
हमको यनाइये कि ये मिह महाभुन कोन हैं और ये कहां समुत्पन्न हुए हैं और
उनका क्या स्वरूप है ? ॥२६३॥ ये सिंह किम अपराध से भूयो के प्रभविष्णु
अर्थात् समुत्पन्न करने वाले समर्थ स्वामी ने अग्निमय पाशों में पृथक् पृथक् उन्हें
संरुद्ध कर रक्खा था ? ॥२६४॥ उन तापस ऋषियो के इस वचन का ध्वण
कर वायुदेव यह वाक्य कहा था । महान् आत्मा वाले ईश्वर न अपन देह से
अतीत (अलग) करके उन्हें जो रक्ता था वे कोंप हैं और उनका मिश्र
सिंह का है अर्थात् ये मिह के लीर को धारण करने वाले हैं ॥२६५॥

भूतानामभय दत्त्वा पुरा वद्धाग्निवन्धने ।

यज्ञभागनिमित्त च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥२६६॥

तेषां विधानमुक्तेन सिंहैर्नैवेन लीलया ।

द्व्या मग्न्यु वृत्तं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥२६७॥

निमृता च महाद्व्या महापाली महेश्वरी ।

आत्मनः कर्मसाक्षिण्या भूतं सादं तदानुगं ॥२६८॥

स एष भगवान्त्रोघो रक्षावासकृतालयः ।

वीरभद्रोऽमयात्मा द्व्या मग्न्युप्रमाज्जन ॥२६९॥

तस्य वेदम सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमस्य वै ।

पतिवेगस्त्वनीषम्यो मया च परिकीर्तित ॥२७०॥

अतः परं प्रख्यामि ये तत्र प्रणि वामिन ।

गम्ये पुरथरश्रेष्ठे तस्मिन्बेहायभूमिषु ॥२७१॥

नानारत्नत्रिचिह्नेषु पनावावटूलेषु च ।

सर्ववामगमृद्धेषु वनोपवनगोनिषु ॥२७२॥

राजतपु महा-तपु दातृमीम्भमयषु च ।

सन्ध्याभ्रगन्धिराजपु वनामप्रनिमेषु च ॥२७३॥

चुक्रमुष्टं पयं श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विन ।

आपन्नसंशयाश्चेम वाक्यमूचुः समीरणम् ॥३०६॥

शब्दादि इष्ट भागो व द्वारा जो भगवान् भव के अनुसरण करने वाले हैं वे सुन्दर व्रत वाले उन प्रसादो मे परम श्रेष्ठो मे आनन्द विहार किया करते हैं ॥३०४॥ वहाँ पर अविरत रूप से ब्रह्मघोष अर्थात् वेदध्वनि हुआ करती है और निरन्तर विविध प्रकार की परम शुभ वषावें हाती रहा करती हैं । सर्वदा गीत तथा वादियों के वहाँ पर घोष हुआ करते हैं और चारो ओर बहुत से सस्तबन सुनाई देते हैं ॥३०५॥ ये सब सहज रहते हैं तथा अनुल होते हैं और नाना आश्रमो मे किय जाया करते हैं । उन प्रसादो के ऊपर के भाग मे इसी प्रकार के अनेक आनन्द प्रद प्रमोदोत्सव होते रहा करते हैं ॥३०६॥ यह प्रसाद सहस्र पाद है और सुवर्ण के सदृश परम शुभ एव सुन्दर है । अनुपम जो श्रेष्ठ तम रत्न हैं उनसे यह सभी ओर से परिभूषित है ॥३०७॥ इस प्रसाद मे स्फटिक मणियाँ जटित हैं जोकि चन्द्रमा के तुल्य दीदीप्यमान एव मनोरम हैं । बह्वर्ण मणियों के समान प्रभा वाली मणियो से यह सुभूषित है । अग्नि के तुल्य प्रभा से परिपूर्ण सुवर्ण से तथा बालमूर्य की प्रभा से पूर्ण मणियों के द्वारा यह समलकृत है ॥३०८॥ नैमिषारण्य निवासी तपश्चर्या करने वाले समस्त श्रृंगिण इसका भक्षण करके बहुत ही हैरान होगये थे । उनके हृदय मे बड़ा भारी संशय समुत्पन्न होगया था । उन्होने उन वायुदेव से यह वचन कहा था ॥३०९॥

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्थानुमारिण ।

अनुग्राह्यतमाः सम्यक् प्रमोदन्ते पुरोत्तमे ।

श्रुत्वा वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥३१०॥

श्रुयता देवदेवस्य भक्तिर्यैरनुलपिता ।

ह्रीमन्तः सृजिता दान्ताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपा ॥३११॥

मध्याहाराश्च मात्राश्च ह्यात्मारामा जितेन्द्रिया ।

जितद्वन्द्वा महात्साहाः सौम्या विग्नमत्सरा ॥३१२॥

भावस्या मर्व्वभूतानामव्यापारा अनाकुला ।

कर्मणा मनसा वाचा विमुद्धेनान्तरात्मना ।

अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ॥३१३॥

तैर्लब्ध रुद्रसालोक्य साश्वत पदमव्ययम् ।

भवस्य रूपसादृश्य नीताश्चैव ह्यनुत्तमम् ॥३१४॥

श्रुपियो ने कहा—हे भगवन् ! कृपा करके हमें यह बताइये कि वहाँ पर वे तीन से महात्मा लोग थे जो भगवान् भव के अनुसरण करने वाले थे । जोकि परम अनुप्राण थे अर्थात् भव के अनुग्रह के पात्र हुए थे और अति श्रेष्ठ पुर में मानन्द-विनोद किया करते हैं । श्रुपियण के इस वचन का श्रवण करके वायु-देव ने यह वाक्य कहा था ॥३१०॥ वायुदेव ने कहा—हे श्रुपियण ! अब आप मुझमें सुनिये, देवों के देव की जिन्होंने भक्ति अनुकूलित की थी । वे सजायुक्त थे—पूजित-दमनशील-दूरवीरता से समन्वित और अलोलुप थे ॥३११॥ ये लोग मध्य साहार करने वाले—मायात्मक—आत्मा में ही रमण करने वाले और इन्द्रियों की जीतने वाले थे । धीतोष्णादि द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त करने वाले—महान् उत्साह से पूर्ण—परम सौम्य स्वरूप वाले तथा मात्सर्य में विस्तुल रहित रहने वाले थे । ॥३१२॥ समस्त धर्मों के भावनाओं में स्थित रहने वाले थे । ये व्यापार से धूम्य तथा आकुलता से रहित थे । कर्म के द्वारा-मन से और वचन के द्वारा तथा वचन में विमुद्ध अन्तरात्मा के द्वारा अनन्य मन वाले होकर भगवान् महेश्वर की शरणागति में प्राप्त होने वाले थे ॥३१३॥ उन्होंने भगवान् रुद्र का सालोक्य प्राप्त किया है जोकि साश्वत अनन्य पद है और वे सब सर्वोत्तम भगवान् भव के रूप की सहस्रता की भी प्राप्त हुए हैं अर्थात् उन सब का स्वरूप शिव के ही सहस्र हो गया है ॥३१४॥

गैश्चानरमुखाः सर्वे विश्वरूपा. कपदिन ।

नीतकण्ठा मितग्रीवास्तीक्ष्णदष्टास्त्रिलोचना ॥३१५॥

मर्द्धं बुन्द्रकृतोष्णोपा जटामुकुटपारिण. ।

सर्वे दशभुजा वीरा पद्मान्तर सुगन्धिनः ॥३१६॥

तरणादित्यसङ्क्रामा सर्वे ते पीतवाससः ।

पिनाकपाणय सर्वे श्वेतगोदृषवाहना. ॥३१७॥

श्रियान्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः ।

तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥३१८॥

विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवाजिता ।

क्रीडन्ते विविधैर्भविर्मोगान् प्राप्य सुदुर्लभान् ॥३१९॥

सब के सब ये वैश्वानर के मुक्त दाते हैं और विश्वरूप—बर्षा—मीन—
बल्लभ दाते—स्वेत श्रीवा से युक्त—तीक्ष्ण दाढ़ी दाते तथा तीन नेत्रों दाते हैं
॥३१८॥ सभीके मस्तक पर आधे चन्द्रमा से उष्णीष बना हुआ है और जटा तथा
मस्तक पर मुकुट शिव के ही समान धारण करने वाले हैं ; सभी के दस भुजाएँ
हैं—सब महान् वीर हैं और पचान्त की सुगन्ध वाले हैं ॥३१९॥ ये सब भग-
वान् भव के सांख्यिक को प्राप्त होने वाले अतः तत्त्व मूर्त्य के समान तेज से
युक्त हैं और सबने पीतपर्णों के वस्त्र धारण कर रखे हैं । उन सब के हाथों में
भगवान् भव की ही भाँति पिनाक धनुष लगा हुआ है । सबके पाहन भी गोवृष
होते हैं ॥३१७॥ सब थी में समन्वित होने हैं और सभी ने बानों में बुरहल
धारण कर रखे हैं । उन सब अत्तों में मोनियों के हार धारण कर अपने भाग
को विभूषित बना रक्खा है । ये सब देवों से भी अधिक तेज वाले हैं । गमस्त
भक्त जो वहाँ निवास करते हैं सर्वत्र एक सर्वदर्शी होते हैं । अर्थात् सभी कुछ
भुग—भविष्य वर्तमान के जानने वाले और सब कुछ को प्रत्यक्ष की भाँति देखने
वाले हैं ॥३१८॥ ये सब अपनी आत्मा को अनेक प्रकार से विभक्त करके लम्पित
रहा करते हैं और कृपता तथा मृत्यु से रहित होते हैं । ये विविध प्रकार के
भावों के द्वारा प्रीति किया करते हैं और परम सुदुर्लभ योगों को प्राप्त करते
हैं ॥३१९॥

स्वच्छन्दगतयः मिष्टा मिदुर्गन्धान्यविवोषिताः ।

एवाश्वानां रज्जाणां कोट्योऽनेन महात्मनाम् ॥३२०॥

एभिः सप्त महात्मा हि देवदेवो महेश्वरः ।

भक्तानुत्थी भगवान्मोदते पार्श्वतोऽग्रियः ॥३२१॥

नाहन्तेवान्नु रज्जाणां भवस्य च महाग्मनः ।

नानारश्मनुपश्यामि गगनेनदृश्वामि यः ॥३२२॥

मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वरोऽप्युत ।
 अथ ते श्रुत्वा सर्वे दिवाकरसमप्रभा ।
 श्रुत्वेमा परमा पुण्या कथा त्रैयम्बकी तत ॥३२३॥
 भृशञ्चानुग्रहं प्राप्य हर्षं चैवाप्यनुत्तमम् ।
 सम्भाषयित्वा चाप्येना वायुमुचुर्महाबलम् ॥३२४॥
 समीरणं महाभाग ह्यस्माकं च त्वया विभो ।
 ईश्वरस्योत्तम पुण्यमष्टमन्त्वौपसगिकम् ॥३२५॥
 तस्य स्थानं प्रमाणञ्च यथावत्परिकीर्तितम् ।
 यो गन्धेन समृद्धं वै परमं परमात्मन ॥३२६॥
 महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि ।
 स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामिताजस ॥३२७॥

स्थान-६ गीत वाले भिन्न और अन्य भिन्न के द्वारा विशेष रूप से
 बोधित किये हुए हैं । अनेक महात्माओं एकादश जनों की कीर्तियाँ हैं ॥३२०॥
 इनके साथ महात्मा देवों के देव महेश्वर जो भक्तों पर दया करने वाले पार्वती
 के प्यारे भगवान् प्रमन्न होते हैं । ६११॥ मैं तो उन दूनों का महात्मा मन का
 नाता-बे-देखना हूँ यह मैं आपसे विलकुल सत्य कहता हूँ ॥३२२॥ मातरिश्वा
 अर्थात् वायुदेव ने दश पुरुष कथा को कहा था और ईश्वर ने कहा था । इसके
 अनन्तर दिवाकर के समान प्रभा वाले वे श्रुतिगण सब इस परम पुण्य कथा
 को जो कि त्रैयाम्बिकी है, सुनकर और बहुत ही अनुग्रह प्राप्त करके तथा
 अनुभूत हर्ष प्राप्त करके और इसका बहुत आदर करके महान् श्रमशान् वायु
 से बोले ॥३२३-३२४॥ श्रुतियों ने कहा—हे समीरण ! हे महाभाग ! हे
 विभो ! आपने हमको ईश्वर का उत्तम अष्टम औपमविक उनके स्थान को और
 प्रमाण को यथावत् बतलाया है । जो परमात्मा के गन्ध से परम समृद्ध
 है ॥३२५-३२६॥ महादेव का माहात्म्य देवों के द्वारा भी दुर्विज्ञेय है अर्थात्
 धर्मित भोज वाले महस्र का अपने माहात्म्य के योग से सुरों के द्वारा भी
 चटिना से जानने के योग्य हैं ॥३२७॥

यस्य भक्तप्लवसमोहा हानुक्म्पार्थमेव च ।
 ग्राह्यालक्ष्म्या स्वयं जुष्टा या साप्रतिमशालिनी ॥३२८॥
 ज्योत्स्नया व्याप्य खं चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपधृक् ।
 विभूतिर्भाजतेऽन्यथं देवदेवस्य वेश्मनि ॥३२९॥
 महादेवस्य तुल्यानां रद्रागान्नु महात्मनाम् ।
 तत्सर्वं निखिलेनैव वक्त्रादमृतनिम्बवम् ॥३३०॥
 अपोत्वा सन्तु सर्वस्य भवत्यास्माभिस्तु मुवता ।
 नास्ति किञ्चिद्विज्ञेयमग्यच्चैवानुगामिन ।
 प्रदत्तं देववरं प्राणं यथावद्वचनुमहंसि ॥३३१॥
 स सन्त्वाच भगवान्किं भूयो वक्तव्याम्यहम् ।
 किं मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि मुवता ॥३३२॥
 आदित्या पारिषाभ्यो सिंहा वं क्रोधविक्रमा ।
 वैश्वानरा भूतगणा ज्याघ्राभ्रवानुगामिन ॥३३३॥
 आभूतसम्पत्ते घोरे सर्वप्राण भृता क्षये ।
 विमवस्या भवन्त्येते तजो ब्रूहि यथार्थवत् ॥३३४॥

अनुष्णा के लिए ही विमव मत्तो मे समोह का भभाव होना है ।

श्री बाह्यालक्ष्मी के द्वारा स्वयं सेविन है वह अप्रतिमशालिनी होनी है ॥३२८॥
 ज्योत्स्ना मे आकाश को व्याप्त करके चन्द्र मे विन्यस्त विरव के रूप की धारण
 करने वाली विभूति देवो व देव के घर मे बहुत ही अधिक आक्रमान
 है ॥३२९॥ महात्मा ग्नों के तुल्य महादेव का वह सब निमित्त के द्वारा वक्त्र
 से अमृत का निम्ब है ॥३३०॥ हय भक्ति मे सब का पात्र न करन गुदर
 प्रन पाते है । अनुगमन करने वाले का अन्य कुछ भी न जानने के योग्य नहीं
 है । हे देववर । हे प्राण । इन प्रदत्त की यथावत् भाव बोधने के योग्य हैं ॥३३१॥
 श्री भूतगो ने कहा—वह भगवान् जाने कि कब घाते फिर मैं क्या व्यवहार
 करूँ ? घोर मुझे क्या कहना चाहिए । हे मुवता जानो यह कहूँगा ॥३३२॥
 आदित्यो ने कहा—आदित्य-ज्याघ्राभ्र-वैश्वानर-भूतगण-घोर आभूत सम्पत्ति मे समस्त प्राणियों के

क्षय हो जाने पर ये मृष्ट किम अवस्था वाले होते हैं इसे आप गद्यार्थवत् हमको
बोर्ने ॥३३३-३३४॥

एते पे वै स्वया प्रोक्ता सिंहव्याघ्रगणौ सह ।

ये चान्ये सिद्धिमग्राप्ता मातरिश्वा जगाद ह ॥३३५

इदञ्च परम नत्त्व समाख्यास्यामि शृण्वताम् ।

विजातेश्वरसद्भावमव्यक्त प्रभव तथा ॥३३६

तत्र पूर्णगतास्तेषु कुमारा ब्रह्मण मुता ।

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातन ॥३३७

बौदुश्च कपिलस्तेषामामुनिश्च महायज्ञा ।

मुनि पञ्चसिन्धुश्च न ये चान्येऽप्येवमादय ॥३३८

तत काले व्यतिक्रान्ते कल्पाना पर्यये गते ।

महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रस्युपस्थिते ॥३३९

अनेकरद्रकोट्यम्तु या प्रसन्ना महेश्वरी ।

शब्दादीन्निपयान्भोगान्सत्यस्याष्टविधमयात् (?) ॥३४०

प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा ।

बोहायपदमव्यग्र भूतानामनुकम्पया ॥३४१

तत्र यान्ति महारमान परमाणु महेश्वरम् ।

तरन्ति मुमहावर्त्ता जग्ममृत्युदवा नदीम् ॥३४२

तत पश्यन्ति सर्वाणि पर ब्रह्माणमेव च ।

देव्या ने सहिता सप्त या देव्यः परिकीर्त्तिता ॥३४३

यत्तत्तमह्य सिद्धानामादित्याना तथैव च ।

गोखानरभूतभग्यव्याघ्राश्च वानुगामिन ॥३४४

ये सब आपन निह व्याघ्र गणा के साथ बतय हैं और जो अत्य सिद्धि

को मग्राप्त होने वाले हैं बाबुदेव ने जिनको कहा था । इन परम तत्त्व को

कहेगा, आप भुजिये । विज्ञान ईश्वर सद्भाव और अव्यक्त प्रभाव को भी

कहेगा ॥३३५-३३६॥ ब्रह्म पर उनमें ब्रह्म के पुत्र कुमार पूर्वगन हैं जो सनक-

सनन्द और तृतीय सनातन हैं ॥३३७॥ उनमें बौदु-कपिल और महान् पक्ष

वाला आसुरि और पञ्चशिख मुनि और जो अन्य इसी प्रकार के हैं ॥३३८॥
 इसके पदवात् काल के व्यतिक्रान्त होने पर तथा कल्पो के पर्यय के गत होने
 पर महाभूतो के विनाश हो जाने पर तथा प्रलय के प्रत्युपस्थित होने पर अनेक
 मन्त्रों की कीटियाँ और प्रमन्न महेश्वरी शब्दादि विषयों को तथा भोगों को
 सत्य के अष्टविधमय से ज्ञान से युक्त तज के द्वारा समस्त भूतों में प्रवेश करके
 प्राणियों पर अनुकम्पा करने से अव्यय वैहायस पद को प्राप्त होते
 हैं ॥३३९-३४०॥ वहाँ पर महान् आत्मा ब्रह्म परमाणु महेश्वर में चले जाते
 हैं और महान् आवतों वाली तथा जन्म और मौत के जल वाली नदी को पार
 किया करते हैं ॥३४१॥ हमके अनन्तर वहाँ महादेव को तथा परब्रह्म का
 दर्शन किया करते हैं । देवी के साथ सात को देखते हैं जो देवियाँ कीर्त्ति
 की गई हैं । जो वह तिहो तथा आदिस्थों का सत्त्व हैं तथा अनुगमन करने
 वाले देववानर-भूत भव्य व्याघ्र हैं उनको भी देखते हैं ॥३४२-३४३-३४४॥

प्रकरण ६४—प्रलयादि पुनः सृष्टि वर्णन

प्रत्याहार प्रवक्ष्यासि परस्यान्ते स्वयम्भुव ।
 ब्रह्मण स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिन्स्तदा प्रभो ॥१॥
 यथेदं भ्रुस्तेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ।
 अव्याक्तान्प्रसृते व्यक्ते प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ॥२॥
 पर तदनुकल्पानामपूर्णं कल्पसङ्क्षये ।
 उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु वस्यचित् ॥३॥
 ग्रन्ते द्रुमस्य सम्प्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ।
 ग्रन्ते बलियुगे तस्मिन्क्षीणे सहार उच्यते ॥४॥
 सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ।
 प्रत्याहारे तदा तस्मिन् भूततन्मात्रसक्षये ॥५॥

महदादेविकारस्य विघेपान्तस्य सधये ।
 स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥६॥
 आपो यसन्ति वै पूर्व भूमेर्गन्धात्मक गुणम् ।
 आप्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ।
 प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्या घरा भवेत् ॥७॥
 आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्थना ।
 सर्वमापूरयित्वेद तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥८॥

श्री भूतजी ने कहा—मग मैं पर स्वयम्भू के अन्त में जो प्रयाहार हो ॥ है उसको बतलाऊंगा । उस स्थिति काल के क्षीण हो जाने पर जो उस समय में प्रभु ब्रह्मा का हुक्म करता है ॥१॥ त्रिम प्रकार से ईश्वर इस अध्यात्म—सुसूक्ष्म विश्व को रचा करता है वही प्रभु प्रयाहार के समय में यह व्यक्त पूर्ण रूप में व्यक्तों को सम लिया करता है ॥२॥ किन्तु उसके अन्त-काली का अपूर्ण सञ्चय होने पर कभी के अप्रत्यक्ष महाघोर के उपस्थित होने पर अन्त में उस समय अनु के पश्चिम हुम के सम्प्राप्त होने पर अन्त में उस क्षणिक के क्षीण हो जाने में समय में सञ्चय कहा गया है ॥३-४॥ उस समय में सम्प्रधान के होने पर प्रयाहार के उपस्थित हो जाने पर उस समय में उस भूतगन्धाधी के समय आने प्रयाहार में महद् आदि विकार के विघेपान्त के सधय होने पर और स्वभाव कारित उस प्रतिसञ्चार के प्रवृत्त होने पर सर्व प्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाके गुण की प्रसता है । फिर वह प्राप्त गन्धशाली भूमि प्रनष्ट होने के लिए कल्पित होती है । गन्ध तन्मात्र के प्रविष्ट हो जाने पर यह भूमि जल की अवस्था में हो जाया करती है । ॥५-६॥ उस समय में प्रनष्ट जल वेग वाला और महान् घट्टे वाला इस सबको आपूरित कर स्थिर रहता है और विचरण किया करता है ॥८॥

अपामस्ति गुणोयस्तु ज्योतिषे लोयते रम ।
 नश्यन्त्यापस्तदान्ते च रसतन्मात्रमङ्गयात् ॥९॥
 तेजसा सहतरमा ज्योतिष्प्र प्राप्नुवन्त्युन ।
 अस्ते च मन्ति तेज सञ्चतोमुगमोद्यने ॥१०॥

अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलन्तदा ।
 सर्वमापूर्य्यतेऽर्चिभिस्तदा जगदिदं शनं ॥११॥
 अर्चिभिः सन्तते तस्मिंस्तिर्यग्गुदध्वंमघस्तत ।
 ज्योतिषोऽपि गुण रूप वायुरन्ति प्रकाशकम् ।
 प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपाचिरिव माहते ॥१२॥
 प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतस्पो विभावसु ।
 उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥१३॥
 निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि ।
 ततस्तु मूलमासाद्य वायु सम्भवमात्मन ॥१४॥
 ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ।
 वायोरपि गुण स्पर्शमाकाश भ्रसतं च तत् ॥१५॥
 प्रशाम्यति तदा वायु खन्तु तिष्ठत्यनावृतम् ।
 अरुणमरसस्पर्शमगन्ध न च भूतिमत् ॥१६॥

जलो के अन्दर जो गुण होना है वह रस तेज में लीन होजाया करता है । सध धान में रस सम्प्राप्त होने से जल नष्ट हो जाया करते हैं ॥१६॥ तेज के द्वारा सहरण जाने जल तेज के स्वरूप को ही प्राप्त कर लिया करते हैं । सलिल के भ्रन हो जाने पर सभी ओर तेज ही फैललाई दिया करता है ॥१०॥ इसके पश्चात् सभी ओर व्याप्त तेज स्वरूप अग्नि उस जल को उस समय ग्रहण कर लेता है । धीरे धीरे यह समस्त जगत् सब भवियों से पूरित हो जाता है ॥११॥ तब ऊपर-नीचे और इधर-उधर भवियों फैल जाने पर ज्योति का जो प्रकाश रूपी गुण है उसे वायु खा जाता है और वह प्रलीन हो जाता है जैसे वायु ऊँ ओंके में दिये की सी नष्ट हो जाया है ॥१२॥ रूप तन्मात्रा के प्रनष्ट हो जाने के बाद बिना वस्तु नष्ट वाला हो जाया करता है । तेज वायु के द्वारा उपशान्त होता है तथा वायु श्रुव बढ़ा करती है ॥१३॥ तेज के वायु स्वरूप हो जाने पर यह समस्त लोक प्रकाशहीन निरालोक हो जाया करता है । इसके पश्चात् यह वायु भी अपने उत्पत्ति स्थान धूम को प्राप्त होकर ऊपर नीचे और निरुद्धा दश दिशाओं

को कम्पित किया करता है । उस वायु का जो स्पर्श गुण है उसे आकाश
अस लिया करता है ॥१४-१५॥ तब यह प्रदामित हो जाता है और अनावृत
आकाश में रहा करता है । रूप-रस स्पर्श और गन्ध तथा मूर्ति से रहित
होता है ॥१६॥

सर्वमापूरयन्नादौ सुमहत्तत्प्रकाशते ।

परिमण्डनस्तत्सुषिरमाकाश शब्दलक्षणम् ॥१७॥

शब्दमात्र तदाकाश सर्वमावृष्य तिष्ठति ।

तन्तु शब्दगुणान्तस्य भूतादि असते पुनः ॥१८॥

भूतेन्द्रियेषु युगपद् भूतादौ अस्थितेषु वै ।

अभिमानात्मको ह्येष भूतादिग्न्यामस रगृत ॥१९॥

भूतादि असते चापि महान्वै बुद्धिलक्षण ।

महानात्मा तु विज्ञेय सक्त्पो ध्यवसायक ॥२०॥

बुद्धिमन्त्रश्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च ।

पर्यायवाचकै शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिन्तका ॥२१॥

सम्प्रलीनेष भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये ।

स्यात्मन्येव स्थित चैव कारण लावकारणे ॥२२॥

विनिवृत्त तदा सर्वे प्रकृत्यावस्थितेन वै ।

तदाद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च वस्त्वचिन् ॥२३॥

अनाख्यानादबोधत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामाप ।

मागतागतिकत्वाच्च ग्रहण तत्र विद्यते ॥२४॥

भावग्रह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते ।

स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मिके ॥२५॥

अनिर्देश्या प्रभृतिर्वै स्वात्मिका कारणे न तु ।

एव समादयोऽभ्यस्तात्प्रमात्प्रवृत्तयस्तु वै ॥२६॥

सबको नादों के द्वारा आपूर्णित कर वह गुणह्य प्रामाणित होता है ।

परिमण्डन सुषिर आकाश का शब्द गुण ही लक्षण अर्थात् स्वरूप होता है ॥१७॥

उस समय शब्द मात्र वह आकाश सबको आवृत करके स्थित रहा करता है ।

उसके उम शब्द गुण को भूतादि ग्रम लेते हैं ॥१८॥ भूतेन्द्रियो के एक साथ भूतादि में संस्थित होने पर अभिमानात्मक यह भूतादि तामस कहा गया है ॥१९॥ और बुद्धि लक्षण वाला महान् भूतादि को भी ग्रम लेता है । महान् स्वरूप वाला व्यावसायिक सद्धुत्प जानना चाहिए ॥२०॥ तत्त्व के चिन्तक लोग बुद्धि-मन-निष्क-महान् और अक्षर इन पर्याय वाचक शब्दों में उसको कहते हैं ॥२१॥ तमोमय गुणों के साम्य में भूतों के सम्प्रचीन होने पर और लोगों के कारण को अपनी आत्मा में ही स्थित होने पर उम ममय म सर्ग के विषय रूप में निवृत्त हो जाने पर प्रकृति से अवस्थित होने में किसी के आघन्त परोक्ष होने के कारण में-और अदृष्ट होने से-अनाद्यान होने से-अबोध होने से तथा ज्ञानियों को भी अज्ञान से एक अनागतिक होने से वह ग्रहण नहीं होता है ॥२२ २३ २४॥ और भाव ग्राह्य अनुमान से यह सोचकर कहा जाता है । उम निश्चय सद् और असन् स्वरूप वाले कारण के स्थित होने पर कारण में निश्चय ही स्वात्मिक प्रवृत्ति अनिर्हेय होती है । इस प्रकार से अम्यस्व क्रम से सप्तादि प्रकृतियाँ होती हैं ॥२५ २६॥

प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशयन्ति परस्परम् ।
येनेदमावृत सर्वं मण्डलं तु प्रलीयते ॥२७॥
सप्तद्वीपममुद्रान्त सप्तलोक सपर्वतम् ।
उदकाधरणं यच्च ज्योतिषा लीयते तु तत् ॥२८॥
यत्तज्जलं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत् ।
यद्वायव्यं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत् ॥२९॥
आकाशावरणं यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत् ।
भूतादिं ग्रसते चापि महान्वं बुद्धिं लक्षणं ॥३०॥
महान्तं ग्रसतेऽप्युक्तं गुणसाम्यं तत् परम् ।
एतौ सहारविस्तागे ब्रह्माव्यक्ता तत् पुनः ॥३१॥
मृजते ग्रसते चैव विचारान्सर्गसमये ।
सहारकार्यकारणा ससिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ॥३२॥

यस्मात्प्रतिशरीरं हि मुमुक्षुर्गोपयन्निद्रा ।
 तस्मात्पुरपन्नानात्म विज्ञय तु विजानता ॥३८॥
 यदा प्रवृत्तते चैवा भेदाना चैव समयमा ।
 स्वभावकारिताः सर्वे बाधेन महता तदा ॥३९॥
 निवृत्तंते तदा तस्य स्थितिराग स्वयम्भुवः ।
 सहसा योज्यते सर्वो ब्रह्मलोक निवासिभिः ॥४०॥
 विनिवृत्ते तदा रागे स्थितावात्मनिवासिनाम् ।
 तत्फलवाशिना तेषां तदा तद्गोपदशिनाम् ॥४१॥
 उत्पद्यतेऽथ शीराम्यमात्मवाद प्रणयनम् ।
 भोष्यमोन्मृदवनानात्वे तेषां तद्भ्रवर्दशिनाम् ॥४२॥
 पृथग्ज्ञानेन दोषज्ञास्ततस्ते प्रह्वलोकिना ।
 प्रवृत्ती करणा नीताः सर्वे नानाप्रवर्शिना ॥४३॥
 स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते प्रदान्ता दर्शनात्मका ।
 शुद्धा निरञ्जना सर्वे चेतनाचेतनास्तथा ॥४४॥
 सर्वत्र परिनिर्वाणा स्मृता नागामिनस्तु ते ।
 निर्गुणत्वा निरात्माना प्रवृत्त्यन्ते व्यतिष्ठन्मात् ॥४५॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का विषयविषयत्व कहा गया है । ब्रह्मा
 विषय तो जानना चाहिए और क्षेत्र अधिकार कहा जाता है ॥३६॥ क्षेत्रज्ञ से
 अभिष्टित क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के लिए ही होता है । शरीरों के बहुत अधिक होने के
 कारण से यह शरीरों भी बहुत प्रकार का कहा जाता है ॥३७॥ और अभ्यूत
 वाङ्मय ने ही योनिर्वत् अवस्थित होता है । इससे प्रत्येक शरीर सुख और दुःख
 को उपलब्ध करने वाला होता है । इस कारण से विज्ञान रखने वाले को
 पुण्यो का नाश होना जानना चाहिए ॥३८॥ जिस समय में इन भेदों के समय
 प्रवृत्त होते हैं उस समय में महान् बाल से सब स्वभावकारी होते हैं ॥३९॥
 तब जब स्वयम्भू का स्थिति राग निवृत्त हो जाता है और समस्त ब्रह्मलोक के
 निवासी योज्यको के साथ सहज ही निवृत्ति होती है ॥४०॥ उस काल में वाप
 करने वाले आत्म निवासी और उभय दोषों को देखने वाले उनका उभ

समय में स्थिति में राग के विनिवृत्त हो जाने पर आत्मवाद का प्रकाश करने वाला भोक्ता और भोग्य के अनेक प्रकार होने में तद्रूप को देखने वाले उनका वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥४१-४२॥ पृथक् ज्ञान से इसके पश्चात् नाना प्रदर्शी वे समस्त ब्रह्म लौकिक प्रकृति में करण नीत हुए ॥४३॥ परम प्रदान्ता शुद्ध वर्णात्मक-निरञ्जन तथा चेतन और अचेतन स्वरूप वाले अपनी आत्मा में ही अवस्थित होते हैं ॥४४॥ यहाँ पर ही परिनिर्वाण निर्गुण होने से निरात्मा और प्रकृति के अन्त में व्यक्ति क्रम से वे आगामी नहीं बहे गये हैं ॥४५॥

इत्येष प्राकृत प्रोक्त प्रतिसर्ग स्वयम्भुव ।
 भिद्यते सर्वभूताना करणानि प्रसयमे ॥४६॥
 इत्येष सयमश्चैव तत्त्वाना करणं सह ।
 तत्त्वप्रसयमो ह्येष स्मृता ह्यवत्तं को द्विजा ॥४७॥
 धर्माधर्मो तपो ज्ञान शुभे सत्यानृते तथा ।
 ऊर्ध्वं भावो ह्यधोभावो सुखदुःखे प्रियाप्रिये ॥४८॥
 सर्वमेतत्प्रयानस्य गुणमात्रात्मक स्मृतम् ।
 निरिन्द्रियाणा च तदा ज्ञानिना यच्छुभाशुभम् ॥४९॥
 प्रकृत्या चैव तत्सर्वं पुण्य पाप प्रतिष्ठित ।
 योन्ययस्या स्वभावे च देहिना तु निविष्यते ॥५०॥
 जन्तूना पाप्मुष्यन्तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ।
 अव्यक्तस्यानि तान्येव पुण्यपापानि जन्तव ।
 ये जयन्ति पुनर्देहे देहान्यात्वे तथैव च ॥५१॥
 धर्माधर्मो तु जन्तूना गुणमात्रात्मकानुभो ।
 करणं स्रं प्रचीरेते कायत्वेनेह जन्तुभि ॥५२॥
 मुच्येनना प्रलीयन्ते क्षेत्राधिष्ठिता गुणा ।
 मर्गे च प्रतिमर्गे च समारे चैव जन्तवः ।
 सगुण्यन्ते विगुण्यन्ते करणं मन्थरन्ति च ॥५३॥

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः ।

गुणमात्रा प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ॥५४॥

ऊर्ध्वं देवात्मक सत्त्वमधोभागात्मक तमः ।

तयोः प्रवर्तक मध्ये इहैवावर्तक रजः ॥५५॥

इस प्रकार से यह स्वयम्भू का प्राकृत प्रतिसर्ग कह दिया गया है । समस्त प्राणियों के प्रसवम में करण विद्यमान होने है ॥५६॥ हे द्विजवृन्द ! यह ही उत्तमो का करणों के साथ सयम है । और आनर्तक तत्त्व प्रसवम यही कहा गया है ॥५७॥ श्री सूतजी ने कहा—धर्म, अधर्म, तप-ज्ञान तथा शुभ सत्य और अनृत ऊर्ध्व भाव और अधोभाव—सुख तथा दुःख—प्रिय और अप्रिय यह सब प्रमाण किये हुए का गुणमात्रात्मक कहा गया है । और उस समय में बिना इन्द्रियों वाले ज्ञानियों का जो भी कुछ शुभ तथा अशुभ है वह भी गुण-मात्रात्मक होता है ॥५८-५९॥ वह सब प्रकृति में पुरुष और पाप प्रनिष्ठित होता है । और देहधारियों के स्वभाव में योग्यस्वा निषिक्त होती है ॥५०॥ जन्तुओं का पुरुष और पाप जो प्रकृति में प्रनिष्ठित है । जन्तुगण जो उन्हीं अव्यक्त में स्थित पुरुष और पापों को जीत लेते हैं जोकि पुनर्देह में तथा देशान्तर में होते हैं ॥५१॥ जन्तुओं के धर्म और अधर्म दोनों गुणमात्रात्मक होते हैं । यहाँ पर करणों के द्वारा जन्तुओं से धर्म के होने से मृत जागा करते हैं ॥५२॥ मुच्यन्त देशजो में स्थित गुण प्रलीन हो जाया करते हैं । धर्म में और प्रतिसर्ग में समार में जन्तुगण सशुक्त और विमुक्त होते हैं और करणों के साथ मध्यवर्ण किया करते हैं ॥५३॥ राजसी-तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ पुरुषों में अधिष्ठित गुणमात्रा तीन प्रकार में प्रवृत्त होती हैं ॥५४॥ ऊर्ध्व में देवात्मक सत्त्व है और अधोभागात्मक तम है । उन दोनों के मध्य में प्रवर्तक यहाँ पर ही आवर्तक रजोगुण होता है ॥५५॥

इत्येव परिवर्तन्ते त्रय श्रोतागुणात्मका ।

लोकेषु सर्वभूतानां तत्र कार्यं विजानता ॥५६॥

अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभन्तो हि मानव ।

एतास्तु गतयस्तिष्ठ शुभा पापात्मकाः स्मृताः ॥५७॥

तम साभिभवाज्जन्तुर्याथातम्य न विन्दति ।
 अतत्तद्दर्शनान्तरसोऽप्य निविध वध्यते तत ॥१८॥
 प्राकृतेन बन्धेन तथा वैकारिकेन च ।
 दक्षिणाभि स्तृतीयेन बद्धोऽप्यन्त विवर्त्तते ॥१९॥
 इत्येते धौ त्रयः प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुका ।
 अनित्ये नित्यसज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ॥२०॥
 अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ।
 येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ॥२१॥
 रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञान समुदाहृतम् ।
 अज्ञान तमसो भूत कर्मद्वयफल रज ।
 कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःख प्रवर्त्तते ॥२२॥
 श्रोत्रजा नेत्रजा चैव ध्वग्निह्लाघाणतस्तथा ।
 पुनर्भवकरी दुःखा कर्मणा जायते तु सा ॥२३॥

इस प्रकार से य तीन ओर गुणात्मक सोचो म समस्त प्राणियों के परिवर्त्तित होते हैं । इसको विदोष रूप से जानने वाले को नहीं करना चाहिए ॥१८॥ मानवो के द्वारा अविद्या प्रत्यय आरम्भ आरम्भ रिये जाया करते हैं । य तीन गतियाँ शुभ और पापार्थिका कही गई है ॥१९॥ तमोगुण से अभिभव होने से जन्तु पाथातम्य को प्राप्त नहीं होना है । इसके पदवान् वह जन्तु वर्गन के न होने म तीन प्रकार का बद्ध होना है ॥१८॥ प्राकृत बन्ध से तथा वैकारिक बन्ध से और तीसरे दक्षिणाभि से बद्ध हुआ अत्यन्त विवर्त्तित होता है ॥१९॥ ये तीनों बन्ध अज्ञान के हेतु वाले बहे गये हैं । अनित्य में नित्य होने की सज्ञा और दुःख में सुख का देखना यह मनोदोष है ॥२०॥ जो अपना नहीं है उस अस्व में अपना है ऐसा ज्ञान रखना तथा अशुचि में शुचि अर्थात् पवित्र होने का निश्चय कर लेना जिनके ये मनोदोष और विपर्यय से ज्ञान दाप होने हैं ॥२१॥ राग तथा द्वेष को निवृत्ति वह ज्ञान कहा गया है । अज्ञान तम का भूत होता है । कर्म द्वय का फल रज होना है । फिर कर्म से उत्पन्न होने वाला देह होना है और महा दुःख प्रवृत्त होना है ॥२२॥ श्राव ने जन्म लेने वाली—नेत्रो से

उत्पन्न होने वाली तथा त्वन्ना, जिह्वा और घ्राण अर्थात् नासिका से पुनर्जन्म करने वाली दुःख स्वस्था वह कर्मों की उत्पन्न होनी है ॥६३॥

सतृणोऽभिहितो बालः स्ववृत्तैः कर्मणः फलं ।

तैलपालीकबलीधस्तत्रैव परि वृत्तंते ॥६४॥

तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते ।

त शक्तमवधार्यैकं ज्ञाने यत्न समाचरेत् ॥६५॥

ज्ञानाद्विजयते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते ।

वीराग्याच्छुद्धयते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ॥६६॥

घत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि राग भूतापहारिणम् ।

अभिषङ्गाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवशात्मानं ॥६७॥

अनिष्टमभिषङ्गं हि प्रीतितापविपादनम् ।

दुःखलाभे न तापञ्च सुखानुस्मरणं तथा ॥६८॥

इत्येव धैर्यो राग सम्भूत्या कारणं स्मृतम् ।

ब्रह्मादी रथावरान्ते धै ससारे ह्याधिभौतिके ।

अज्ञानपूर्णां तस्मादज्ञानन्तु विवर्जयेत् ॥६९॥

यस्य चापं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च ।

वर्णाश्रमविरोधी यः शिष्टशास्त्रविरोधकः ॥७०॥

एष मार्गो हि निरधितिर्यग्योनी च कारणम् ।

तिर्यग्योनिगतश्चैव कारणं स निरुच्यते ॥७१॥

विविधा यातना स्थाने तिर्यग्योनी च पट्टिबधे ।

कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वंशः ॥७२॥

अनेश्वर्यन्तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् ।

इत्येवा तामसी वृत्तिभूतादीनां चतुर्विधा ॥७३॥

अपने क्रिये हुए कर्मों के फलों में बाल गतृण्य कहा गया है । तैल पालीकव् जीव बड़ा पर ही परिवर्तित होता है ॥६४॥ इगते अनर्थों का स्थूल अज्ञान ही उपदिष्ट होता है । उस एक को धक्का समझ कर ज्ञान में ध्यान करना चाहिए ॥६५॥ ज्ञान में सबकी विजय होती है और त्याग से बुद्धि विरजित ।

होती है तथा वराम्य से शुद्धि होनी है और जो शुद्ध होना है वह सत्त्व से मुक्ति प्राप्त किया करता है ॥६६॥ इससे आगे भूताप के हरण करने वाले राग को बतनाऊंगा । जो जिससे अवश्य आत्मा वाते का विषय अभिपन्न के लिये होता है ॥६७॥ अनिष्ट अभिपन्न निश्चय ही प्रीति ताप का विषाद करने वाला होता है । दुःख लाभ में ताप तथा सुखानुस्मरण नहीं होता है ॥६८॥ यह वैषय राग सम्भूति का कारण कहा गया है । ब्रह्मा से आदि में स्थावरो के अन्त में इन आधिभौतिक ससार में अज्ञान पूर्वक सब है इसलिये अज्ञान का त्याग करना ही चाहिए ॥६९॥ जिसके लिये ऋषियों के द्वारा कहा हुआ प्रमाण नहीं होता है अर्थात् कोई प्रमाण के रूप में नहीं माना जाता है और शिष्टाचार भी नहीं होता है । जो वलों और आश्रमों का विरोध करने वाला होता है तथा जो शिष्टों के निमित्त दास्यों का विरोध करने वाला होता है ॥७०॥ यह मार्ग निरधि और निर्वक् योनि में कारण बना करता है । वह तिर्यक् योनि गत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छे प्रकार के तिर्यक् योनिगत कारण कहा जाया करता है ॥७१॥ छे प्रकार के तिर्यक् योनि के स्थान में अनेक प्रकार की यातनाएं होती हैं । कारण और विषय में सब ओर से प्रतिघात होता है ॥७२॥ इन प्रकार से वह ममस्त अर्नश्चर्य प्रतिघात क स्वरूप वाला कहा गया है । यह प्राणियों की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है ॥७३॥

सत्त्वस्थमात्रक चित्त यथा सत्त्वप्रदर्शनात् ।

तत्त्वानाश्च तथा तत्त्व दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ॥७४॥

सत्त्वक्षेत्रज्ञानात्त्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् ।

नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद् योगमुच्यते ॥७५॥

तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ।

समारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गेन मुच्यते ॥७६॥

नि सम्बन्धो ह्यचेतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते ।

स्वात्मव्यवस्थितश्चापि विरूपाक्षेन लिख्यते ॥७७॥

इत्येतत्त्वक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः ।

स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शनि ॥ ७८॥

पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसक्षयात् ।

लिङ्गाभावात्तु कैवल्य कैवल्यात्तु निरञ्जनम् ॥७६॥

निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततो नेता न विद्यते ।

तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षकारणम् ॥७७॥

निमित्तमप्रतीघाते दृष्ट्यब्दादितक्षणे ।

अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥७८॥

केवल सत्त्व मे स्थित रहन वाला चित्त जिस प्रकार से सत्त्व से दर्शन से होना है उसी प्रकार से तत्त्व को देखकर तत्त्व दर्शन से तत्त्वों का होता है ॥७४॥ सत्त्व क्षेत्रज्ञो का नानात्व होता है और यह ज्ञानात् दर्शन है । नानात्व के दर्शन की ज्ञान करते हैं और उस ज्ञान से योग दर्शन होता है जोकि योग कहा जाता है ॥७५॥ उसमें जो बद्ध होता है उसका बन्धन होता है और जो उससे मुक्त होता है उसका मोक्ष हुआ करता है । तबहार के निर्विबुद्ध होने पर मुक्त निष्क से छुटकारा पा जाया करता है ॥७६॥ नि मन्बन्ध अर्थात् मन्बन्ध से रहित प्रचैतन्य अष्टमी आत्मा न ही अवस्थित हुआ करता है । और स्वात्म अवस्थित ही विरुप्रास्थ के द्वारा निष्ठा जाता है ॥७७॥ यह इतना ही सक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है । वह मोक्ष भी तत्त्वों के दखने वाले पुरुषों के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है ॥७८॥ प्रथम ज्ञान के माध्य वियोग है । दूसरा राग के सक्षय से होता है लिङ्ग के अभाव से कैवल्य होता है और कैवल्य से तो निरञ्जन होता है ॥७९॥ निरञ्जन होने से शुद्ध होता है फिर नेता नहीं होता है । तृष्णा के क्षय से तीव्र होता है जोकि मोक्ष का कारण व्याख्यात किया गया है ॥८०॥ दृष्ट शब्द आदि स्वरूप बाने प्रप्रनिधान मे निमित्त होता है । इसके आठ रूप होने हैं जोकि यथाक्रम प्राकृत होत हैं ॥८१॥

दोषज्जैववसज्जन्ते गुणमात्रात्मकानि तु ।

अत उद्ध्वं प्रवदयामि वंराम्य दोषदर्शनान् ॥८२॥

दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षण्ये ।

अप्रदोषोज्जमिष्वङ्ग वसंत्यो दोषदर्शनान् ॥८३॥

तापप्रीतिविपादाना वाय्वन्तु परिवर्जनम् ।
 एष वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥८४॥
 अनित्यमशिव दु खमिति बुद्धानुचिन्त्य च ।
 विशुद्ध कार्यंकरण सत्वाभ्येति तरान्तु य ॥८५॥
 परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति ।
 तत प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥८६॥
 ऊष्मा प्रकुपित काये तीव्रवायुसमीरित ।
 स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्कुरुद्वि वै ॥८७॥
 प्राणस्थानानि भिन्दन् हि छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च ।
 शैत्यात्प्रकुपितो वायुरुद्ध्वन्तु क्रमते तत ॥८८॥
 स चाय सर्वभूताना प्राणस्थानेष्ववस्थित ।
 समासात्संवृते ज्ञाने संवृतेषु च कर्मसु ॥८९॥
 स जीवोऽनम्यधिष्ठान कर्मभि स्वै पुरावृतं ।
 अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वै स विच्यावयते पुन ॥९०॥
 शरीरं प्रजहसो वै निरुच्छवासस्ततो भवेत् ।
 एव प्राणं परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥९१॥

गुणमात्रात्मक क्षेत्रज्ञो मे अब सज्जित होते हैं । अब इससे प्रागे दोष दर्शन से वैराग्य को बनलाऊंगा ॥८२॥ दिव्य और मानुष पञ्च लक्षण विषय मे दोष दर्शन से प्रद्वेष अनभिपङ्ग करना चाहिए ॥८३॥ ताप-प्रीति और विपादो का परिवर्जन करना चाहिए । इस प्रकार से वैराग्य मे प्रास्थित हाकर यह शरीर धारी निमग्न हो जाना है । अर्थात् इस गरीबी को समता मे रहित हो जाना चाहिए ॥८४॥ बुद्धि के द्वारा दु ख अनित्य अशिव है इस प्रकार से अनु चिन्तन करके जो विषुद्ध कार्य का करना है वह सत्त्व को प्राप्ति करना है ॥८५॥ फिर परिपक्व कषाय वाला होकर समस्त दोष को देख नता है । प्रयाण करने के समय मे निश्चय ही नैमित्तिक दोषो मे वाया मे प्रकुति उप्पा होने हुए तीव्र वायु स समीरित हा जाता है वह शरीर मे उपाश्रित हाकर समस्त दोषो को रुद्ध कर दता है ॥८६ ८७॥ प्राण के स्थानो को भेदन करता

हुआ और मर्मों को छेदन करता हुआ जाने चलकर सैत्य से प्रकुपित होने वाला वायु ऊर्ध्व भाग को फिर क्रान्त किया करता है ॥८८॥ और यह वह समस्त प्राणियों के प्राण स्थानों में अवस्थित रहा करता है । मत्स्य से ज्ञान के सबूत हो जाने पर और समस्त कर्मों के सबूत होने पर वह जीव पुरा कृत धर्मात् पहिले जन्म में किये हुए अपने कर्मों से अनभ्यधिष्ठान हो जाता है । फिर प्रष्टाङ्ग प्राण वृत्ति वाला वह विद्यावधित हो जाता है ॥८९-९०॥ शरीर को प्रकृष्टता से त्यागता हुआ वह फिर बिना उच्छ्वासो वाला होता है । इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होने वाला मृत इस नाम से कहा जाता है ॥९१॥

यथेह लोके खद्योत नीयमानमितस्तत ।

रञ्जन तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यते ॥९२॥

तृष्णाक्षयन्तृतीयस्तु व्याख्यात मोक्षलक्षणम् ।

शब्दाद्ये विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ॥९३॥

अप्रदोषोऽपि भिद्वद्ग्री प्रीतितापविवर्जनम् ।

वैराग्यकारण ह्येते प्रवृत्तीनां तस्य च ॥९४॥

अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेया पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ।

अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतान्ता प्रकृतेर्लयाः ॥९५॥

वर्णाश्रमाचारयुक्ता शिष्टा शास्त्राविरोधिनः ।

वर्णाश्रमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥९६॥

ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्मष्टौ स्थानानि देवता ।

ऐश्वर्यमणिमाद्य हि कारणं ह्यष्टमक्षणम् ॥९७॥

निमित्तमप्रतिघात इष्टे शब्दादिलक्षणे ।

अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥९८॥

जिम प्रकार से यहाँ लोच म इधर उधर से जाया गया लघोत (जुगुन) रञ्जन होता है और उसके बध होने पर नेता नेता नहीं रहता है ॥९२॥ तृष्णा का क्षय तीमरा मोक्ष का लक्षण व्याख्यात किया गया है । शब्दादि विषय में पञ्चलक्षणों वाला दोष विषय में अप्रदोष अजिभियद्ग्री प्रीति और ताप का विव-

जैन होना ये वैराग्य के कारण और प्रवृत्तियों के लय के कारण होते हैं ॥६१-६४॥ पूर्व में कर्मों की हुई छाठ प्रकृतियाँ क्रम के अनुसार जानलेनी चाहिये । अव्यक्त आदि प्रकृति लय भूतान्त होते हैं ॥६५॥ शिष्ट जो होते हैं वे वर्णों और आश्रमों के धर्मों से युक्त हुआ करते हैं तथा वे शास्त्रों के भी विरोध न करने वाले होते हैं । चार वर्णों और चारों आश्रमों का यह धर्म देवों के स्थानों में कारण होता है ॥६६॥ ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचों के अन्तर्गत् छाठ स्थान देवता होते हैं । ऐश्वर्य तथा अणिमा आदि अष्ट लक्षण वाला कारण होता है ॥६७॥ शब्दादि लक्षण दृष्ट में जो अप्रतिपाद्य होता है वह विनिर्मुक्त होता है । ये आठ यथाक्रम आठ प्राकृति रूप होते हैं ॥६८॥

क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गणमात्रात्मकानि तु ।
 प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ॥६९॥
 पश्यन्त्येवविध सिद्धा जीव दिव्येन चक्षुषा ।
 श्वाविती श्रानपानश्च योनी प्रविशतस्तथा ॥१००॥
 तिर्यग्गूढं मघस्ताच्च चावतोऽपि यथाक्रमम् ।
 जीवप्राणास्तथा लिङ्ग कारणश्च चतुष्टयम् ॥१०१॥
 पर्यायवाचकं शब्दरेकार्थं सोऽभिसिद्ध्यते ।
 व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽयं स वै रूपं तु कृत्स्नम् ॥१०२॥
 अव्यक्तान्तं गृहीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् ।
 एव ज्ञात्वा शुचिभूत्वा ज्ञानाद् विप्रमुच्यते ॥१०३॥
 नष्टं च यथा तत्त्व तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् ।
 यथेष्ट परिनिर्वाति भिन्ने देहे मुनिवृत्ते ॥१०४॥

गुण मात्रात्मिक क्षेत्रज्ञों में अनुमज्जित होते हैं । प्रावृट् काल वर्षों के समय में यहाँ पर पृथक्त्व होने से नेत्र के द्वारा नहीं देखते हैं ॥६९॥ इस प्रकार वाले जीव की सिद्ध सौग दिव्य चक्षु के द्वारा देखा करते हैं । श्वाविनि और श्वान के पान वाला तथा तिर्यक् योनियों में प्रवेश करता हुआ ऊपर और नीचे की ओर दौड़ता हुआ भी यथाक्रम जीव प्राण तथा लिङ्ग यह चार कारण हैं ॥१००-१०१॥ एक ही अर्थ रखने वाले पर्याय वाचक शब्दों से वह अभि-

लिलित किया जाना है । व्यक्त और अव्यक्त में यह प्रमाण है और वह पूर्णतया रूप होता है ॥१०२॥ जो अव्यक्त के अन्त तक ग्रहण किया हुआ है और क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित है इस रीति से ज्ञान प्राप्त करके और शुचि होकर निश्चय ही ज्ञानमें प्रकृष्ट रूपसे मुक्त होजाता है ॥१०३॥ जैसे ही तत्त्व और तत्त्वों का तत्त्वदर्शन नष्ट होता है वह भिन्न निवृत्त देह में स्थित होता है और वह बना जाता है ॥१०४॥

भिद्यते करणञ्चापि ह्यव्यक्ताज्ञानिनस्ततः ।
मुक्तो गुणशरीरेण प्राणायामेन तु सर्वज्ञः ॥१०५॥
नाग्यन्धरीरमादत्ते दग्धे बीजे ययाकुरः ।
जीविक सर्वससाराद्वीजशरीरमानसः ॥१०६॥
ज्ञानाच्चतुर्दशाच्छुद्ध प्रकृतिं सोऽनुवर्तते ।
प्रवृत्तिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽमृतमुच्यते ॥१०७॥
तत्सद्भावोऽमृतज्ञेयसद्भावसत्यमुच्यते ।
अनामरूपक्षेत्रज्ञानामरूपप्रचक्षते ॥१०८॥
यस्मात्क्षेत्रविजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ॥१०९॥
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रज्ञे तज्ज्ञैर्विभाष्यते ।
क्षेत्रत्वप्रत्ययदृष्टक्षेत्रज्ञप्रत्ययो मदा ॥११०॥
क्षयणात्वरणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च ।
भोज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्रज्ञविदो विदुः ॥१११॥
महदाद्यविशेषान्त सर्वरूप्यविनक्षणम् ।
विकारलक्षणतद्वैसाधरक्षरमेव च ॥११२॥
तमेव च विकारन्तु यस्माद्वैक्षरते पुनः ।
तस्माच्च कारणान्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥११३॥

इसके अनन्तर जो अव्यक्त जानी होता है उसका कारण भी भिन्नमान होता है । गुण शरीर प्राणायाम से सभी प्रकार से मुक्त होता है ॥१०५॥ फिर वह मुक्त हुआ प्राणी अन्य शरीर को धारण नहीं किया करता है जिस तरह

बीज के दग्ध होने पर फिर उससे अकुर नहीं होते हैं उसी रीति से यज्ञोपात्मा बीज शारीर मानस ससार से चतुर्दश ज्ञान से शुद्ध हुआ वह प्रकृति का अनुवर्तन किया करता है । सत्य को प्रकृति कहते हैं और जो विकार होता है वह अनृत कहा जाता है ॥१०६-१०७॥ उसका सद्भाव अनुत्त जानना चाहिये और सद्भाव सत्य कहा जाता है । अनाम रूप वाले क्षेत्रज्ञ का नाम रूप कहा जाता है ॥१०८॥ जिससे क्षेत्र को जानते हैं उसमें वह क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है । जिस क्षेत्र के प्रत्यय में क्षेत्रज्ञ शुभ कहा जाता है ॥१०९॥ उससे क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है । उस ज्ञाताओं के द्वारा विशेष रूप से कहा जाया करता है । क्षेत्रत्व का प्रत्यय जब दृष्ट होता है तो क्षेत्रज्ञ सर्वदा प्रत्यक्षी होता है ॥११०॥ क्षयण से और वरण से ही तथा क्षय वरण से भोज्य होने से और विषय के होने से क्षेत्र के वेत्ता लोग क्षेत्र जानते हैं ॥१११॥ महत् से आद्य और विशेष के अन्त तक विलक्षण सर्वरूप्य होता है । वह निश्चय ही विकार सक्षण साक्षर क्षर ही होता है ॥११२॥ फिर उस ही विकार को जिसमें वह क्षर होता है और उसही कारण से क्षर एवा अभिहित हुआ करता है ॥११३॥

मुक्तदुःखमोहभावा भोज्यमित्यभिधीयते ।
अचेतत्वादि विषयस्तद्वि धर्म्मविभु स्मृत ॥११४॥
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतस्तु तत् ।
अक्षर तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥११५॥
यस्मात्पुर्ण्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।
पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥११६॥
पुरुष वचयस्वाथ कथन्तज्ज्ञैर्विभाष्यते ।
शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जित ॥११७॥
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा वदो मुक्तो यत् स्थितः ।
नैर्हेतिवान्तनिर्देश्यमूक्तमस्मिन् विद्यते ॥११८॥
शुद्धत्वाच्च तु देशयो वेत्तृष्टत्वात्ममदर्शन ।
आत्मप्रत्ययवारी सारनूनचापि हेतुवम् ।
भावग्राह्यमनुमान्य चिन्तयन्न प्रमुह्यते ॥११९॥

यदा पश्यति ज्ञातार शान्तार्थं दर्शनात्मकम् ।

दृश्यादृश्येषु निर्द्वन्द्वं तदा तदुद्धर वरम् ॥१२०॥

मुख—मुख और मोह के भाव भोज्य इस नाम से कहे जाते हैं । अनेक के होने से जो विषय है वह ही धर्म विभु कहा गया है ॥११४॥ वह विचार का प्रगृत न तो क्षीण होता है और न क्षर ही होता है और उस ही रीति से उससे अक्षीण होने के कारण से अक्षर ऐसा कहा गया है ॥११५॥ जिससे वह पुरी में अनुशयन किया करता है उस कारण से वह पुरुष ऐसा कहा जाया करता है । पुर प्रत्यक्ष जिससे होता है वह पुरुष इस नाम से बोला जाया करता है ॥११६॥ पुरुष कहो हमके अनन्तर उसके ज्ञाताओं के द्वारा वह शुद्ध-निरञ्जनाभास और ज्ञान तथा अज्ञान से रहित बौ विभाषित किया जाता है ॥११७॥ है और नहीं है—इससे अथवा वह अय है, बद्ध एवं मुक्त गया हुआ स्थित है । उमम नैर्हेतिवात् निर्द्वन्द्वं मूल नही होता है ॥११८॥ छुट होने से वह दृश्य नहीं है और दृष्ट होने से समदर्शन होता है । आत्मा का प्रत्यय जारी होता है । सार्वभूत हेतु का भाव प्राण एवं अनुभाय का चिन्तन करता हुआ मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥११९॥ जब जिस समय शान्तार्थं दर्शनात्मक ज्ञाता को देख सता है तब उस समय दृश्यादृश्यो म निर्द्वन्द्वं उसका श्रेष्ठ उद्धार होता है ॥१२०॥

एष ज्ञात्मा स विज्ञाता तत शान्तिं नियच्छति ।

कार्ये च कारणे चैव बुद्ध्यादौ भौतिके तदा ॥१२१॥

सप्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतो वा मृतस्य च ।

विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्व्वश ॥१२२॥

स्वेनात्मानं तमात्मानं कारणात्मा नियच्छति ।

प्रकृती कारणे चैव स्वात्मन्येवोपतिष्ठति ॥१२३॥

अस्ति नास्तीति सोऽज्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः ।

एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञपुरुषेति वा ॥१२४॥

आत्मवान् स निरात्मा वा चेतनोज्ज्ञेत्तनोऽपि वा ।

कर्त्ता वा सोऽज्यकर्त्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ॥१२५॥

यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने ।

अथाच्य तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ॥१२६॥

इस प्रकार से वह विशेष रूप से ज्ञान रखने वाला फिर शान्ति को प्राप्त किया करता है । कार्य में और कारण में तथा बुद्धि आदि भौतिक में उस समय मग्नपुक्त अवस्था विद्युक्त होना हुआ, अविवेक का अवस्था मृत का विशाला यहाँ सब प्रकार में पृथक्त्व होने से दिखाई नहीं देता है ॥१२१-१२२॥ कारणग्राह्य वह भवने से आत्मा को और उस आत्मा को प्राप्त करता है । प्रकृति में और कारण में अपनी ही आत्मा में उप तिष्ठमान होना है ॥१२३॥ है और नहीं है—यह अवस्था वह पश्य है—यहाँ अवस्था परलोक में है—एकत्व है अवस्था पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अवस्था पुरुष है—बहु आत्मवान् अवस्था निरात्मा है—चेतन है अवस्था अचेतन है—यह कर्ता है किम्बा वह अवर्त्ता है—यह भोक्ता अवस्था भोग्य ही है—यह जानकर क्षेत्रज्ञ निरञ्जन में निवृत्त नहीं होते हैं । अपितु उसमें अनाख्यान होने से तथा अग्राह्य होने से यह कहने योग्य नहीं है ॥१२४-१२५-१२६॥

अप्रतर्कमचित्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वशः ।

नाभिलिम्पति तत्तत्त्व सम्प्राप्य मनसा सह ॥१२७॥

क्षेत्रज्ञे निगुं लो गुढे शान्ते क्षीणे निरञ्जने ।

व्यपे(ये)तसुसुदुःखे च निरुद्धे शान्तिमायते ॥१२८॥

निरात्मवे पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते ।

एतो सहारविस्तारो व्यक्ताव्यक्ती तत पुन ॥१२९॥

सृजते प्रसते चैव यस्तः पर्यवतिष्ठते ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सर्व पुन सर्व प्रवर्तते ॥१३०॥

अधिज्ञानप्रवृत्तेन तस्य ते बुद्धिपूर्वकम् ।

साधर्म्यवर्धर्म्यवृत्तसयोगो विधितस्तयोः ।

अनादिमान् स सयोगो महापुरुषज स्मृत ॥१३१॥

यावच्च समप्रतिमर्णबालस्तावच्च तिष्ठति सुसन्निरुध्य ।

पूर्वं हितव्ये तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तत्पुरुषायमेव ॥१३२॥

एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वं प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।

अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वक विलासयन्ती जगदभ्युपैति ॥१३३॥

इत्येष प्राकृत सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः ।

उक्तो ह्यस्मिस्तदात्यन्त कविभिस्तत्प्रमुच्यते ॥१३४॥

अर्चिः य होने से और सर्व प्रकार से अवाप्य होने से अप्रतर्क्य है । मन के साथ उस तत्त्व को सम्प्राप्त करके वह अभिलिप्त नहीं होता है ॥१२७॥ क्षेत्रज्ञ-बुद्ध-निर्गुण-दान्त-क्षीण-निरञ्जन में सुख और दुःख व्यपेत होते हुए निरुद्ध होकर शान्ति को प्राप्त होजाते हैं ॥१२८॥ वह निरात्मा होता है इसलिये उसमें फिर बुद्ध भी बाध्य तथा अबाध्य नहीं रहता है । ये सहार और विस्तार तथा व्यक्त और अव्यक्त फिर सृजन करता है और असन करता है और प्रसन्न होता हुआ पर्यवस्थित रहता है । क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सभी फिर प्रवृत्त होता है ॥१२९-१३०॥ अधिष्ठान प्रवृत्त होने से उसके बुद्धिपूर्वक माधर्म्य और वैधर्म्य से किया हुआ संयोग उन दोनों का विधि से वह अनादिमान् संयोग होता है और महा-पुरुष में जायमान कहा गया है ॥१३१॥ और जितना सर्ग तथा प्रतिसर्ग का काल है उतना सुमनिरुद्ध होकर रहता है । पहिले हितव्य में वह अबुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होता है और पुरुषार्थ ही होता है ॥१३२॥ यह निसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्वक प्राधानिकी ईश्वर कारिता है जो अनाद्यनन्त वाली अभिमान पूर्वक विलास करती हुई जगत् को प्राप्त होती है । यह हेतु सशेष वाता तृतीय प्राकृत सर्ग हैं जोकि कहा गया है उसमें अत्यन्त रूप से कवियों के द्वारा प्रमुक्ति प्राप्त की जानी है ॥१३४॥

प्रकरण ६५—सृष्टि वर्णन

सूत सुमहदाख्यान भवता परिवीतितम् ।

प्रजाना मनुभि साद्वं देवानामृषिभिः सह ॥१॥

पितृगन्धर्वभूताना पिशाचोरगरक्षमायु ।

दैत्याना दानवाना च यक्षाणांभेव पक्षिणाम् ॥२॥

अत्यद्भुतानि वर्मणि त्रिभिर्मान्धर्मनिश्चय ।
 विचित्राश्च वयायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥३॥
 तत्त्वव्यमानमस्माकं भवता दलदण्डा गिरा ।
 मन वणमुप सोते श्रीणात्वाभूतसम्भवम् ॥४॥
 एवमाराध्य ते सूत सत्त्वस्य च महर्षय ।
 पप्रच्छुः सप्रिणुः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्तनम् ॥५॥
 कथा सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गं प्रपत्स्यते ।
 बन्धेषु सम्प्रसीनेषु गुणमाम्ये तमोमये ॥६॥
 विकारस्त्रविमृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।
 प्रप्रवृत्तीं प्रह्मणस्तु महामायुज्यमस्तदा ।
 कथा प्रपत्स्यते सर्गस्ततः प्रतः हि पृच्छताम् ॥७॥

ऋषिभा ने कहा—हे भूतजी ! महान् आम्हान का वर्णन किया है जिसमें मनुष्यों के साथ प्रजापति का तथा ऋषियों के साथ देवों का पूरा वर्णन है । हम आम्हान में पितृ-गन्धर्व-भूत-पिशाच-उरग-राक्षस-दैत्य-दानव-यक्ष और पक्षियों के अत्यद्भुत वर्मों का वर्णन भी किया गया है । हममें आपन विधि स युक्त धर्म का भी निश्चय बनाया है । हममें विचित्र वयापों के योग हैं तथा श्रेष्ठतम अग्र्य जन्म का भी वर्णन किया है ॥१-२-३॥ हे भूत ! आपता अपनी अतीव दलदण्ड मुन्दर बाणों से मन तथा बालों को परम सुन्दरप्रसन्न करते हुए सभी कुछ का वर्णन करके समस्त प्राणियों का प्रमत्ता प्रदान किया करते हैं ॥४॥ इस प्रकार से उन महर्षिभा ने भूतजी का समाराधन एवं भरी भाँति सन्कार करके पुनः उन सत्रधारिभा ने सर्ग व प्रवर्तन के विषय में उनमें पूछा था ॥५॥ हे भूतजी ! आपनों महान् परिश्रम है । यह सर्ग फिर कैसा होगा क्योंकि समस्त बन्ध जब प्रलीन होजाते हैं और हम तमोमय में गुणों की समता हाजाया करती है ? समस्त विकार तो उस समय में विमृष्ट रहते ही नहीं हैं क्योंकि यह अव्यक्त आत्मा ही स्थित हाजाया करना है । महान् मायुज्य को प्राप्त होने पर ब्रह्मा की प्रवृत्ति उस समय में होनी ही नहीं है फिर यह सर्ग कैसे होना है ? हम सब यही आग्रह पूछना चाहते हैं सो आप कृपा करके वर्णन कर दीजिये ॥६-७॥

एवमुक्त स्ततः सूतस्तदासौ लोमहर्षणः ।
 व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ॥८॥
 ग्रहं वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते ।
 पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समासात्तं निबोधत ॥९॥
 दृष्टं चैवानुमेयञ्च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः ।
 तस्माद्वाचो निवर्त्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥१०॥
 अभ्यक्तवन् परोक्षत्वाद् ग्रहणं तद्दुःखसदम् ।
 विकारैः प्रतिसंदृष्टे गुणसाम्ये निवर्त्तन्ते ॥११॥
 प्रधानं पुरुषाणाञ्च साधर्म्यैर्लंबं तिष्ठति ।
 धर्माधर्मौ प्रलीयेते अभ्यक्तौ प्राणिना सदा ॥१२॥
 सत्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः ।
 तमोमात्रात्मकोऽधर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥१३॥
 अविभागवतावेतौ गुणसाम्यस्थिताबुधौ ।
 सर्वकार्थ्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥१४॥

इस प्रकार से महर्षियों के द्वारा जब सूतजी से कहा गया तो वे लोम
 हर्षण पुनः सर्ग की प्रवृत्ति का वर्णन करने का आरम्भ करने लगे थे ॥८॥
 हे ऋषियों ! मैं आप सबको बतलाता हूँ कि यह सर्ग किस प्रकार से प्रवृत्त
 हुआ करता है । यह पूर्व की भाँति ही जानने के योग्य है । अतः यहाँ पर
 अतीव संक्षेप में इसे समझती ॥९॥ यह दृष्ट तथा अनुमान करने के योग्य है ।
 मैं युक्ति से तर्क को बतलाता हूँ । वहाँ से मन के साथ वाणी भी निवृत्त हो
 जाया करती है और किसी की भी पहुँच नहीं होती है ॥१०॥ अभ्यक्त की ही
 भाँति वह परोक्ष वस्तु है और रसका ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है । गुणों
 की साम्यावस्था प्रति सह्युष्ट हो जाने पर वह विकारों से पुनः निवृत्त होती
 है ॥११॥ पुरुषों के साधर्म्य से ही प्रधान स्थित होता है । प्राणियों के धर्म
 और अधर्म अभ्यक्त होकर सदा प्रलीन हो जाया करते हैं ॥१२॥ सत्त्वमात्रा
 त्मक एक धर्म गुण सत्त्व में प्रतिष्ठित रहा करता है । तमोमात्रात्मक अधर्म
 तमोगुण में स्थित रहा करता है ॥१३॥ ये दोनों गुण-साम्य में स्थित रहने

द्वये उस समय मे विभाग से रहिन होने है । प्रधान के समस्त कार्य मे बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत्त होंगे ॥१४॥

अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान् गुणान् ।

एव तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ॥१५॥

यदा प्रवर्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।

भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्ध प्रपत्स्येते युताबुभौ ॥१६॥

तस्माच्छरणमव्यक्त साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विपश्य भजते तु तत् ॥१७॥

ततः प्रपत्स्यते व्यक्त क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकार जनयिष्यति ॥१८॥

महदाद्य विघोषान्तं चतुर्विंशगुणात्मकम् ।

क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥१९॥

ब्रह्माण्डे प्रथमं सोऽथ भविता चेद्देव पुनः ।

ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपति शिव ॥२०॥

ईश्वर सर्वमुक्तानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् ।

आदिदेव प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ॥२१॥

यह क्षेत्रज्ञ बिना ही बुद्धि के योग किए हुए उस समय उन गुणों मे अधिष्ठित रहा करता है । इस प्रकार से उस समय मे उन गुणों को पहले प्रवृत्त कराया जाता है ॥१५॥ जिस समय मे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों की प्रवृत्त करना होता है तो ये दोनों ही भोज्य और भोक्ता इनके सम्बन्ध की प्राप्ति किया करते हैं ॥१६॥ इसके गुण स्वरूपों को साम्यावस्था मे स्थित करके वह शरण ॥ यत् क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित होता है और वही जब विपभावस्था को प्राप्त होते हैं तो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का व्यक्त स्वरूप हो जाता है । क्षेत्रज्ञ मे अधिष्ठित सत्त्वं विकार को उत्पन्न किया करता है ॥१७-१८॥ महत्तत्त्व से आरम्भ करके निमेष के अन्त पर्यन्त और चौबीस गुणों के स्वरूप धाता क्षेत्रज्ञ पुरुष का और प्रधान का रूप हो जाया करता है ॥१९॥ इस ब्रह्माण्ड मे वह प्रथम होता है । इसके अनन्तर फिर ईश्वर होता है । इसके

पश्चात् इमं सम्पूर्णं ज्ञेयं (जानने के योग्य) का समस्त भूतो का स्वामी दिव्य होता है ॥२०॥ समस्त भक्ती का ईश्वर महान् ब्रह्मण्य ब्रह्मा है । वह प्रधान के अनुग्रह के लिये आदि देव ब्रह्मा जायया ॥२१॥

अनाद्यो स्वयमुत्पन्नावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ।

अनादिसमो गयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च ॥२२॥

अबुद्धि पूर्वकं मृक्तौ मदाकौ तु वरौ तदा ।

अप्रत्ययमनाद्य च स्थिताबुद्धकमप्यस्य ॥२३॥

प्रवृत्ते पूर्वतः पूर्वं पुनः सर्गं प्रपत्स्यते ।

अज्ञागुणं प्रवर्तन्त रजः सत्त्वतमात्मकम् ॥२४॥

प्रवृत्तिर्वाले रजसाभिपन्नमहत्त्वभूतादिविशेष्यताश्च ।

विशेष्यता चेन्द्रियताश्च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्या ॥२५॥

सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।

रजः सत्त्वतमा व्यक्ता विधर्माणि परस्परम् ॥२६॥

आद्यन्तः संप्रपत्स्यन्ते क्षेत्रतज्ज्ञास्तु सर्वशः ।

ससिद्धकाम्यं करुणा उत्पद्यन्तऽभिमानिनः ॥२७॥

सर्वे सत्याः प्रपद्यन्ते ह्यध्यवतात्पूथमिव च ।

प्रसृतं या च भुवहा साधिनाभ्याप्यसाधिका ॥२८॥

ये दोनो अनाद्य हैं और स्वयमुत्पन्न होने वाले हैं तथा भूदम बड़े गण हैं एवं अनादि मयोग से युक्त हैं यह सब क्षेत्रज्ञ ही हैं ॥२९॥ ये अबुद्धि पूर्वकं उक्त समय मदाकं वर हैं तथा अप्रत्यय एवं अनाद्य उदय में स्थित रहते हैं ॥३०॥ पूर्व से थी पूवः सर्ग के प्रवृत्त हान पर ये मुक्त प्रवृत्ति को प्राण होने वाले होने हैं । अज्ञागुणों के द्वारा रजः सत्त्वतमात्मक होकर प्रवृत्त होत हैं । ॥३१॥ प्रवृत्ति के कारण में रजोगुणों से अभिपन्न महत्त्व भूतादि विशेष्यता तथा विशेष्यता और इन्द्रियता को मनुष्य गुणों के अध्ययन में पतियों के नाश प्राण होते हैं ॥३२॥ सत्य के अभिध्यायी उगके सन्निमित्तक ध्यायी हैं । ध्यायी रजः-गत्व और तम परस्पर में विधर्मा होते हैं ॥३३॥ आदि और अन्त में गव दोन और क्षेत्रज्ञ हो जान हैं । सविद्ध काम के कारण अभिमान वाले

उत्पन्न होते हैं ॥२७॥ समस्त सत्त्व पटले ही अव्यक्त से प्रतिपन्न होते हैं ।
जो कि मुक्तासाधिका और अमाधिकाओं का प्रसव करती है ॥२८॥

सत्सरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणं सह ।
कार्यार्थिणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुन पुनः ॥२९॥
गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्माधर्मौ परस्परम् ।
प्रारम्भन्तीह चान्योन्य वरेणानुग्रहेण च ॥३०॥
सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादी यान्ति विक्रियाम् ।
गुणास्तत्प्रतिधावते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३१॥
गुणारते यानि सर्वाणि प्राक् दृष्टे प्रतिपेदिरे ।
तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृष्टमाना पुन पुनः ॥३२॥
हिंसाहिंसे मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भावित्वा प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥३३॥
महाभूतेषु नानास्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विप्रयोगाश्च भूतानां गुणैश्च सप्रवर्तते ॥३४॥
इत्येष वो मया ख्यात पुनः सर्गं समासत ।
समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३५॥

ये सब सत्त्व स्थान और प्रकरणों के साथ यहाँ सत्सरण करते हुए पुन -
पुन उत्पन्न होते हैं और कार्यों की प्राप्ति किया करते हैं ॥२९॥ यहाँ पर वे
सब परस्पर में गुणमात्र स्वस्व वाले धर्म और अधर्म को बर तथा अनुग्रह से
प्रारम्भ किया करते हैं ॥३०॥ सब तुल्य हैं और प्रसृष्ट होने के लिये सर्ग के
आदि विक्रिया को प्राप्त हुआ करते हैं । उनके प्रति गुण धावन किया करते हैं ।
जी-जो जिसकी स्वता है वे गुण मृष्टि से पूर्व जो वे उन सबको प्राप्त हो जाते
हैं और वे ही सृष्टमान होते हुए पुन पुन प्रतिपन्न होते हैं ॥३१-३२॥ हिंस-
अहिंस, मृदु-कूर, धर्म-अधर्म, और आवृत तथा अनृत ये तत्त्व भावों से भावित
होते हुए जो जिसकी स्वता है प्रपन्न हुआ करते हैं ॥३३॥ इन्द्रियार्थ मूर्तियों में
और महाभूतों में नानात्व होता है । भूतों के विप्रयोग गुणों से सज्जित हुआ करते

है ॥३४॥ यह मैंने सशेर से पुनः सर्ग का वखन कर दिया है । अब सशेर से ही ब्रह्मा — समुद्रव कर्हूँगा ॥३५॥

अध्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।

प्रधानपुरुषाभ्यान्तु जायते च महेश्वरः ॥३६॥

स पुनः सम्भावयिता जायते ब्रह्मासजित ।

मृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मवान् ॥३७॥

अहङ्कारस्तु महत्तत्तस्माद्भूतानि चात्मनः ।

युगपत् सम्प्रवर्तन्ते भूतान्येवेन्द्रियाणि च ।

भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति मर्गः प्रवर्तते ॥३८॥

विस्तरावयवसंज्ञा यथाप्रज्ञा यथाश्रुतम् ।

कीर्तितं चो यथा पूर्वं तथैवाम्युपधाय्यन्ताम् ॥३९॥

एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं सस्यति च व्ययश्च ।

तस्मिन् सन्नेष्वभृथ प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुयन्ति ॥४०॥

यथा यूयं विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथ प्राप्य शुद्धाः ।

स्यवत्वा देहानायुपोऽन्ते कृतार्थान्पुण्यात्लोकान्प्राप्य यथेष्टं चरित्यथ ४१

एते ते नैमिषेया इष्ट्वा सृष्ट्वा च वै तदा ।

जग्मुश्चावभृथस्नाता स्वर्गं सर्वे तु सत्रिण ॥४२॥

—सत् और असत् स्वरूप वाले तथा नित्य उस अव्यक्त कारण से और प्रधान पुरुषों से महेश्वर समुत्पन्न होते हैं ॥३६॥ वह फिर सम्भावयित ब्रह्मा सज्ञा वाला होता है और वह अभिमान गुणात्मक लोको का मृजन किया करता है ॥३७॥ महत् तत्त्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है और उस अहङ्कार से भूतो की तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं और फिर एक ही साथ भूत तथा इन्द्रियाँ समुत्पन्न हुआ करते हैं । भूतो से भूतो के भेद होते हैं—इस प्रकार से यह सर्ग प्रवृत्त हुआ करता है ॥३८॥ उनका विस्तरावयव मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार और जैसा कुछ सुना था उसके अनुसार तुम्हारे सामने कह दिया है । जैसा पहिले कहा था वैसा ही इसे समझ लेना चाहिए ॥३९॥ नैमिषारण्य के निवास करने वाले ऋषियों ने उस समय यह श्रवण करके जिसम लोको की उत्पत्ति—

मस्थिति और उपसंहृति भी उस मन्त्र में अवश्य को—प्राप्त करने शुद्ध होने वाले श्रद्धिगण परम पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं ॥४०॥ जिस प्रकार से आप लोग विधि-विधान के साथ देवता आदि का यजन करके और अवश्य को प्राप्त करके पुद्गल आप के अन्त में देहों का परित्याग करके जिनके द्वारा सभी जगत् को प्राप्ति कर ली गई है और सफल हो चुके हैं फिर परम पुण्य लोकों को प्राप्ति करके यथेष्ट विचारण करेंगे ॥४१॥ ये सब नैमिषारण्य वाली मुनिगण राजन और मृज्जन करके उस समय में अवश्य स्नान करने वाले सब सत्री स्वर्ग प्राप्त की जाने लगे थे ॥४२॥

विप्रास्तया यूयमपि चेष्टा बहुविधंमंलैः ।
 आपुपोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्ताराज्यं द्विजोत्तमा ॥४३॥
 प्रक्रिया प्रथमे पादे वयावस्तुपरिग्रह ।
 अनुपङ्ग उपोद्घात उपसहार एव च ॥४४॥
 पयमेतत्तुप्पाद पुराणं लोकमम्मतम् ।
 उवाच भगवान् साक्षाद्वायुर्लोकहिते रत ॥४५॥
 नैमिषे सत्रमात्माय मुनिभ्यो मुनिसत्तमा ।
 सत्प्रसादादसदिग्धं भूतोत्पत्तिलयानि च ॥४६॥
 प्राधानिकीर्तिमा मृष्टि तर्च्येश्वरकारिताम् ।
 सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ॥४७॥
 एव यो ग्राह्याणां विद्वानितिहास पुरातनम् ।
 शृणुयान्द्रावयेद्वापि तथाध्यापयत्तत्रिपि च ॥४८॥
 स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते साश्वती समा ।
 ब्रह्मासायुज्यमो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोक्ष्यते ॥४९॥

हे विप्रोत्तमो ! हे विप्रगण ! इसी प्रकार में भी आप लोग भी बहुत प्रकार के मन्त्रों के द्वारा यजन करके आप के अन्त में स्वर्गलोक में चले जायेंगे ॥४३॥ पुराण के प्रथम पाद में वया वस्तु का परिग्रह होता है और फिर अनुपङ्ग—उपोद्घात तथा उपसहार होता है ॥४४॥ इन प्रकार में यह चार पादों वाला पुराण लोक सम्पन्न होता है । लोक-हित में रत रहने

वाने भगवान् वासुदेव ने साक्षात् यह कहा है ॥४५॥ नैमिष क्षेत्र में मुनिगण से किये हुए सत्र को प्राप्त करके हे मुनि धेनो ! वहाँ उनके प्रसाद से सन्देह रहित हो जाना है और भूतों की उत्पत्ति तथा तब यह प्राधानिकी वर्षात् प्रधान से होन वाली सृष्टि तथा ईश्वर के द्वारा कराई हुई सृष्टि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके मेधावी पुरुष फिर कभी मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥४६ ४७॥ कोई विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास का ध्वन्य करता है मयवा किसी को प्रवण कराता है या इसे को पडा देता है वह फिर महेन्द्र के स्थानों में अनेक वर्षों तक मोह प्राप्त किया करता है तथा ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त करने वाला होकर ब्रह्मा के साथ मोक्ष को प्राप्त हो जायगा ॥४८-४९॥

तेषा कीर्त्तिमता कीर्त्ति प्रजेशाना महात्मनाम् ।

प्रययन्पृथिवीशाना ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥५०

धन्य यशस्यमायुष्य पुण्य वेदंश्च सम्मतम् ।

कृण्वन्वायनेनोक्त पुराण ब्रह्मवादिना ॥५१

मन्वन्तरेश्वराणां च य कीर्त्ति प्रथयेदिमाम् ।

देवतानामृषीणाञ्च भूरिद्रविणतेजसाम् ।

स सौमं च्यते पापं पुण्यञ्च महदाप्नुयात् ॥५२

यश्चेद श्रावयेद्विद्वान्भदा पर्वणि पर्वणि ।

धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३

यश्चेद श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्तत ।

अक्षय सार्वकामीय पितृ स्तद्धोषतिष्ठति ॥५४

यस्मात्पुरा ह्यनन्तोद पुराण तेन चोच्यते ।

निवृत्तमस्य यो वेद सर्वपापं प्रमुच्यते ॥५५

तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या प्रधानत ।

इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ॥५६

यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकृपाणि सर्वश ।

तावत्कोटि सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।

ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतं सह मोदते ॥५७

उन कीर्ति वाले महात्मा प्रजापति के ईश और पृथिवी के स्वामियों की कीर्ति का विस्तार करते हुए वह ब्रह्म भूष अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप प्राप्त करने के लिये हो जाता करता है ॥५०॥ ब्रह्मवादी श्रीकृष्ण द्वैपायन के द्वारा कथित यह पुराण परम मन्य है तथा अति पुण्यमय है । यह भाग्य के प्रदान करने वाला-यम बढ़ाने वाला और वेदों के द्वारा सम्मत है ॥५१॥ मन्वन्तरो के ईश-अधिक इच्छित तथा तेज वाले देवता और ऋषि वर्ग कीर्ति को जो प्रमित किया करता है वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है एवं महान् पुण्य की प्राप्ति विधा करता है ॥५२॥ जो विद्वान् इसको पूर्व-पूर्व पर इसका आचरण कराता है वह पापों को नष्ट करने वाला और स्वर्ग को भी जीत लेने वाला ब्रह्म के महिम ही होजाता है ॥५३॥ जो जो इसको आद्व मे अन्त वा पाद ही छाड़ने को अवश्य करता है वह अवश्य समस्त कामनाओं से पूर्ण पितरों को करके स्वयं भी वहाँ पर उत्तिष्ठ हुआ करता है ॥५४॥ जिसके द्वारा यह पुराण गठिते कहा जाता है और जो इसके विष्णु को जानता है वह सम्पूर्ण पापों से प्रमुक्त होजाता है ॥५५॥ इसी प्रकार के तीनो वर्णों मे प्रधानतया जो मनुष्य इस पुनीत पुराण का अध्ययन करके धर्म के लिये अपनी मति करता है उसके शरीर मे जितने दोषों के छिद्र होने है उतने ही सहस्र कीटि वर्ग पर्यन्त यह दिवलोक मे रहकर मोद प्राप्त किया करता है ॥५७॥

सर्वपापाहर पुण्य पवित्रस्थ यज्ञस्त्रि च ।

ब्रह्मा ददो शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्चने ॥५८॥

तस्माच्चोशनसा प्राप्त तस्माच्चापि बृहस्पति ।

बृहस्पतिस्तु प्रोवाच भवित्रे तदनन्तरम् ॥५९॥

सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चन्द्राय वं पुन ।

इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥६०॥

सारस्वतस्त्रिधायान् च त्रिवामा च शरद्वते ।

शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥६१॥

चपिणे चान्तरिक्षो वं सोऽपि अय्यास्याय च ।

अय्यास्यो घनछये स च प्रदातृतल्लये ॥६२॥

वृत्तञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।

गौतमाय भरद्वाज सोऽपि निर्यन्तरे पुन ॥६३॥

निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तया वाचथवाय च ।

स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणविन्दवे ॥६४॥

समस्त पापों का हरण करने वाला—परम पुण्यमय—पवित्र और यश से परिपूर्ण शास्त्र ब्रह्माजी ने वायुदेव के लिये प्रदान किया था ॥६३॥ उस वायु देव से इसे उसना कवि ने प्राप्त किया था और भार्गव ध्रुव से इसकी प्राप्ति बृहस्पति ने की थी । फिर बृहस्पति ने सविता देव को इसकी बताया था और इसके अनन्तर सविता ने मृत्यु देव को कहा था । मृत्युदेव न चन्द्रदेव को बताया था । इन्द्रदेव न वसिष्ठ मुनि को कहा था तथा वसिष्ठ ने सारस्वत को बताया था ॥६४-६०॥ सारस्वत ने त्रिधामा को इसे बताया था और फिर त्रिधामा ने शारङ्गाद् को इसको सुनाया था । शारङ्गाद् ने त्रिविष्ट को और त्रिविष्ट ने इसका ज्ञान धन्तरिक्ष को दिया था । धन्तरिक्ष ने वर्षी को इस पुराण का ज्ञान प्रदान किया था और वर्षी ने भय्याहण को बताया था । भय्याहण ने धनञ्जय को और धनञ्जय ने वृत्तञ्जय को इसका ज्ञान दिया था ॥६१-६२॥ वृत्तञ्जय से तृण-ञ्जय ने प्राप्त किया था तथा तृणञ्जय से भरद्वाज मुनि ने इसे पाया था । भरद्वाज ने गौतम को प्रदान किया और निर्यन्तर को प्रदान किया था । निर्यन्तर ने इसका ज्ञान वाचथव को प्रदान किया था । उसने फिर इसे सोमशुष्म को दिया था । सोमशुष्म ने तृणविन्दु को प्रदान किया था ॥६३-६४॥

तृणविन्दुस्तु दद्याय ददा प्रोवाच शक्तये ।

शक्ते पगशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवादिनम् ॥६५॥

पराशराजानुबणस्तस्माद्द्वैपायन प्रभु ।

द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्त द्विजोत्तमा ॥६६॥

मया वै तत्पुन प्रोक्त पुत्रायामितबुद्धये ।

इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुह्या समुदाहृता ॥६७॥

नमस्वाम्याश्च गुरव प्रयत्नेन मनीषिभि ।

धन्य मत्तस्यमायुष्यं पुण्य सर्वार्थगाधनम् ॥६८॥

पापघ्न नियमेनेद श्रोतव्य ब्राह्मणं सदा ।
नाशुचो नापि पापाय नाप्यमवत्सरोपिते ॥६६॥
नाश्रद्धधानाविदुषे नापुत्राय कथञ्चन ।
नाहिताय प्रदातव्य पवित्रमिदमुत्तमम् ॥७०॥

अव्यक्त वं यस्य योनि वदन्ति व्यक्त देह कालमनागतञ्च ।
वर्हि वक्त्र चन्द्र सूर्यौ च नेत्रे दिश आत्रे घ्राणमाहृश्च वायुम् ॥७१॥
वाचो वेदाश्चान्तरिक्ष शरीर क्षिति पादौ तारका रोमकूपान् ।
सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यास्सर्वा यस्य पुच्छ यदन्ति ॥७२॥
त देवदेव जनन जनाना सर्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च ।
वर वराणा वरद महेश्वर ब्रह्माणमादि प्रयतो नमस्ये ॥७३॥

तृणविन्दु ने इसको दस को श्रवण कराया था । दस ने शक्ति को दिया था । तथा शक्ति से गर्भ में ही स्थित पराशर ने इसका श्रवण किया था ॥६५॥ पराशर ने जानुङ्गु ने तथा जानुकण से ढँपावन ने इसका जन प्राप्त किया था और हे द्विजोत्तमो ! ढँपावन महर्षि से मुझे इसके ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था ॥६६॥ वागपावन न कहा—मैंने फिर इस पुराण रत्न का ज्ञान अमिन बुद्धि पुत्र को प्रदान किया था । इसी प्रकार से यह ब्रह्मादि गुरु वर्ग के द्वारा वाणी से यह पुराण कहा गया है । मनीषिया को समस्त गुरु वर्ग को सब प्रथम प्रणाम करना चाहिए यह पुराण परम धन्य है—यश तथा आयु के प्रदान करने वाला परम पुण्यत्रय और सम्पूर्ण भयों का नाशक है ॥६७॥ ६८॥ यह पुराण पापों के नाश करने वाला है । ब्राह्मणों को इसका श्रवण नियम पूर्वक सबदा करना चाहिए । यह परम पवित्र सब धन्युत्तम पुराण है । इसका श्रवण अशुचि-पापी और ऐना जो एक वर्ष से कम पाम म रहा हो कभी भी उसका श्रवण नहीं कराना चाहिए । जो श्रद्धालु न हो—विद्वान् न हो तथा पुत्र रहित हो एवं ग्रहित हो उसे किसी भी प्रकार से इसका श्रवण नहीं करावे ॥६९ ७०॥ जिसकी योनि अव्यक्त है तथा देह को व्यक्त और काल को अन्तर्गत करते हैं । वह्नि को मुख-चन्द्र और सूर्य को नेत्र—दिशाओं को आत तथा वायु को घ्राण कहा गया है । वेदों को जिसकी वाणी तथा अन्तरिक्ष को

शरीर—शक्ति की चरण एवं तारकों को रोमरूप बताया गया है । उसके अंग भी सम्पूर्ण धातु भी उसी प्रकार के जानने चाहिए और सभी क्रिये पुण्य वहे जाते हैं उस देव को जो जनों का जन्म स्थान है और सब नीचों में प्रतिष्ठित है । वरों में भी वरदान देने वाले आदि ब्रह्मा महेश्वर को प्रणम्य हाकर नमस्कार करता है ॥७१-७२ ७३॥

प्रकरण ६६—व्यास संशय वर्णन

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता ।
 व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसम्बोधनेन च ॥१
 अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानथ ।
 उपक्रमोपसंहार विधिनोक्तानि कृत्स्नतः ॥२
 पुराणेष्वेव बहवो धर्मास्ते विनिरूपिता ।
 रागिणाश्च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
 गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ॥३
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां ये च सङ्कुरजातयः ।
 राज्ञाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च ॥४
 अनेकविधदानानि यमाश्च नियमं सह ।
 योगधर्मा बहुविधा सास्या भूमवतास्तथा ॥५
 भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा धैर्याग्यानिलनीरजा ।
 उपासनविधिश्चोक्त कर्मसमुद्भिचेतसाम् ॥६
 ब्राह्म शैव वैष्णव च सौर शाक्त तथार्हतम् ।
 एव दशानानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ॥७

श्रीनव आदि ऋषियो ने कहा—हे सूतजी । आप तो महान् भाग वाले हैं आपने भगवान् व्यास देव से भली भाँति ज्ञान पूर्णक परम उनकी कृपा से प्रसाद से हम आज का अध्ययन किया है हे निष्याय । आपने अष्टादश पुराण

तथा इतिहास सम्पूर्ण उपक्रम एवं उपसंहार पूर्वक वर्णन किये हैं ॥१-२॥ इन पुराणों में आपने बहुत-से धर्मों का निरूपण किया है उनमें रागियों के विरागों के-यतियों के-कृत्यचारियों के-गृहस्थों के-वानप्रस्थों के और विशेष रूप से स्त्रियों के तथा शूद्रों के धर्मों का आपने निरूपण किया है ॥३॥ जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियाँ और जो सञ्चर आतियाँ हैं—गङ्गा आदि महा नदियाँ और यज्ञ, वन तप प्रभृति हैं । अनेक प्रकार के दान-यम और नियम तथा बहुत तरह के योग धर्म-सांख्य धर्म एवं भागवत धर्म हैं । भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग जोकि वैराग्य अनिल नीर में उत्पन्न होने वाले हैं । इन सबका आपने वर्णन किया है तथा धर्मों की मधुद्धि से समन्वित चित्त वालों की उपासना की विधि का आपके द्वारा वर्णन किया गया है ॥३-४-५-६॥ आपने ब्राह्म-शैव-वैष्णव-शाक्त-सौर तथा अर्हंत इन स्वभाव से नियत छे दर्शनो को कहा है ॥७॥

एतदन्यच्च विविध पुराणेषु निरूपितम् ।

अत पर किमप्यस्ति न वा बोद्धव्यमुत्तमम् ॥८॥

न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायेदथ वा भवान् ।

अत्र न सशयं द्विन्धि पूर्णं पौराणिको यत ॥९॥

शृणु शीनक वक्ष्यामि प्रश्नमेन सुदुर्लभम् ।

अतिगोप्यतर दिव्यमनाख्येय प्रचक्षते ॥१०॥

पराशरसुतो व्यास कृत्वा पौराणिकी कथाम् ।

सर्ववेदार्थघटिता चिन्तयामास चेतसि ॥११॥

वर्णाश्रमयत्ता धर्मो मया सम्यमुदाहृत ।

भुक्तिमार्गा बहुविधा उक्ता वेदाविरोधतः ॥१२॥

जीवेश्वरब्रह्मभेदो निरस्तः सूत्रनिर्णये ।

निरूपित पर ब्रह्म श्रुतियुक्तविचारतः ॥१३॥

अक्षर परम ब्रह्म परमात्मा पर पदम् ।

यदर्थं ब्रह्मचर्यादिवानप्रस्थयतिव्रतम् ॥१४॥

यह सब तथा अन्य अनेक प्रकार के विषयों का पुराणों में आपने निर-

है । - - - - - वक्ष भी - - - - - के ये - - - - -

रहता है ॥८॥ यह नहीं जाना जाता है कि क्या महर्षि अथवा आपने इसमें कुछ मोन किया है । यहाँ पर आप हमारे गणव का ध्यान कीजिए क्योंकि पूर्ण पौराणिक है ॥९॥ श्री गुरुजी ने कहा—हे गौतम ! आप ध्यान पूर्वक ध्यान करो मैं इस मुद्गले प्रश्न का उत्तर देता हूँ । अनि गोप्य तम वस्तु प्राच्येय नहीं होती है ॥१०॥ पगार मुनि व पुत्र महर्षि क्या देव ने समस्त ब्रह्म के अर्थ में ध्येय पौराणिकी क्या का गण्यदन करके फिर विल म विस्तृत किया था ॥११॥ मैंने ब्रह्म तथा आत्मनो के पासन करने वाले लोगों के धर्म को भली भाँति कथन किया है और वेद के अविरोध रखने हुए बहुत प्रकार के मुक्ति के मार्गों का भी निरूपण कर दिया है ॥१२॥ गुरु के निर्गुण म जीव ईश्वर और ब्रह्म का भेद निरस्त किया है और धृति ने मुक्त विचार द्वारा परब्रह्म का निरूपण किया है ॥१३॥ परब्रह्म अक्षर है और परमात्मा ही परम पद होता है जिसके प्राप्त करने के लिये ही ब्रह्मचर्य से आदि लेकर वानप्रस्थ एवं यति के पत्र चलते हैं ॥१४॥

आचरन्ति महाप्राज्ञा धारणाञ्च पृथग्विधाम् ।

आसन प्राणरोधञ्च प्रत्याहारञ्च धारणा ॥१५॥

ध्यान समाधिरेतानि यमञ्च नियमं सह ।

अष्टाङ्गानि यदर्थञ्च चरन्ति मुनिपुङ्गवा ॥१६॥

यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदानामाश्रिततरा ।

परार्पणधिया सम्यग् निष्कामा कलिलोम्भिता ॥१७॥

यज्ञाद्ये निराकर्तुं पापाचरणमात्मन ।

गङ्गादिनीर्यचर्याणि निपेवन्ते शुचिब्रता ॥१८॥

तद्ब्रह्म परम शुद्धमनाद्यन्तमनामयम् ।

नित्य सर्वत्र स्पृणु कूटस्थ कूटवर्जितम् ॥१९॥

सर्वेन्द्रियचराभास प्राकृतेन्द्रियवर्जितम् ।

दिकात्तानवच्छिन्न नित्य चिन्मात्रमव्ययम् ॥२०॥

अध्यास्त सप्तवद्यत्र विश्वमेतत्प्रकाशते ।

विश्वस्मिन्नपि चान्वेति निर्विकारश्च रज्जुवत् ॥२१॥

महान् परिष्ठत लोण धारणा नो पृथक् प्रचार ना आचरणं क्रिया करते हैं । मुनियों में श्रेष्ठ लोग यम और नियमों के माय धामन-प्राणरोध-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि-इन आठ अङ्गों को जिनके नियम क्रिया करते हैं ॥१५-१६॥ वेद को केवल आज्ञा में ही परायण रहने वाले पगपग की बुद्धि में कलिनोन्मिन्न और निष्काम होते हुए मली भाँति जिसके नियम ब्रह्म क्रिया करते हैं ॥१७॥ जिसकी ज्ञप्ति (ज्ञान) के लिये शुचि घन बाल होकर प्रपत्नी आत्मा के पाप के आवरणों का निराकरण करने के लिये गङ्गा आदि महात् तीर्थों का आचरण और सेवन किया करते हैं ॥१८॥ वह ब्रह्म परम शुद्ध आदि-भूत से रहित-अनामय-मित्य-सब में रहने वाला-स्थानु-बूटरथ-बूटरजित-सर्वेन्द्रिय बराभास-प्राकृत इन्द्रियो से वञ्चित-दिक्षा और बाल आदि ने अन-वच्छिन्न-मित्य-चिन्मात्र यथात् ज्ञान स्वरूप-अव्यय और सर्ववत् अध्यात्म है जिनमें यह विश्व प्रकाशित होता है और इस विश्व में भी निर्विकार रज्जु की भाँति अनुगमन किया जाता है ॥१९-२०-२१॥

सम्यग्विचारितं यद्वत्फेनोमिबुदुबुदोदकम् ।

तथा विचारितं ब्रह्म विश्वस्मात्त पृथग्भवेत् ॥२२॥

सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगु ।

यस्माद्भ्रूवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥२३॥

यदुग्मेपनिमेषाभ्या जगता प्रत्योदयौ ।

भवेता मा परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ॥२४॥

यस्मिन्निदं यतश्चेद येनेद यदिद स्मृतम् ।

यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिन् ज्ञाते जगत्त हि २५

असत्यं यज्जडं दुःखमवस्त्विति निरूपितम् ।

विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्तिरुम् ॥२६॥

जीवे जाग्रति विश्वाख्य स्वप्ने यत्तज्जगत् स्मृतम् ।

सुषुप्तौ प्राज्ञसज्जं तत्सर्वावस्थामु सस्मृतम् ॥२७॥

यच्चक्षुषा चक्षुरथ श्रोत्राणां श्रावमस्ति च ।

त्वम् त्वचा रसन तस्य प्राण प्राणस्य यद्विदुः ॥२८॥

भली भाँति विचार लिया हुआ वह वेद की तरफ़ जाने उदर के बुद-
 बुदे की भाँति होता है । उसी तरह से विचारित ब्रह्म इन दिव में पृथक् नहीं
 होता है ॥२२॥ यह सम्पूर्ण ब्रह्म ही है, नानात्व नहीं है—ऐसा निगमों ने गान
 किया है अर्थात् वेदों ने बताया है । जिससे बरोहों ब्रह्माण्ड हुआ करने हैं और
 नहीं भी होते हैं ॥२३॥ जिसके उन्मेष तथा निमेषों ने अर्थात् नेत्र के पलकों के
 मोड़ने तथा झूड़ने में ही इन गमन जगत्‌ओं के उदय तथा प्रलय हुआ करते हैं ।
 जो कि परम आधार की सति है जिसके आधार को ग्रहण करने यह स्थित
 है ॥२४॥ यह जिसमें है—जिसमें यह है—जिसके द्वारा यह है और जो यह कहा
 गया है । जिसके अज्ञान में यह अन्त प्रतीत होता है अर्थात् दिखाई देता है
 और जिसके ज्ञात होजाने पर अर्थात् जिसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेने पर
 यह जगत् कुछ भी नहीं है ॥२५॥ जो अमल्य है वही जड़ एवं दृढ स्वरूप
 होता है—ऐसा निरूपण किया गया है । इनके विपरीत जो है वह सत्-चित्
 और आनन्द के स्वरूप वाला होता है ॥२६॥ जीव के वायव्य होने पर वह
 विश्व नाम वाला है और स्वप्न में जो सँजम बताया गया है । सुषुप्ति की दशा
 में प्राज्ञ नृणा वाला होता है वह सभी अवस्थाओं में संस्पृष्ट किया गया है ॥२७॥
 जो अक्षुभों का अक्षु है—श्रोत्रों का ध्यान है—स्वभाषों का स्वक् रचना का रस
 और प्राण का भी प्राण कहा गया है ॥२८॥

बुद्धिज्ञानिन च प्राणः क्रियाशक्त्या निरन्तरम् ।

यन्नेतिरे समभ्येतु ज्ञातु च परमार्थत ॥२९॥

रज्जावहिर्मरी वारि नीलिमा गगने यथा ।

असद्विश्वमिदं भाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम् ॥३०॥

घटावच्छिन्न एवाय महाकाशो विमिश्रते ।

कार्योपाधिपरिच्छिन्न तद्वच्चजीवसज्जिन्म ॥३१॥

मायया चित्रकारिण्या विचित्रगुणशीलया ।

ब्रह्माण्डं चित्रमतुलं यस्मिन् भित्ताविवापितम् ॥३२॥

घावतोऽज्ञानतिक्रान्तं वदतो वागगोचरम् ।

वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीतं तदक्षरम् ॥३३॥

गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ।
 तस्मादपि परं कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ॥३८॥
 उद्दिष्टो वेद वचनैर्विज्ञेयो ज्ञायते वयम् ।
 श्रुतेर्वाप्योऽप्यप्य बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ॥३९॥
 श्रुत्यर्थं सदायापन्नो व्यासः सत्यवतीमुत ।
 विचारयामास चिरं न प्रपेदे यथातथम् ॥४०॥
 विचारयन्मपि मुनिर्नापि वेदार्थनिश्चयम् ।
 वेदो नारायणः साक्षाद्यथ मुच्यति सूरय ॥४१॥
 तथापि महतीमाप्तिं मत्ता स्तुदयतापिनीम् ।
 पुनर्विचारयामास कं व्रजामि करोमि किम् ॥४२॥
 पश्यामि न जगत्परिमन्सर्गजं सर्वदर्शनम् ।
 अज्ञात्वाऽन्यतमं लोके सन्देहविनिवर्तकम् ॥४४॥

इस प्रकार से किन्मात्र (वेदल ज्ञान स्वरूप) गुणों से रहित तथा भेद
 विहित ब्रह्म में जो वि गोमोक्ष की सजा वाले में कृष्ण दीप्यमान होता है—
 ऐसा मैंने श्रवण किया है ॥३६॥ इससे परे कुछ भी निगम और आगमों में भी
 नहीं है । तोभी निगम परात्पर अक्षर से भी पर गोमोक्ष में निश्चय निवास करने
 वाले भगवान् हैं—ऐसा कहा जाता है । श्रुतियों के द्वारा सदा उससे भी परे
 यह कौन है—यह सदा गाया जाता है ॥३७॥ वेद के वचनों के द्वारा जो
 उद्दिष्ट है वह विशेष कैसे जाना जाता है अथवा “परतोऽक्षरात्” इस प्रश्न का
 श्रुति का अर्थ अन्य प्रकार से जानना चाहिये । इस प्रकार से सत्यवती के
आत्मज्ञ व्यासदेव ने इस श्रुति के अर्थ में सत्य को प्राप्त होकर अधिक समय तक
विचार किया था किन्तु तोभी यथार्थ अर्थ को प्राप्त नहीं हो सकें थे ॥३८॥-३९॥
 ४०॥ श्री सूतजी ने कहा—इस तरह बहुत समय तक विचार करते हुए भी
 व्यास मुनि वेद के अर्थ का निश्चय नहीं कर सके थे । वेद तो साक्षात् नारायण
 भगवान् का स्वरूप है जहाँ पर बैठे २ महामनीषी भी मोह को प्राप्त होजाया
 करते हैं ॥४१॥ सत्पुरुषों के हृदय को ताप पहुँचाने वाली बड़ी भारी आति
 (पीडा) को वे प्राप्त होकर फिर विचार करने लगे थे कि अब इस हृदय के

सशय को निवारण करने के लिये मैं किसी सन्धीप में जाऊँ और वहाँ उपाय करूँ ॥४२॥ इस जगत् में मैं ऐसा सर्वज्ञ और सब कुछ को देखने वाला किसी को भी नहीं देखता हूँ । इस तरह अन्य किसी को भी लोक में इस धपने सदेह को निवृत्त कर देने वाला न देखकर उन्होंने तपस्या करने का ही निर्णय लिया था ॥४३॥

मेरो कुहरिणी गत्वा चचार परम तप ।
यत्र कातं स्वरस्फूर्जं ज्योत्स्नामूर्लं निरन्तरजा ॥४४॥
सदा प्रवाधते दिध्वक्तम स्ताम दृशन्तुदम् ।
चकास्ते यत्र परम धान्तारमतिमुन्दरम् ॥४५॥
नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम् ।
क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ॥४६॥
जलाशयैर्बहुविधं पश्चिनीपण्डमण्डितं ।
जातरूपशिलानडतटसञ्चारपक्षिभिः ॥४७॥
युक्तमम्भोज पवर्नं सेव्यमान समन्तत ।
शिवैरध्यासितम्भार्वहिस्रं मत्स्यैः समुज्जितम् ॥४८॥
निर्जनं दिग्भ्यस्तित्वाप्रियखण्डविराजितम् ।
शुकैः पारावर्तं त्वं चैरुमदग्मत्तकोकितम् ॥४९॥
उत्पतत्पद्मरजसा पाटलामोददिङ्मुखम् ।
तत्रापि वाञ्छनी दिव्या गुह्या परमशोभना ॥५०॥

जिह्वा व्यास मुनि ने मेरु पर्वत की गुफा में जाकर परम उग्र तप किया था जहाँ पर सुवर्ण की स्फुरित ज्योत्स्ना के समूह से निरन्तर पूर्ण प्रकाश रहता है ॥४४॥ और सदा ही नेत्रों को पीछा देने वाला चारों ओर फैला हुआ अन्धकार वा समुदाय प्रवाधित होता है । जहाँ पर वन अत्यन्त सुन्दर स्वरूप में प्रकाशित होता रहता है ॥४५॥ उस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष तथा तनाएँ सुशोभित हैं और उन पर पक्षियों का बसरण हुआ करता है जो कि बहुत ही धुनि प्रिय है । वह वन भूय-प्यास-भय-क्रोध-ताप और ग्लानि से रहित है ॥४६॥ वहाँ बहुत से अनेक प्रकार के सुन्दरतम जलाशय हैं जिनमें कमलिनी

क समूहा की सुपमा छाई हुई है और सुवर्ण की शिलाया ज उनके तटा का निर्माण हो रहा है तथा वहां अनेक पक्षियों का सञ्चार बराबर होता रहा करता है ॥४७॥ वह वन पक्षियों की मिथित वायु से सध्यमान है तथा कल्याण प्रद भावो म युक्त और हिसक जीवो से रहित है ॥४८॥ वहाँ एकदम निजन स्थान है और वहां परम दिव्य सताओ के द्वारा अत्यन्त शोभायमान है जहां शुक और पारावत अत्यन्त सुन्दर हैं और मल कोकिलो की मधुर ध्वनि श्रवण गोचर हुमा करती है ॥४९॥ सभी दिशाओ में पक्षो की पराम उड़कर फैली हुई पाटलवर्ण एव मुग्ध दिखाई देती है और घ्राण को परम आमोद प्राप्त होता है । उसमें भी सुवर्ण की एक अत्यन्त दिव्य और अधिक शोभा से युक्त गुफा है ॥५०॥

ता प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासन
मस्मार वदाश्चतुरस्तदेवाग्रमना मुनि ॥५१॥
अथी जगाम शरदा क्षतस्य स्मरतोऽस्य हि ।
प्रादुरासस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शना ॥५२॥
स्फुरत्पद्मलानाक्षा जटामुकुटधारिण ।
कुशभुष्टिकराम्भोजा मृगत्वंड्मण्डितासका ॥५३॥
स्वरं पौडशाभि वल्लभ वदना प्रणवान्तरा ।
अचवर्गोद्भवैर्वर्णै पञ्चावयवपाणय ॥५४॥
पवर्गदक्षजरेणा वामपादास्तवर्गंत ।
तेषामन्तस्यवर्णाभौ मेघा कुक्षिद्वयात्मवौ ॥५५॥
नाभिनिद्रा वान्तपृष्ठा मोदरा यरलवो वचा ।
अग्निदक्षाशरचिरा धराश्रीवा भृतासवा ॥५६॥
अन्तस्यसन्धिसस्थाना वंशरीवाग्विजृम्भिता ।
अपश्यन्मयुरामेघा हृदयाम्भाजकल्पिताम् ॥५७॥
हरेर्भगवत माक्षादाविर्भावस्पती हि सा ।
वाक्षोमपश्यद् भ्रूमध्ये मालामाधारसस्थिताम् ॥५८॥

उस गिरि मुखा मे व्यास मुनि ने प्रवेश किया था और आहार-वित्त तथा आभन को जीन कर वही पर मुनि ने अत्यन्त एवाग्र मन करके चारों धरों के अर्थ का भली भाँति स्मरण किया था ॥११॥ इस प्रकार से स्मरण करते हुए मुनि को तीन सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे । इसक अनन्तर बड़ा धारो देशो का प्रादुर्भाव हुआ था जिसका वर्णन परम सुन्दर था ॥१२॥ वे चारो भूतिमान् वेद कमल के समान सुन्दर नवो से युक्त थे तथा मस्तक पर जटा एक मुकुट धारण करने वाले थे । उनके हस्त कमलों मे कुशाग्रो का पुञ्ज था और कंधे पर मृगछाया पड़ी हुई थी ॥१३॥ पौंड्र स्वरो से उनके मुख वृत्त थे जिनके मध्य मे प्रणव था । अक्षरों और अक्षरों से उत्पन्न होने वाले बलों के द्वारा उनके पाँवो अवयव और हाथ थे ॥१४॥ च वर्ण से उनका दाहिना चरण था और त्वरं से बायें पाद की रचना थी । उनकी दोनो कुक्षियो अन्नस्य (म र ल व) बलों से युक्त थीं ॥१५॥ नाभि निद्रा वाले-जान्त (सुन्दर) पृष्ठ (पीठ) वाले-मोहर तथा मर लव कच (बेश) वाले थे । अग्नि दक्षात्त स अयन्न रवि-परा की ओर (गरदन) वाले और वन्धो वाले थे ॥१६॥ अन्नस्यो से गन्धिया के संस्थान मे समन्वित थे तथा बैंगरी वाली से विजृम्भित होने वाले थे । इनके हृदय कमल से अलित मधुरा की व्यास मुनि ने देखा था ॥१७॥ वह मधुरा भगवान् हृत् की भागान् अविर्भाव होने की स्वामी थी । भृङ्गटिया के मध्य मे आणार मे सखिन माया स्वर्गपिणी की तथा वासीपुरी की देगा था ॥१८॥

लिङ्गदेशे ततः परास्वीमवन्ती नाभिमण्डने ।

कण्ठस्थां द्वारकामेया प्रयाग प्राणाय तथा ॥१९॥

सध्यापसध्ययोस्तेषां गङ्गाऽपि यमुना नदी ।

मध्यं सरस्वती माध्याह्न गयाक्षेत्रं तथानने ॥२०॥

हनुप्रीर्वान्ध्यागत प्रभासदात्रमुत्तमम् ।

वदध्याध्रममेतेषां बह्वारब्धं ददर्श ह ॥२१॥

पौण्ड्रधननेपालपीठं नयनयोर्युगे ।

पीठं पूण्ड्रगिरिनाम सलाटे ममहृदय ॥२२॥

कण्ठे च मधुरापीठ काञ्चीपीठ कटिस्थितम्
 जालन्धर तथा पीठ स्तनदेशेष्वदृश्यत ॥६३॥
 भृगुपीठ कर्णदेशे ह्ययोध्या नासिकापुटे ।
 ब्रह्मरन्ध्रे स्थित ब्राह्म शव सीमन्तसोमनि ॥६४॥

विज्ज देश मे काञ्चीपुरी को घोर नाभि मण्डल मे भवन्तीपुरी की देखा था । कण्ठ देश मे सस्थित द्वारका को तथा प्राणी मे गमन करने वाले प्रयाग का दर्शन किया था ॥६३॥ उन वेदो मे जाई घोर दाहिनी घोर म गङ्गा तथा यमुना नदी को देखा था । उनके मध्य मे सरस्वती नदी की घोर मुक्त के देश मे साक्षाम् गया क्षेत्र था ॥६०॥ ठोड़ी घोर बीवा (गरदन) के मध्य मे रहने वाला उत्तम प्रभाम क्षेत्र था । इनके ब्रह्मरन्ध्र मे बदर्याश्रम था जिसका स्पष्ट तप व्यास मुनि ने दर्शन किया था ॥६१॥ दोनों देशो मे पीण्ड वर्धन नेपाल पीठ था घोर ललाट मे पूर्ण गिरिनाम वाला पीठ देखा था ॥६२॥ कण्ठ मे मधुरा पीठ तथा कटि प्रदेश मे काञ्ची पीठ था । तथा जाल घर पीठ स्तन देश मे शिलाई दिया था ॥६३॥ कर्ण देश मे भृगुपीठ घोर नासिका देश मे अयोध्या पीठ था । ब्रह्मरन्ध्र मे ब्राह्म पीठ था घोर सीमान्त की सीमा मे शैव पीठ था ॥६४॥

शाक्त जिह्वाग्र धिपण वीर्यव हृदयाम्बुजे ।
 सौर चक्षु प्रदेशस्थ वीर्यञ्छायासु सङ्गतम् ॥६५॥
 सौत्रामणि कण्ठदेशे पशुबन्धमधोरसि ।
 वाजपेय कटितटे ह्यग्निहोत्र तथानने ॥६६॥
 अश्वमेध कटितटे नरमेधमयोदरे ।
 राजसूय शिरोदेशे आवसथ्य तथाऽधरे ॥६७॥
 ऊर्ध्वोष्ठे दक्षिणाग्निश्च गार्हपत्य मुखान्तरे ।
 हृष्य श्रुती मन्त्रभेदास्तथा रोमस्त्ववस्थितान् ।
 भृत्यैरिव महाराज पुराणन्यायिमिथितं ॥६८॥
 सहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथक्पासितान् ।
 वर्म ज्ञानोपासनाभिर्जनानुग्रहकारकान् ॥६९॥

दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनि कृष्णो बभूव तान् ।

ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यास्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ।

ज्वलतोऽग्नीनिवोदकान्कोटीन्दुसमदर्शनान् ॥७८॥

शाक्त पीठ जिह्वा के अद्य भाग में स्थित था तथा हृदय कमल में वैष्णव पीठ था । सौर पीठ चण्ड प्रदेश में स्थित था तथा बौद्ध छायाग्रो में सङ्गत था ॥६५॥ करुण प्रदेश में सौत्रामणि उर में पशुबन्ध-कटितट में बाज पेय तथा आनन में अग्नि होत्र था ॥६३॥ कटितट में अश्व वेध-उदर में नरमेध विरोदेश में राजमूय तथा अघर में आवसथ्य था ॥६७॥ ऊपर के ओष्ठ में दक्षिणाग्नि-मुख के अन्दर में गार्हपत्य अग्नि-भुक्ति में (कान में) हव्य तथा रोमो में अवस्थित मन्त्र भेदों को दसा था । स्याव मिश्रित पुराणों में इस भाँति सेवित थे जैसे भृत्यो के द्वारा कोई महाराज हों ॥६८॥ सहिताग्रो के ओर तन्त्रों के द्वारा पृथक् २ सम्भुवासित एव कर्म, ज्ञान औ उपासनाओं के द्वारा जनो पर अनुग्रह करने वाले उन वेदों को देख कर कृष्ण द्वैपायन मुनि अत्यन्त विस्मित मन वाले हो बय थे । वे ब्रह्म तेज से परिपूर्ण-परम दिव्य-मूर्त्य के समान तपे हुए - जलती हुई अग्नि के तुल्य उदक एव करोड़ों चन्द्रों व समान दिखलाई देने वाले थे ॥७६-७८॥

वदन्ते सहस्रोऽयम् दण्डवत्पतितो मुनि ।

कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहमितोरयन् ॥७९॥

अद्य ने सफल जन्म अद्य में सफल मन ।

अद्य में सफलश्चायुर्मदुर्भवन्तोऽक्षिगोचरा ॥७९॥

अलौकिक लौकिकश्च यत् किञ्चिदपि विद्यते ।

न तद्वोऽविदित वेद्य भूत भव्य भवच्च यत् ॥७९॥

न प्रवृत्तिफला यूय दर्शयन्तोऽपि तान्सदा ।

यदृच्छाकरसङ्कोचविधानायेह रागिणाम् ॥७९॥

प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरी ।

न मृपारामविषयो तत्सङ्कोचविधिक्षयो ॥७९॥

अतो लोकहितं नूनं परमार्थं निरूपणे ।

स्वोक्ता स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निन्दिता ॥७६॥

अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः ।

आत सर्वं जगद्भूतं शब्दब्रह्मात्समूर्तिभिः ॥७७॥

इम प्रकार के स्वरूप वाले उनका दर्शन प्राप्त कर व्यास मुनि सहसा उठ कर खड़े हो गये और दण्ड की भाँति पड़ कर उनकी वन्दना की थी तथा व्यास मुनि अपने मुख से दण्डवत् प्रणाम करते हुए यह कहते जा रहे थे—मैं कृतार्थ होगया—मैं सफल होगया और पूर्ण मनोरथ वाला हो गया हूँ ॥७१॥ आज मेरी सम्पूर्ण आयु सफल हो गई कि आप मेरी आँखों के समक्ष मे प्रत्यक्ष रूप से गोचर होगये हैं ॥७२॥ आपके लिए कुछ भी अविदित नहीं है । भूत-भव्य और वत्तमान सभी आपको घेरे हैं ॥७३॥ उन सब को सर्वदा देखते हुए भी आप लोग प्रवृत्ति फल वाले नहीं हैं । क्यों कि इस मसार में रागी पुण्य यहृच्छा कर सङ्कोच से विधान करने वाले होते हैं ॥७४॥ इस प्रपञ्च में मिथ्यात्व होने पर भी तथा ब्रह्मत्व में विधि निषेध उनके सङ्कोच विधि और क्षय मृपाराग के विषय नहीं हैं ॥७५॥ अतएव लोकहितों के द्वारा परमार्थ के निरूपण में अपने में कहे हुए स्वर्गादि के विषय नाशवान् हैं इस लिए निन्दित होते हैं ॥७६॥ शब्द ब्रह्म की मूर्ति वाले आपने अधिकारी के भेद से कर्म और ज्ञान के उपदेश के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की निश्चय ही रक्षा की है ॥७७॥

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्चेत्कुपालवः ।

कर्मणा फलमादिष्टं सर्वं कामकचेतसाम् ॥७८॥

ईशापितधिया पुंसां कृतस्यापि च कर्मणः ।

चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञान मोक्षश्च तदनन्तरम् ॥७९॥

मोक्षो ब्रह्मैक्यमित्येव सच्चिदानन्दमेव यत् ।

सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ॥८०॥

यन्नि मङ्गं चिदाकाशज्ञानरूपमसंवृतम् ।

निरीहमचल शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम् ॥८१॥

विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकार न नश्यति ।

यथान्धतमसा व्याप्तलोक्तस्य रविरोजसा ॥८२॥

लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चानले यथा ।

यदाभासेन सा सत्ता प्रतिपद्य विजृम्भते ॥८३॥

जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो ।

तस्यामपि प्रलीनाया कूटस्थश्च यदेकलम् ॥८४॥

भवद्भिरेव निर्णीत तत्तथैव न संशयः ।

तथापि मम जिज्ञासा वृत्तं केवलं तद्वदि ॥८५॥

अतोऽपि परमं किञ्चिद्वृत्तं किल वा न वा ।

तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शना ॥८६॥

यदि आप भरे ऊपर कृपासु हैं तो मैं आपसे अब वह ही पूछना चाहता हूँ कि कर्मा का फल आदिष्ट किया है और कामना से पूर्ण चित्त वालों का संग बताया है । ईश्वर में समर्पित बुद्धि वाले मानवों के किये हुए कर्म में भी चित्त की शुद्धि होती है फिर इसके अनन्तर ज्ञान होता है और इसके पश्चात् मोक्ष होता है ॥७८-७९॥ मोक्ष ब्रह्म के साथ ऐक्य को ही कहा जाता है जोकि सत्-चित् और आनन्द स्वरूप है । जो भी कुछ कुछ तथा अकृत है वह उसके ज्ञान करने पर सभी कुछ समाप्त हो जाता है ॥८०॥ जो सज्ञ रहित-विदा-काय-ज्ञानस्वरूप वाला-असकृत-निरीह-अचल-शुद्ध-बिना गुण वाला और व्यापक कहा गया है ॥८१॥ समस्त विकारों के विनष्ट होजाने पर भी वह विकार रहित है अतएव नष्ट नहीं होता है । वह तो इस प्रकार है जैसे अन्ध-कार से व्याप्त ओंछ के निचे ओंछ से रवि होना है ॥८२॥ सोहे को मणि की भाँति और अनल में अरणि के समान वह होता है । जिसके आभास से वह सत्ता को प्राप्त होकर विजृम्भित है ॥८३॥ यह जीव और ईश्वर के स्वरूप में विश्व का आकार होता है । इसके भी प्रलीन होजाने पर एक कूटस्थ रहता है ॥८४॥ यह सभी कुछ आपने निर्णय किया है और वह अभी प्रकार का ही है, आपके इस कथन में कुछ भी मशय नहीं है । तो भी मेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा होती है ॥८५॥ वह विज्ञासा यही है कि इससे भी

भागें कुछ है या नहीं है। हे महान् भाग वालो ! आप यही कृपा कर मुझे बताइये क्योंकि आप तो तत्त्वा के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥८६॥

यच्छ्रव फलमेवेह अनुपो मे कृतार्थता ।

एव ब्रुवन्तमनघ व्यास सत्यवतीसुतम् ।

साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्युबु निगमा वच ॥८७॥

साधु साधु महाप्राज्ञा विष्णुरात्मा क्षीरिणाम् ।

अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥८८॥

अन्यथा ते न घटते ससारकर्मबन्धनम् ।

अस्पृष्टो मायया देव्या कदाजिज्ञानगूढया ॥८९॥

बिभ्रति स्वेच्छया रूप स्वेच्छयैव निगूढसे ।

अस्मत्सस्मत् एवार्थो भवता सम्प्रदर्शित ६०

पुराणोऽपि हि साक्षेण सूत्रेष्वपि च नैकया ।

अक्षर ब्रह्म परम सर्वकारणकारणम् ॥९१॥

तस्यात्मनोऽप्यात्म भावतया पुष्पस्य गन्धवत् ।

रसवद्वा स्थित रूपमवेहि परम हि तत् ॥९२॥

अनुभूत तदस्माभिर्जात प्राकृतिके लये ।

अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्पर केवली रस ।

न च तत्र वयं शक्ता शब्दातीते तदात्मवाः ॥९३॥

यहाँ हमारा ध्वनि करना ही मेरे जीवन का जन है और इसके करने में मेरे जन्म की सफलता होगी। इस प्रकार मैं सोचने वाले अपरहित सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि से साधु-साधु (अच्छा-अच्छा)—यह कहकर निगमो (वेदो) ने वचन कहे थे ॥८७॥ वेदा ने कहा—बहुत अच्छा है आप महान् प्राज्ञ हैं और क्षीर घारियों के विष्णु धारमा हैं। आप अजन्मा होकर भी जन्म धारण कर लोगों के अनुग्रह की इच्छा करने हैं ॥८८॥ अन्यथा आपको इन ससार का कर्म बन्धन पड़ता नहीं होता है - ज्ञान से गूढ़ माया देवी से आपष्ट आप अपनी ही इच्छा से स्वरूप को धारण करते हैं और स्वेच्छा से ही उगे निगूढित किया करते हैं। हमारे सम्मग जो धर्म है वही आपने भी प्रदर्शन

किया है ॥८६-६०॥ पुराणों में—इतिहासों में और सूत्रों में भी एक ही प्रकार से नहीं बताया गया है । अक्षर परम ब्रह्म है और सब वारणों का भी कारण है ॥६१॥ आत्मा स्वरूप उसके भी आत्म भावना से पुण्य की मन्थ की भाँति अथवा रस के समान वह परम रूप स्थित रहता है—ऐसा उसे जान लो ॥६२॥ प्राकृतिक लय के होजाने पर हमने अनुभव किया है । उम अक्षर से परे केवल रस ही होता है । अन्शात्मक हम अन्शात्मीत उसमें पहुँचने को समर्थ नहीं हैं ॥६३॥

प्रकरण ६७—गया माहात्म्य

अत ऊर्ध्व प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशय ॥१॥
सनकाद्यर्म्महाभागैर्देवपिः स च नारद ।
सनत्कुमार पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम् ॥२॥
सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थ तीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तारक सर्वभूताना पठता शृण्वता तथा ॥३॥
वक्ष्ये तीर्थंवर पुण्य श्राद्धादौ सर्वतारकम् ।
गयातीर्थं सर्वदेवे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु ॥४॥
गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेर्जयत ।
प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिला धर्मो ह्यधारयत् ॥५॥
तत्र ब्रह्माऽकरोद्याग स्थितश्चापि गदाधर ।
फलगुतीर्षादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ।
गयासुरस्य विप्रेन्द्रब्रह्माद्यर्देवतं सह ॥६॥
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ।
श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७॥
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्र ब्रह्माभिकार्क्षितम् ।
काक्षन्ति पितर पुत्राभरकाद्भ्य भीरव ॥८॥

वायुदेव ने कहा—इसके आगे मैं अब अत्युत्तम गया का माहात्म्य बताना है । जिसका ध्वज कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाना है । इसमें कुछ भी समय नहीं है ॥१॥ मूनजी ने कहा—गनवादि महान् भाग वालों से युक्त देवर्षि मारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार $\sqrt{\text{मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बतलो । जो समस्त प्राणियों का पान या ध्वज करने पर उद्धार करने वाला हो ॥३॥}}$ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय और श्राद्ध आदि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बताना हूँ । यह गया तीर्थ है और सब देवों में सम्पूर्ण तीर्थों से भी अधिष्ठित है । इसका तुम लोग अध्ययन करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्राणित ययामुर ने ऋतु के लिये तपश्चर्या की थी । प्राप्त होने वाले उर्मके गिर पर धर्म ने शिला को धारण किया था ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा ने याग किया था और ययामुर भी वहाँ पर स्थित थे । पल्लु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहर्निश निश्चित धर्म वाला था । विप्रेन्द्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान किये थे । बाराह श्वेन बल्ह में गया याग कराया गया था ॥६॥ ब्रह्मा के द्वारा अभिजातित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह कथित हुआ था । पितृगण पुत्र नरक के भय से भीरु होने हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥८॥

गया यास्यति य पुत्र स नन्वाता भविष्यति ।

गयाप्राप्त मृत दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।

पद्मधामपि जल स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्य किं न दास्यति । ६

गया गत्वान्दाता य पितरस्तेन पुत्रिण ।

पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तम कुलम् ।

नो चेत्पञ्चदशाह वा सप्तरात्रि त्रिरात्रिवम् ॥१०

महान्तपकृत पाप गया प्राप्य विनश्यति ।

पिण्ड दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥११

ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम ।

पाप तत्सङ्गज सर्व गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥१२

आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।

यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं त नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३॥

ब्रह्मज्ञान गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ।

वासं पूसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४॥

जो पुत्र गया को प्रवेगा वह ही हमारा जाता घरवां उद्धार करने वाला होगा । गया में प्राप्त होने वाले अपने पुत्र को देखकर पितरों को बहुत ही उत्सव होता है घरवां बड़ा आह्लाद हुआ करता है । अपने पैरों से भी जल का स्पर्श करके वह हमको क्या नहीं देगा ॥१६॥ जो गया में जाकर मग्न की दान करने वाला है पितृगण उसी में पुनः वाले हुआ करते हैं । जो तीन पक्ष तक वहीं निवास करने वाला होगा है वह अपने सात कुलों को पवित्र कर दिया करता है । अथवा पन्द्रह दिन तक यात्रा रात्रि पयंछ अथवा तीन रात्रि तक ही वहीं निवास करने में गया में प्राप्त होकर रहने वाले का महाबन्ध कृत पाप भी विनष्ट हो जाया करता है । निलो के बिना भी अपने पितृगण को वहीं को दिया करता है वह ब्रह्म हरि-मुरारि-स्नेह (बोरी)-गुरु पत्नी का गमन और सप्तपुत्र से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के श्राद्ध से नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज हो या अन्यज भी हो जिस-जिसी भी समय में गया की भूमि में जिसके नाम में पिण्ड का पातन करता है वह उसको शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान-गया का श्राद्ध-गौ के गृह में गुरु और कुरुक्षेत्र में निवास ये चार प्रकार की पुत्रों की मुक्ति बताई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् ।

वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां भवेत् ॥१५॥

गयाया सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।

अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६॥

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पती ।

तथा देवप्रमादेन प्रहृतेषु श्रावणेषु च ।

पुनः कर्माधिकारी च श्राद्धकृद् ब्रह्मलोकमाक् ॥१७॥

वायुदेव ने कहा—इसके धाम में सब अत्युत्तम गया का माहात्म्य बताया है । जिसका श्रवण कर मानव समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है । इसमें कुछ भी सगय नहीं है ॥१॥ भूतजी ने कहा—मनकादि महात् भाग वालों से युक्त देवपि नारद ने सनत्कुमार से विधि के साथ प्रणाम करके पूछा था ॥२॥ नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार मुझे आप समस्त तीर्थों में सर्वोत्तम जो तीर्थ हो उसे बताओ । जो समस्त प्राणियों का पान या श्रवण करने पर उद्धार करने वाला हो ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—मैं समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ परम पुण्यमय और धाद धादि में सबको तार देने वाला गया तीर्थ को बताया है । यह गया तीर्थ है और सब देश में सम्पूर्ण भोवों से भी अधिक है । इसका तुम लोग श्रवण करो ॥४॥ ब्रह्मा के द्वारा प्राणित गयामुर ने ऋतु के निये तपश्चर्या की थी । प्राप्त होने बाद उनके शिर पर चर्म ने शिरा को धारण किया था ॥५॥ वहाँ पर ब्रह्मा ने धाम किया था और यशस्वर भी वहाँ पर स्थित थे । पशु तीर्थ आदि के स्वरूप से वह अहनिनि निश्चिन चर्य वाला था । विप्रेन्द्र ब्रह्मादि देवों के साथ यज्ञ करने वाले ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को गृह आदि प्रदान किये थे । बाराह इवेन कल्प में गया धाम कराया गया था ॥६-७॥ ब्रह्मा के द्वारा अभिजापित यह क्षेत्र गया के नाम से गया—यह स्वात हुआ था । पितृगण पुत्र नरक के भय से भीरु होने हुए इसकी इच्छा किया करते हैं ॥८॥

गया यास्यति य पुत्र स नस्त्राता भविष्यति ।

मयाप्राप्तं मृतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत् ।

पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽम्भस्य किं न दास्यति । ९

गया गत्वानदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः ।

पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासमम कुलम् ।

नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तर्षिर्वा त्रिर्षात्रिकम् ॥१०

महाकल्पकृतं पापं गया प्राप्य विनश्यति ।

पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥११

ब्रह्महत्यां मुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।

पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाध्याद्धाद्विनश्यति ॥१२

आत्मजोऽप्यन्यजो वापि गयाभूमौ यदा तदा ।

यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं ॥ नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् ॥१३

ब्रह्मज्ञान गयाश्चाद्यं योगृहे मरणं तथा ।

वास पुंसां कुरक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४

जो पुत्र गया की ज़रिये वह ही हमारा जाना धर्यान् उद्धार करने वाला होगा । गया में प्राप्त होन वाले धरने पुत्र को देखकर पिता को बहुत ही उम्मेद होता है धर्यान् बड़ा आह्लाद हुआ करता है । मरण पंरों से भी जल का स्पर्श करने वह हमको गया नहीं देगा ॥६॥ जो गया में जाकर धन को दान करने वाला है त्रिगुण उन्को से पुत्र वाले हुआ करते हैं । जो तीन पद तब वहाँ निवास करने वाला होता है वह धरने सात कुलों को पवित्र कर दिया करता है । अग्यथा पन्द्रह दिन तब सात रात्रि पर्यन्त धरवा तीन रात्रि तब ही वहाँ निवास करने में गया में प्राप्त जाकर रहने वाले का महाबन्ध हुन पाप भी बिलुप्त हो जाता करता है । निम्नो के बिना भी धरने त्रिगुण को वहाँ जो दिया करता है वह ब्रह्म हत्या—मुरावान—स्तेय (चोरी)—गुप्त परानी का गमन और सत्सङ्ग से समुत्पन्न सम्पूर्ण पाप गया के आद्य में नष्ट हो जाते हैं ॥१०-११-१२॥ आत्मज हो या अन्यज भी हो जिन—जिमी भी समय में गया की भूमि में जिनके नाम में पिण्ड का पातन करता है वह उन्को सादरत धन को प्राप्त करा देता है ॥१३॥ ब्रह्म का ज्ञान—गया का आद्य—गी के गृह में मृत्यु और कुक्षेत्र में निवास के चार प्रकार की पुरुषों की मुक्ति बनाई गई है ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानेन विं कार्य्यं योगृहे मरणेन विम् ।

यासेन विं कुरक्षेत्रे यदि पुत्रो गया अजेत् ॥१५

गयाया सर्व्वकालेषु पिण्ड दद्याद्विचक्षणः ।

अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयो ॥१६

न त्यक्तव्य गयाश्चाद्यं सिंहस्तेऽपि बृहस्पतौ ।

तथा दंष्ट्रप्रमादेन प्रहतेषु वरेषु च ।

पुन वर्ममाधिबारी च आद्यवृद्ध ब्रह्मलोकभाक् ॥१७

सकृद्गयाभिगमन सृष्टिपण्डस्य पातनम् ।
 दुर्लभं हि पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितिः ॥१८॥
 प्रमादान्निग्रयते क्षेत्रे ब्रह्मादेभुंक्तिदायके ।
 ब्रह्मज्ञानायथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र सशयः ॥१९॥
 कीटकादिमृतानाञ्च पितृणां तारणाय च ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं सुविचक्षणैः ॥२०॥
 ब्रह्मप्रशस्तिपतान्विप्रान्हव्यवक्यादिनाऽर्चयेत् ।
 तैस्तुष्टस्तोपिताः सर्व्वा पितृभिः सह देवता ॥२१॥

ब्रह्म के ज्ञान से गया प्रयोजन है और गौ के घर में मृत्यु होने से भी गया लाभ है तथा कुम्भेश्वर के घाम में निबाम से भी कोई निडि नहीं होनी है यदि पुत्र गया में जाकर श्राद्ध करता है । अथ यह है कि गया में पुत्र के जाकर श्राद्ध करने में पूर्णतया सद्गति हो जाती है ॥१५॥ गया में विद्या पुण्य को सभी समयों में पिएड दान करना चाहिए । चाहे अस्मिन्मास हो या अन्न दिन हो और भजे ही गुप्त और पुत्र का धन भी होयया हो—मभी बानों में पिएड दान करना चाहिए ॥१६॥ सिंह राशि पर कृष्णति के स्थित होने पर भी गया में जाकर श्राद्ध का त्याग नहीं करना चाहिये । देव के प्रमाद में ग्रहण होने तथा ग्रहों के होने पर भी श्राद्ध करने वाला पुन कर्म का अधिकारी और ब्रह्मचोद का सेवन करने वाला होता है ॥१७॥ एवबार गया में अभिगमन करना और एवबार पिएड का पावन करना ही इतना श्रेयस्कर होता है कि उसे फिर कुछ भी दुर्लभ नहीं है और नित्य ही हमने व्यवस्थिति हो तो कहना ही गया है ॥१८॥ ब्रह्मादि को मुक्ति देने वाले क्षेत्र में प्रमाद से ही मृत्यु हो जाती है तो त्रिग प्रसार ब्रह्म ज्ञान में मोक्ष होता है बंभी ही मुक्ति होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१९॥ कीटकादि मृतों को और स्त्रिगल को तरण के निवे सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा सुविचक्षण पुण्यां को गया श्राद्ध करना ही चाहिये ॥२०॥ ब्रह्म प्रशस्तिन विप्रों का हव्य-रध्यादि के द्वारा अर्चन करना चाहिए । उन विप्रों के पुष्ट होन में समस्त विपों के गाय देवता परम मोक्ष हो जाता करते हैं ॥२१॥

मुण्डन चोपवासश्च सर्व्वतीर्थेष्वयं विधिः ।
 वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रे विशाला विरजा गयाम् ॥२२॥
 दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः ।
 दण्डं न्यस्ता विष्णुपदे पितृभिः सह मुन्यते ॥२३॥
 न दण्डी कित्त्वपि घत्ते पुण्यं वा परमार्थतः ।
 अतः सर्व्वं क्रियां त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुकः ॥२४॥
 सन्यसेत्सर्व्वकर्मणि वेदमेकं न सन्यसेत् ।
 मुण्डं कुर्याच्च पूर्व्वेऽस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ॥२५॥
 साङ्गं क्रोशद्वयं मानं गयेति ब्रह्मणोरितम् ।
 पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रे क्रोशमेकं गयाशिरः ॥२६॥
 तन्मध्ये सर्व्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि सन्ति वै ।
 श्राद्धवृक्षो गयाक्षेत्रे पितॄणामनृणो हि सः ॥२७॥
 शिरसि श्राद्धवृक्षस्तु कुलानां शतमुद्धरेत् ।
 गृहाञ्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति ।
 स्वर्गां रोहणमोषान् पितॄणाञ्च पदे पदे ॥२८॥

समस्त तीर्थों में मुण्डन तथा उपवास करने की विधि है किन्तु कुरुक्षेत्र और विशाला गया का त्याग करके ही यह विधि होती है ॥२२॥ भिक्षु को गया में जाकर दण्ड का प्रदर्शन करना चाहिए और पिण्ड नहीं देना चाहिए । विष्णु पद में दण्ड के रखने करने ही से वह पितॄणा के भाग्य मुक्त हो जाता है ॥२३॥ दण्डी को कोई पाप नहीं होता है और परमार्थ से उसे पुरस्कार भी नहीं होता है । अतएव समस्त क्रियाओं का त्याग करके भावुक को विष्णु का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है ॥२४॥ समस्त कर्मों का तो मन्वासी को त्याग कर देना चाहिये किन्तु एक वेद का त्याग नहीं करना चाहिये । पूर्व दिशा में मुण्ड करे और पश्चिम तथा दक्षिणोत्तर में ढाईकोस तक गया का मान होता है—ऐसा ब्रह्मा ने ब्रह्मा है । गया का पाँच कोस तक क्षेत्र है और एक कोस पर्यन्त गया का शिर होता है ॥२५-२६॥ उनके मध्य में समस्त तीर्थ हैं जोकि इम त्रैलोक्य में हैं । गया के क्षेत्र में जो श्राद्ध करने वाला पुण्य है वह पितरो

के ऋण ने मुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ जो गिर में थाढ़ करता है वह अपने सौ कुलो का उद्धार किया करता है । जब वह घर से गया को चलना प्रारम्भ करता है उसी समय से पितरो के स्वर्गारोहण का नाव प्रारम्भ करता है और उसके एक २ कदम चलने में स्वर्ग का सोपान बन जाता है ॥२८॥

पदे पदेऽश्वमेघस्य यत्फलं गच्छतो गयाम् ।

तत्फलं च भवे नूनं समग्रं नात्र संशयः ॥२९॥

पायसे नापि चरणां सक्तुना पिष्टकेन वा ।

तण्डुलं फलमूलाद्यै गमायां पिष्टपातनम् ॥३०॥

तिलवल्केन खडेन गुडेन सघृतेन वा ।

केवलेन च दध्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽपि वा ॥३१॥

पिण्याकं सघृतं खडं पितृभ्योऽक्षयमित्युत ।

इज्यते चात्तव भोज्यं हविष्या न मुनीरितम् ॥३२॥

एकतः संववन्तूनि रसवन्ति मधूनि हि ।

स्मृत्वा गदाधराऽहं ध्रुवोऽहं फल्गुतोऽहं चैव ॥३३॥

पिङ्गामनं पिङ्गदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् ।

दक्षिणा चानं सङ्कल्पस्तीर्थथाढ़ं ध्वजं विधिः ॥३४॥

नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भवः ।

सकाक्ष्येन कृतं व्यतीथं थाढ़ं विचक्षणं ॥३५॥

गया को गमन करने वाले के एक एक पद में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । उसको मण्डूक फल अथवा गी भिन्नता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२९॥ पायस से—बहु—मसू—तण्डुल और फल मूलादि के द्वारा गया में पिष्ट को पातन करना चाहिए ॥३०॥ तिलों का कल्क—खंड गुड़ और घृत अथवा केवल दही या ऊर्ध्व मधु के द्वारा पिष्ट पातन करे । पिण्याक तथा सघृत खंड पितरो को वहा अक्षय होता है । अथवा ऋतु का मुनीरित हविष्याक्ष भोज्य से यजन किया जाता है ॥३१ ३२॥ एक और रसवानी समस्त वस्तुओं तथा मधु चक्रे और गदाधर के चरण यमन का स्मरण करके एक और फल्गु तीर्थ का यज्ञ रखे ॥३३॥ पिङ्गामनं पिङ्गदानं और पितृ

प्रत्यवने जन-दक्षिणा घोर अथ वा सख्युत्प करे—यह ही तीर्थों के श्राद्धा मे विधि होती है ॥३४॥ वहाँ पर न तो कोई श्रावाहन ही होता है और न दिग्बन्ध किया जाता है । दृष्टि से उत्पन्न होने वाला भी दोष वहा नहीं होता है । विषक्षणा पुरुषा यो कारुण्य के सहित तीर्थ श्राद्ध करना चाहिए ॥३५॥

अन्यथावाहिता काले पितरो यान्त्यमु प्रति ।

तीर्थे सदा वसन्त्येते तस्मादावाहन न हि ॥३६॥

तीर्थं श्राद्ध प्रयच्छद्भि पुरपै फलकाङ्क्षिभि ।

काम क्रोध तथा सोभ त्यक्त्वा कार्य्यं क्रियाऽनिशम् ॥३७॥

ब्रह्मचार्यैकभोजी च भूशायी सत्यवाक्पुत्रि ।

सर्वभूतहिते रक्त स तीर्थं फलमश्नुते ॥३८॥

तीर्थान्यनुसरन्धीर पापण्डं पूर्व्वतस्त्यजेद् ।

पाप ड स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारत ॥३९॥

तीर्थेषु ये नरा धीरा कर्म कुर्व्वन्ति तद्गता ।

यदा ब्रह्मभिदो वेद्यं वस्तु चानन्यचेतस ।

प्रविशन्ति परेतास्य ब्रह्म ब्रह्मपरायणा ॥४०॥

यास्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता ।

साऽवतीर्णं गयाक्षेत्रे पितृणा तारणाय वै ।

स्नातो गोदो वैतरण्या त्रि सप्तकुलमुद्धरेत् ॥४१॥

तथाऽक्षयवट गत्वा विप्रान्सन्तोषयिष्यति ।

ब्रह्मकल्पिताम्बिप्रान्द्रव्यकव्यादिनाऽर्चयेत् ।

तैस्तुष्टंस्तोपिता सर्वा पितृभि सह देवता ॥४२॥

गयाया न हि तत्स्थान यत्र तीर्थं न विद्यते ।

सान्निद्वय सर्व्वं तीर्थाना गयातीर्थं ततो वरम् ॥४३॥

मीने मेपे स्थिते सूर्य्यं कन्याया कामुंके धटे ।

दुर्लभ त्रिषु लोकेषु गयाया पिडपातनम् ॥४४॥

मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययो ।

दुर्लभ त्रिषु लोकेषु गयायाद्य सुदुर्लभम् ॥४५॥

ययाया पिडदानेन यत्फल लभते नर ।

न तच्छ्रव्य मया वक्तु कल्पकोटिशतैरपि ॥४६॥

अन्य स्थानों में आवाहन किए हुए हो पितृगण धाढ़ करने वाले के समीप प्राया करते हैं किन्तु तीर्थ में तो ये सर्वदा ही निवास किया करते हैं अतएव वहां इनका आवाहन नहीं किया जाता है ॥३६॥ तीर्थों में धाढ़ देने वाले पुरुष जो फल की आकांक्षा रखते हैं उनको काम-बोध और लोभ का त्याग करके ही निरन्तर धाढ़ की क्रिया करनी चाहिए ॥३७॥ ब्रह्मचारी-एक बार भोजन करने वाला-भूमि पर शयन करने वाला-सत्यवक्ता-पवित्र तथा समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला पुरुष तीर्थ के फल को प्राप्त किया करता है ॥३८॥ तीर्थों का अनुसरण करने वाले वीर पुरुष को चलन के पहले ही से पापण्ड का त्याग करना चाहिए । जो कामना की भावना से किया जाता है वही पापण्ड समझना चाहिए ॥३९॥ जो पुरुष परम धीर होकर वहां तीर्थों में पहुंच कर अपना तीर्थोचित कर्म किया करते हैं जिस तरह ब्रह्मा के जाता मोग प्रमन्य वित्त होते हुए जानने के योग्य वस्तु में ब्रह्मा में जो कि परिशास्य है, ब्रह्मा परायण होकर प्रवेश किया करते हैं उमी भाँति तीर्थों के सेवी को भी करना चाहिए ॥४०॥ जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध वैतरणी नदी है वह गया के क्षेत्र में पितरों के तारने के लिए भवतीर्ण हो जाती है । गोद अर्थात् गौ का दान करने वाला वैतरणी में स्नान करके अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर देता है ॥४१॥ उसी भाँति प्रलय पर जाकर विप्रों को सन्तोष देना चाहिए । ब्रह्म कल्पित विप्रों को हव्य कन्यादि से अर्चन करे । सुष्ट्र हुए उनके द्वारा समस्त देवगण पितरों के साथ तोषित हो आया करते हैं ॥४२॥ गया में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहां कोई तीर्थ न विराजमान हो । वहां गया में तो सभी तीर्थों का सांग्रिध्य होता है अतएव वह परम श्रेष्ठ तीर्थ है ॥४३॥ भोजन-भेष-कन्या-धन और कुम्भ पर सूर्य के स्थित होने पर गया में जाकर पिण्ड का पातन करना तीनों लोकों में दुर्लभ कार्य होता है ॥४४॥ मकर के वर्त्तमान होने पर तथा चन्द्र एव सूर्य के ग्रहण के समय में गया में धाढ़ करना तीनों लोकों में परम दुर्लभ कार्य है ॥४५॥ गया में पिंड दान करने से जिन फल की

प्राप्ति मानव किया करता है उसको मैं बल्ब कोटि शत के समय में भी बर्खन नहीं कर सकता हूँ ॥४६॥

यज्ञञ्चक्रे गयो राजा बह्वन्ने बहुदक्षिणम् ।
यत्र द्रव्य समूहाना सख्या वतु न शक्यते ॥४७॥
प्रशसन्ति द्विजास्तप्ता देशे देशे सुपूजिता ।
गय विष्णवादयस्तुष्टा वर ग्रूहीति चाब्रुवन् ॥४८॥
गयस्तान्प्रार्थयामास ह्यभिषत्ताञ्च ये पुरा ।
ब्रह्मणा ते द्विजा पूता भवन्तु क्रतुपूजिता ॥४९॥
गयापुरोति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा ।
एवमस्तु वर दत्त्वा चान्तदंष्टु सुरा ॥५०॥

सन्तकुमार जी बोले—नारदजी ! किसी समय राजा गय ने बहुत धन और बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले इतने यज्ञ किये कि उनमें रुच होने वाले द्रव्य की सख्या की गणना कर सकना सम्भव नहीं ॥४७॥ देश-देश के ब्राह्मण भन्नी प्रकार पूजे जाकर और पूण वृत्त होकर वहाँ से गये और सर्वत्र राजा गय की प्रशंसा करते रहे । राजा क इस महान् पुण्य कार्य से सन्तुष्ट होकर विष्णु आदि देवगणों ने राजा से वर माँगने को कहा ॥४८॥ राजा ने उनसे प्रार्थना की कि यदि माप वर देना चाहत हैं तो गया के जिन ब्राह्मणों को प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने शाप दिया था उन्हें उन्ने मुक्त कर दीजिये और वे यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायें ॥४९॥ यह गया पुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह पवित्र और विख्यात हो जाय । देवगण 'ऐसा ही' कहकर उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके अन्तर्धान होगये ॥५०॥

यत्र तत्र स्थितो देवा ऋषयाऽपि जितेन्द्रियाः ।
आद्य गदाधर ध्यायञ्छ्रद्धापिण्डादिदानत ॥५१॥
कुलाना शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोक नयेत् पितृन् ।
गया गयो गया दित्यो गायत्री च गदाधर ॥५२॥
गया गयामुरश्चैव पठेते मुक्तिदायका ।
गयाख्यानमिद पुण्य य पठेत्सतत नरः ॥५३॥

शृणुयाद्ब्रह्मया यस्तु स याति परमा गतिम् ।
 पाठयेद्वा गयाध्यान विप्रेभ्य पुरयट्पन्नर ॥५४
 गयाश्राद्ध कृत तेन कृत तेन मुनिश्चितम् ।
 गयाया महिमानश्च ह्यभ्यसेद्य समाहित ॥५५
 तेनेष्ट राजमूयेन अभ्यमेधेन नारद ।
 लिखेद्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।
 तस्य मेहे स्थिरा लक्ष्मी सुप्रसन्ना भविष्यति ॥५६

इस पुरी में स्थान-स्थान पर दवताओं के अनिरिक्त जितेन्द्रिय श्रुति भी
 विराजमान है । आदि गदाधर देव का ध्यान करके यहाँ श्राद्ध और पिण्डदान
 करने वाला सौ पीडियों का उद्धार करके उनको स्वर्ग का अधिकारी बना देता
 है । गयागय, गयाक्षित्य गायत्री, गदाधर, गया और गयामुर—ये छह 'गया'
 में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । इस पुरयदायक गयाध्यान की जो व्यक्ति सदा
 पढ़ता रहता है ॥५१-५२ ५३॥ अथवा जो पुरयशाली इसे श्रद्धापूर्वक सुनता
 है और ब्राह्मणों से इसका पाठ कराता है वह निश्चय रूप में गया श्राद्ध
 करता है । जो मनुष्य अन्त करण से महान्तीर्य गया की महिमा का चिन्तन
 करता है हे नारद, वह मानो राजमूय और अभ्यमेध यज्ञों का अनुष्ठान ही कर
 सता है । जो गयाध्यान की पुस्तक का स्वयं लिखता है अथवा दूसरे से लिखाना
 है या पुस्तक की पूजा करता है । उसके घर में लक्ष्मी जो स्थिर और प्रसन्न
 रहती है ॥५४ ५५-५६॥

“वायुपुराण का चतुर्थ चरण (उपसंहार) में गयामाहात्म्य समाप्त”

। वायु पुराण समाप्त ॥